कर्मकाण्ड भास्कर

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

कर्मकाण्ड-भास्कर

लेखक

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

संशोधित संस्करण २०१४ **मूल्य : ७५ रुपये**

॥ प्रस्तुत संस्करण के संदर्भ में ॥

'धर्मतन्त्र से लोक शिक्षण' के सिद्धान्त को ध्यान में रखकर परमपूज्य गुरुदेव ने इसी नाम से कर्मकाण्ड की पुस्तक सर्वप्रथम लिखी थी। सन् १९८२ में उस पुस्तक का संशोधित-संवर्द्धित संस्करण 'गायत्री यज्ञ एवं षोडश संस्कार' नाम से निकाला था, जिसमें सरलता और सुगमता को विशेष रूप से ध्यान में रखा था। विगत १३ वर्षों में यज्ञ-संस्कार सम्पन्न कराने वाले अपने परिजनों की कठिनाइयों एवं उनके सुझावों को ध्यान में रखकर पुनः उन पुस्तकों का संशोधित संस्करण 'कर्मकाण्ड भास्कर' के नाम से दो खण्डों में प्रस्तुत किया गया। वह संस्करण हाथों-हाथ समाप्त हो गया। उसे दो खण्डों में पुनः प्रकाशित करने के साथ ही साथ एक संयुक्त खण्ड के रूप में छापने का आग्रह परिजनों की ओर से उभरा, जिसे स्वीकार करके यह पुस्तक प्रकाशित की गयी है। दोनों खण्ड संयुक्त करने से सामान्य प्रकरण एक स्थान पर हो जाने से पृष्ठों की बचत तथा एक ही पुस्तक में सभी प्रकरण उपलब्ध होने के लाभ प्रत्यक्ष हैं। इस संयुक्त संस्करण में भी उन कर्मकाण्डों का विशेष रूप से समावेश किया गया है, जिनकी परिजनों को प्रायः आवश्यकता पड़ती रहती है, यथा-गृह प्रवेश, विवाह के पूर्व तिलक, हरिद्रा लेपन, द्वार पूजा आदि। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि मन्त्रोच्चारण की सुविधा को ध्यान में रखकर 'यति' (विराम) के स्थान पर मन्त्र की सन्धि को तोड़कर, वहाँ कामा (,) लगाकर छापा गया है। इससे उच्चारण में अत्यधिक सुविधा होगी, परन्तु मन्त्र के स्वरूप में आयी थोड़ी भिन्नता किसी को मन्त्र के अशुद्ध होने का भ्रम पैदा कर सकती है। ऐसा भ्रम किसी के मन में नहीं होना चाहिए। उच्चारण की शुद्धता एवं सुगमता के लिए ऐसा करना समीचीन है।

संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते॥

अर्थात् सन्धि का नियम एक पद में, धातु और उपसर्ग में तथा समास में नित्य (अनिवार्य) रूप से लागू होता है, किन्तु वाक्य (बोलने) में सन्धि के

नियम का पालन करना विवक्षा (बोलने वाले की इच्छा) पर निर्भर करता है ।]
अतएव सुधीजन इसे अन्यथा न लेंगे ।

प्रत्येक कर्मकाण्ड से सम्बन्धित मन्त्रों के पूर्व क्रमश: उनसे सम्बन्धित शिक्षण-प्रेरणा, क्रिया-निर्देश तथा उन्हें करते समय भाव संयोग के संकेत दिये गये हैं । उन्हें समझ कर अपने-अपने ढंग से समय और वातावरण के अनुरूप सन्तुलन बना लेना चाहिए ।

कर्मकाण्ड क्या है ? उसे कैसे प्रभावशाली बनाएँ ? संचालक किन तथ्यों का ध्यान रखें आदि महत्त्वपूर्ण बातें संक्षेप में-स्पष्ट रूप से प्रारम्भ में ही दे दी गई हैं । इन्हें मात्र पढ़ना पर्याप्त नहीं । जितना हृदयंगम किया जा सके, अनुभूतिगम्य बनाया जा सके, उतना ही प्रभावशाली प्राणवान् वातावरण खड़ा किया जा सकेगा ।

इस संस्करण में मन्त्रों की प्रामाणिकता-शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया गया है। यदि किन्हीं को कोई संशोधन सूझ पड़े, तो उसे शांतिकुञ्ज, हरिद्वार से परामर्श करने के बाद ही करें। पुस्तक की गुणवत्ता बढ़ाने की दृष्टि से दिये गये सुझावों का सदैव स्वागत रहेगा।

- प्रकाशक

* * *

विषयानुक्रमणी

संकेत-विवरण

१. अथर्व० - अथर्ववेद
२. आ० गृ० सू० - आश्वलायन-गृह्यसूत्र
३. आ० हृ० स्तो० - आदित्य हृदयस्तोत्र
४. ईश० - ईशोपनिषद्
५. ऋ० - ऋग्वेद
६. ऐत० ब्रा० - ऐतरेय ब्राह्मण
७. का० श्रौ० सू० - कात्यायन-श्रौतसूत्र
८. कृ० गा० - कृष्ण गायत्री
९. गा० गी० - गायत्री गीता
१०. गा० पु० प० - गायत्री पुरश्चरण-पद्धति
११. गु० गी० - गुरु गीता
१२. गो० गृ० सू० - गोभिल गृह्यसूत्र
१३. जै० सू० - जैमिनीय सूत्र
१४. तै० आ० - तैत्तिरीय-आरण्यक
१५. तैत्ति० सं० - तैत्तिरीय संहिता
१६. दु० गा० - दुर्गा गायत्री
१७. दे० भा० - देवी भागवत
१८. नृ० गा० - नृसिंह गायत्री
१९. पा० गृ० सू० - पारस्कर गृह्यसूत्र
२०. प्र० म० - प्रतिष्ठा महोदधि
२१. बृह० उ० - बृहदारण्यक-उपनिषद्
२२. ब्र० गा० - ब्रह्म गायत्री
२३. ब्र० पु० -ब्रह्म पुराण
२४. मं० ब्रा० - मंत्र ब्राह्मण
२५. मा० गृ० सू० - मानव गृह्य सूत्र
२६. मा० पु० - मार्कण्डेय पुराण
२७. य० गा० - यम गायत्री
२८. रा० गा० - राम गायत्री
२९. रा० च० मा० - रामचरित मानस
३०. रा० रह० - रामरहस्योपनिषद्
३१. रु० गा० - रुद्र गायत्री
३२. ल० गा० - लक्ष्मी गायत्री
३३. लौगा० स्मृ० - लौगाक्षि स्मृति
३४. वा० पु० - वामन पुराण
३५. वि० गा० - विष्णु गायत्री
३६. श्री० - श्रीसूक्त
३७. सं० गा० - संध्या प्रयोग
३८. सी० गा० - सीता गायत्री
३९. हं० गा० - हंस गायत्री
४०. ह० गा० - हनुमान् गायत्री

नोट— जिन मन्त्रों के नीचे केवल अंक लिखे हैं, वे यजुर्वेद के हैं।

भूमिका
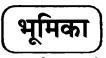
प्रभावी कर्मकाण्ड के सूत्र

यज्ञ-संस्कार आदि कर्मकाण्ड भारतीय ऋषि-मनीषियों द्वारा लम्बी शोध एवं प्रयोग-परीक्षण द्वारा विकसित असामान्य क्रिया-कृत्य हैं। इनके माध्यम से महत् चेतना तथा मानवीय पुरुषार्थ की सूक्ष्म योग साधना को दृश्य-श्रव्य (ऑडियो विजुअल) स्वरूप दिया गया है। इसमें अनुशासनबद्ध स्थूल क्रिया-कलापों के द्वारा अन्तरंग की सूक्ष्म शक्तियों को जाग्रत् एवं व्यवस्थित किया जाता है। औषधि निर्माण क्रम में अनेक प्रकार के उपचार करके सामान्य वस्तुओं में औषधि के गुण पैदा कर दिये जाते हैं। मानवीय अन्तःकरण में सत्प्रवृत्तियों, सद्भावनाओं, सुसंस्कारों के जागरण, आरोपण, विकास व्यवस्था आदि से लेकर महत् चेतना के वर्चस्व बोध कराने, उनसे जुड़ने, उनके अनुदान ग्रहण करने तक के महत्त्वपूर्ण क्रम में कर्मकाण्डों की अपनी सुनिश्चित उपयोगिता है। इसलिए न तो उनकी उपेक्षा की जानी चाहिए और न उन्हें चिह्न पूजा के रूप में करके सस्ते पुण्य लूटने की बात सोचनी चाहिए। कर्मकाण्ड के क्रिया-कृत्यों को ही सब कुछ मान बैठना या उन्हें एकदम निरर्थक मान लेना, दोनों ही हानिकारक हैं। उनकी सीमा भी समझें, लेकिन महत्त्व भी न भूलें। संक्षिप्त करें; पर श्रद्धासिक्त मनोभूमि के साथ ही करें, तभी वह प्रभावशाली बनेगा और उसका उद्देश्य पूरा होगा।

यज्ञादि कर्मकाण्ड द्वारा देव आवाहन, मंत्र प्रयोग, संकल्प एवं सद्भावनाओं की सामूहिक शक्ति से एक ऐसी भट्टी जैसी ऊर्जा पैदा की जाती है, जिसमें मनुष्य की अन्तः प्रवृत्तियों तक को गलाकर इच्छित स्वरूप में ढालने की स्थिति में लाया जा सकता है। गलाई के साथ ढलाई के लिए उपयुक्त प्रेरणाओं का संचार भी किया जा सके, तो भाग लेने वालों में वांछित, हितकारी परिवर्तन बड़ी मात्रा में लाये जा सकते हैं। इस विद्या का यत्किंचित् ही सही, पर ठीक दिशा में प्रयोग करने के कारण ही युग निर्माण अभियान के अन्तर्गत सम्पन्न होने वाले यज्ञों में गुण, कर्म, स्वभाव परिवर्तन के संकल्पों के रूप में बड़ी संख्या में जन-जन द्वारा देवदक्षिणाएँ अर्पित की जाती हैं।

इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों की ओर आकर्षित होती हैं, मन सुख की कल्पना में डूबना चाहता है, बुद्धि विचारों से प्रभावित होती है; परन्तु चित्त और अन्त:करण में जहाँ स्वभाव और आकांक्षाएँ उगती रहती हैं, उसे प्रभावित करने में ऊपर के सारे उपचार अपर्याप्त सिद्ध होते हैं। यज्ञ संस्कारादि ऐसे सूक्ष्म-विज्ञान के प्रयोग हैं, जिनके द्वारा मनुष्य के व्यक्तित्व का कायाकल्प कर सकने वाली उस गहराई को भी प्रभावित, परिवर्तित किया जा सकता है। जो लोग युग निर्माण अभियान तथा उसके सूत्र संचालकों के व्यापक प्रयोग परीक्षण से परिचित हैं, उन्होंने लाखों व्यक्तियों के जीवन में इस विद्या को फलित होते देखा है।

ऐसे अति महत्त्वपूर्ण कार्य को पूरी निष्ठा और पूरी जागरूकता से किया जाना चाहिए। उनमें मर्म समझने एवं उन्हें क्रियान्वित कर सकने की कुशलता तथा प्रवृत्ति विकसित करने का प्रयास मनोयोगपूर्वक बराबर करते रहना चाहिए।

कर्मकाण्ड संचालकों की भूमिका

कर्मकाण्ड का प्रभाव उसके विस्तार और कलेवर के आधार पर नहीं, उसके समग्र तथा प्राणवान् होने पर निर्भर करता है, उसे प्राणवान् और समग्र बनाने का उत्तरदायित्व कर्मकाण्ड के संचालकों, संयोजकों पर आता है। यदि वे प्रारम्भ से ही अपने लक्ष्य एवं उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूक रहें, तो कर्मकाण्ड का वांछित लाभ अवश्य प्राप्त किया जा सकता है। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए।

कर्मकाण्ड उपचार को तीन भागों में विभक्त करना चाहिए।

(१) पूर्व वातावरण एवं व्यवस्था (२) कर्मकाण्ड प्रवाह (३) उत्पन्न ऊर्जा उमंग को स्थायित्व एवं दिशा देना। इन तीन चरणों को शास्त्रीय भाषा में प्रयाज, याज और अनुयाज कहा जाता है।इनका स्वरूप इस प्रकार हैं--

पूर्व वातावरण एवं व्यवस्था (प्रयाज)

जो कर्म किया जाना है, उसके लिए सम्बन्धित व्यक्तियों के मन में उत्साह, उमंग पैदा करनी चाहिए। इसके लिए उसके लाभ-परिणामों की चर्चा चलाई जाती है। बुद्धिजीवियों के बीच बौद्धिक स्तर के तथा भावुकों के बीच

श्रद्धा प्रधान प्रतिपादन अधिक प्रभावी सिद्ध होते हैं।

कृत्य के लाभों के साथ उसे सुगमता से सम्पन्न किये जा सकने की बात भी उभारनी चाहिए। अधिक समय, श्रम और साधन खर्च करने की स्थिति अधिकांश लोगों की नहीं होती।

कर्मकाण्ड के स्थल को सुरुचिपूर्ण बनाना, सुसज्जित करना भी आवश्यक है।

कर्मकाण्ड से सम्बन्धित साधन, उपकरण एवं सामग्री समुचित मात्रा में यथा स्थान तैयार रखना आवश्यक है। ऐसा न होने से कर्मकाण्ड का प्रवाह टूटता है और प्रभाव घट जाता है।

वस्तुएँ एवं साधन उपकरण जुटाने के प्रयास में उत्तेजना, रोष, असन्तोष और अभाव का वातावरण न आने दिया जाए। पहले से ही इतना व्यवस्थित प्रयास, जिम्मेदार व्यक्तियों के माध्यम से किया जाए, ताकि समय पर खीझने-झल्लाने की स्थिति न आने पाए। यदि कोई चूक-अभाव दीखे, तो तुरन्त उसका विकल्प सोचने या धैर्यपूर्वक उसे सहन करने की व्यवस्था बनानी चाहिए; किन्तु वस्तु या व्यक्ति का अभाव उद्देश्य पर उतना विपरीत प्रभाव नहीं छोड़ता, जितना वातावरण का तनाव। अस्तु, वातावरण में सौम्यता, स्नेह एवं श्रद्धा का समावेश सतत बनाये रखना चाहिए।

कर्मकाण्ड प्रारम्भ होने तक ऐसे सारे काम निपटा लेने चाहिए, जो बीच-बीच में ध्यान बँटायें या प्रवाह खण्डित करें, यदि ऐसा प्रकरण आने की सम्भावना दिखाई दे, तो प्रारम्भ में ही एक समझदार व्यक्ति ऐसी परिस्थिति को काबू में करने के लिए नियुक्त कर देना चाहिए।

कर्मकाण्ड प्रवाह (याज)

* कर्मकाण्ड में ऋषियों की योजना के अनुरूप प्रभाव पैदाकर पाना तभी सम्भव है, जब उसे मात्र कौशल ही न मानकर साधना माना जाए। आवश्यक दोनों हैं। रोचक स्वर में मंत्र बोलना, सरल व्याख्याएँ, सुरम्य वातावरण आदि बनाने का कौशल भी विकसित किया जाना चाहिए। परन्तु उन सबमें प्राण भरने के लिए अपने अन्दर तदनुरूप भाव-संचार, आस्था विकास एवं निष्ठा के निर्वाह की क्षमता विकसित करने की साधना भी चलाते रहना चाहिए।

* कर्मकाण्ड प्रारम्भ करने के पूर्व वातावरण शान्त करके सबका ध्यान उसी ओर खींच लेना चाहिए। कर्मकाण्ड के कृत्य भले ही गिने-चुने व्यक्ति करते हों; परन्तु सभी उपस्थित व्यक्तियों के विचारों और सद्भावनाओं के एकीकरण संयोग से ही उसमें शक्ति आती है। यह मर्म संक्षिप्त; किन्तु सारगर्भित ढङ्ग से समझाकर कार्यारम्भ किया जाना चाहिए।

* कर्मकाण्ड की शक्ति, मंत्र प्रयोग की सजीवता, विचारों की दिशा, श्रद्धा भावना के उभार तथा क्रियाओं के सुसंयोग से उभरती है। इसलिए मंत्रोच्चार भर करते रहना पर्याप्त न समझा जाए। कार्य को सही ढङ्ग से करने के निर्देश, संकेत, विचारपरक व्याख्या, भावपरक टिप्पणियों आदि का सन्तुलित प्रयोग करने की क्षमता विकसित करनी चाहिए।

* मन्त्रोच्चार प्राणवान् तब बनते हैं, जब उच्चारण के साथ मनोयोग भी जुड़े, इसके लिए मंत्र कंठस्थ न भी हों, तो कम से कम इतने रवाँ होने चाहिए कि उन्हें सही-सही पढ़ने में ही सारा ध्यान न चला जाए। इतना होने पर ही स्तर में भावनाओं का पुट दिया जाना सम्भव होता है।

* विचारपरक व्याख्याओं तथा भावनापरक टिप्पणियों का सन्तुलन ठीक प्रकार बिठाना चाहिए। विचारपरक व्याख्या न तो इतनी अधिक हो कि कर्मकाण्ड नैतिक शिक्षा की कक्षा लगने लगे और न इतनी कम रहे कि प्रेरणाओं का प्रवाह ही न उमड़े।

* कर्मकाण्ड करने वाले व्यक्तियों के ज्ञान और अभ्यास का ध्यान रखकर क्रिया निर्देश बोलने चाहिए। न तो वे इतने कम हों कि न समझ पाने से लोग गलत करें और न इतने अनावश्यक हों कि लोग ऊब उठें। यदि दो-एक व्यक्ति न समझ पाएँ, तो उनके पास समझदार स्वयंसेवक नियुक्त कर देना चाहिए, जो उनसे कृत्य ठीक से कराते रहें। इससे न तो प्रवाह टूटेगा और न भूलें होंगी।

* जिन व्यक्तियों के बीच कर्मकाण्ड चल रहा है, उनके बौद्धिक एवं भावनात्मक स्तर के अनुरूप व्याख्याएँ एवं टिप्पणियाँ करने की कुशलता अर्जित करनी चाहिए।

* समय का सन्तुलन बहुत आवश्यक है। कितने समय तक कर्मकाण्ड चलाना है, यह निर्धारण स्थानीय व्यक्तियों और परिस्थितियों के अनुसार

पहले ही कर लेना चाहिए। उसकी घोषणा भी कर देनी चाहिए तथा उसी समय में सन्तुलित कार्यक्रम करा लेना चाहिए। कर्मकाण्ड का विस्तार, टिप्पणियों का समावेश आदि समय को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिए। ऐसा करने से उपस्थित समुदाय का मनोयोग निर्मित करना तथा विश्वास जीत लेना सम्भव है। यह दोनों ही उपलब्धियाँ उद्देश्य-पूर्ति में बहुत महत्त्व रखती हैं।

* कर्मकाण्ड में कहीं हीनता या अभाव का संस्कार नहीं उभरने देना चाहिए। कर्मकाण्ड के जो अंश कम करने हों, उन्हें इस कुशलता से हटाया जाए कि न तो प्रवाह टूटे और न अभाव का अनुभव हो। कोई उपकरण या पूजन सामग्री न जुट पाई हो, तो उसे पहले से ध्यान में रखा जाए। उसका विकल्प इतनी सहजता से समाविष्ट किया जाए कि लोगों को यह भान ही न हो कि अभाव था भी ? यह कुशलता कर्मकाण्ड के प्रभाव को बनाये रखने के लिए अतीव उपयोगी सिद्ध होती है।

* मंत्रोच्चार एवं व्याख्याओं के साथ पूजन आदि क्रियाओं की संगति बिठानी चाहिए। मंत्रों में इतनी जल्दी न की जाए कि क्रिया ठीक से करने में कठिनाई हो। स्वयंसेवकों द्वारा पुष्प देने, भस्म देने जैसे कार्यों के समय सरस व्याख्याओं का ऐसा सन्तुलित क्रम चलाया जाए कि वह कार्य पूरा होते-होते व्याख्या भी पूरी हो जाए। न तो लोगों को व्याख्या के कारण अकारण रुका रहना पड़े और न खालीपन के कारण इधर-उधर की बातें करने का अवसर ही मिले।

ऊर्जा - उमंग का सुनियोजन (अनुयाज)

कर्मकाण्ड के प्रभाव से श्रेष्ठ भावनाएँ, श्रेष्ठ विचारणाएँ तरंगित होती हैं। उस समय उन्हें समुचित दिशा-प्रेरणा देने से उनका लाभ सम्मिलित होने वालों को मिल जाता है। ज्वार आता है, तो जहाज उथले क्षेत्र पार करते हैं, रत्न गहराइयों से उथले क्षेत्र में आ जाते हैं। मानवी अन्तःकरण में भी ऐसे ज्वार आने पर श्रेष्ठ संकल्पों में बाधक प्रवृत्तियों को पार करना तथा अन्दर के सुसंस्कारों का ऊपर आना सम्भव है। इसके लिए प्रयास किये जाने पर ही कर्मकाण्ड से उत्पन्न ऊर्जा का लाभ जन-जीवन को मिल सकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयास- संकेत इस प्रकार हैं-

* यज्ञ-संस्कार आदि कर्मकाण्ड पूरा होने पर-अपने उत्तरदायित्व की इतिश्री न समझ ली जाए, यह माना जाए कि यह कर्मकाण्ड नहीं, प्रेरणाकाण्ड भर पूरा हुआ, अब इसके अनुरूप कर्म करने की व्यवस्था बनाकर सही अर्थों में कर्मकाण्ड-कर्म का अध्याय प्रारम्भ किया जाना है।

* उमंग एवं सामर्थ्य के अनुरूप सुगम; किन्तु सुनिश्चित कार्यक्रमों से हर व्यक्ति को संकल्पपूर्वक जोड़ देने का प्रयास किया जाए। यही देवदक्षिणा का सही स्वरूप है। इसे किस कुशलता एवं सरलता से पूरा किया गया, यह कर्मकाण्ड संचालक की सही कसौटी मानी जा सकती है।

* इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक 'टीम' बनाकर, व्यवस्था बनाकर भी जुटा जा सकता है। सुगम कार्यक्रम से जोड़ भर देना पर्याप्त नहीं, उसका निर्वाह करवा देना भी आवश्यक है। कालान्तर में लोगों के संकल्प ढीले पड़ने लगते हैं, परिस्थितियों के दबाव से व्यक्ति लड़खड़ाने लगते हैं। ऐसे में उन्हें तब तक सहारा देने की व्यवस्था बनायी जानी चाहिए, जब तक वे अपने पैरों पर खड़े होने-चलने की पर्याप्त सामर्थ्य न प्राप्त कर लें।

यह कार्य सघन आत्मीयता तथा प्रखर कर्त्तव्य बुद्धि के संयोग से ही किया जा सकता है। इन दोनों का समुचित विकास करते रहना चाहिए।

व्यवस्था प्रकरण

युग निर्माण योजना के सूत्र संचालकों ने यज्ञ को प्राथमिक महत्त्व दिया है; परन्तु अग्नि में हवन सामग्री झोंककर पुण्य लूटने की बालबुद्धि से अपने परिजनों को बचाकर रखा गया है। इसीलिए यज्ञ का कलेवर बड़ा करने की अपेक्षा उसे प्राणवान् बनाने पर जोर दिया जाता रहा है। मात्र प्रचार की दृष्टि से किये जाने वाले अधिक कुण्डों वाले यज्ञों की पुरानी परिपाटी को अब संशोधित कर दिया गया है। अब यज्ञों को प्रज्ञा पुराण आयोजनों, वार्षिकोत्सवों, युग निर्माण सम्मेलनों, नवरात्रि साधना, संस्कारों,पर्वों, जन्मदिन आदि के महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में ही किया जाता है। अस्तु, इनमें कुण्डों की संख्या भी ९ तक सीमित कर दी गयी है। यज्ञों का कलेवर छोटा रखने से उन्हें प्राणवान् प्रभावशाली बनाने के सूत्रों पर ध्यान देना तथा उन्हें क्रियान्वित करना-कराना सुगम हो जाता है। यज्ञों का लाभ जन-साधारण

तक पहुँचाने के लिए उन्हें प्रभावशाली प्राणवान् बनाने के साथ-साथ, कम खर्चीला और सुगम भी बनाना चाहिए। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आयोजक नीचे लिखी बातें ध्यान में रखें।

उद्देश्य और स्वरूप

* यज्ञों में आहुति देने वालों के लिए न्यूनतम ही सही, पर गायत्री उपासना आदि संयम- साधना की शर्त रखी जाए, इससे यज्ञ कृत्य में शक्ति आती है तथा कौतुकियों की भीड़ स्वतः ही छँट जाती है।

* यज्ञशाला में प्रवेश की पोशाक तथा उस क्षेत्र की पवित्रता का ध्यान रखा जाए।

* यज्ञ कम खर्चीला हो, तो भी उसे सुरुचिपूर्ण बनाने में प्रमाद न बरता जाए। वन्दनवार, चौक, रंगोली-वैनर, चित्र, झण्डी आदि सस्ते साधनों से उन्हें सुसज्जित किया जाए।

* हवन सामग्री एवं समिधाओं की पवित्रता का ध्यान रखा जाए। समिधाएँ काटने के बाद जल से धोकर सुखाई जा सकती हैं। हवन सामग्री शान्तिकुञ्ज तथा गायत्री तपोभूमि में पवित्रतापूर्वक तैयार की जाती है। अपने यहाँ सस्ती सुगंधित वनौषधियाँ- वनस्पतियाँ उपलब्ध हों, तो उन्हें कूट-पीस कर अपनी सामग्री भी तैयार कराई जा सकती है।

* साधकों के भावनायुक्त श्रमदान से यज्ञशाला निर्माण, सज्जा, समिधा एवं हवन सामग्री तैयार करने से आर्थिक बचत तो होती ही है, भाव संसर्ग से वस्तुओं और वातावरण में श्रेष्ठ संस्कार सजीव हो उठने का असामान्य लाभ भी प्राप्त होता है। इसके लिए प्रयास किया जाना चाहिए। यदि वातावरण में उमंग पैदा की जा सके, तो एक-एक कार्य के लिए समय निश्चित करके श्रद्धालुओं को आमन्त्रणपूर्वक बुलाकर जप-कीर्तन करते हुए यह सब काम किये जाने चाहिए। यदि ऐसा सम्भव न हो, तो बेमन से दबावपूर्वक श्रमदान की अपेक्षा भावनाशील श्रमिकों से ही वह कार्य करा लेना चाहिए।

* आयोजनों में सम्मिलित होने के लिए प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से लोगों को आमंत्रित कराने का क्रम बनाना चाहिए।

* यज्ञ में बैठने वालों को षट्कर्म तथा यज्ञादि कर्म की जानकारी पहले से दी जा सके, तो उस समय रोक-टोक नहीं करनी पड़ती है, कर्मकाण्ड का

प्रवाह और प्रभाव भी बढ़ जाता है ।

* घी आजकल ठीक नहीं मिलता, इसलिए प्रारम्भ में आज्याहुति की सात आहुतियाँ तथा अन्त में वसोर्धारा में ही घी होमा जाए । इतना घी यज्ञ के लिए प्रामाणिक सूत्रों से खरीदा या स्वयं तैयार कराया जा सकता है ।

तैयारियाँ

यज्ञ के लिए यज्ञ-मण्डप निर्माण से लेकर समिधा- सामग्री आदि तक की व्यवस्था समय से पूर्व सही ढङ्ग से जुटा लेनी चाहिए। उसके लिए आवश्यक सूत्र नीचे दिये जा रहे हैं-

* प्रति कुण्ड पर एक माला आहुति के लिए ७ किलो समिधा का औसत बैठता है ।

* प्रारम्भ में आज्याहुति तथा अन्त में वसोर्धारा तथा आरती आदि के लिए प्रति कुण्ड ५० ग्राम घी पर्याप्त होता है ।

* १००० आहुतियों के लिए ढाई किलो हवन सामग्री लगती है । इसका सूत्र है, कुण्ड x प्रति कुण्ड होता x आहुति के लिए बोले जाने वाले मंत्रों की संख्या । जैसे - ५ कुण्ड हैं, प्रति कुण्ड ५ व्यक्ति हैं तथा १०८ मंत्रों से आहुतियाँ डाली गयीं, तो कुल २७०० आहुतियाँ पड़ीं । इस हिसाब से ही सामग्री का हिसाब लगाना चाहिए ।

* यज्ञशाला के कलश पहले से रंगकर तैयार करा लिये जाने चाहिए ।

* सर्वतोभद्र तथा तत्त्ववेदियों के लिए पहले से व्यवस्था रहे । एक दिन के यज्ञ में इन्हें स्थापित करना आवश्यक भी नहीं होता । देवमंच बनाकर तथा कलश स्थापित करके भी यज्ञ सम्पन्न करा लिये जाते हैं ।

* ज्ञानयज्ञ के निमित्त सत्साहित्य का स्टॉल यज्ञशाला के निकट ही रहना चाहिए । गायत्री साधना प्रारम्भ करने के इच्छुकों को साहित्य उपलब्ध कराने के साथ उन्हें प्राथमिक शिक्षा देने की व्यवस्था भी रखी जा सकती है ।

* देवदक्षिणा के सङ्कल्प पत्र पहले से ही पर्याप्त मात्रा में रखे जाने चाहिए । देवदक्षिणा में धारण करने योग्य सङ्कल्पों के बड़े चार्ट बनवाकर भी जहाँ-तहाँ लटकाये जा सकते हैं ।

* पूर्णाहुति के लिए सुपारी ही पर्याप्त है । नारियल या गोले डालने का आग्रह न किया जाए ।

* पूर्णाहुति के बाद प्रसाद के रूप में शक्कर की गोलियाँ (चिरौंजीदाने, चिनौरी) जैसी सस्ती वस्तु ही रखनी चाहिए।

* ब्राह्मण भोजन के स्थान पर ब्रह्मभोज साहित्य बाँटने तथा मात्र कन्या भोजन कराने की अपनी परिपाटी सर्वविदित है।

* अन्य शाखाओं से आये प्रतिनिधियों के लिए भोजन व्यवस्था करनी पड़े, तो उसमें अमृताशन, सात्त्विक खिचड़ी जैसे आहार की व्यवस्था ही बनानी चाहिए। इसमें सस्तापन एवं सात्त्विकता के निर्वाह के साथ ही कच्चे-पक्के भोजन का भेद, छुआछूत की दुष्प्रवृत्ति का उन्मूलन होता है।

* यज्ञशाला में वेदियों पर पुरुषों और महिलाओं को अलग-अलग वेदियों-कुण्डों पर बिठाने की व्यवस्था रखनी चाहिए।

* चन्दा एकत्र करना पड़े, तो उसका हिसाब जल्दी से जल्दी प्रकाशित कराने की व्यवस्था करने में तत्परता बरतनी आवश्यक है।

* भिन्न-भिन्न कार्य जिम्मेदार व्यक्तियों को सौंपने तथा हर कार्य पर उपयुक्त स्वयंसेवक पर्याप्त संख्या में नियुक्त करने का सटीक तंत्र बनाना चाहिए।

कार्यकर्त्ता-स्वयंसेवक

(१) हर आयोजन के क्रिया-कृत्य का प्रधान संचालक एक व्यक्ति हो, शेष उसके संकेतानुसार व्यवस्था में सहयोग करें। अपने आयोजन सामूहिक-सम्मिलित सहयोग पर आधारित हैं, इसलिए इनमें कोई ब्राह्मण, आचार्य, पुरोहित आदि नहीं होता और जिनमें सामूहिक पैसा लगा हो; उसमें किसी को यजमान आदि का पद नहीं दिया जाता। सभी की स्थिति समान समझी जाए, इसमें कोई अतिरिक्त श्रेय लेने का प्रयत्न न करे।

(२) क्रियाकुशल लोगों से आगे चलकर उस विधान को सम्पन्न कराने में सहयोग करने के लिए कहा जाए। प्रयत्न यह करें कि अधिक लोग मंत्रोच्चार आदि कृत्यों में भाग लें और आगे चलकर वे स्वयं भी उसी तरह के आयोजनों के संचालन में अनुभवी सिद्ध हो सकें।

(३) आरती, पूजा, चढ़ावा आदि में कुछ धन आए, तो वह क्रिया-कृत्य कराने वाले आदि किसी व्यक्ति का न समझा जाए। उसे शाखा संगठन में जमा किया जाए, किसी कार्यकर्त्ता को कुछ पारिश्रमिक-मार्गव्यय आदि देना

हो, तो वह शाखा संगठन की ओर से दिया जाए। कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति को पौरोहित्य आदि प्रयोजन के लिए न तो सीधी दक्षिणा दे और न वह स्वीकार करे।

(४) यज्ञ की छोटी या बड़ी व्यवस्था के अनुरूप स्वयंसेवकों की संख्या पहले ही निर्धारित कर लेनी चाहिए और उन्हें समय से पहले ही ड्यूटी सौंप देनी चाहिए, ताकि वे कुण्डों की अग्नि सम्भालें, समिधाएँ, सामग्री आदि की कमी न पड़ने दें। जो गलत ढंग से आहुतियाँ दे रहे हों, उन्हें समझाते-सिखाते रहें।

(५) आयोजन के सभी कार्यकर्त्ताओं के सीने पर बिल्ले जरूर लगे रहने चाहिए। पीला दुपट्टा धर्मानुष्ठानों का महत्त्वपूर्ण प्रतीक है। इसकी व्यवस्था करके आने की पूर्व सूचना दे दी जानी चाहिए। कुछ पीले दुपट्टे शाखा में ही धुले, रँगे तैयार रहा करें, ताकि ऐसे विशिष्ट व्यक्तियों को जो दुपट्टे नहीं लाये हों-धारण कराये जा सकें।

(६) यज्ञ के अन्त में आरती सब उपस्थित लोगों को दी जाती है। यज्ञ की भस्म भी सभी लोग लगाते हैं और घृत अवघ्राण का घृत भी हाथों में मलते और अग्नि की ओर हाथ करके सभी तपाते हैं। यदि उपस्थिति थोड़ी है, तब तो एक पात्र से ही काम चल जाता है, पर अधिक भीड़ हो, तो एक पात्र के कारण बहुत समय नष्ट होता है। ऐसी दशा में कई पात्र रखे जाएँ और कई स्वयंसेवक अलग-अलग पात्रों में आरती के दीप, यज्ञ-भस्म और टपकाया हुआ घृत लेकर सबके पास घूम जाएँ। इस प्रकार समय की बहुत बचत हो सकती है। शान्तिपाठ के साथ शान्ति कलश के जल के छींटे देने में भी यही बात है। भीड़ के अनुपात से कम या अधिक जल पात्र तथा छींटे देने वाले स्वयंसेवकों की व्यवस्था रखी जाए। यह कार्य भी महिलाओं में महिला स्वयंसेविकाएँ और पुरुषों में पुरुष स्वयंसेवक सम्पन्न करें। जहाँ हाथ में कलावा बाँधने या तिलक करने की आवश्यकता पड़े, वहाँ भी महिला और पुरुष स्वयंसेवक को अपने-अपने वर्ग में काम करने दिया जाए।

मण्डप निर्माण

(१) मण्डप को आकर्षक बनाने का प्रयत्न किया जाए। आम, जामुन, अशोक आदि के जल्दी न कुम्हलाने वाले पल्लव, केले के खम्भे, पत्ती के

लघु सर्वतो भद्र

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
भगवती देवी शर्मा
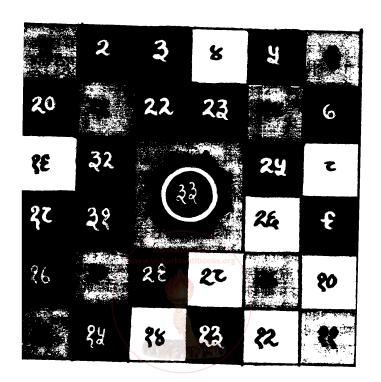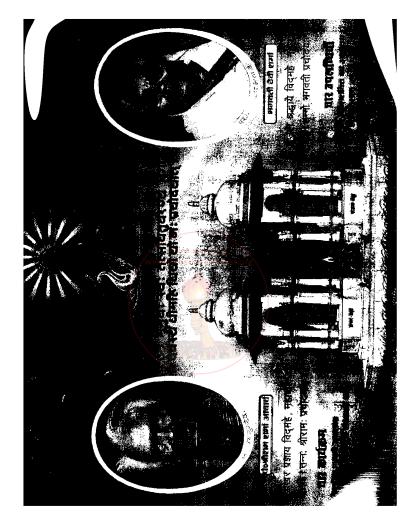
वन्दनवार, उपलब्ध ऋतु-फूल रंग-बिरंगे, छोटे-छोटे फल यदि सूझ-बूझ के साथ लगाये जाएँ, तो उससे भी मण्डप को असाधारण शोभा-सज्जा के साथ सजाया जा सकता है। श्रमदान से ये वस्तुएँ आसानी से इकट्ठी की जा सकती हैं। भिन्न प्रकृति के कई वृक्ष के पत्ते क्रमबद्ध लगाये जाएँ, तो वे भी नयनाभिराम लगते हैं। कमल के, अरवी के पत्ते भी बड़ी शोभा देते हैं। सिंघाड़े, बेर, अमरूद, करेला, टमाटर, परवल, ककड़ी जैसी वस्तुओं को यदि पत्तों के पीछे गूँथना आता हो, तो मण्डप बहुत ही सुसज्जित बन जाता है।

(२) शहरों में जहाँ वन-सम्पदा मिलनी कठिन है, वहाँ यह साज-सज्जा रंगीन कपड़ों की छाया, झाल्लर द्वार, बाँस-बल्लियों पर कपड़े की लपेट से बन सकती हैं। झण्डियाँ, बेलें, फूल-पत्ते आदि यदि कागज को काटकर बनाना आता हो, तो वह भी अपने ढंग की सुन्दरता से भरा-पूरा होता है। जहाँ-तहाँ शीशे मढ़े चित्र-कपड़े पर लिखे आदर्शवाक्य यदि क्रमबद्ध रूप से लगे हों, तो उससे शोभा में और भी अधिक वृद्धि हो जाती है।

(३) यज्ञ वेदी के चारों ओर कई रंगों से मिलाकर कई डिजायन के चौक पूरे जाते हैं। पिसा सोपस्टोन (सेलखड़ी) रँगकर कितने ही रंग बन जाते हैं। ड्राइंग उपकरणों की सहायता से सधे हुए हाथ ऐसे बढ़िया चौक पूरते हैं कि उस कलाकारिता को देखकर सबका जी प्रसन्न हो जाता है। महाराष्ट्र का साँचे द्वारा रँगोली काढ़ने का ढंग भी सुगम और आकर्षक है।

(४) यज्ञ मण्डप ही नहीं जहाँ आयोजन हो रहा हो, उस स्थल को झण्डियों, तोरणों से सजाया जाना चाहिए।

(५) लम्बी बल्लियों पर बड़े आकार के अपने झण्डे लगाये जाने चाहिए। लाल मशाल के टीन से बने छोटे-बड़े स्टेन्सिल हर शाखा के पास रहने चाहिए, ताकि झण्डों का रंग फीका पड़ जाने पर झण्डा रँगाने के साथ-साथ उस पर मशाल दुबारा अंकित किया जा सके।

(६) यज्ञ मण्डप की भूमि पहले से ही समतल और लीप-पोतकर सही बना लेनी चाहिए। यदि सम्भव हो, तो मण्डप की भूमि को छः इञ्च या नौ इञ्च ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया जाए।

(७) यज्ञ कुण्ड जमीन में खोदने की आवश्यकता नहीं। उन्हें जमीन पर ही बनाया जाए। जमीन से मेखलाओं की ऊँचाई तक की जगह हवन सामग्री

के लिए पर्याप्त है । कुण्ड के स्थान पर वेदी भी बनाई जा सकती है । ईंटों से बनी वेदी सुरुचिपूर्ण नहीं लगती, इसलिए २ या ३ इञ्च मोटी मिट्टी की वेदी जल छींटकर-पीटकर बना लेनी चाहिए ।

(८) सही माप एवं आकार के कुण्ड या वेदियाँ बनाने का काम लकड़ी के साँचों से जल्दी और सुन्दर ढंग से हो जाता है । मिस्त्री जानकार न हों, तो कुण्ड अक्सर बेसाइज और बेतुके हो जाते हैं, इसलिए हर शाखा के पास कुण्ड बनाने के साँचे रहने चाहिए ।

(९) यज्ञशाला में चारों ओर रस्सियों की या बाँसों की बाड़ बना देनी चाहिए, जिससे कुत्ते भीतर न आ सकें । जब यज्ञ बन्द रहे, तब उसमें एक बाँस का दरवाजा भी रहे, जिसे बन्द करने से भीतर की सुरक्षा बनी रहे ।

(१०) एक कुण्ड की यज्ञशाला के लिए स्थान आठ फुट चौड़ा और आठ फुट से कम लम्बा नहीं होना चाहिए, एक-दो फुट सुविधानुसार उसे बढ़ाया भी जा सकता है । एक कुण्ड की यज्ञशाला के लिए चार खम्भे पर्याप्त हैं । नीचे-ऊपर पकड़ कसी रहने से वह हिलने-डुलने नहीं पाती । कपड़े की छाया, झल्लर तथा खम्भों पर लपेटने का कपड़ा लगाने से वह सुन्दर बन जाती है । यह आवश्यकता पल्लवों से भी पूरी की जा सकती है । पाँच कुण्डीय, नौ कुण्डीय यज्ञशाला बड़ी साइज की होती है । बाहर १२ खम्भे और बीच में ४ खम्भे लगाने पड़ते हैं । पाँच कुण्डों की यज्ञशाला सामान्य रूप से १८x१८ फुट और ९ कुण्डों की २४x२४ फुट स्थान लेती है । बीच में चार खम्बे ६x६ या ८x८ फुट पर गाड़े जाएँ, मण्डप की ऊँचाई ९ फुट से १५ फुट तक रखनी चाहिए ।

(११) कुण्डों की संख्या बढ़ाने की प्रतिस्पर्धा नहीं की जानी चाहिए । साधारण आयोजनों में एक कुण्ड पर्याप्त है । यदि उपस्थिति अधिक हो , तो पाँच कुण्डीय या अधिक से अधिक नौ कुण्डों की यज्ञशाला बनाई जा सकती है । बहुत अधिक कुण्डों के यज्ञ नहीं किये जाने चाहिए ।

(१२) तीन मेखलाएँ-तीन रंग से रँग देनी चाहिए । नीचे की काली, बीच की लाल तथा ऊपर की सफेद रँगनी चाहिए । वेदी बनाएँ, तो उनके चारों ओर मेखला की प्रतीक तीन लकीरें खींची जा सकती हैं । तीनों मेखलाएँ समान ऊँचाई-चौड़ाई की होनी चाहिए । एक फुट लम्बा और एक फुट चौड़ा

भीतरी भाग रहना पर्याप्त है । इसके लिए औसतन दो-दो इञ्च ऊँचाई-चौड़ाई की प्रत्येक मेखला होनी चाहिए। नीचे वाली मेखला से सटी हुई एक नाली-पानी भरने के लिए बनानी चाहिए।

यज्ञकर्त्ताओं के लिए अनुशासन

आहुतियाँ देते समय प्रत्येक हवन करने वाले को निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए-

(१) मध्यमा और अनामिका अँगुलियों पर सामग्री ली जाए और अँगूठे का सहारा देकर उसे कुण्ड में छोड़ा जाए।

(२) सब लोग पालथी मारकर सीधे बैठें।

(३) आहुतियाँ कुण्ड में ही झुककर डालें। इस तरह न फेंकें कि आधी कुण्ड में गिरे, आधी बाहर।

(४) सब लोग समान स्वर में साथ-साथ मन्त्र बोलें। कोई ऊँची- नीची आवाज न रखें और न आगे- पीछे ही बोलें। सबकी सम्मिलित आवाज ऐसी प्रतीत हो, मानो एक व्यक्ति ही बोल रहा हो।

(५) जब **"स्वाहा"** शब्द बोला जाए, तभी सब लोग एक साथ आहुतियाँ डालें। इसमें भी हाथों का आगा-पीछा नहीं होना चाहिए।

(६) घी हवन करने वाले स्रुवा की पीठ को घृत पात्र के किनारे से पहले से पोंछ लिया करें; ताकि मेखलाओं पर घी न टपके।

(७) घृत की आहुति देने के बाद स्रुवा को लौटाते हुए एक बूँद घी प्रणीता पात्र में टपकाना चाहिए और साथ-साथ **"इदम् गायत्र्यै इदं न मम"** बोलना चाहिए।

(८) हवन करने वालों के पास पीले दुपट्टे हों, तो बहुत ही उत्तम है।

(९) यज्ञशाला पर अत्यन्त आवश्यक यज्ञ सम्बन्धी बातें संकेत में या संक्षिप्त शब्दों में कहनी चाहिए। इधर-उधर की बेकार की बातें यज्ञशाला पर बिल्कुल नहीं करनी चाहिए।

(१०) बिना नहाये, बिना पैर धोये यज्ञशाला में प्रवेश नहीं करना चाहिए, वस्त्र धुले होने चाहिए।

(११) इतने छोटे बच्चे यज्ञशाला पर नहीं जाने चाहिए, जिन्हें

टट्टी,पेशाब करने में सावधानी बरतने का ज्ञान न हो ।

(१२) यज्ञ पर बैठने वाले धोती पहनें । पंजाबी महिलाओं को इसके लिए छूट दी जा सकती है, क्योंकि वे स्वभावत: पाजामा ही पहनती हैं ।

अग्नि से सुरक्षा

हवन कुण्ड की अग्नि के सम्बन्ध में तथा दीपक आरती आदि के समय आवश्यक सावधानी न रखने से कभी-कभी आग दूसरी वस्तुओं को पकड़ लेती है और कुछ चीजें जल जाती हैं । ऐसी दशा में लोग उसे अपशकुन, गायत्री माता की नाराजगी आदि की बात सोचकर दु:खी होते हैं । वस्तुत: ऐसी कोई बात नहीं होती । यह सम्बद्ध व्यक्तियों की असावधानी का दण्ड मात्र है । इसलिए यज्ञ प्रबन्धकों को पहले से ही पूरी सावधानी बरतनी चाहिए और प्रत्येक याज्ञिक को सावधान कर देना चाहिए ।

(१) यज्ञशाला की छत इतनी ऊँची बनानी चाहिए कि पूर्णाहुति के समय गिरी के जलते गोलों से उठती हुई लपटों से उसमें आग न लग जाए ।

(२) आरती करते समय दीपक को कपड़ों से बचाना चाहिए तथा तेजी से नहीं घुमाना चाहिए, अन्यथा वह बुझ सकता है ।

(३) पूर्णाहुति के समय अग्नि प्रचण्ड हो जाती है । उस समय आस-पास रखे कलश, यज्ञपात्र आदि दूर हटा देना चाहिए । सुपारी या गिरी के गोले ही पूर्णाहुति में डाले जाएँ ।

(४) यज्ञ समाप्त हो जाने पर भी कुण्डों से चिनगारी उड़कर आस-पास की वस्तुओं को जला सकती है, इसलिए जब तक अग्नि पूरी तरह शान्त न हो जाए, तब तक उसकी चौकीदारी रखनी चाहिए ।

यज्ञ आयोजनों की आवश्यक वस्तुएँ

(१) **धातुपात्र** - ८ तश्तरियाँ हवन सामग्री के लिए, १ बड़ा कटोरा घी होमने को, १ छोटा लोटा, ३ जल कलश ढक्कन सहित, दीपक के लिए कटोरी, (एक पूजा दीप, आरती के समय), ९ पंचपात्र, ९ चमची, १ बाल्टी पीतल की हवन सामग्री के लिए, १ घृतपात्र, पूजा उपकरण रखने तथा इकट्ठा करने के लिए दो थाली, एक पूजन की वस्तुएँ डालने की तश्तरी (त्वष्टा), धूपदान, १ लोटा पानी का ।

(२) **आरती का सामान** - शंख, घड़ियाल, झाँझ, मंजीरा आदि ।

(३) **फुटकर सामान-** रँगा हुआ मिट्टी का बड़ा कलश । कपड़ा लपेटा हुआ नारियल । कलश के नीचे रखने का कपड़े का घेरा (इडली), मुख पर रखने हेतु आम्र पल्लव, गले में कलावा या माला ।

(४) **काष्ठपात्र** - प्रणीता, प्रोक्षणी, स्रुवा, स्रुचि तथा स्फ्य । प्रत्येक कुण्ड पर एक-एक पंखा ।

(५) **आसन-** ९ यज्ञकर्त्ताओं के लिए, एक कार्य प्रमुख के लिए, १ चौकी, १ दीपक बन्द रखने की काँच की घेरे वाली पेटी, त्रिदेव (गायत्री माता, यज्ञ पुरुष और ज्ञान ज्योति- लाल मशाल) का शीशे में मढ़ा हुआ छोटा चित्र । चौकी पर बिछाने का कपड़ा-पीला रँगा हुआ ।

(६) **पूजा वस्तुएँ-** चावल, रोली, अगरबत्ती, रुई-बत्ती, दियासलाई, कपूर, चन्दन काष्ठ तथा घिसने की चकली । पुष्प जितने अधिक हो सकें । नैवेद्य, शक्कर की गोलियाँ तथा हाथ में बाँधने का कलावा, स्विष्टकृत् के लिए एक पेड़ा तथा पूर्णाहुति के लिए गिरी का गोला या साबूत सुपारी, आरती के लिए आटे के दीपक, बत्ती घी समेत पाँच या अधिक संख्या में, यज्ञोपवीत उपस्थिति के अनुसार, गाय का दूध, दही,घी, शक्कर तथा तुलसी पत्र पंचामृत के लिए । यह सामान एक कुण्डीय यज्ञ के अनुसार है, पाँच कुण्डीय या नौ कुण्डीय यज्ञ में उसी अनुपात से अतिरिक्त सामान रखें ।

(७) पाँच चौकियाँ डेढ़-डेढ़ या दो-दो फुट लम्बी- चौड़ी, पाँचों पर बिछाने के कपड़े, ५ कलश पुते हुए, ५ नारियल लाल कपड़े से बँधे हुए, चौकी, रँगने के लिए पीला, लाल, हरा, काला रंग । जलयात्रा के लिए पुते हुए कलश स्थानीय आवश्यकतानुसार संख्या में ।

आसन, पंचपात्र, चमची, यज्ञ के काष्ठपात्र, हवन सामग्री की तश्तरियाँ, घृतपात्र, ये वस्तुएँ कुण्डों के आधार पर बढ़ानी चाहिए ।

समस्त शाखाओं के पास ये वस्तुएँ रहें

(१) **यज्ञ मण्डप के उपकरण-**ऊपर का चन्दोवा, किनारे की झालर, बाँस के चार मजबूत खम्भे, ऊपर के कसाव के लिए बाँस की दोहरी पट्टी, नीचे के लिए एक कसावा के बाँस । बाँसों पर लपेटने का कपड़ा, बाँस की अपेक्षा यह चिरी हुई लकड़ी का, मिस्त्री से बनवाया भी जा सकता है ।

(२) कुण्ड बनाने का लकड़ी का फ्रेम। जिसकी सहायता से सही और सुन्दर कुण्ड बन सकें। कुण्डों के लिए गड्ढे खोदने की जरूरत नहीं है। जमीन से लेकर मेखलाओं की ऊँचाई तक का भाग ही हवन के लिए पर्याप्त है।

(३) यज्ञ में काम आने वाले लकड़ी के पाँच उपकरण।

(४) नौ पंचपात्र तथा चम्मच, आठ तश्तरियाँ हवन सामग्री के लिए, एक घी की भगौनी, स्थापना की चौकी, उस पर बिछाने का वस्त्र, मिट्टी का कलश, धातु का कलश ढक्कन सहित, दीपक के लिए काँच लगा बक्सा, दीपक की कटोरी। त्रिदेव का मढ़ा हुआ चित्र, आरती थाल, पूजा का सामान रखने के लिए कुछ और तश्तरियाँ, पुष्पाञ्जलि समर्पण के लिए बड़ी थालियाँ, अग्नि सम्भालने के लिए चिमटा तथा अग्नि प्रज्वलित करने के लिए पंखा। पंचामृत रखने के पात्र तथा वितरण करने का चम्मच, हाथ धुलाने के लिए गंगासागर।

हाथ पोंछने के लिए तौलिया, गुलदस्ते, शंख, घड़ियाल, घण्टा, झाँझ आदि आरती के समय काम आने के लिए। बड़ी थाली सामग्री रखने के लिए। एक लोटा, आसन बारह, हवन की पुस्तकें।

(५) संगीत उपकरण-हारमोनियम, तबला, ढोलक, मँजीरा आदि।

(६) सत्संकल्प पुस्तिकाएँ १००।

(७) झण्डियाँ-कागज, कपड़े या प्लास्टिक की। बड़े झण्डे-लाल मशाल के चौकोर पीले कपड़े पर बने हुए।

(८) आदर्श वाक्य कपड़ों पर लिखे हुए, शीशे में मढ़े हुए बड़े चित्र।

(९) बिक्री के लिए हवन सामग्री, धूप बत्तियाँ तथा कटी-छँटी निर्धारित परिमाप की समिधाएँ।

(१०) चन्दन, चकली, चन्दन की कटोरी, चौक पूरने के लिए पिसी हल्दी, पिसी मेंहदी, गुलाल, पिसे सोपस्टोन को भी कई रंगों में रँगा जा सकता है। जन्मदिवस, विवाहदिन, संस्कारों, पर्वों, कथा प्रसंगों तथा अन्य आयोजनों में उपर्युक्त वस्तुओं की जरूरत पड़ती ही रहती है। इसलिए इन्हें शाखा में मँगाकर रखा जाए, ताकि आयोजनकर्त्ता को वस्तुएँ इधर-उधर तलाश न करनी पड़ें। टूट-फूट का खर्च उपभोक्ताओं से लिया जाता रहे। हर आयोजन के बाद कपड़े धुलाकर रँगकर रखने चाहिए ; ताकि अगले आयोजन में मैली-कुचैली स्थिति में उन्हें प्रयुक्त न करना पड़े।

यज्ञ का बचत धन - प्रयत्न यह करना चाहिए कि इन आयोजनों की बचत से शाखा के लिए प्रचार उपकरण मँगाने की व्यवस्था जुटाई जाए। कहा जा चुका है कि हर युग निर्माण शाखा को अपने क्षेत्र में " शान्तिकुञ्ज " का छोटा संस्करण बनकर विकसित होना और अपना समीपवर्ती क्षेत्र स्वयं सँभालना है। इसलिए उनके पास समर्थ शाखा के लिए आवश्यक उपकरण रहने चाहिए। १-चल पुस्तकालय, २-प्रकाश चित्र यंत्र, ३-लाउडस्पीकर, ४-यज्ञ उपकरण, ५-संगीत उपकरण, ६-टेपरिकार्डर, ७-वीडियो कैसेट प्रदर्शन के उपकरण । ये सात साधन होने से उत्साही कार्यकर्त्ता अपने क्षेत्र को सहज ही जाग्रत्, संगठित और नव निर्माण में प्रवृत्त बना सकने में सफल हो सकते हैं। इसके बाद शाखा का भवन निर्माण कार्य है। यह ज्ञान मन्दिर उपासना व कार्यालय, सत्संग, पाठशाला, पुस्तकालय आदि के सभी प्रयोजन पूरा कर सकने वाला होगा। दो कोठरी उसमें सामान रखने तथा कार्यकर्त्ताओं के ठहरने के लिए हों, तो भी काम चल सकता है। यह सारे साधन यदि उत्साही कार्यकर्त्ता चाहें, तो बड़े यज्ञों के आयोजन करके उसकी बचत से सहज ही जुटा सकते हैं। यज्ञ आयोजनों का उद्देश्य केवल देव पूजन ही नहीं वरन् जन-जागरण की अति महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं को पूरा करना भी है, यह ध्यान में रखते हुए योजना को हाथ में लिया जाए, तो ही उसकी सार्थकता है। पण्डिताऊ यज्ञों पर हाऊहड़प, लूट-खसोट, अवांछनीय तत्त्वों का पोषण, पैसे का अपव्यय जैसे आरोप, जो समझदार लोगों द्वारा लगाये जाते हैं, वे सही ही मानने पड़ेंगे। वाजपेय यज्ञों का उद्देश्य सदा से जनमानस का परिष्कार रहा है। अपनी इस गायत्री यज्ञ की शृंखला को देश, धर्म, संस्कृति के पुनरुत्थान की योजना कह सकते हैं और 'वाजपेय' यज्ञों में उनकी गणना कर सकते हैं।

गायत्री यज्ञ उपयोगिता और आवश्यकता

भारतीय संस्कृति का उद्गम, ज्ञान-गंगोत्री गायत्री ही है। भारतीय धर्म का पिता यज्ञ को माना जाता है। गायत्री को सद्विचार और यज्ञ को सत्कर्म का प्रतीक मानते हैं। इन दोनों का सम्मिलित स्वरूप सद्भावनाओं एवं सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाते हुए विश्व-शान्ति एवं मानव कल्याण का माध्यम बनता है और प्राणिमात्र के कल्याण की सम्भावनाएँ बढ़ती हैं।

यज्ञ शब्द के तीन अर्थ हैं — (१) देव पूजा, (२) दान, (३) संगतिकरण। संगतिकरण का अर्थ है - संगठन। यज्ञ का एक प्रमुख उद्देश्य धार्मिक प्रवृत्ति के लोगों को सत्प्रयोजन के लिए संगठित करना भी है। इस युग में संघ शक्ति ही सबसे प्रमुख है। परास्त देवताओं को पुनः विजयी बनाने के लिए प्रजापति ने उनकी पृथक्-पृथक् शक्तियों का एकीकरण करके संघ-शक्ति के रूप में दुर्गा शक्ति का प्रादुर्भाव किया था। उस माध्यम से उनके दिन फिरे और संकट दूर हुए। मानवजाति की समस्या का हल सामूहिक शक्ति एवं संघबद्धता पर निर्भर है, एकाकी व्यक्तिवादी असंगठित लोग दुर्बल और स्वार्थी माने जाते हैं। गायत्री यज्ञों का वास्तविक लाभ सार्वजनिक रूप से, जन सहयोग से सम्पन्न कराने पर ही उपलब्ध होता है।

यज्ञ का तात्पर्य है - त्याग, बलिदान, शुभ कर्म। अपने प्रिय खाद्य पदार्थों एवं मूल्यवान् सुगन्धित पौष्टिक द्रव्यों को अग्नि एवं वायु के माध्यम से समस्त संसार के कल्याण के लिए यज्ञ द्वारा वितरित किया जाता है। वायु शोधन से सबको आरोग्यवर्धक साँस लेने का अवसर मिलता है। हवन हुए पदार्थ वायुभूत होकर प्राणी मात्र को प्राप्त होते हैं और उनके स्वास्थ्यवर्धन, रोग निवारण में सहायक होते हैं। यज्ञ काल में उच्चरित वेद मंत्रों की पुनीत शब्द ध्वनि आकाश में व्याप्त होकर लोगों के अन्तःकरण को सात्त्विक एवं शुद्ध बनाती है। इस प्रकार थोड़े ही खर्च एवं प्रयत्न से यज्ञकर्त्ताओं द्वारा संसार की बड़ी सेवा बन पड़ती है।

वैयक्तिक उन्नति और सामाजिक प्रगति का सारा आधार सहकारिता, त्याग, परोपकार आदि प्रवृत्तियों पर निर्भर है। यदि माता अपने रक्त-मांस में से एक भाग नये शिशु का निर्माण करने के लिए न त्यागे, प्रसव की वेदना न सहे, अपना शरीर निचोड़कर उसे दूध न पिलाए, पालन-पोषण में कष्ट न उठाए और यह सब कुछ नितान्त निःस्वार्थ भाव से न करे, तो फिर मनुष्य का जीवन-धारण कर सकना भी सम्भव न हो। इसलिए कहा जाता है कि मनुष्य का जन्म यज्ञ भावना के द्वारा या उसके कारण ही सम्भव होता है। गीताकार ने इसी तथ्य को इस प्रकार कहा है कि प्रजापति ने यज्ञ को मनुष्य के साथ जुड़वा भाई की तरह पैदा किया और यह व्यवस्था की, कि एक दूसरे का अभिवर्धन करते हुए दोनों फलें-फूलें।

यदि यज्ञ भावना के साथ मनुष्य ने अपने को जोड़ा न होता, तो अपनी शारीरिक असमर्थता और दुर्बलता के कारण अन्य पशुओं की प्रतियोगिता में यह कब का अपना अस्तित्व खो बैठा होता। यह जितना भी अब तक बढ़ा है, उसमें उसकी यज्ञ भावना ही एक मात्र माध्यम है। आगे भी यदि प्रगति करनी हो, तो उसका आधार यही भावना होगी।

प्रकृति का स्वभाव यज्ञ परम्परा के अनुरूप है। समुद्र बादलों को उदारतापूर्वक जल देता है, बादल एक स्थान से दूसरे स्थान तक उसे ढोकर ले जाने और बरसाने का श्रम वहन करते हैं। नदी, नाले प्रवाहित होकर भूमि को सींचते और प्राणियों की प्यास बुझाते हैं। वृक्ष एवं वनस्पतियाँ अपने अस्तित्व का लाभ दूसरों को ही देते हैं। पुष्प और फल दूसरे के लिए ही जीते हैं। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, वायु आदि की क्रियाशीलता उनके अपने लाभ के लिए नहीं वरन् दूसरों के लिए ही है। शरीर का प्रत्येक अवयव अपने निज के लिए नहीं वरन् समस्त शरीर के लाभ के लिए ही अनवरत गति से कार्यरत रहता है। इस प्रकार जिधर भी दृष्टिपात किया जाए, यही प्रकट होता है कि इस संसार में जो कुछ स्थिर व्यवस्था है, वह यज्ञ वृत्ति पर ही अवलम्बित है। यदि इसे हटा दिया जाए, तो सारी सुन्दरता, कुरूपता में और सारी प्रगति, विनाश में परिणत हो जायेगी। ऋषियों ने कहा है - यज्ञ ही इस संसार चक्र का धुरा है।धुरा टूट जाने पर गाड़ी का आगे बढ़ सकना कठिन है।

यज्ञीय विज्ञान

मन्त्रों में अनेक शक्ति के स्रोत दबे हैं। जिस प्रकार अमुक स्वर-विन्यास से युक्त शब्दों की रचना करने से अनेक राग-रागनियाँ बजती हैं और उनका प्रभाव सुनने वालों पर विभिन्न प्रकार का होता है, उसी प्रकार मंत्रोच्चारण से भी एक विशिष्ट प्रकार की ध्वनि तरंगें निकलती हैं और उनका भारी प्रभाव विश्वव्यापी प्रकृति पर, सूक्ष्म जगत् पर तथा प्राणियों के स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों पर पड़ता है।

यज्ञ के द्वारा जो शक्तिशाली तत्त्व वायुमण्डल में फैलाये जाते हैं, उनसे हवा में घूमते असंख्यों रोग कीटाणु सहज ही नष्ट होते हैं। डी०डी०टी०, फिनायल आदि छिड़कने, बीमारियों से बचाव करने वाली दवायें या सुइयाँ लेने से भी कहीं अधिक कारगर उपाय यज्ञ करना है। साधारण रोगों एवं

महामारियों से बचने का यज्ञ एक सामूहिक उपाय है। दवाओं में सीमित स्थान एवं सीमित व्यक्तियों को ही बीमारियों से बचाने की शक्ति है, पर यज्ञ की वायु तो सर्वत्र ही पहुँचती है और प्रयत्न न करने वाले प्राणियों की भी सुरक्षा करती है। मनुष्य की ही नहीं, पशु-पक्षियों, कीटाणुओं एवं वृक्ष-वनस्पतियों के आरोग्य की भी यज्ञ से रक्षा होती है।

यज्ञ की ऊष्मा मनुष्य के अन्तःकरण पर देवत्व की छाप डालती है। जहाँ यज्ञ होते हैं, वह भूमि एवं प्रदेश सुसंस्कारों की छाप अपने अन्दर धारण कर लेता है और वहाँ जाने वालों पर दीर्घकाल तक प्रभाव डालता रहता है। प्राचीनकाल में तीर्थ वहीं बने हैं, जहाँ बड़े-बड़े यज्ञ हुए थे। जिन घरों में, जिन स्थानों में यज्ञ होते हैं, वह भी एक प्रकार का तीर्थ बन जाता है और वहाँ जिनका आगमन रहता है, उनकी मनोभूमि उच्च, सुविकसित एवं सुसंस्कृत बनती है। महिलाएँ, छोटे बालक एवं गर्भस्थ बालक विशेष रूप से यज्ञ शक्ति से अनुप्राणित होते हैं। उन्हें सुसंस्कारी बनाने के लिए यज्ञीय वातावरण की समीपता बड़ी उपयोगी सिद्ध होती है।

कुबुद्धि, कुविचार, दुर्गुण एवं दुष्कर्मों से विकृत मनोभूमि में यज्ञ से भारी सुधार होता है। इसलिए यज्ञ को पापनाशक कहा गया है। यज्ञीय प्रभाव से सुसंस्कृत हुई विवेकपूर्ण मनोभूमि का प्रतिफल जीवन के प्रत्येक क्षण को स्वर्गीय आनन्द से भर देता है, इसलिए यज्ञ को स्वर्ग देने वाला कहा गया है।

यज्ञीय धर्म प्रक्रियाओं में भाग लेने से आत्मा पर चढ़े हुए मल-विक्षेप दूर होते हैं। फलस्वरूप तेजी से उसमें ईश्वरीय प्रकाश जगता है। यज्ञ से आत्मा में ब्राह्मण तत्त्व, ऋषि तत्त्व की वृद्धि दिनानु-दिन होती है और आत्मा को परमात्मा से मिलाने का परम लक्ष्य बहुत सरल हो जाता है। आत्मा और परमात्मा को जोड़ देने का, बाँध देने का कार्य यज्ञाग्नि द्वारा ऐसे ही होता है, जैसे लोहे के टूटे हुए टुकड़ों को वैल्डिंग की अग्नि जोड़ देती है। ब्राह्मणत्व यज्ञ के द्वारा प्राप्त होता है। इसलिए ब्राह्मणत्व प्राप्त करने के लिए एक तिहाई जीवन यज्ञ कर्म के लिए अर्पित करना पड़ता है। लोगों के अन्तःकरण में अन्त्यज वृत्ति घटे-ब्राह्मण वृत्ति बढ़े, इसके लिए वातावरण में यज्ञीय प्रभाव की शक्ति भरना आवश्यक है।

विधिवत् किये गये यज्ञ इतने प्रभावशाली होते हैं, जिसके द्वारा मानसिक दोषों-दुर्गुणों का निष्कासन एवं सद्भावों का अभिवर्धन नितान्त सम्भव है । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष, कायरता, कामुकता, आलस्य, आवेश, संशय आदि मानसिक उद्वेगों की चिकित्सा के लिए यज्ञ एक विश्वस्त पद्धति है । शरीर के असाध्य रोगों तक का निवारण उससे हो सकता है ।

अग्निहोत्र के भौतिक लाभ भी हैं । वायु को हम मल, मूत्र, श्वास तथा कल-कारखानों के धुआँ आदि से गन्दा करते हैं । गन्दी वायु रोगों का कारण बनती है । वायु को जितना गन्दा करें, उतना ही उसे शुद्ध भी करना चाहिए । यज्ञों से वायु शुद्ध होती है । इस प्रकार सार्वजनिक स्वास्थ्य की सुरक्षा का एक बड़ा प्रयोजन सिद्ध होता है ।

यज्ञ का धूम्र आकाश में-बादलों में जाकर खाद बनकर मिल जाता है । वर्षा के जल के साथ जब वह पृथ्वी पर आता है, तो उससे परिपुष्ट अन्न, घास तथा वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं, जिनके सेवन से मनुष्य तथा पशु-पक्षी सभी परिपुष्ट होते हैं । यज्ञाग्नि के माध्यम से शक्तिशाली बने मंत्रोच्चार के ध्वनि कम्पन, सुदूर क्षेत्र में बिखरकर लोगों का मानसिक परिष्कार करते हैं, फलस्वरूप शरीरों की तरह मानसिक स्वास्थ्य भी बढ़ता है ।

अनेक प्रयोजनों के लिए, अनेक कामनाओं की पूर्ति के लिए , अनेक-विधानों के साथ अनेक विशिष्ट यज्ञ भी किये जा सकते हैं । दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ करके चार उत्कृष्ट सन्तानें प्राप्त की थीं, अग्निपुराण में तथा उपनिषदों में वर्णित पंचाग्नि विद्या में ये रहस्य बहुत विस्तारपूर्वक बताये गये हैं । विश्वामित्र आदि ऋषि प्राचीनकाल में असुरता निवारण के लिए बड़े-बड़े यज्ञ करते थे । राम-लक्ष्मण को ऐसे ही एक यज्ञ की रक्षा के लिए स्वयं जाना पड़ा था । लंका युद्ध के बाद राम ने दस अश्वमेध यज्ञ किये थे । महाभारत के पश्चात् कृष्ण ने भी पाण्डवों से एक महायज्ञ कराया था, उनका उद्देश्य युद्धजन्य विक्षोभ से क्षुब्ध वातावरण की असुरता का समाधान करना ही था । जब कभी आकाश के वातावरण में असुरता की मात्रा बढ़ जाए, तो उसका उपचार यज्ञ प्रयोजनों से बढ़कर और कुछ हो नहीं सकता । आज पिछले दो महायुद्धों के कारण जनसाधारण में स्वार्थपरता की मात्रा अधिक बढ़ जाने से

वातावरण में वैसा ही विक्षोभ फिर उत्पन्न हो गया है । उसके समाधान के लिए यज्ञीय प्रक्रिया को पुनर्जीवित करना आज की स्थिति में और भी अधिक आवश्यक हो गया है ।

यज्ञीय प्रेरणाएँ

यज्ञ आयोजनों के पीछे जहाँ संसार की लौकिक सुख-समृद्धि को बढ़ाने की विज्ञानसम्मत परम्परा सन्निहित है - जहाँ देव शक्तियों के आवाहन-पूजन का मंगलमय समावेश है, वहाँ लोकशिक्षण की भी प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है । जिस प्रकार 'बाल फ्रेम' में लगी हुई रंगीन लकड़ी की गोलियाँ दिखाकर छोटे विद्यार्थियों को गिनती सिखाई जाती है, उसी प्रकार यज्ञ का दृश्य दिखाकर लोगों को यह भी समझाया जाता है कि हमारे जीवन की प्रधान नीति 'यज्ञ' भाव से परिपूर्ण होनी चाहिए । हम यज्ञ आयोजनों में लगें-परमार्थ परायण बनें और जीवन को यज्ञ परम्परा में ढालें । हमारा जीवन यज्ञ के समान पवित्र, प्रखर और प्रकाशवान् हो । गंगा स्नान से जिस प्रकार पवित्रता, शान्ति, शीतलता, आर्द्रता को हृदयंगम करने की प्रेरणा ली जाती है, उसी प्रकार यज्ञ से तेजस्विता, प्रखरता, परमार्थ-परायणता एवं उत्कृष्टता का प्रशिक्षण मिलता है । यज्ञ की प्रक्रिया को जीवन यज्ञ का एक 'रिहर्सल' कहा जा सकता है । अपने घी, शक्कर, मेवा, ओषधियाँ आदि बहुमूल्य वस्तुएँ जिस प्रकार हम परमार्थ प्रयोजनों में होम करते हैं, उसी तरह अपनी प्रतिभा, विद्या, बुद्धि, समृद्धि, सामर्थ्य आदि को भी विश्व मानव के चरणों में समर्पित करना चाहिए । इस नीति को अपनाने वाले व्यक्ति न केवल समाज का बल्कि अपना भी सच्चा कल्याण करते हैं । संसार में जितने भी महापुरुष, देवमानव हुए हैं, उन सभी को यही नीति अपनानी पड़ी है । जो उदारता, त्याग, सेवा और परोपकार के लिए कदम नहीं बढ़ा सकता, उसे जीवन की सार्थकता का श्रेय और आनन्द भी नहीं मिल सकता ।

यज्ञीय प्रेरणाओं का महत्त्व समझाते हुए ऋग्वेद में यज्ञाग्नि को पुरोहित कहा गया है । उसकी शिक्षाओं पर चलकर लोक-परलोक दोनों सुधारे जा सकते हैं । वे शिक्षाएँ इस प्रकार हैं-

(१) जो कुछ हम बहुमूल्य पदार्थ अग्नि में हवन करते हैं, उसे वह अपने पास संग्रह करके नहीं रखती, वरन् उसे सर्वसाधारण के उपयोग के लिए

वायुमण्डल में बिखेर देती है । ईश्वर प्रदत्त विभूतियों का प्रयोग हम भी वैसा ही करें, जो हमारा यज्ञ पुरोहित अपने आचरण द्वारा सिखाता है । हमारी शिक्षा, समृद्धि, प्रतिभा आदि विभूतियों का न्यूनतम उपयोग हमारे लिए और अधिकाधिक उपयोग जन-कल्याण के लिए होना चाहिए ।

(२) जो वस्तु अग्नि के सम्पर्क में आती है, उसे वह दुरदुराती नहीं, वरन् अपने में आत्मसात् करके अपने समान ही बना लेती है । जो पिछड़े या छोटे या बिछुड़े व्यक्ति अपने सम्पर्क में आएँ, उन्हें हम आत्मसात् करने और समान बनाने का आदर्श पूरा करें ।

(३) अग्नि की लौ कितना ही दबाव पड़ने पर भी नीचे की ओर नहीं होती, वरन् ऊपर को ही रहती है । प्रलोभन, भय कितना ही सामने क्यों न हो, हम अपने विचारों और कार्यों की अधोगति न होने दें । विषम स्थितियों में अपना संकल्प और मनोबल अग्नि शिखा की तरह ऊँचा ही रखें ।

(४) अग्नि जब तक जीवित है, उष्णता एवं प्रकाश की अपनी विशेषताएँ नहीं छोड़ती । उसी प्रकार हमें भी अपनी गतिशीलता की गर्मी और धर्म-परायणता की रोशनी घटने नहीं देनी चाहिए । जीवन भर पुरुषार्थी और कर्त्तव्यनिष्ठ रहना चाहिए ।

(५) यज्ञाग्नि का अवशेष भस्म मस्तक पर लगाते हुए हमें सीखना होता है कि मानव जीवन का अन्त मुट्ठी भर भस्म के रूप में शेष रह जाता है । इसलिए अपने अन्त को ध्यान में रखते हुए जीवन के सदुपयोग का प्रयत्न करना चाहिए ।

अपनी थोड़ी-सी वस्तु को वायुरूप बनाकर उन्हें समस्त जड़ चेतन प्राणियों को बिना किसी अपने-पराये, मित्र-शत्रु का भेद किये साँस द्वारा इस प्रकार गुप्तदान के रूप में खिला देना कि उन्हें पता भी न चले कि किस दानी ने हमें इतना पौष्टिक तत्त्व खिला दिया-सचमुच एक श्रेष्ठ ब्रह्मभोज का पुण्य प्राप्त करना है, कम खर्च में बहुत अधिक पुण्य प्राप्त करने का यज्ञ एक सर्वोत्तम उपाय है ।

यज्ञ सामूहिकता का प्रतीक है । अन्य उपासनाएँ या धर्म-प्रक्रियाएँ ऐसी हैं, जिन्हें कोई अकेला कर या करा सकता है, पर यज्ञ ऐसा कार्य है, जिसमें अधिक लोगों के सहयोग की आवश्यकता है । होली आदि बड़े यज्ञ

तो सदा सामूहिक ही होते हैं। यज्ञ आयोजनों से सामूहिकता, सहकारिता और एकता की भावनाएँ विकसित होती हैं।

प्रत्येक शुभ कार्य, प्रत्येक पर्व-त्यौहार, संस्कार यज्ञ के साथ सम्पन्न होता है। यज्ञ भारतीय संस्कृति का पिता है। यज्ञ भारत की एक मान्य एवं प्राचीनतम वैदिक उपासना है। धार्मिक एकता एवं भावनात्मक एकता को लाने के लिए ऐसे आयोजनों की सर्वमान्य साधना का आश्रय लेना सब प्रकार दूरदर्शितापूर्ण है।

गायत्री सद्बुद्धि की देवी और यज्ञ सत्कर्मों का पिता है, सद्भावनाओं एवं सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन के लिए गायत्री माता और यज्ञ पिता का युग्म हर दृष्टि से सफल एवं समर्थ सिद्ध हो सकता है। गायत्री यज्ञों की विधि-व्यवस्था बहुत ही सरल, लोकप्रिय एवं आकर्षक भी है। जगत् के दुर्बुद्धिग्रस्त जन-मानस का संशोधन करने के लिए सद्बुद्धि की देवी गायत्री महामन्त्र की शक्ति एवं सामर्थ्य अद्भुत भी है और अद्वितीय भी।

नगर, ग्राम अथवा क्षेत्र की जनता को धर्म प्रयोजनों के लिए एकत्रित करने के लिए जगह-जगह पर गायत्री यज्ञों के आयोजन करने चाहिए। गलत ढंग से करने पर वे मँहगे भी होते हैं और शक्ति की बरबादी भी बहुत करते हैं। यदि उन्हें विवेक-बुद्धि से किया जाए, तो कम खर्च में अधिक आकर्षक भी बन सकते हैं और उपयोगी भी बहुत हो सकते हैं।

अपने सभी कर्मकाण्डों, धर्मानुष्ठानों, संस्कारों, पर्वों में यज्ञ आयोजन मुख्य है। उसका विधि-विधान जान लेने एवं उनका प्रयोजन समझ लेने से उन सभी धर्म आयोजनों की अधिकांश आवश्यकता पूरी हो जाती है।

लोक-मंगल के लिए, जन-जागरण के लिए, वातावरण के परिशोधन के लिए स्वतंत्र रूप से भी यज्ञ आयोजन सम्पन्न किये जाते हैं। संस्कारों और पर्व-आयोजनों में भी उसी की प्रधानता है।

प्रत्येक भारतीय धर्मानुयायी को यज्ञ प्रक्रिया से परिचित होना ही चाहिए। इसी का वर्णन-विवेचन अगले पृष्ठों पर किया जा रहा है।

***

प्रारम्भिक कर्मकाण्ड

कर्मकाण्ड की व्यवस्था बनाकर, जाँच कर जब कर्मकाण्ड प्रारम्भ करना हो, तो संचालक को सावधान होकर वातावरण को अनुकूल बनाना चाहिए। कुछ जयघोष बोलकर शान्त रहने की अपील करके कार्य प्रारम्भ किया जाए। संचालक आचार्य का काम करने वाले स्वयंसेवक को नीचे दिये गये अनुशासन के साथ कार्य प्रारम्भ करना चाहिए, वे हैं-(१) व्यासपीठ नमन, (२) गुरु वन्दना, (३) सरस्वती वन्दना, (४) व्यास वन्दना।

यह चारों कृत्य कर्मकाण्ड के पूर्व के हैं। यजमान के लिए नहीं, संचालक-आचार्य के लिए हैं। कर्मकाण्ड ऋषियों-मनीषियों द्वारा विकसित ज्ञान-विज्ञान से समन्वित अद्‌भुत कृत्य हैं, उस परम्परा का निर्वाह हमसे हो सके, इसलिए उस स्थान को तथा अपने आपको संस्कारित करने, उस दिव्य प्रवाह का माध्यम बनने की पात्रता पाने के लिए यह कृत्य किये जाते हैं।

व्यासपीठ नमन - व्यास पीठ पर-संचालक के आसन पर बैठने के पूर्व उसे श्रद्धापूर्वक नमन करें। यह हमारा आसन नहीं-व्यासपीठ है। इसके साथ एक पुनीत परिपाटी जुड़ी है। उस पर बैठकर उस परिपाटी के साथ न्याय कर सकें-इसके लिए उस पीठ की गरिमा-मर्यादा को प्रणाम करते हैं, तब उस पर बैठते हैं।

॥ गुरु वन्दना ॥

गुरु व्यक्ति तक सीमित नहीं, वह एक दिव्य चेतन प्रवाह ईश्वर का ही एक अंश होता है। परीक्षा लेकर पास फेल करने वाले तथा पास बिठाकर पढ़ाने वाले दोनों ही शिक्षक कहे जाते हैं। चेतना का एक अंश जो अनुशासन व्यवस्था बनाता, उसका फल देता है-वह ईश्वर है, दूसरा अंश जो अनुशासन-मर्यादा सिखाता है, उसमें गति पैदा कराता है, वह गुरु है।

ऐसी चेतना के रूप में गुरु की वन्दना करके उस अनुशासन को अपने ऊपर आरोपित करना चाहिए, उसका उपकरण बनने के लिए भाव-भरा आवाहन करना चाहिए; ताकि अपनी वृत्तियाँ और शक्तियाँ उसके अनुरूप कार्य करती हुईं, उस सनातन गौरव की रक्षा कर सकें। हाथ जोड़कर नीचे

लिखी गुरु-वन्दनाओं में से कोई एक अथवा वैसी ही अन्य वन्दनाएँ भावनापूर्वक सस्वर बोलें।

ॐ ब्रह्मानन्दं परम सुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं,
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं,
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥१॥ गु० गी० ६७
अखण्डानन्दबोधाय शिष्यसंतापहारिणे।
सच्चिदानन्दरूपाय तस्मै श्री गुरवे नमः ॥२॥

॥ सरस्वती वन्दना ॥

माँ सरस्वती वाणी की देवी हैं। कर्मकाण्ड में वाणी का प्रयोग करना पड़ता है। यदि वाणी सुसंस्कृत न हुई, तो उसमें प्रभाव पैदा नहीं होगा, बोले गये मन्त्र शब्द मात्र न रह जाएँ, मंत्र बनें, कहे हुए शब्दों में अन्तःकरण को प्रभावित करने योग्य प्राण पैदा हो, इस कामना-भावना के साथ माँ सरस्वती की भाव-भरी वन्दना की जाए।

लक्ष्मीर्मेधा धरापुष्टिः, गौरी तुष्टिः प्रभा धृतिः।
एताभिः पाहि तनुभिः, अष्टाभिर्मां सरस्वति ॥१॥
सरस्वत्यै नमो नित्यं, भद्रकाल्यै नमो नमः।
वेद वेदान्तवेदाङ्ग, विद्यास्थानेभ्य एव च ॥२॥
मातस्त्वदीयपदपंकज - भक्तियुक्ता,
ये त्वां भजन्ति निखिलानपरान्विहाय।
ते निर्जरत्वमिह यान्ति कलेवरेण,
भूवह्निवायुगगनाम्बुविनिर्मितेन ॥३॥

॥ व्यास वन्दना ॥

व्यासपीठ पर बैठकर कर्मकाण्ड संचालन का जो उत्तरदायित्व उठाया है, उसके अनुरूप अपने अन्तःकरण, बुद्धि, मन, वाणी आदि को बनाने की याचना, उसके निर्वाह का प्रयास पूरी ईमानदारी से करने के संकल्प की घोषणा के भाव से व्यास वन्दना के एक-दो श्लोक भाव विभोर होकर बोले जाएँ।

व्यासाय विष्णुरूपाय , व्यासरूपाय विष्णवे ।
नमो वै ब्रह्मनिधये, वासिष्ठाय नमो नमः ।।१ ।।
नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे, फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ।
येन त्वया भारततैलपूर्णः, प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः ।।

ब्र० पु० २४५।७.११

ये सभी कृत्य आचार्य-संचालक के अपने संस्कार के हैं । इन्हें जितनी प्रगाढ़ श्रद्धा के साथ किया जाता है, दिव्य प्रवाह से जुड़ जाने की उतनी ही प्रभावी संभावना बन जाती है ।

* * *

।। साधनादिपवित्रीकरणम् ।।

सत्कार्यों-श्रेष्ठ उद्देश्यों के लिए यथाशक्ति साधन-माध्यम भी पवित्र रखने चाहिए। यज्ञ, संस्कार आदि कार्यों में जो उपकरण साधन-सामग्री प्रयुक्त हों, उनमें भी देवत्व का संस्कार जगाया जाता है। फल काटने का चाकू साफ किया, पोंछा जाता है। आपरेशन के चाकू को भाप में ऊँचे दबाव और तापक्रम पर शोधित किया जाता है, अदृश्य विषाणुओं से मुक्त किया जाता है। कर्मकाण्ड में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों-साधनों में सन्निहित अशुभ संस्कार हटाये जाते हैं, उन्हें मंत्र शक्ति से नष्ट किया जाता है।

परिस्थितियों के अनुरूप एक या अधिक स्वयंसेवक जल कलश लेकर खड़े हों। मंत्र पाठ के साथ पल्लवों, कुशाओं या पुष्पों से सभी उपकरणों-साधनों का सिंचन करें। समिधा, पात्र, हव्य आदि सभी का सिंचन किया जाए। भावना करें कि भाव भरे आवाहन और मंत्र शक्ति के प्रभाव से उनमें कुसंस्कारों के पलायन और सुसंस्कारों के उभार-स्थापन का क्रम चल रहा है।

ॐ पुनाति ते परिस्रुत ँ सोम ँ सूर्यस्य दुहिता।
वारेण शश्वता तना। १९.४

ॐ पुनन्तु मा देवजनाः, पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि, जातवेदः पुनीहि मा। - १९.३९

ॐ यत्ते पवित्रमर्चिषि, अग्ने विततमन्तरा।
ब्रह्म तेन पुनातु मा॥ १९.४१

ॐ पवमानः सो अद्य नः, पवित्रेण विचर्षणिः।
यः पोता स पुनातु मा। १९.४२

ॐ उभाभ्यां देव सवितः, पवित्रेण सवेन च।
मां पुनीहि विश्वतः॥ -१९.४३

यह क्रम यज्ञों, संस्कारों, भूमि-पूजन, प्राण-प्रतिष्ठा, पर्वायोजनों आदि सभी में अपनाये जाने योग्य है।

* * *

।। सामान्य प्रकरण ।।

(यज्ञ-संचालन)

।। मंगलाचरणम् ।।

यज्ञ कर्म अथवा अन्य धर्मानुष्ठानों को सम्पन्न करने वाले याजकों के आसन पर बैठते समय उनके कल्याण, उत्साह अभिवर्धन, सुरक्षा और प्रशंसा के लिए पीले अक्षत अथवा पुष्प वर्षा की जाती है, स्वागत किया जाता है, मंत्र के साथ भावना की जाए कि इस पुण्य कर्म में भाग लेने वालों पर देव अनुग्रह बरस रहा है और देवत्व के धारण तथा निर्वाह की क्षमता का विकास हो रहा है । आचार्य निम्न मंत्र से यजमान के ऊपर चावल फेंके ।

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा, भद्रम्पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।

स्थिरैरंगैस्तुष्टुवा ँ सस्तनूभिः, व्यशेमहि देव हितं यदायुः ।।२५.२१

।। पवित्रीकरणम् ।।

देव उद्देश्य की पूर्ति के लिए मनुष्य को स्वयं भी देवत्व धारण करना होता है । देव शक्तियाँ पवित्रता प्रिय हैं । उन्हें शरीर और मन से, आचरण और व्यवहार से शुद्ध मनुष्य ही प्रिय होते हैं । इसलिए यज्ञ जैसे देव प्रयोजन में संलग्न होते समय शरीर और मन को पवित्र बनाना पड़ता है । पवित्रता की भावना करनी पड़ती है । भावना करें कि हमारे भाव भरे आवाहन के नाते सूक्ष्म सत्ता हम पर पवित्रता की वृष्टि कर रही है । हम उसे धारण कर रहे हैं ।

बायें हाथ में जल लेकर उसे दाहिने हाथ से ढक लिया जाए । मंत्रोच्चारण के बाद उस जल को सिर तथा शरीर पर छिड़क लिया जाए ।

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।

यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं, स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ।।

ॐ पुनातु पुण्डरीकाक्षः , पुनातु पुण्डरीकाक्षः , पुनातु ।

- वा० पु० ३३.६

॥ आचमनम् ॥

वाणी, मन और अन्तःकरण की शुद्धि के लिए तीन बार आचमन किया जाता है, मन्त्रपूरित जल से तीनों को भाव स्नान कराया जाता है। आयोजन के अवसर पर तथा भविष्य में तीनों को अधिकाधिक समर्थ, प्रामाणिक बनाने का संकल्प किया जाता है। हर मन्त्र के साथ एक आचमन किया जाए।

ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥१ ॥

ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२ ॥

ॐ सत्यं यशः श्रीर्मयि, श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥३ ॥

- आश्व० गृ० सू० १.२४ मा० गृ० सू० १.९

॥ शिखावन्दनम् ॥

शिखा भारतीय धर्म की ध्वजा है, जो मस्तकरूपी किले के ऊपर हर भारतीय संस्कृति प्रेमी को फहराते रहनी पड़ती है। इसे गायत्री का प्रतीक भी माना गया है। मस्तिष्क सद्विचारों का केन्द्र है। इसमें देव भाव ही प्रवेश करने पाएँ। भावना करें कि सांस्कृतिक ध्वजा को धारण करने योग्य प्रखरता, तेजस्विता का विकास हो रहा है।

दाहिने हाथ की अँगुलियों को गीला कर शिखा स्थान का स्पर्श करें। मन्त्र बोलने के बाद शिखा में गाँठ लगाएँ। जिनके संयोगवश शिखा नहीं, ऐसे व्यक्ति तथा महिलाएँ उस स्थान को भावनापूर्वक स्पर्श करें।

ॐ चिद्रूपिणि महामाये, दिव्यतेजः समन्विते।
तिष्ठ देवि शिखामध्ये, तेजोवृद्धिं कुरुष्व मे ॥ -सं० प्र०

॥ प्राणायामः ॥

कमर सीधी, बायाँ हाथ मुड़ा हुआ, हथेली चौड़ी, दाहिने हाथ की कोहिनी बायें हाथ की हथेली पर बीचों-बीच, चारों अँगुलियाँ बन्द। अँगूठे से दाहिने नथुने को बंद करके, बायें नथुने से धीरे-धीरे पूरी साँस खींचना-यह पूरक हुआ। साँस को भीतर रोकना, दायें हाथ की तर्जनी और मध्यमा अँगुलियों से बायाँ नथुना भी बंद कर लेना,

अर्थात् दोनों नथुने बंद । यह अन्त:कुम्भक हुआ । अँगूठा हटाकर दाहिना नथुना खोल देना, उसमें से साँस को धीरे-धीरे बाहर निकलने देना, यह रेचक हुआ । इसके बाद कुछ समय साँस बाहर रोक देना चाहिए । बिना साँस के रहना चाहिए, इसे बाह्यकुम्भक कहते हैं । इन चार क्रियाओं को करने में एक प्राणायाम पूरा होता है, यह क्रिया कठिन लगे, तो दोनों हाथ गोद में रखते हुए दोनों नथुनों से श्वास लेते हुए पूरक, कुम्भक, रेचक का क्रम नीचे लिखी भावनानुसार पूरा करें ।

साँस खींचने के साथ भावना करनी चाहिए कि संसार में व्याप्त प्राणशक्ति और श्रेष्ठता के तत्त्वों को साँस द्वारा खींच रहे हैं । साँस रोकते समय भावना करनी चाहिए कि वह प्राणशक्ति, दिव्यशक्ति तथा श्रेष्ठता अपने रोम-रोम में प्रवेश करके उसी में रम रही है । जैसे मिट्टी पर जल डालने से वह उसे सोख लेती है, उसी तरह शरीर और मन ने प्राणायाम की साँस जो भीतर पहुँची है, उसकी समस्त श्रेष्ठता को अपने में सोख लिया है । साँस छोड़ते समय यह भावना करनी चाहिए कि जितने भी दुर्गुण अपने में थे, वे साँस के साथ निकल कर बाहर चले गये । इसके उपरान्त कुछ समय बिना साँस ग्रहण किये रहना चाहिए और भावना करनी चाहिए कि निकलते हुए दोष-दुर्गुणों को सदा के लिए बहिष्कृत कर दिया गया और उनको पुन: वापस न आने देने के लिए दरवाजा बन्द कर दिया गया ।

मन्त्रोच्चार दूसरे लोग करते रहें । याज्ञिक केवल प्राणायाम-विधान पूरा करें । यह प्राणायाम अपने भीतर शरीरबल-मनोबल और आत्मबल की वृद्धि के लिए है । दोष-दुर्गुणों के निवारण, निष्कासन के लिए उन्हीं भावनाओं के साथ उसे करना चाहिए ।

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः , ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ।
ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः
प्रचोदयात् । ॐ आपोज्योतीरसोऽमृतं,ब्रह्म भूर्भुवः स्वः ॐ ।

- तै० आ० १०.२७

॥ न्यासः ॥

बायें हाथ की हथेली पर जल लेना, दाहिने हाथ की पाँचों अँगुलियों को इकट्ठा करना, उन एकत्रित अँगुलियों को हथेली वाले जल में डुबोना। अब जहाँ-जहाँ मन्त्रोच्चार के संकेत हों, वहाँ पहले बायीं ओर फिर दाहिनी ओर के क्रम से स्पर्श करते हुए हर बार में एकत्रित अँगुलियाँ डुबोते और लगाते चलना-यह न्यास कर्म है। इसका प्रयोजन है-शरीर के अति महत्त्वपूर्ण अंगों में पवित्रता की भावना भरना, उनकी दिव्य चेतना को जाग्रत् करना। अनुष्ठान काल में उनके जाग्रत् देवत्व से सारे कृत्य पूरे करना तथा इसके अनन्तर ही इन अवयवों को, इन्द्रियों को सशक्त एवं संयत बनाये रहना।

भावना करें कि इन्द्रियों-अंगों में मन्त्र शक्ति के प्रभाव से दिव्य प्रवृत्तियों की स्थापना हो रही है। ईश्वरीय चेतना हमारे आवाहन पर वहाँ विराजित होकर अशुभ का प्रवेश रोकेगी, शुभ को क्रियान्वित करने की प्रखरता बढ़ायेगी।

ॐ वाङ् मे आस्येऽस्तु। (मुख को)

ॐ नसोर्मे प्राणोऽस्तु। (नासिका के दोनों छिद्रों को)

ॐ अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु। (दोनों नेत्रों को)

ॐ कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु। (दोनों कानों को)

ॐ बाह्वोर्मे बलमस्तु। (दोनों भुजाओं को)

ॐ ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु। (दोनों जंघाओं को)

ॐ अरिष्टानि मेऽङ्गानि, तनूस्तन्वा मे सह सन्तु। (समस्त शरीरपर)

पा० गृ० सू० १.३.२५

॥ पृथ्वी पूजनम् ॥

हम जहाँ से अन्न, जल, वस्त्र, ज्ञान तथा अनेक सुविधा-साधन प्राप्त करते हैं, वह मातृभूमि हमारी सबसे बड़ी आराध्या है। हमारे मन में माता के प्रति

जैसी अगाध श्रद्धा होती है, वैसी ही मातृभूमि के प्रति भी रहनी चाहिए और मातृ ऋण से उऋण होने के लिए अवसर ढूँढ़ते रहना चाहिए। भावना करें कि धरतीमाता के पूजन के साथ उसके पुत्र होने के नाते माँ के दिव्य संस्कार हमें प्राप्त हो रहे हैं। माँ विशाल है, सक्षम है। हमें भी क्षेत्र, वर्ग आदि की संकीर्णता से हटाकर विशालता, सहनशीलता, उदारता जैसे दिव्य संस्कार प्रदान कर रही है। दाहिने हाथ में अक्षत (चावल), पुष्प, जल लें, बायाँ हाथ नीचे लगाएँ, मन्त्र बोलें और पूजा वस्तुओं को पात्र में छोड़ दें। धरती माँ को हाथ से स्पर्श करके नमस्कार करें।

ॐ पृथ्वि ! त्वया धृता लोका , देवि ! त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि ! पवित्रं कुरु चासनम्॥ -सं० प्र०

॥ सङ्कल्पः ॥

हर महत्त्वपूर्ण कर्मकाण्ड के पूर्व सङ्कल्प कराने की परम्परा है , उसके कारण इस प्रकार हैं - अपना लक्ष्य, उद्देश्य निश्चित होना चाहिए। उसकी घोषणा भी की जानी चाहिए। श्रेष्ठ कार्य घोषणापूर्वक किये जाते हैं, हीन, कृत्य छिपकर करने का मन होता है। संकल्प करने से मनोबल बढ़ता है। मन के ढीलेपन के कुसंस्कार पर अंकुश लगता है, स्थूल घोषणा से सत्पुरुषों का तथा मन्त्रों द्वारा घोषणा से सत् शक्तियों का मार्गदर्शन और सहयोग मिलता है। सङ्कल्प में गोत्र का उल्लेख भी किया जाता है। गोत्र ऋषि परम्परा के होते हैं। यह बोध किया जाना चाहिए कि हम ऋषि परम्परा के व्यक्ति हैं , तदनुसार उनके अनुरूप कार्यों को करने का उपक्रम उन्हीं के अन्तर्गत करते हैं। सङ्कल्प बोलने के पूर्व मास, तिथि, वार आदि सभी की जानकारी कर लेनी चाहिए। बीच में रुक-रुककर पूछना अच्छा नहीं लगता। यहाँ जो सङ्कल्प दिया जा रहा है, वह किसी भी कृत्य के साथ बोला जा सकता है, इसके लिए **'पूजनपूर्वकं'** के आगे किये जाने वाले कृत्य का उल्लेख करना होता है, जैसे गायत्रीयज्ञ, विद्यारम्भ संस्कार, **चतुर्विंशतिसहस्रात्मकगायत्रीमन्त्रानुष्ठान** आदि।जिस कृत्य का संकल्प करना है, उसे हिन्दी में ही बोलकर **'कर्म सम्पादनार्थं'** के साथ मिला देने से संकल्प की संस्कृत शब्दावली पूरी हो जाती है। वैसे भिन्न कृत्यों के अनुरूप सङ्कल्प, **नामाऽहं** के आगे भिन्न-भिन्न

निर्धारित वाक्य बोलकर भी पूरा किया जा सकता है। सामूहिक पर्वों, साप्ताहिक यज्ञों आदि में सङ्कल्प नहीं भी बोले जाएँ, तो कोई हर्ज नहीं :

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य, अद्य श्रीब्रह्मणो द्वितीये परार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे, वैवस्वतमन्वन्तरे, भूर्लोके, जम्बूद्वीपे, भारतवर्षे, भरतखण्डे, आर्यावर्त्तैकदेशान्तर्गते, ... क्षेत्रे,..... विक्रमाब्दे ,...... संवत्सरे, मासानां मासोत्तमेमासे ..... मासे ...... पक्षे ...... तिथौ ...... वासरे ...... गोत्रोत्पन्नः ...... नामाऽहं सत्प्रवृत्ति-संवर्द्धनाय, दुष्प्रवृत्ति-उन्मूलनाय, लोककल्याणाय, आत्मकल्याणाय, वातावरण-परिष्काराय, उज्ज्वलभविष्यकामनापूर्तये च प्रबलपुरुषार्थं करिष्ये, अस्मै प्रयोजनाय च कलशादि- आवाहितदेवता-पूजनपूर्वकम् ...... कर्मसम्पादनार्थं सङ्कल्पम् अहं करिष्ये।

॥ यज्ञोपवीतपरिवर्तनम् ॥

यज्ञोपवीत को व्रतबन्ध भी कहते हैं। यह व्रतशील जीवन के उत्तरदायित्व का बोध कराने वाला पुण्य प्रतीक है। विशेष यज्ञ संस्कार आदि आयोजनों के अवसर पर उसमें भाग लेने वालों का यज्ञोपवीत बदलवा देना चाहिए। साप्ताहिक यज्ञों में यह आवश्यक नहीं। नवरात्रि आदि अनुष्ठानों के सङ्कल्प के समय यदि यज्ञोपवीत बदला गया है, तो पूर्णाहुति आदि में फिर न बदला जाए। व्यक्तिगत संस्कारों आदि में प्रमुख पात्रों का, बच्चों के अभिभावकों आदि का यज्ञोपवीत बदलवा देना चाहिए। यदि वे यज्ञोपवीत पहने ही न हों, तो कम से कम कृत्य के लिए अस्थाई रूप से पहना देना चाहिए। वे चाहें तो स्थाई भी करा लें।

यज्ञोपवीत बदलने के लिए यज्ञोपवीत का मार्जन किया जाए। यज्ञोपवीत संस्कार की तरह पाँच देवों का आवाहन-स्थापन उसमें किया जाए, फिर यज्ञोपवीत धारण मन्त्र के साथ साधक स्वयं ही पहन लें। पुराना यज्ञोपवीत दूसरे मन्त्र के साथ सिर की ओर से ही उतार दिया जाए। पुराने

यज्ञोपवीत को जल में विसर्जित कर दिया जाता है अथवा पवित्र भूमि में गाड़ दिया जाता है।

॥ यज्ञोपवीतधारणम् ॥

निम्न मन्त्र बोलकर नया यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए।

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं, प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं, यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥

- पार० गृ० सू० २.२.११

॥ जीर्णोपवीत विसर्जनम् ॥

निम्न मन्त्र पाठ करते हुए पुराना यज्ञोपवीत गले में से ही होकर निकालना चाहिए।

ॐ एतावद्दिनपर्यन्तं, ब्रह्म त्वं धारितं मया।
जीर्णत्वात्ते परित्यागो, गच्छ सूत्र यथा सुखम्॥

॥ चन्दनधारणम् ॥

मस्तिष्क को शान्त, शीतल एवं सुगन्धित रखने की आवश्यकता का स्मरण कराने के लिए चन्दन धारण किया जाता है। अन्तःकरण में ऐसी सद्भावनाएँ भरी होनी चाहिए, जिनकी सुगन्ध से अपने को सन्तोष एवं दूसरों को आनन्द मिले।

भावना करें जिस महाशक्ति ने चन्दन को शीतलता-सुगन्धि दी है, उसी की कृपा से हमें भी वे तत्त्व मिल रहे हैं, जिनके आधार पर हम चन्दन की तरह ईश्वर सान्निध्य के अधिकारी बन सकें।

इन भावनाओं के साथ यज्ञकर्त्ताओं एवं उपस्थित लोगों के मस्तक पर चन्दन या रोली लगाया जाए।

ॐ चन्दनस्य महत्पुण्यं, पवित्रं पापनाशनम्।
आपदां हरते नित्यं, लक्ष्मीस्तिष्ठति सर्वदा॥

॥ रक्षासूत्रम् ॥

यह वरण सूत्र है। आचार्य की ओर से प्रतिनिधियों द्वारा बाँधा जाना चाहिए। पुरुषों तथा अविवाहित कन्याओं के दायें हाथ में तथा महिलाओं के बायें हाथ में बाँधा जाता है। जिस हाथ में कलावा बाँधें, उसकी मुट्ठी बँधी हो, दूसरा हाथ सिर पर हो। इस पुण्य कार्य के लिए व्रतशील बनकर उत्तरदायित्व स्वीकार करने का भाव रखा जाए।

ॐ व्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धया सत्यमाप्यते॥ -१९.३०

॥ कलशपूजनम् ॥

पूजा पीठ पर कलश रखा जाता है। यह धातु का होना चाहिए। कण्ठ में कलावा बँधा, पुष्पों से सुसज्जित, जल से भरे कलश के ऊपर कटोरी में ऊपर की ओर मुख वाली बत्ती का दीपक जला कर रखें।

यह कलश विश्व ब्रह्माण्ड का, विराट् ब्रह्म का, भू पिण्ड (ग्लोब) का प्रतीक है। इसे शान्ति और सृजन का संदेशवाहक कह सकते हैं। सम्पूर्ण देवता कलशरूपी पिण्ड या ब्रह्माण्ड में व्यष्टि या समष्टि में एक साथ समाये हुए हैं। वे एक हैं, एक ही शक्ति से सुसम्बन्धित हैं। बहुदेववाद वस्तुतः एक देववाद का ही एक रूप है। एक माध्यम में, एक ही केन्द्र में समस्त देवताओं को देखने के लिए कलश की स्थापना है। जल जैसी शीतलता, शान्ति एवं दीपक जैसे तेजस्वी पुरुषार्थ की क्षमता हम सबमें ओत-प्रोत हो, यही दीपयुक्त कलश का संदेश है। दीप को यज्ञ और जल कलश को गायत्री का प्रतीक माना जाता है। यह दो आधार भारतीय धर्म के उद्गम स्रोत- माता-पिता हैं। इसी से इनकी स्थापना-पूजा धर्मानुष्ठान में की जाती है। पूजन के मन्त्र बोलने के साथ-साथ कलश का पूजन किया जाए। कोई एक व्यक्ति ही प्रतिनिधि रूप में कलश पूजन करें, शेष सब लोग भावनापूर्वक हाथ जोड़ें।

ॐ तत्त्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानः, तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुश ᳪ स, समानऽआयुः प्रमोषीः॥

१८.४९

ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य, बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं, यज्ञ
थंꣳ समिमं दधातु। विश्वेदेवासऽइह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ ॥
ॐ वरुणाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि।

- २.१३

तत्पश्चात् जल, गंध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से कलश का पूजन करें।

गन्धाक्षतं, पुष्पाणि, धूपं, दीपं, नैवेद्यं समर्पयामि।
ॐ कलशस्थ देवताभ्यो नमः।

तदुपरान्त निम्नलिखित मन्त्र से हाथ जोड़कर कलश में प्रतिष्ठित देवताओं की प्रार्थना करें।

॥ कलश प्रार्थना ॥

ॐ कलशस्य मुखे विष्णुः, कण्ठे रुद्रः समाश्रितः।
मूले त्वस्य स्थितो ब्रह्मा, मध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥१॥
कुक्षौ तु सागराः सर्वे, सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः, सामवेदो ह्यथर्वणः ॥२॥
अंगैश्च सहिताः सर्वे, कलशन्तु समाश्रिताः।
अत्र गायत्री सावित्री, शान्ति- पुष्टिकरी सदा ॥३॥
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि, त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
शिवः स्वयं त्वमेवासि, विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः ॥४॥
आदित्या वसवो रुद्रा, विश्वेदेवाः सपैतृकाः।
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि, यतः कामफलप्रदाः ॥५॥
त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं, कर्तुमीहे जलोद्भव।
सान्निध्यं कुरु मे देव! प्रसन्नो भव सर्वदा ॥६॥

॥ दीपपूजनम् ॥

कलश के साथ दीपक भी पूजा वेदी पर रखा जाता है । इसे सर्वव्यापी चेतना का प्रतीक मानकर पूजना चाहिए । वैज्ञानिक भी यह स्वीकार करने लगे हैं कि मूलत: चेतना से पदार्थ बना है , पदार्थ से चेतना नहीं । उस महाचेतन ज्योतिरूप, परम प्रकाश का पूजन, आराधन दीपक के माध्यम से करें ।

ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा । सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ।अग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा ।सूर्यो वर्च्चो ज्योति-र्वर्च्चः स्वाहा ।ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्योतिःस्वाहा । -३.९

॥ देवावाहनम् ॥

देव शक्तियाँ-आदि शक्ति की, परब्रह्म की विभिन्न धाराएँ हैं । शरीर एक है , उसमें रक्त परिभ्रमण संस्थान, पाचन संस्थान, वायु संचार संस्थान, विचार संस्थान आदि अनेक संस्थान हैं । वे सब स्वतन्त्र हैं और आपस में जुड़े हुए भी । इसी प्रकार सृष्टि संतुलन व्यवस्था के लिए इस विराट् सत्ता की विभिन्न चेतन धाराएँ विभिन्न उत्तदायित्व सँभालती हैं । उन्हें ही देव शक्तियाँ कहा जाता है । ईश्वरेच्छा, दिव्य योजना के अनुरूप हर कार्य में उनका सहयोग अपेक्षित भी है और वह प्राप्त भी होता है । इसलिए सत्कार्यों में देव शक्तियों के आवाहन-पूजन का विधि-विधान सम्मिलित रहता है । साधकों के पुरुषार्थ के साथ वह दिव्य सहयोग भी जुड़ सके, इसके लिए श्रद्धा भाव युक्त देव पूजन किया जाता है ।

सभी उपस्थित जनों से निवेदन किया जाए कि वे पूजा में सम्मिलित रहें । पूजन कृत्य भले ही एक प्रतिनिधि करे; परन्तु देवों की प्रसन्नता सबकी भावना के संयोग के बिना नहीं पायी जा सकती है । " **भावे हि विद्यते देवा: तस्माद् भावो हि कारणम्**' के अनुसार भाव संयोग से ही पूजन में शक्ति आती है । सबका ध्यान आकर्षित करते हुए उन्हें भाव सूत्र में बाँध कर पूजन क्रम चलाया जाए । हर देवशक्ति का भाव चित्रण करके मन्त्र बोलें । मन्त्र के साथ पूजा करें , सभी भावनापूर्वक आवाहन, ध्यान एवं नमस्कार करते रहें ।

यहाँ प्रत्येक मन्त्र के पूर्व उससे सम्बद्ध देव शक्ति का स्वरूप एवं महत्त्व समझाया गया है और अन्त में आवाहन-स्थापना का निवेदन किया गया है। बड़े यज्ञों में इस क्रम को चलाने से वातावरण अधिक प्रखर और भाव भरा बनता है। यदि संक्षिप्त आयोजन है, तो उसमें संक्षिप्त हवन पद्धति के ढंग से केवल मन्त्र बोलते हुए आगे बढ़ा जा सकता है। समय और परिस्थितियाँ देखते हुए विस्तार या संक्षिप्तीकरण का निर्णय विवेकपूर्वक कर लेना चाहिए।

गुरु— परमात्मा की दिव्य चेतना का वह अंश जो साधकों का मार्गदर्शन और सहयोग करने के लिए व्यक्त होता है।

ॐ गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः, गुरुरेव महेश्वरः।
गुरुरेव परब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥१ ॥
अखण्डमण्डलाकारं, व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥२ ॥ -गु० गी०४३,४५
मातृवत् लालयित्री च, पितृवत् मार्गदर्शिका।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै, श्रद्धा-प्रज्ञायुता च या ॥३ ॥
ॐ श्री गुरवे नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि।

गायत्री — वेदमाता, देवमाता, विश्वमाता-सद्ज्ञान, सद्भाव की अधिष्ठात्री सृष्टि की आदि कारण मातेश्वरी।

ॐ आयातु वरदे देवि ! त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि।
गायत्रिच्छन्दसां मातः, ब्रह्मयोने नमोऽस्तु ते ॥४ ॥ -सं० प्र०
ॐ श्री गायत्र्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि।
ततो नमस्कारं करोमि।

ॐ स्तुता मया वरदा वेदमाता,
प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं, कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्। - अथर्व० १९.७१.१

* **गणेश** — विवेक के प्रतीक, विघ्नविनाशक प्रथम पूज्य—

अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं, पूजितो यः सुरासुरैः ।
सर्वविघ्नहरस्तस्मै, गणाधिपतये नमः ॥५ ॥

* **गौरी** — श्रद्धा, निर्विकारिता, पवित्रता की प्रतीक मातृशक्ति —

सर्वमङ्गलमांगल्ये, शिवे सर्वार्थसाधिके ! ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि, नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥६ ॥

* **हरि** — हृदयस्थ सत् प्रेरणा के स्रोत खोलने वाले करुणानिधान —

शुक्लाम्बरधरं देवं, शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्, सर्वविघ्नोपशान्तये ॥७ ॥
सर्वदा सर्वकार्येषु, नास्ति तेषाममंगलम् ।
येषां हृदिस्थो भगवान्, मंगलायतनो हरिः ॥८ ॥

* **सप्तदेव** — सप्तलोकों एवं सप्तद्वीपा वसुन्धरा का संतुलन रखने वाली सात महाशक्तियों का युग्म —

विनायकं गुरुं भानुं, ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ।
सरस्वतीं प्रणौम्यादौ, शान्तिकार्यार्थसिद्धये ॥९ ॥

* **पुण्डरीकाक्ष** — कमल जैसी निर्विकार, निर्दोष भावना एवं अन्तर्दृष्टि देने वाले भक्तवत्सल —

मंगलं भगवान् विष्णुः, मंगलं गरूडध्वजः ।
मंगलं पुण्डरीकाक्षो, मंगलायतनो हरिः ॥१० ॥

* **ब्रह्मा** — सृष्टिकर्त्ता, निर्माण की क्षमता के आदि स्रोत—

त्वं वै चतुर्मुखो ब्रह्मा, सत्यलोकपितामहः ।
आगच्छ मण्डले चास्मिन्, मम सर्वार्थसिद्धये ॥११ ॥

* **विष्णु** — पालन करने वाले, साधनों को सार्थक बनाने वाले प्रभु—

शान्ताकारं भुजगशयनं, पद्मनाभं सुरेशं,
विश्वाधारं गगनसदृशं, मेघवर्णं शुभांगम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं, योगिभिर्ध्यानगम्यं,
वन्दे विष्णुं भवभयहरं, सर्वलोकैकनाथम् ॥१२ ॥

* **शिव**— परिवर्तन, अनुशासन के सूत्रधार, कल्याण के दाता—

वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं, वन्दे जगत्कारणम्,
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं, वन्दे पशूनाम्पतिम्।
वन्दे सूर्यशशाङ्कवह्निनयनं, वन्दे मुकुन्दप्रियम्,
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं, वन्दे शिवं शंकरम् ॥१३॥

* **त्र्यम्बक** — बन्धन-मृत्यु से ऊपर उठाकर मुक्ति प्रदात्री सत्ता—

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे, सुगन्धिम्पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्, मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥१४॥

***दुर्गा**- सङ्गठन, सहकार, सत्साहस आदि की अधिष्ठात्री मातृशक्ति -

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः,
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या,
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥१५॥

***सरस्वती**— अज्ञान- नीरसता हटाने वाली, ज्ञान-कला की देवी माँ—

शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमाम्, आद्यां जगद्व्यापिनीं,
वीणापुस्तकधारिणीमभयदां, जाड्यान्धकारापहाम्।
हस्ते स्फाटिकमालिकां विदधतीं, पद्मासने संस्थिताम्,
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं, बुद्धिप्रदां शारदाम् ॥१६॥

* **लक्ष्मी** — साधनों तथा धन-वैभव की अधिष्ठात्री माँ—

आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं, सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं, जातवेदो मऽ आवह ॥१७॥

***काली**-अकल्याणकारी वृत्तियों का संहार करने में समर्थ चेतना-

कालिकां तु कलातीतां, कल्याणहृदयां शिवाम्।
कल्याणजननीं नित्यं, कल्याणीं पूजयाम्यहम् ॥१८॥

***गंगा** — अपवित्रता एवं पापवृत्तियों का हरण तथा शमन करने वाली दिव्यधारा —

विष्णुपादाब्जसम्भूते, गङ्गे त्रिपथगामिनि।
धर्मद्रवेति विख्याते, पापं मे हर जाह्नवि ॥१९॥

***तीर्थ**- मानवी अन्तःकरण में सत्प्रवृत्तियों, सदिच्छाओं का बीजारोपण एवं विकास करने में समर्थ दिव्य प्रवाह—

पुष्करादीनि तीर्थानि, गंगाद्याः सरितस्तथा।
आगच्छन्तु पवित्राणि, पूजाकाले सदा मम ॥२० ॥

* **नवग्रह** — विश्व की जड़-चेतन प्रकृति में तालमेल, सूत्रबद्धता प्रदान करने वाली सामर्थ्यों के प्रतीक —

ब्रह्मामुरारिस्त्रिपुरान्तकारी, भानुः शशीभूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः, सर्वग्रहाः शान्तिकरा भवन्तु ॥

***षोडशमातृका**-अन्तरंग एवं अन्तरिक्ष में विद्यमान १६ कल्याण-कारी शक्तियों का युग्म —

गौरी पद्मा शची मेधा, सावित्री विजया जया।
देवसेना स्वधा स्वाहा, मातरो लोकमातरः ॥२२ ॥
धृतिः पुष्टिस्तथा तुष्टिः, आत्मनः कुलदेवता।
गणेशेनाधिका ह्येता, वृद्धौ पूज्याश्च षोडश ॥२३ ॥

* **सप्तमातृका** — सात महाशक्तियाँ, जिनका नियोजन मंगल कार्यों में करने से वे माता की तरह संरक्षण देती हैं—

कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा, सिद्धिः प्रज्ञा सरस्वती।
मांगल्येषु प्रपूज्याश्च, सप्तैता दिव्यमातरः ॥२४ ॥

***वास्तुदेव** — वस्तुओं में अदृश्य रूप से सन्निहित चेतनाशक्ति —

नागपृष्ठसमारूढं, शूलहस्तं महाबलम्।
पातालनायकं देवं, वास्तुदेवं नमाम्यहम् ॥२५ ॥

***क्षेत्रपाल** - विभिन्न क्षेत्रों में देवत्व का संचार करने वाली सूक्ष्म सत्ता-

क्षेत्रपालान्नमस्यामि, सर्वारिष्टनिवारकान्।
अस्य यागस्य सिद्ध्यर्थं, पूजयाराधितान् मया ॥२६ ॥

॥ सर्वदेवनमस्कारः ॥

देव पूजन के बाद सर्वदेव नमस्कार करना चाहिए। नमस्कार का उद्देश्य देव शक्तियों का सम्मान, उनके प्रति अपनी श्रद्धा का प्रकटीकरण तो है ही, अपने मन का, रुचि का झुकाव देवत्व की ओर करना भी है। हमारे मन में देवत्व से विपरीत अनर्थकारी आसुरी प्रवृत्तियों के प्रति भी झुकाव पैदा होता रहता है। उसे निरस्त करके पुनः कल्याणप्रद देवत्व के प्रति झुकाव-अभिरुचि

पैदा करना भी एक पुरुषार्थ है । देव नमस्कार के समय ऐसे भाव रखे जाएँ ।

नमस्कार में छः देव दम्पतियों का तथा विशेष सामाजिक कर्त्तव्यों का वहन करने वाले देव तत्त्वों का सम्मान, अभिनन्दन, अभिवन्दन करते हुए मानवता के प्रति नमन-वन्दन की प्रक्रिया को पूरा किया गया है ।

(१) विवेक को गणेश और उनकी पत्नी को सिद्धि-बुद्धि ।(२) समृद्धि और वैभव को लक्ष्मीनारायण ।(३) व्यवस्था और नियन्त्रण को उमा-महेश ।(४) वाणी और भावना को वाणी- हिरण्यगर्भ ।(५) कला और उल्लास को शची-पुरन्दर ।(६) जन्म और पालन कर्त्री देव प्रतिमाओं को माता-पिता कहा गया है । इन छः युग्मों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने, उनकी उपयोगिता समझने-आवश्यकता अनुभव करने के लिए नमन-वन्दन किया जाए ।(७) कुल देवता-अपने वंश में उत्पन्न हुए महामानव ।(८) जीवन लक्ष्य को सरल बनाने वाले माध्यम-इष्ट देवता ।(९) शासन-संचालक-ग्राम देवता ।(१०) स्थान देवता-पंच, समाज सेवक ।(११) वास्तु देवता-शिल्पी, कलाकार, वैज्ञानिक । (१२) किसी भी लोकमंगल कार्य में निरत परमार्थ परायण-सर्वदेव ।(१३) आदर्श चरित्र, सद्ज्ञान, साधनारत ब्राह्मण ।(१४) प्रेरणा और प्रकाश देने वाले स्थान या व्यक्ति-तीर्थ ।(१५) मानवता की दिव्य चेतना-गायत्री । यह सब देव तत्त्व हुए ।

ॐ सिद्धि बुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः ।

ॐ लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः ।

ॐ उमामहेश्वराभ्यां नमः ।

ॐ वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः ।

ॐ शचीपुरन्दराभ्यां नमः ।

ॐ मातापितृचरणकमलेभ्यो नमः ।

ॐ कुलदेवताभ्यो नमः ।

ॐ इष्टदेवताभ्यो नमः ।

ॐ ग्रामदेवताभ्यो नमः ।

ॐ स्थानदेवताभ्यो नमः ।

ॐ वास्तुदेवताभ्यो नमः ।
ॐ सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः ।
ॐ सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः ।
ॐ सर्वेभ्यस्तीर्थेभ्यो नमः ।
ॐ एतत्कर्म-प्रधान- श्रीगायत्रीदेव्यै नमः ।
ॐ पुण्यं पुण्याहं दीर्घमायुरस्तु ।

॥ षोडशोपचारपूजनम् ॥

देवशक्तियों एवं अतिथियों के पूजन-सत्कार के १६ उपचार भारतीय संस्कृति में प्रचलित हैं । अपनी स्थिति तथा अतिथि के स्तर के अनुरूप स्वागत उपचारों का निर्धारण किया जाता रहा है । देव पूजन में दो बातें ध्यान रखने योग्य हैं- देवताओं को पदार्थ की आवश्यकता नहीं, इसलिए उन प्रसंगों में उपेक्षा एवं प्रमाद न बरता जाए । कोई सम्पन्न और सम्माननीय अतिथि अपने यहाँ आए तो " उन्हें क्या कमी ?" कहकर उन्हें आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराने में उपेक्षा नहीं बरती जाती ।जो है उसे भावनापूर्वक, सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया जाता है । ऐसी ही सावधानी देवपूजन में रखी जाए ।

देवताओं को पदार्थों की भूख नहीं है, पदार्थों के समर्पण द्वारा जो भावना, श्रद्धा व्यक्त होती है, देवता उसी से सन्तुष्ट होते हैं । यह ध्यान में रखकर अच्छे पदार्थ देकर देवताओं पर एहसान का भाव नहीं आने देना चाहिए । श्रद्धा- समर्पण को प्रमुख मानकर उसे बनाये रखना आवश्यक है । अभाववश पदार्थों में कमी रह जाए, तो उसकी पूर्ति भावना द्वारा हो जाती है ।

पूजन के समय एक प्रतिनिधि पूजन करे, शेष सभी व्यक्ति भावनापूर्वक कार्यक्रम को सशक्त बनाएँ । पूजन के स्थान पर एक स्वयंसेवक रहे, जो पूजा उपचार का क्रम ठीक से क्रियान्वित करा सके । एक मन्त्र बोलकर, सम्बन्धित वस्तु चढ़ाने का समय देकर ही दूसरा मन्त्र बोला जाए ।

ॐ सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । आवाहयामि, स्थापयामि ॥१ ॥
आसनं समर्पयामि ॥२ ॥ पाद्यं समर्पयामि ॥३ ॥

अर्घ्यं समर्पयामि ॥४॥ आचमनम् समर्पयामि ॥५॥
स्नानम् समर्पयामि ॥६॥ वस्त्रम् समर्पयामि ॥७॥
यज्ञोपवीतम् समर्पयामि ॥८॥ गन्धम् विलेपयामि ॥९॥
अक्षतान् समर्पयामि ॥१०॥ पुष्पाणि समर्पयामि ॥११॥
धूपम् आघ्रापयामि ॥१२॥ दीपम् दर्शयामि ॥१३॥
नैवेद्यं निवेदयामि ॥१४॥ताम्बूलपूगीफलानि समर्पयामि ॥१५
दक्षिणां समर्पयामि ॥१६॥सर्वाभावे अक्षतान् समर्पयामि ॥

ततो नमस्कारम् करोमि-

ॐ नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये, सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते, सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः॥

॥ स्वस्तिवाचनम् ॥

स्वस्ति- कल्याणकारी, हितकारी के तथा वाचन-घोषणा के अर्थों में प्रयुक्त होता है। वाणी से, उपकरणों से स्थूल जगत् में घोषणा होती है। मन्त्रों के माध्यम से सूक्ष्म जगत् में अपनी भावना का प्रवाह भेजा जाता है। सात्त्विक शक्तियाँ हमारे ईमान, हमारे कल्याणकारी भावों का प्रमाण पाकर अपने अनुग्रह के अनुकूल वातावरण पैदा करें, यह भाव रखें। अनुकूलता दो प्रकार से पैदा होती है- (१) अवांछनीयता से बचाव (२) वांछनीयता का योग।यह अधिकार भी देवशक्तियों को सौंपते हुए स्वस्तिवाचन करना चाहिए।

सभी लोगों को दाहिने हाथ में अक्षत, पुष्प, जल दिया जाए। बायाँ हाथ नीचे रहे। सबके कल्याण की भावनाएँ मन में रखें। मन्त्र पूरा होने पर पूजा सामग्री सबके हाथों से लेकर एक तश्तरी में इकट्ठी कर ली जाए।

ॐ गणानां त्वा गणपति ঁ हवामहे, प्रियाणां त्वा प्रियपति ঁ हवामहे, निधीनां त्वा निधिपति ঁ हवामहे, वसोमम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥ २३.१९

ॐ स्वस्ति न ऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः, स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः, स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।२५.१९

ॐ पयः पृथिव्यां पयऽओषधीषु , पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः ।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥ १८.३६
ॐ विष्णो रराटमसि विष्णोः, श्नप्त्रे स्थो विष्णोः, स्यूरसि
विष्णोर्ध्रुवोऽसि, वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ ५.२१
ॐ अग्निर्देवता वातो देवता, सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता, वसवो
देवता रुद्रा देवता, ऽऽदित्या देवता मरुतो देवता, विश्वेदेवा देवता,
बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता, वरुणो देवता ॥ -१४.२०
ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः, पृथिवी शान्तिरापः, शान्ति-
रोषधयः शान्तिः ।वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः, शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः,
सर्व ँ शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः, सा मा शान्तिरेधि ॥- ३६.१७
ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽ आ सुव ।
ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः ॥सर्वारिष्टसुशान्तिर्भवतु ।- ३०.३

॥ रक्षाविधानम् ॥

जहाँ उत्कृष्ट बनने की, शुभ कार्य करने की आवश्यकता है, वहाँ यह भी आवश्यक है कि दुष्टों की दुष्प्रवृत्ति से सतर्क रहा जाए और उनसे जूझा जाए । दुष्ट प्राय: सज्जनों पर ही आक्रमण करते हैं, इसलिए नहीं कि देवतत्त्व कमजोर होते हैं, वरन् इसलिए कि वे अपने समान ही सबको सज्जन समझते हैं और दुष्टता के घात-प्रतिघातों से सावधान नहीं रहते, संगठित नहीं होते और क्षमा उदारता के नाम पर इतने ढीले हो जाते हैं कि अनीति से लड़ने का साहस, शौर्य और पराक्रम ही उनमें से चला जाता है । इससे लाभ अनाचारी तत्त्व उठाते हैं । यज्ञ जैसे सत्कर्मों की अभिवृद्धि से ऐसा वातावरण बनता है, जिसकी प्रखरता से असुरता के पैर टिकने ही न पाएँ । इस आशंका में असुर-प्रकृति के विघ्न सन्तोषी लोग ही ऐसे षड्यन्त्र रचते हैं, जिसके कारण शुभ कर्म सफल न होने पाएँ ।

इस स्थिति से भी धर्मपरायण व्यक्ति को परिचित रहना चाहिए और

संयम- उदारता, सत्य-न्याय जैसे आदर्शों को अपनाने के साथ-साथ ऐसी वैयक्तिक और सामूहिक सामर्थ्य इकट्ठी करनी चाहिए, जिससे दुष्टता को निरस्त किया जा सके। इसी सतर्कता और तत्परता का नाम रक्षा विधान है। दसों दिशाओं में विघ्नकारी हो सकते हैं, उनकी ओर दृष्टि रखने, उन पर प्रहार करने की तैयारी के रूप में सब दिशाओं में मंत्र-पूरित अक्षत फेंके जाते हैं। भगवान् से उन दुष्टों से लड़ने की शक्ति की याचना भी इस क्रिया-कृत्य में सम्मिलित है।बायें हाथ में अक्षत रखें, जिस दिशा की रक्षा का मंत्र बोला जाए, उसी ओर अक्षत फेंके।

ॐ पूर्वे रक्षतु वाराहः, आग्नेय्यां गरुडध्वजः।
दक्षिणे पद्मनाभस्तु, नैर्ऋत्यां मधुसूदनः ॥१॥
पश्चिमे चैव गोविन्दो, वायव्यां तु जनार्दनः।
उत्तरे श्रीपती रक्षेद्, ऐशान्यां हि महेश्वरः ॥२॥
ऊर्ध्वं रक्षतु धाता वो, ह्यधोऽनन्तश्च रक्षतु।
अनुक्तमपि यत् स्थानं, रक्षत्वीशो ममाद्रिधृक् ॥३॥
अपसर्पन्तु ते भूता, ये भूता भूमिसंस्थिताः।
ये भूता विघ्नकर्तारः, ते गच्छन्तु शिवाज्ञया ॥४॥
अपक्रामन्तु भूतानि, पिशाचाः सर्वतो दिशम्।
सर्वेषामविरोधेन, यज्ञकर्म समारभे ॥५॥

॥अग्निस्थापनम्॥

यज्ञाग्नि को ब्रह्म का प्रतिनिधि मानकर वेदी पर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करते हैं। उसी भाव से अग्नि की स्थापना का विधान सम्पन्न करते हैं। जब कुण्ड में प्रथम अग्नि-ज्योति के दर्शन हों, तब सब लोग उन्हें नमस्कार करें।

अग्नि स्थापना से पूर्व कुण्ड में समिधाएँ इस कुशलता से चिननी चाहिए कि अग्नि प्रदीप्त होने में बाधा न पड़े। अग्नि के ऊपर पतली सूखी लकड़ी रखी जायें, ताकि अग्नि का प्रवेश जल्दी हो सके। एक चम्मच में कपूर अथवा घी में भीगी हुई रुई की मोटी बत्ती रखी जाए, उसमें अग्नि जलाकर स्थापित किया जाए। ऊपर पतली लकड़ी लगाने से अग्नि प्रवेश में सुविधा होती है।

ॐ भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना, पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि, पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे। अग्निं दूतं पुरोदधे, हव्यवाहमुपब्रुवे। देवाँऽआसादयादिह। - ३.५, २२.१७

ॐ अग्नये नमः।आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि।

तदुपरान्त गन्ध, अक्षत- पुष्प आदि से अग्निदेवता की पूजा करें—

गन्धाक्षतम् , पुष्पाणि, धूपम् , दीपम् , नैवेद्यम् समर्पयामि।

॥ गायत्री स्तवनम् ॥

इस स्तवन (आ०ह०स्तो०) में गायत्री महामन्त्र के अधिष्ठाता सविता- देवता की प्रार्थना है। इसे अग्नि का अभिवन्दन, अभिनन्दन भी कह सकते हैं। सभी लोग हाथ जोड़कर स्तवन की मूल भावना को हृदयंगम करें। हर टेक में कहा गया है- 'वह वरण करने योग्य सविता देवता हमें पवित्र करे।' दिव्यता- पवित्रता के संचार की पुलकन का अनुभव करते चलें।

यन्मण्डलं दीप्तिकरं विशालम्, रत्नप्रभं तीव्रमनादिरूपम्।
दारिद्र्य-दुःखक्षयकारणं च, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥१॥

शुभ ज्योति के पुंज, अनादि, अनुपम। ब्रह्माण्ड व्यापी आलोक कर्त्ता।
दारिद्र्य, दुःख भय से मुक्त कर दो।पावन बना दो हे देव सविता॥१॥

यन्मण्डलं देवगणैः सुपूजितम्, विप्रैःस्तुतं मानवमुक्तिकोविदम्।
तं देवदेवं प्रणमामि भर्गं, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥२॥

ऋषि देवताओं से नित्य पूजित। हे भर्ग! भव बन्धन-मुक्ति कर्त्ता।
स्वीकार कर लो वंदन हमारा। पावन बना दो हे देव सविता॥२॥

यन्मण्डलं ज्ञानघनं त्वगम्यं, त्रैलोक्यपूज्यं त्रिगुणात्मरूपम्।
समस्त- तेजोमय- दिव्यरूपं, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥३॥

हे ज्ञान के घन, त्रैलोक्य पूजित। पावन गुणों के विस्तार कर्त्ता।
समस्त प्रतिभा के आदि कारण। पावन बना दो हे देव सविता॥३॥

यन्मण्डलं गूढमतिप्रबोधं, धर्मस्य वृद्धिं कुरुते जनानाम्।
यत् सर्वपापक्षयकारणं च, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।४ ।।
हे गूढ़ अन्तःकरण में विराजित। तुम दोष-पापादि संहार कर्त्ता।
शुभ धर्म का बोध हमको करा दो। पावन बना दो हे देव सविता ।।४ ।।
यन्मण्डलं व्याधिविनाशदक्षं, यदृग्- यजुः-सामसु सम्प्रगीतम्।
प्रकाशितं येन च भूर्भुवः स्वः, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।५ ।।
हे व्याधि- नाशक, हे पुष्टि दाता। ऋग् साम, यजु वेद संचार कर्त्ता ।।
हे भूर्भुवः स्वः में स्व प्रकाशित। पावन बना दो हे देव सविता ।।५ ।।
यन्मण्डलं वेदविदो वदन्ति, गायन्ति यच्चारण- सिद्धसङ्घाः।
यद्योगिनो योगजुषां च सङ्घाः, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।६ ।।
सब वेदविद् चारण, सिद्ध योगी। जिसके सदा से हैं गान कर्त्ता ।।
हे सिद्ध सन्तों के लक्ष्य शाश्वत। पावन बना दो हे देव सविता ।।६ ।।
यन्मण्डलं सर्वजनेषु पूजितं, ज्योतिश्च कुर्यादिह मर्त्यलोके।
यत्काल-कालादिमनादिरूपम्, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।७ ।
हे विश्व मानव से आदि पूजित। नश्वर जगत् में शुभ ज्योति कर्त्ता ।।
हे काल के काल-अनादि ईश्वर। पावन बना दो हे देव सविता ।।७ ।।
यन्मण्डलं विष्णुचतुर्मुखास्यं, यदक्षरं पापहरं जनानाम्।
यत्कालकल्पक्षयकारणं च, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।८ ।।
हे विष्णु ब्रह्मादि द्वारा प्रचारित। हे भक्त पालक, हे पाप हर्त्ता ।।
हे काल-कल्पादि के आदि स्वामी। पावन बना दो हे देव सविता ।।८ ।।
यन्मण्डलं विश्वसृजां प्रसिद्धं, उत्पत्ति-रक्षा-प्रलयप्रगल्भम्।
यस्मिन् जगत्संहरतेऽखिलं च, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।९ ।।
हे विश्व मण्डल के आदि कारण। उत्पत्ति-पालन-संहार कर्त्ता ।।
होता तुम्हीं में लय यह जगत् सब। पावन बना दो हे देव सविता ।।९ ।।
यन्मण्डलं सर्वगतस्य विष्णोः, आत्मा परंधाम- विशुद्धतत्त्वम्।
सूक्ष्मान्तरैर्योगपथानुगम्यं, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।१० ।।

हे सर्वव्यापी, प्रेरक नियन्ता। विशुद्ध आत्मा, कल्याण कर्त्ता।
शुभ योग पथ पर हमको चलाओ। पावन बना दो हे देव सविता ॥१०॥

यन्मण्डलं ब्रह्मविदो वदन्ति, गायन्ति यच्चारण-सिद्धसंघाः।
यन्मण्डलं वेदविदः स्मरन्ति, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥११॥

हे ब्रह्मनिष्ठों से आदि पूजित। वेदज्ञ जिसके गुणगान कर्त्ता॥
सद्भावना हम सब में जगा दो। पावन बना दो हे देव सविता।११॥

यन्मण्डलं वेद- विदोपगीतं, यद्योगिनां योगपथानुगम्यम्।
तत्सर्ववेदं प्रणमामि दिव्यं, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥१२॥

हे योगियों के शुभ मार्गदर्शक। सद्ज्ञान के आदि संचारकर्त्ता।
प्रणिपात स्वीकार लो हम सभी का।पावन बना दो हे देव सविता ॥१२॥

॥अग्नि प्रदीपनम्॥

जलती हुई प्रदीप्त अग्नि में ही आहुति दी जाती है। पंखे से हवा करके समिधाओं में सुलगती हुई अग्नि को प्रदीप्त करते हैं। धुएँ वाली अधजली आग में आहुतियाँ नहीं दी जातीं।

जीवन दीप्तिमान्, ज्वलनशील, प्रचण्ड, प्रखर और प्रकाशमान जिया जाना चाहिए, चाहे थोड़े ही दिन का क्यों न हो। धुआँ निकालती हुई आग एक वर्ष जले, इसकी अपेक्षा एक क्षण का प्रकाशयुक्त ज्वलन अच्छा। अपनी प्रसुप्त शक्तियों को जाग्रत् करने की प्रेरणा इस अग्नि प्रदीपन में है।

ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि, त्वमिष्टा पूर्ते स थं्स सृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्, विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत।

-१५.५४,१८.६१

॥ समिधाधानम्॥

यज्ञपुरुष अग्निदेव के प्रकट होने पर पतली छोटी चार समिधाएँ घी में डुबोकर एक-एक करके चार मंत्रों के साथ चार बार में समर्पित की जाएँ।

ये चार समिधाएँ चार तथ्यों को अग्निदेव की साक्षी में स्मरण करने के लिए चढ़ाई जाती हैं। (१) ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यास की व्यवस्था

को पूर्ण करना। (२) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त करा सकने वाला जीवनक्रम अपनाना। (३) साधना, स्वाध्याय, संयम, सेवा-इन चारों का अवलम्बन। (४) शरीरबल, मनोबल, आत्मबल, ब्रह्मबल-इन चारों विभूतियों के लिए प्रबल-पुरुषार्थ। इन चारों उपलब्धियों को यज्ञ-रूप बनाना, यज्ञ के लिए समर्पित करना चार समिधाओं का प्रयोजन है। इस लक्ष्य को चार समिधाओं द्वारा स्मृतिपटल पर अङ्कित किया जाता है। स्नेहसिक्त, चिकना, लचीला, सरल अपना व्यक्तित्व हो, यह प्रेरणा प्राप्त करने के लिए स्नेह-घृत में डुबोकर चार समिधाएँ अर्पित की जाती हैं। भावना की जाए कि घृतयुक्त समिधाओं से जिस प्रकार अग्नि प्रदीप्त होती है, उसी प्रकार उपर्युक्त क्षमताएँ अपने संकल्प और देव अनुग्रह के संयोग से साधकों को प्राप्त हो रही हैं।

समिधाधान वह करता है, जो घी की आहुति देने के लिए मध्य में बैठता है। जल प्रसेचन तथा आज्याहुति की सात घृत आहुतियाँ भी वही देता है।

१-ॐ अयन्त इध्म आत्मा, जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व। चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया, पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन, अन्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदं अग्नये जातवेदसे इदं न मम। -आश्व० गृ० सू० १.१०

२-ॐ समिधाऽग्निं दुवस्यत, घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा। इदं अग्नये इदं न मम॥

३-ॐ सुसमिद्धाय शोचिषे, घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा। इदं अग्नये जातवेदसे इदं न मम॥

४- ॐ तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो, घृतेन वर्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा। इदं अग्नये अंगिरसे इदं न मम॥ - ३.१-३

॥ जलप्रसेचनम् ॥

अग्नि और जल का युग्म है। यज्ञ अग्नि और गायत्री जल है। इन्हें ज्ञान और कर्म भी कह सकते हैं। इस युग्म को- (१) तेजस्विता-मधुरता (२) पुरुषार्थ-संतोष (३) उपार्जन-त्याग (४) क्रान्ति-शान्ति भी कह सकते हैं।

प्रोक्षणी पात्र (बिना हत्थे वाला चम्मच जैसा उपकरण) में पानी लेकर

निम्न मंत्रों से वेदी के बाहर चारों दिशाओं में डालें ।भावना करें कि अग्नि के चारों ओर शीतलता का घेरा बना रहे हैं । जिसका परिणाम शान्तिदायी होगा ।

ॐ अदितेऽनुमन्यस्व ।। (इति पूर्वे)

ॐ अनुमतेऽनुमन्यस्व ।। (इति पश्चिमे)

ॐ सरस्वत्यनुमन्यस्व ।। (इति उत्तरे) -गो० गृ० सू० १.३.१-३

ॐ देव सवितः प्रसुव यज्ञं, प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः, केतं नः पुनातु, वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ।।(इति चतुर्दिक्षु)

-११.७

॥ आज्याहुतिः ॥

सर्वप्रथम सात मंत्रों से सात आहुतियाँ केवल घृत की दी जाती हैं । इन आहुतियों के साथ हवन सामग्री नहीं होमी जाती । घी पिघला हुआ रहे । स्रुवा को घी में डुबाने के बाद उसका पैंदा घृत पात्र के किनारे से पोंछ लेना चाहिए, ताकि घी जमीन पर न टपके । स्वाहा उच्चारण के साथ ही आहुति दी जाए । स्रुवा लौटाते समय घृत पात्र के समीप ही रखे हुए, जल भरे प्रणीता पात्र में बचे हुए घृत की एक बूँद टपका देनी चाहिए ।

घृत का दूसरा नाम स्नेह है । स्नेह अर्थात् प्रेम, सहानुभूति, सेवा, संवेदना, दया, ममता, आत्मीयता, करुणा, उदारता, वात्सल्य जैसे सद्‌गुण इस प्रेम-अभिव्यक्ति के साथ जुड़े हुए हैं । निःस्वार्थ भाव से उच्च आदर्शों के साथ साधना सम्पन्न की जाती है, उसे दिव्य प्रेम कहते हैं । यह दिव्य प्रेम, स्नेह- घृत यदि यज्ञ -परमार्थ के साथ जोड़ दिया जाए, तो वह देवताओं को प्रसन्न करने वाला बन जाता है । वही शिक्षण इन सात घृत आहुतियों में है । सच्चे प्रेम पात्र सात ही हैं । इन सातों को ईश्वररूपी सूर्य की सात किरणें कह सकते हैं । यही ब्रह्म-आदित्य के सात अश्व हैं । (१) प्रजापति-परमेश्वर (२) इन्द्र-आत्मा (३) अग्नि-वैभव (४) सोम-शान्ति (५) भूः-शरीर (६) भुवः-मन (७) स्वः-अन्तःकरण । इन सात देवताओं को सच्चे मन से प्यार करना चाहिए अर्थात् इनके परिष्कार, अभिवर्धन के लिए सतत प्रयत्न करना चाहिए । यही सब देवताओं को दी गई सात आहुतियों का प्रयोजन है ।

१- ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदं न मम ॥-१८.२८
२- ॐ इन्द्राय स्वाहा। इदं इन्द्राय इदं न मम ॥
३- ॐ अग्नये स्वाहा । इदं अग्नये इदं न मम ॥
४- ॐ सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय इदं न मम ॥-२२.२७
५- ॐ भूः स्वाहा। इदं अग्नये इदं न मम ॥
६- ॐ भुवः स्वाहा। इदं वायवे इदं न मम ॥
७- ॐ स्वः स्वाहा। इदं सूर्याय इदं न मम ॥-गो० गृ० सू० १८.१५

॥ गायत्रीमन्त्राहुतिः ॥

गायत्री मंत्र की जितनी आहुतियाँ देनी हों, उसी अनुपात से सामग्री, घी, समिधा आदि की व्यवस्था पहले से ही कर लेनी चाहिए। मध्यमा और अनामिका अँगुलियों पर सामग्री रखी जाए।अँगूठे का सहारा देकर उसे आगे खिसकाने का प्रयोजन पूरा करना चाहिए। आहुति देने वाले सभी लोग साथ-साथ मंत्र बोलें। 'स्वाहा' शब्द उच्चारण के साथ-साथ थोड़ा आगे हाथ बढ़ाकर आहुतियाँ डालें, जिससे सामग्री अग्नि में ही गिरे, इधर-उधर न बिखरे। आहुति एक साथ छोड़ें और हथेली ऊपर की दिशा में ही रहे।आहुति डालने के बाद **"इदं गायत्र्यै इदं न मम"** का उच्चारण किया जाता है। इसका अर्थ यह है कि यह यज्ञानुष्ठान पुण्य-परमार्थ अपने स्वार्थ साधन के लिए नहीं, लोकमंगल के लिए किया गया है।जिस प्रकार अति सम्माननीय अतिथि को प्रेमपूर्वक भोजन परोसा जाता है, उसी प्रकार श्रद्धा-भक्ति और सम्मान की भावना के साथ अग्निदेव के मुख में आहुति दी जानी चाहिए, लोक कल्याण के लिए श्रम, तप, त्याग किया जा रहा है।जैसे अग्नि के स्पर्श से लकड़ी अग्नि रूप हो जाती है, उसी तरह यज्ञ पुरुष के सान्निध्य में आकर आहुति देते हुए जीवन को यज्ञमय बनाने का प्रयास किया जा रहा है। इन भावनाओं के साथ आहुतियाँ दी जानी चाहिए।गायत्री मंत्र से २४ आहुतियाँ देनी चाहिए।समयानुसार संख्या को न्यूनाधिक किया जा सकता है।

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा। इदं गायत्र्यै इदं न मम।-३६.३

॥ स्विष्टकृत्होमः ॥

यह प्रायश्चित्त आहुति भी कहलाती है। आहुतियों में जो कुछ भूल रही हो, उसकी पूर्ति के लिए यज्ञाग्नि के लिए नैवेद्य समर्पण के रूप में यह कृत्य किया जाता है। स्विष्टकृत् आहुति में मिष्टान्न समर्पित किया जाता है। मिष्टान्न का संकेत है सर्वाङ्गीण मधुरता। वाणी से मधुर-वचन, व्यवहार में मधुर शिष्टाचार, मन में सबके लिए मधुर संवेदनाएँ, हँसता-हँसाता हलका-फुलका मधुर स्वभाव यह मधुर मिष्टान्न का प्रतीक देवताओं के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। अपना व्यक्तित्व मधुरतायुक्त विशेषताओं से ढला हुआ हो। हम मधुर बनकर भगवान् की सेवा में प्रस्तुत होते हैं। यह स्विष्टकृत् आहुति का प्रयोजन है।

स्रुचि (चम्मच जैसा, लम्बी डण्डी वाला काष्ठ पात्र) में मिष्टान्न और घी भरकर इसे केवल घी होमने वाला ही देता है। आरम्भ और अन्त में कुछ विशेष कृत्य घृत होमने वाले व्यक्ति को करने पड़ते हैं। यह सब वह अपने अन्य साथियों के प्रतिनिधि के रूप में करता है। स्विष्टकृत् आहुति अपने स्थान पर बैठे हुए करें।

ॐ यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं, यद्वान्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत् स्विष्टकृद् विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते, सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां, समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा। इदम् अग्नये स्विष्टकृते इदं न मम॥

-आश्व गृ० सू० १.१०

॥ देवदक्षिणा-पूर्णाहुतिः ॥

मनुष्य की गरिमा इस बात में है कि जो श्रेष्ठ सङ्कल्प करे, उसे पूर्णता तक पहुँचाए। मनुष्य अपूर्ण है। उसे अपनी पूर्णता के लिए प्रयत्न करना चाहिए। यज्ञीय जीवन में रुचि रखने वाले आदर्शवादियों को अग्नि की साक्षी में यह व्रत लेना चाहिए कि पूर्णता की दिशा में निरन्तर अग्रसर रहेंगे और लक्ष्य को प्राप्त करके ही चैन लेंगे। मनुष्य से अपेक्षा की जाती है कि

वह पशुता की ओर न बढ़े, हीन प्रवृत्तियों से बचे तथा देवत्व की दिशा में बढ़े । यज्ञ से देवत्व की प्राप्ति होती है । यज्ञ से उत्पन्न ऊर्जा का, यज्ञ भगवान् के आशीर्वाद का उपयोग हीन प्रवृत्तियों के विनाश के लिए करना चाहिए । इसके लिए अपने किसी दोष-दुर्गुण के त्याग तथा किसी सद्गुण को अपनाने का संकल्प मन में करना चाहिए । देवशक्तियाँ श्रेष्ठ संकल्पों को पूरा करने के लिए विशेष आशीर्वाद एवं शक्ति प्रदान करती हैं । पूर्णाहुति के साथ देव शक्तियों के सामने अपने सुनिश्चित संकल्प घोषित करते हुए उनकी पूर्ति की प्रार्थना सहित पूर्णाहुति सम्पन्न करनी चाहिए ।

देव दक्षिणा के संदर्भ में छोड़े जाने वाले दोषों एवं अपनाये जाने योग्य गुणों, नियमों का उल्लेख समय एवं परिस्थितियों के अनुसार किया जा सकता है । उनकी सूची आगे दी गई है ।

सब लोग खड़े हों । सबके हाथ में एक-एक चुटकी सामग्री हो । घृत होमने वाले स्रुचि में सुपारी अथवा नारियल का गोला तथा घृत लें, स्वाहा के साथ आहुति दें ।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं, पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ पूर्णादर्वि परापत, सुपूर्णा पुनरापत ।
वस्नेव विक्रीणा वहा, इषमूर्ज ꣳ शतक्रतो स्वाहा ॥
ॐ सर्वं वै पूर्ण ꣳ स्वाहा । - बृह० उ० ५.१.१; यजु० ३.४९

॥ वसोर्धारा ॥

घृत की अन्तिम बड़ी आहुति वसोर्धारा अर्थात् स्नेह सौजन्य । प्रारम्भ में घृत की सात आहुतियाँ दी थीं । उस प्रारम्भ का अन्त और भी बढ़ा-चढ़ा होना चाहिए । वसोर्धारा में घृत की अविच्छिन्न धारा टपकाई जाती है और अधिक घृत होमा जाता है । कार्य के प्रारम्भ में जितना उत्साह एवं त्याग हो, अन्त में उससे भी अधिक होना चाहिए । अक्सर शुभ कार्यों के प्रारम्भ में सब लोग बहुत साहस, उत्साह दिखाते हैं, पर पीछे ठण्डे पड़ जाते हैं । मनस्वी लोगों की नीति दूसरी ही है । वे यदि धर्म मार्ग पर कदम बढ़ा देते हैं, तो हर

कदम पर अधिक तेजी का परिचय देते हैं और अन्ततः उसी में-याज्ञिक कर्म में तन्मय हो जाते हैं । भावना करें कि यज्ञ भगवान् सत्कृत्यों में अविरल स्नेह की धार चढ़ाने की प्रवृत्ति और क्षमता हमें प्रदान करें ।

ॐ वसोः पवित्रमसि शतधारं, वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् ।
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः, पवित्रेण शतधारेण सुप्वा,
कामधुक्षः स्वाहा । - १.३

॥ नीराजनम् - आरती ॥

आरती उतारने का तात्पर्य है कि यज्ञ भगवान् का सम्मान, परमार्थ परायणता का ज्ञान प्रकाश दसों दिशाओं में फैले, सर्वत्र उसी का शंख बजे, घण्टा-निनाद सुनाई पड़े और हर धर्मप्रेमी इस प्रयोजन के लिए उठ खड़ा हो । आरती में पैसे चढ़ाये जाते हैं अर्थात् ऐसे प्रयोजन के लिए सहयोग का परिचय दिया जाता है । यज्ञ भगवान् की आरती-प्रतिष्ठा ज्ञान दीपों के प्रकाश- विस्तार से ही सम्भव है । यज्ञीय परम्परा इस अनुष्ठान तक ही सीमित न रहे; वरन् उसके विस्तार की व्यवस्था भी यज्ञप्रेमी करेंगे, इसी कर्त्तव्य का उद्घाटन प्रतीक रूप से आरती में किया जाता है । थाली में पुष्पादि से सजाकर आरती जलाएँ, तीन बार जल घुमाकर यज्ञ भगवान् व देव प्रतिमाओं की आरती उतारें, पुनः तीन बार जल घुमाकर उपस्थित जनों तक आरती पहुँचा दें । यह सारा कृत्य एक प्रतिनिधि करे, आवश्यकतानुसार आरती की संख्या बढ़ाई जा सकती है ।

ॐ यं ब्रह्मवेदान्तविदो वदन्ति, परं प्रधानं पुरुषं तथान्ये ।
विश्वोद्गतेः कारणमीश्वरं वा, तस्मै नमो विघ्नविनाशनाय ॥
ॐ यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः , स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैः,
वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैः, गायन्ति यं सामगाः ॥
ध्यानावस्थित-तद्गतेन मनसा, पश्यन्ति यं योगिनो,
यस्यान्तं न विदुः-सुरासुरगणाः , देवाय तस्मै नमः ॥

॥ घृतावघ्राणम् ॥

घृत आहुतियों से बचने पर टपकाया हुआ घृत, जल भरे प्रणीता पात्र में जमा रहता है । इसे थाली में रखकर सभी उपस्थित लोगों को दिया जाए । इस जल मिश्रित घृत में दाहिने हाथ की अँगुलियों के अग्रभाग को डुबोते जाएँ और दोनों हथेलियों पर मल लिया जाए । मंत्र बोलते समय दोनों हाथ यज्ञ कुण्ड की ओर इस तरह रखें, मानों उन्हें तपाया जा रहा हो । यज्ञीय वातावरण एवं संदेश को मस्तिष्क में भर लेने, आँखों में समा लेने, कानों में गुँजाते रहने, मुख से चर्चा करते रहने और उसी दिव्य गन्ध को सूँघते रहने, वैसे ही भाव-भरा वातावरण बनाये रखने की सामर्थ्य पाने की इच्छा रखने वालों को यज्ञ भगवान् का प्रसाद घृत अवघ्राण से प्राप्त होता है ।

ॐ तनूपा अग्नेऽसि, तन्वं मे पाहि ।
ॐ आयुर्दा अग्नेऽसि, आयुर्मे देहि ॥
ॐ वर्चोदा अग्नेऽसि, वर्चो मे देहि ।
ॐ अग्ने यन्मे तन्वाऽ, ऊनन्तन्मऽआपृण ॥
ॐ मेधां मे देवः , सविता आदधातु ।
ॐ मेधां मे देवी, सरस्वती आदधातु ॥
ॐ मेधां मे अश्विनौ, देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ।

- पा० गृ० सू० २.४.७-८

॥ भस्मधारणम् ॥

जीवन का अन्त भस्म की ढेरी के रूप में होता है । मुट्ठी भर भस्म बनकर हवा में उड़ जाने वाले अकिंचन मनुष्य का लोभ, मोह, अहंकार में निरत रहना कितना मूर्खतापूर्ण है । इस दूरगामी किन्तु नितान्त सत्य स्थिति को यदि वह समझ सका होता, तो उसने अपनी गतिविधियों का निर्धारण ऐसे आधारों पर किया होता, जिसे सुरदुर्लभ मानव जीवन व्यर्थ और अनर्थ जैसे कार्यों में गँवा देने का पश्चात्ताप न करना पड़ता । मृत्यु कभी भी आ

सकती है और इस सुन्दर कलेवर को देखते-देखते भस्म की ढेरी बना सकती है। यह बात मस्तिष्क में भली प्रकार बिठा लेने के लिए यज्ञ भस्म मस्तक पर लगाई जाती है। इस भस्म को मस्तक, कण्ठ, भुजा तथा हृदय पर भी लगाते हैं, मस्तक अर्थात् ज्ञान, कण्ठ अर्थात् वचन, भुजा अर्थात् कर्म। मन, वचन, कर्म से हम ऐसे विवेकयुक्त कर्म करें, जो जीवन को सार्थक कृतकृत्य बनाने वाले सिद्ध हों।

स्रुव्य की पीठ पर भस्म लगा ली जाती है और सभी लोग अनामिका अँगुली में लेकर मन्त्र में बताये हुए स्थानों पर क्रमशः लगाते हैं।

ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः, इति ललाटे।

ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम्, इति ग्रीवायाम्।

ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम्, इति दक्षिणबाहुमूले।

ॐ तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्, इति हृदि। ३.६२

॥ क्षमा प्रार्थना ॥

अपने दोषों को देखते रहना, जिनके साथ कुछ अनुचित या अप्रिय व्यवहार बन पड़ा हो, उनके मनोमालिन्य को दूर करना, जिसको हानि पहुँचाई हो, उसकी क्षतिपूर्ति करना, यह सज्जनता का लक्षण है। यज्ञ कार्य के विधि-विधान में कोई त्रुटि रह सकती है, इसके लिए देव-शक्तियों एवं व्यक्तियों से क्षमा याचना कर लेने से जहाँ अपना जी हल्का होता है, वहाँ सामने वाले की अप्रसन्नता भी दूर हो जाती है। यह आत्मनिरीक्षण, आत्मशोधन की दूसरों के प्रति उदात्त दृष्टि रखने की सज्जनोचित प्रक्रिया है। यज्ञ के अवसर पर इस प्रक्रिया को अपनाये रहने के लिए क्षमा प्रार्थना का विधान यज्ञ आयोजन के अन्त में रहता है। सब लोग हाथ जोड़कर खड़े होकर मन्त्रोच्चारण करें, साथ ही उस स्तर के भाव मन में भरे रहें।

ॐ आवाहनं न जानामि, नैव जानामि पूजनम्।
विसर्जनं न जानामि, क्षमस्व परमेश्वर! ॥१॥
मंत्रहीनं क्रियाहीनं, भक्तिहीनं सुरेश्वर!
यत्पूजितं मया देव! परिपूर्णं तदस्तु मे ॥२॥

यदक्षरपदभ्रष्टं, मात्राहीनं च यद् भवेत्।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव ! प्रसीद परमेश्वर ! ॥३॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या, तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति, सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥४॥
प्रमादात्कुर्वतां कर्म, प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः, सम्पूर्णं स्यादितिश्रुतिः॥५॥

॥ साष्टांगनमस्कारः ॥

सर्वव्यापी विराट् ब्रह्म को-विश्व ब्रह्माण्ड को भगवान् का दृश्य रूप मानकर "सिया राम मय सब जग जानी। करौं प्रणाम जोरि-जुग पानी॥" की भावना से घुटने टेककर भूमि में मस्तक लगाकर देव शक्तियों को, महामानवों को भाव विभोर होकर अभिवन्दन-नमस्कार किया जाता है। उनके चरणों में अपने को समर्पित करने अर्थात् अनुगमन करने का संकल्प, आश्वासन व्यक्त किया जाता है। यही भूमि- प्रणिपात साष्टांग नमस्कार है।

ॐ नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये, सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते, सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः॥

॥ शुभकामना ॥

यह शुभकामना मन्त्र भी सबके कल्याण की अभिव्यक्ति के लिए है। हमारे मन में किसी के प्रति द्वेष न हो, अशुभ चिन्तन किसी के लिए भी न करें। जिनसे सम्बन्ध कटु हो गये हों, उनके लिए भी हमें मङ्गल-कामना ही करनी चाहिए। द्वेष-दुर्भाव किसी के लिए भी नहीं करना चाहिए। सबके कल्याण में अपना कल्याण समाया हुआ है, परमार्थ में स्वार्थ जुड़ा हुआ है- यह मान्यता रखते हुए हमें सर्वमङ्गल की-लोककल्याण की आकांक्षा रखनी चाहिए। शुभ कामनाएँ इसी की अभिव्यक्ति के लिए हैं।

सब लोग दोनों हाथ पसारें। इन्हें याचना मुद्रा में मिला हुआ रखें। मन्त्रोच्चार के साथ-साथ इन्हीं भावनाओं से मन को भरे रहें।

ॐ स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां, न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं, लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥
सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात् ॥२ ॥
श्रद्धां मेधां यशः प्रज्ञां, विद्यां पुष्टिं श्रियं बलम् ।
तेज आयुष्यमारोग्यं, देहि मे हव्यवाहन ! ॥३ ॥- लौगा० स्मृ०

॥ पुष्पांजलिः ॥

यह विदाई सत्कार है। पुरुष सूक्त के मंत्रों को आरम्भ करके देव आगमन पर उनका आतिथ्य, स्वागत-सत्कार किया गया था। यह विदाई सत्कार मंत्र पुष्पांजलि के रूप में किया जाता है।

सब लोग हाथ में पुष्प अथवा चन्दन-केशर से रँगे हुए पीले चावल लेते हैं। पुष्पांजलि मंत्र बोला जाता है और पुष्प वर्षा की तरह ही उसे देव शक्तियों पर बरसा दिया जाता है। पुष्पहार, गुलदस्ता आदि भी प्रस्तुत किया जा सकता है। पुष्प भावभरी सहज श्रद्धा के प्रतीक माने जाते हैं। उन्हें अर्पित करने का तात्पर्य है, अपनी सम्मान भावना की अभिव्यक्ति।

इस विश्व में असुरता और देवत्व के दो ही वर्ग अन्धकार और प्रकाश के रूप में हैं। इन्हीं को स्वार्थ और परमार्थ-निकृष्टता और उत्कृष्टता कहते हैं। दोनों में से एक को प्रधान दूसरे को गौण रखना पड़ता है। यदि भोगवादी असुरता प्रिय होगी, तो मोह, लोभ, अहङ्कार, तृष्णा, वासना में रुचि रहेगी और उन्हीं के लिए निरन्तर मरते-खपते रहा जाएगा। फिर जीवनोद्देश्य की पूर्ति के लिए सत्कर्म करने की न इच्छा होगी और न अवसर मिलेगा; परन्तु यदि लक्ष्य देवत्व हो, तो शरीर को निर्वाह भर के और परिवार को उचित आवश्यकता पूरी करने भर के साधन जुटाने के उपरान्त उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व के लिए मस्तिष्क में पर्याप्त स्थान और शरीर को पर्याप्त अवसर मिल सकता है। देवत्व का मार्ग उत्थान का और असुरता का मार्ग कष्ट-क्लेशों से भरे पतन का है। दोनों में से किसे चुना ? किससे मैत्री स्थापित की ? किसे लक्ष्य बनाया ? इसका उत्तर पुष्पांजलि के अवसर पर

दिया जाता है । विदाई के अवसर पर भावभरी श्रद्धांजलि अर्पित करना मानो यह कहना है कि हमें देवत्व प्रिय है, हम ने उसी को लक्ष्य चुना है और उसी मार्ग पर चलेंगे ।

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः, तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त, यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥
ॐ मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ॥ ३१.१६

॥ शान्ति - अभिषिंचनम् ॥

यज्ञशाला के दिव्य वातावरण में रखा हुआ जल कलश अपने भीतर उन मंगलकारक दिव्य तत्त्वों को धारण कर लेता है, जो मनुष्य के शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शान्ति एवं आत्मिक गरिमा की अभिवृद्धि में सहायक होते हैं । जल कलश से पुष्प द्वारा सभी उपस्थित लोगों पर अभिषिंचन के साथ यह भावना रखें कि यज्ञ की भौतिक एवं आत्मिक उपलब्धियाँ इस जल के माध्यम से उपस्थित लोगों को प्राप्त हो रही हैं और वे असत् से सत् की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़ेंगे ।

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः, पृथिवी शान्तिरापः, शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः, शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः , सर्व ँ शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः , सा मा शान्तिरेधि ॥ ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः । - ३६.१७

सर्वारिष्ट-सुशान्तिर्भवतु ॥

॥ सूर्यार्घ्यदानम् ॥

सूर्यार्घ्यदान हर उपासनात्मक कृत्य के बाद किया जाता है, जल का स्वभाव अधोगामी है, वही सूर्य की ऊष्मा के संसर्ग से ऊर्ध्वगामी बनता है, असीम में विचरण करता है । साधक भावना करता है-हमारी हीन वृत्तियाँ-सविता देव के संसर्ग से ऊर्ध्वगामी बनें, विराट् में फैलें, सीमित जीव, चंचल जीवन-असीम अविचल ब्रह्म से जुड़े, यही है सूर्यार्घ्यदान की भावना ।

सूर्य की ओर मुख करके कलश का जल धीरे-धीरे धार बाँधकर

छोड़ना चाहिए । किसी थाल को नीचे रखकर यह अर्घ्य जल उसी में इकट्ठा कर लिया जाए और फिर किसी पावन स्थान पर उसका विसर्जन किया जाए ।

ॐ सूर्यदेव ! सहस्रांशो, तेजोराशे जगत्पते ।
अनुकम्पय मां भक्त्या, गृहाणार्घ्यं दिवाकर ॥
ॐ सूर्याय नमः, आदित्याय नमः, भास्कराय नमः ॥

॥ प्रदक्षिणा ॥

अब तक बैठकर मन, वचन से ही मन्त्रोच्चार किया जाता रहा । हाथों का ही प्रयोग हुआ । अब यज्ञ मार्ग पर चलना शेष है । इसी पर तो भावना के परिष्कार की, यज्ञ प्रक्रिया की सफलता निर्भर है । अब यह कर्मयात्रा आरम्भ होती है । यज्ञ अनुष्ठान में जिस दिशा में चलने का संकेत है, प्रदक्षिणा में उसी दिशा में चलना आरम्भ किया जाता है । कार्य के चार चरण हैं— (१) संकल्प, (२) प्रारम्भ, (३) पुरुषार्थ, (४) तन्मयता । इन चार प्रक्रियाओं से समन्वित जो भी कार्य किया जाएगा, वह अवश्य सफल होगा । यज्ञमय जीवन जीने के लिए चार कदम बढ़ाने, चार अध्याय पूरे करने का पूर्वाभ्यास-प्रदर्शन किया गया । एकता, समता, ममता, शुचिता चारों लक्ष्य पूरे करने के लिए साधना, स्वाध्याय, सेवा और संयम की गतिविधियाँ अपनाने के लिए चार परिक्रमाएँ हैं । हम इस मार्ग पर चलें, यह संकल्प प्रदक्षिणा के अवसर पर हृदयंगम किया जाना चाहिए और उस पथ पर निरन्तर चलते रहना चाहिए ।

सब लोग दायें हाथ की ओर घूमते हुए यज्ञशाला की परिक्रमा करें, स्थान कम हो, तो अपने स्थान पर खड़े रहकर चारों दिशाओं में घूमकर एक परिक्रमा करने से भी काम चल जाता है ।

परिक्रमा करते हुए दोनों हाथ जोड़कर गायत्री वन्दना एवं यज्ञ महिमा का गान करें । परिक्रमा केवल मन्त्र से करें, कोई एक स्तुति करें या दोनों करें, इसका निर्धारण समय की मर्यादा को ध्यान में रखकर कर लेना चाहिए ।

ॐ यानि कानि च पापानि, ज्ञाताज्ञातकृतानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति, प्रदक्षिण- पदे-पदे ॥

* * *

॥ गायत्री-स्तुति ॥

जयति जय गायत्री माता, जयति जय गायत्री माता।
आदि शक्ति तुम अलख-निरंजन जग पालन कर्त्री।
दुःख-शोक-भय-क्लेश-कलह-दारिद्र्य-दैन्यहर्त्री॥ जयति० ॥
ब्रह्मरूपिणी प्रणत पालिनी, जगत् धातृ अम्बे।
भवभयहारी जन-हितकारी, सुखदा जगदम्बे॥ जयति० ॥
भय-हारिणि भव-तारिणि अनघे, अज आनन्द राशी।
अविकारी अघहरी अविचलित अमले अविनाशी॥ जयति० ॥
कामधेनु सत-चित आनन्दा, जय गङ्गा-गीता।
सविता की शाश्वती शक्ति तुम सावित्री-सीता॥ जयति० ॥
ऋग्, यजु, साम, अथर्व प्रणयिनी, प्रणव महामहिमे।
कुण्डलिनी सहस्त्रार सुषुम्ना, शोभा गुण-गरिमे॥ जयति० ॥
स्वाहा स्वधा शची ब्रह्माणी, राधा रुद्राणी।
जय सतरूपा वाणी, विद्या, कमला, कल्याणी॥ जयति० ॥
जननी हम हैं दीन-हीन, दुःख दारिद के घेरे।
यदपि कुटिल कपटी कपूत, तऊ बालक हैं तेरे॥ जयति० ॥
स्नेह-सनी करुणामयि माता! चरण शरण दीजै।
बिलख रहे हम शिशु सुत तेरे, दया दृष्टि कीजै॥ जयति० ॥
काम-क्रोध-मद-लोभ-दम्भ-दुर्भाव-द्वेष हरिये।
शुद्ध बुद्धि निष्पाप हृदय, मन को पवित्र करिये॥ जयति० ॥
तुम समर्थ सब भाँति तारिणी, तुष्टि-पुष्टि त्राता।
सत मारग पर हमें चलाओ जो है सुख दाता॥
जयति जय गायत्री माता। जयति जय गायत्री माता॥

॥ यज्ञ महिमा ॥

यज्ञ रूप प्रभो हमारे, भाव उज्ज्वल कीजिए।
छोड़ देवें छल कपट को, मानसिक बल दीजिए॥
वेद की बोलें ऋचाएँ, सत्य को धारण करें।
हर्ष में हों मग्न सारे, शोक सागर से तरें॥
अश्वमेधादिक रचाएँ यज्ञ पर उपकार को।
धर्म मर्यादा चलाकर, लाभ दें संसार को॥
नित्य श्रद्धा-भक्ति से यज्ञादि हम करते रहें।
रोग पीड़ित विश्व के सन्ताप सब हरते रहें॥
कामना मिट जाए मन से, पाप अत्याचार की।
भावनाएँ शुद्ध होवें, यज्ञ से नर-नारि की॥
लाभकारी हो हवन, हर जीवधारी के लिए।
वायु-जल सर्वत्र हों, शुभ गन्ध को धारण किए॥
स्वार्थ भाव मिटे हमारा, प्रेम-पथ विस्तार हो।
'इदं न मम' का सार्थक, प्रत्येक में व्यवहार हो॥
हाथ जोड़ झुकाये मस्तक, वन्दना हम कर रहे।
नाथ करुणारूप करुणा, आपकी सब पर रहे॥
यज्ञ रूप प्रभो हमारे, भाव उज्ज्वल कीजिए।
छोड़ देवें छल कपट को, मानसिक बल दीजिए॥

* * *

॥ गुरुवन्दना ॥

एक तुम्हीं आधार सद्गुरु, एक तुम्हीं आधार।
जब तक मिलो न तुम जीवन में।
शान्ति कहाँ मिल सकती मन में॥
खोज फिरा संसार सद्गुरु॥ एक तुम्हीं ०॥
कैसा भी हो तैरन हारा।
मिले न जब तक शरण सहारा॥
हो न सका उस पार सद्गुरु॥ एक तुम्हीं ०॥
हे प्रभु! तुम्हीं विविध रूपों में।
हमें बचाते भव कूपों से॥
ऐसे परम उदार सद्गुरु॥ एक तुम्हीं ०॥
हम आये हैं द्वार तुम्हारे।
अब उद्धार करो दुःखहारे॥
सुन लो दास पुकार सद्गुरु॥ एक तुम्हीं ०॥
छा जाता जग में अँधियारा।
तब पाने प्रकाश की धारा।
आते तेरे द्वार सद्गुरु॥ एक तुम्हीं ०॥

हमारा युग-निर्माण सत्संकल्प

* हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे।

* शरीर को भगवान् का मंदिर समझकर आत्म-संयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करेंगे।

* मन को कुविचारों और दुर्भावनाओं से बचाये रखने के लिए स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था रखे रहेंगे।

* इन्द्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम और विचार संयम का सतत अभ्यास करेंगे।

* अपने आपको समाज का एक अभिन्न अंग मानेंगे और सबके हित में अपना हित समझेंगे।

* मर्यादाओं को पालेंगे, वर्जनाओं से बचेंगे, नागरिक कर्त्तव्यों का पालन करेंगे और समाजनिष्ठ बने रहेंगे।

* समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को जीवन का एक अविच्छिन्न अंग मानेंगे।

* चारों ओर मधुरता, स्वच्छता, सादगी एवं सज्जनता का वातावरण उत्पन्न करेंगे।

* अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति पर चलते हुए असफलता को शिरोधार्य करेंगे।

* मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी उसकी सफलताओं, योग्यताओं एवं विभूतियों को नहीं, उसके सद्विचारों और सत्कर्मों को मानेंगे।

* दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करेंगे, जो हमें अपने लिए पसन्द नहीं।

* हम नर-नारी के प्रति पवित्र दृष्टि रखेंगे।

* संसार में सत्प्रवृत्तियों के पुण्य प्रसार के लिए अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहेंगे।

* परम्पराओं की तुलना में विवेक को महत्त्व देंगे।

* सज्जनों को संगठित करने, अनीति से लोहा लेने और नवसृजन की गतिविधियों में पूरी रुचि लेंगे।

* राष्ट्रीय एकता एवं समता के प्रति निष्ठावान् रहेंगे। जाति, लिंग, भाषा, प्रान्त, सम्प्रदाय आदि के कारण परस्पर कोई भेदभाव न बरतेंगे।

* मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है, इस विश्वास के आधार पर हमारी मान्यता है कि हम उत्कृष्ट बनेंगे और दूसरों को श्रेष्ठ बनायेंगे, तो युग अवश्य बदलेगा।

* "हम बदलेंगे-युग बदलेगा" "हम सुधरेंगे-युग सुधरेगा" इस तथ्य पर हमारा परिपूर्ण विश्वास है। *

॥ विसर्जनम् ॥

आवाहन किये गये यज्ञ पुरुष, गायत्री माता, देव परिवार सबको भावभरी विदाई देते हुए पूजा वेदी पर पुष्प वर्षा की जाती है। पुष्पों के अभाव में पीले अक्षत बरसाये जाते हैं। विसर्जन के साथ यह प्रार्थना भी है कि ऐसा ही देव अनुग्रह बार-बार मिलता रहे।

ॐ गच्छ त्वं भगवन्नग्ने, स्वस्थाने कुण्डमध्यतः।
हुतमादाय देवेभ्यः, शीघ्रं देहि प्रसीद मे॥
गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ, स्वस्थाने परमेश्वर!॥
यत्र ब्रह्मादयो देवाः, तत्र गच्छ हुताशन!॥
यान्तु देवगणाः सर्वे, पूजामादाय मामकीम्।
इष्टकामसमृद्ध्यर्थं, पुनरागमनाय च॥

इसके पश्चात् जयघोष, अन्त में प्रसाद वितरण के साथ कार्यक्रम समाप्त किया जाए।

॥ जयघोष ॥

१. गायत्री माता की- जय। **२. यज्ञ भगवान् की- जय।**
३. वेद भगवान् की- जय। **४. भारतीय संस्कृति की- जय।**
५. भारत माता की- जय। **६. एक बनेंगे- नेक बनेंगे।**
७. हम सुधरेंगे- युग सुधरेगा। **८. हम बदलेंगे- युग बदलेगा।**
९. विचार क्रान्ति अभियान- सफल हो, सफल हो, सफल हो।
१०. ज्ञान यज्ञ की लाल मशाल-सदा जलेगी- सदा जलेगी।
११. ज्ञान यज्ञ की ज्योति जलाने- हम घर-घर में जायेंगे।
१२.नया सवेरा नया उजाला- इस धरती पर लायेंगे।
१३. नया समाज बनायेंगे- नया जमाना लायेंगे।
१४. जन्म जहाँ पर- हमने पाया।
१५. अन्न जहाँ का- हमने खाया।
१६. वस्त्र जहाँ के- हमने पहने।

१७. ज्ञान जहाँ से- हमने पाया।
१८. वह है प्यारा- देश हमारा।
१९. देश की रक्षा कौन करेगा- हम करेंगे, हम करेंगे।
२०. युग निर्माण कैसे होगा- व्यक्ति के निर्माण से।
२१. माँ का मस्तक ऊँचा होगा- त्याग और बलिदान से।
२२. नित्य सूर्य का ध्यान करेंगे- अपनी प्रतिभा प्रखर करेंगे।
२३. मानव मात्र- एक समान।
२४. जाति वंश सब- एक समान।
२५. नर और नारी- एक समान।
२६. नारी का सम्मान जहाँ है, संस्कृति का उत्थान वहाँ है।
२७. जागेगी भाई जागेगी, नारी शक्ति जागेगी।
२८. हमारी युग निर्माण योजना- सफल हो, सफल हो, सफल हो।
२९. हमारा युग निर्माण सत्संकल्प-पूर्ण हो, पूर्ण हो, पूर्ण हो।
३०. इक्कीसवीं सदी- उज्ज्वल भविष्य।
३१. वन्दे-वेद मातरम्॥

॥ देव-दक्षिणा-श्रद्धाञ्जलिः ॥

यज्ञ आयोजन में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति को यज्ञ भगवान् के-देवताओं के प्रति श्रद्धा-दक्षिणा के रूप में अपनी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक दुष्प्रवृत्तियों में से कोई एक छोड़ने का अनुरोध करना चाहिए-कहना चाहिए देवता किसी की श्रद्धा-भक्ति इसी आधार पर परखते हैं कि उनने कुमार्ग छोड़ने और सन्मार्ग अपनाने के लिए कितना साहस दिखाया। यह साहस ही वह धन है, जिसके आधार पर देव शक्तियों की प्रसन्नता एवं अनुकम्पा प्राप्त की जा सकती है। इस अवसर पर जबकि सभी देवता उपस्थित हुए हैं, सभी उपस्थित सज्जनों को उन्हें कुछ भेंट प्रदान करनी चाहिए। खाली हाथ स्वागत और विदाई नहीं करनी चाहिए।त्याज्य दुष्प्रवृत्तियों में कुछ का उल्लेख यहाँ है।

त्यागने योग्य दुष्प्रवृत्तियाँ

१- चोरी, बेईमानी, छल, मुनाफाखोरी, हराम की कमाई, मुफ्तखोरी आदि । अनीति से दूर रहना, अनीति से उपार्जित धन का उपयोग न करना ।
२- मांसाहार तथा मारे हुए पशुओं के चमड़े का प्रयोग बन्द करना ।
३- पशुबलि अथवा दूसरों को कष्ट पहुँचाकर अपना भला करने की प्रवृत्ति छोड़ना ।
४- विवाहों में वर पक्ष द्वारा दहेज लेने तथा कन्या पक्ष द्वारा जेवर चढ़ाने का आग्रह न करना ।
५- विवाहों की धूम-धाम में धन की और समय की बर्बादी न करना ।
६- नशे (तम्बाकू, शराब, भाँग, गाँजा, अफीम आदि) का त्याग ।
७- गाली-गलौज एवं कटु भाषण का त्याग ।
८- जेवर और फैशनपरस्ती का त्याग ।
९- अन्न की बर्बादी और जूठन छोड़ने की आदत का त्याग ।
१०- जाति-पाँति के आधार पर ऊँच-नीच, छूत-छात न मानना ।
११- पर्दाप्रथा का त्याग- किसी को पर्दा करने के लिए बाध्य न करना ।स्वयं पर्दा न करना ।
१२- महिलाओं एवं लड़कियों के साथ पुरुषों और लड़कों की तुलना में भेद-भाव या पक्षपात न करना ।

अपनाने योग्य सत्प्रवृत्तियाँ

१- कम से कम दस मिनट नित्य नियमित गायत्री उपासना ।
२- घर में अपने से बड़ों का नियमित अभिवादन करना ।
३- छोटों के सम्मान का ध्यान रखना, उनसे तू करके न बोलना ।
४- अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक रहना तथा उनका पालन करना ।
५- परिश्रम का अभ्यास बनाये रहना, किसी काम को छोटा न समझना ।
६- नियमित स्वाध्याय-जीवन को सही दिशा देने वाला सत्साहित्य कम से कम आधा घण्टे नित्य स्वयं पढ़ना या सुनना ।

७- भारतीय संस्कृति की प्रतीक शिखा एवं यज्ञोपवीत का महत्त्व समझना, उन्हें निष्ठापूर्वक धारण करना-दूसरों को प्रेरणा देना ।
८- सादगी का जीवन जीना, औसत भारतीय स्तर के रहन-सहन के अनुरूप विचार एवं अभ्यास बनाना । उसमें गौरव अनुभव करना ।
९- ज्ञान-यज्ञ-सद्विचार के प्रसार के लिए कम से कम दस पैसा धन और एक घण्टा समय प्रतिदिन बचाकर सही ढंग से खर्च करना ।
१०- परिवार में सामूहिक उपासना, आरती आदि का क्रम चलाना ।
११- प्रतिवर्ष अपना जन्मदिन सामूहिकरूप से यज्ञीय वातावरण में मनाना तथा जीवन की सार्थकता के लिए व्रतशील जीवन क्रम बनाना ।
१२- समाज के प्रति, अपने उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूकता, समाज में सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ाने के लिए किये जाने वाले सामूहिक प्रयासों में उत्साह भरा योगदान देना ।

इस श्रद्धांजलि के लिए छपे हुए प्रतिज्ञा पत्र, जो भी अर्पण करना चाहें, उन्हें दे देने चाहिए और उन्हें भरने का अनुरोध कर देना चाहिए ।जो दुष्प्रवृत्तियाँ छोड़ी हों, उनके आगे निशान लगाते हुए अर्पणकर्त्ता को अपना पूरा नाम व पता उसी फार्म पर लिख कर देना चाहिए । दुष्प्रवृत्ति वही छोड़ी जाए, जो इस समय अपने में हो । जो नहीं है, उन्हें छोड़ने का कोई प्रयोजन नहीं । प्रतिज्ञा को दृढ़तापूर्वक निभाया जाना चाहिए ।

श्रद्धांजलि अर्पणकर्त्ताओं को पुरोहित मंगल आशीर्वाद, तिलक समेत एक मंगल पुष्पोपहार देते जाएँ ।प्रतिज्ञापत्र अक्षत, पुष्प दाहिने हाथ में लेकर बायाँ हाथ नीचे लगा लें, संकल्प पढ़ें और यह तीनों वस्तुएँ वेदी के समीप रखे थाल में पंक्तिबद्ध जाकर रख दें ।

॥ विशिष्ट प्रकरण ॥

॥ शक्तिपीठों की दैनिक पूजा ॥

गायत्री शक्तिपीठों में मातृशक्ति की प्रतिमाएँ स्थापित हैं । अस्तु, उनकी नियमित पूजा-अर्चा का क्रम चलता है । इसके लिए यह पद्धति दी जा रही है । युग निर्माण अभियान के अन्तर्गत अपनाये गए हर कर्मकाण्ड के प्रति यह दृष्टि बराबर बनाकर रखी गई है कि उसका कलेवर छोटा होते हुए भी उसका प्रभाव अद्‍भुत ही रहा है ।

दैनिक पूजा अर्चा में भी यही दृष्टि जीवन्त रखी जानी है । प्रतीक पूजा मनोविज्ञान सम्मत ही नहीं, उसका एक अपना विधान भी है । प्रतीक से भावना में उभार आता है और प्रखर भावना के संघात से, प्रतीक से सम्बद्ध दिव्य सत्ता प्रस्फुटित-प्रकट हुए बिना रह नहीं पाती । जहाँ पूजा आराधना करने वाले भावनाशील होते हैं, वहाँ मूर्ति में दिव्यता उभर आती है । मीराबाई, और श्रीरामकृष्ण परमहंस के उदाहरण सर्वविदित हैं । इसीलिए भारतीय-संस्कृति में प्रतीक-पूजा के साथ भाव भरे पूजन-आराधन को अनिवार्य रूप से जोड़कर रखा गया है । शक्तिपीठों में पूजा-उपचार थोड़े ही हों, पर नियमित और भावपूर्ण हों, तो उसका प्रभाव प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है । उस स्थिति में पूजा उपचार मात्र औपचारिकता या शिष्टाचार तक ही सीमित नहीं रहते वह एक प्रभावशाली साधना प्रक्रिया के रूप में प्रयुक्त और फलित होते हैं । शक्तिपीठों में इस साधना क्रम को भी समुचित महत्त्व दिया जाना आवश्यक है ।देवालयों में पूजन के संक्षिप्त एवं विस्तृत अनेक क्रम चलते हैं । गायत्री शक्तिपीठों के सामान्य कर्मकाण्ड का भावभरा पूजन क्रम नीचे दिया जा रहा है-

१. जागरण-प्रातः मन्दिर के पट खोलकर रात्रि में डाला गया प्रतिमा आवरण हटाने के पूर्व उन्हें जगाने का विधान है । यह ठीक है कि वह परम चेतना कभी सोती नहीं; किन्तु यह भी सत्य है कि उन घट-घटवासी को जब तक अपने अन्दर जाग्रत् न किया जाए, तब तक उसका प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई नहीं देगा । मन मन्दिर हो या देव मन्दिर-महाशक्ति का

विशिष्ट अनुग्रह पाने की आकांक्षा रखने वाले को उसे जाग्रत् करने की प्रक्रिया भी निभानी पड़ती है ।

जागरण क्रम में पुजारी पहले पवित्रीकरण आदि षट्कर्म करें । उसके बाद ताली या छोटी घण्टी बजाते हुए नीचे दिया हुआ मन्त्र बोलते हुए आवरण आदि हटाएँ ।

ॐ उत्तिष्ठ त्वं महादेवि, उत्तिष्ठ जगदीश्वरि ।
उत्तिष्ठ वेदमातस्त्वं, त्रैलोक्यमङ्गलं कुरु ॥

जागरण कराने के बाद नीचे लिखे **मंत्र** बोलते हुए माँ को प्रणाम करें ।

ॐ देवि ! प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद, प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं, त्वमीश्वरी देवि ! चराचरस्य ॥
विद्याः समस्तास्तव देविभेदाः, स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्, का ते स्तुतिः स्तव्यपरापरोक्तिः ॥
विश्वेश्वरि ! त्वं परिपासि विश्वं, विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति, विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥

- मा० पु० ८८.२,५,३३

(२) **शुद्धिकरण**- परमात्मा को पवित्रता प्रिय है, उस महाशक्ति का प्रवाह सदा निर्मल पवित्र माध्यमों से ही होता है, इसलिए उससे सम्बद्ध स्थल, मन्दिर, प्रतीक मूर्ति एवं साधन, व्यक्तित्व सभी को निर्मल रखने की परम्परा है । इस उत्तरदायित्व को स्मरण रखते हुए मूर्तिकक्ष एवं मूर्ति की स्वच्छता भावनापूर्वक की जानी चाहिए । निम्न मंत्र का उच्चारण करते रहें ।

ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवः, ता नऽऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे । ॐ यो वः शिवतमो रसः, तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः । ॐ तस्माऽअरंगमामवो, यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जन यथा च नः । - ११.५०-५२

मन्त्र पूरा होने पर भी कृत्य पूरा न हो-तो गायत्री मन्त्र दुहराते रहें ।

नोट- मूर्ति की स्वच्छता के क्रम में सामान्य रूप में गीले वस्त्र से क्रमशः मातेश्वरी के मुख, हाथ और चरण पोंछ दिये जाते हैं । आवश्यकता और

भावना के अनुसार सारा शृंगार उतारकर पूरी मूर्ति की स्वच्छता का क्रम अपनाया जाता है । इसके लिए प्रातःकाल के अतिरिक्त भी कोई समय चुना जा सकता है; क्योंकि शृंगार उतारने, स्वच्छता करने एवं नया शृंगार बनाने में काफी समय लग जाता है । ऐसे अवसरों पर सेवा-सज्जा करने वाले स्पष्ट रूप से सस्वर **स्तुतामया वरदा०, गायत्री चालीसा, यन्मण्डलम्०, गायत्री मंत्र** आदि का पाठ करते रहें ।

पूजा उपचार- शुद्धिकरण के उपरान्त प्रातः आरती की व्यवस्था की जानी चाहिए । आरती के निर्धारित समय पर सभी श्रद्धालुओं को एकत्रित करने के लिए घण्टी का कोई निर्धारित संकेत किया जाना उपयुक्त रहता है । उस समय प्रतिमा के सामने का पर्दा डालकर रखा जाए । सस्वर मंत्र बोलते हुए पुजारी अन्दर माँ का षोडशोपचार पूजन करे ।सभी उपस्थित जन भक्ति-भावनापूर्वक संगति करें ।पूजन का क्रम संक्षिप्त उक्तियों सहित यहाँ दिया जा रहा है । इसके लिए पुरुषसूक्त के १६ मंत्रों का उपयोग भी श्रद्धानुसार नित्य भी किया जा सकता है । पर्वों एवं विशेष प्रसंगों पर तो पुरुषसूक्त से पूजन किया ही जाना चाहिए ।

पूजन भावनापूर्वक किया जाना चाहिए । देवशक्तियों को यों न तो किसी पदार्थ की आवश्यकता होती है और न किसी सम्मान की अपेक्षा; किन्तु साधक की भक्ति भावना से उनकी तुष्टि अवश्य होती है । घर में कोई सम्माननीय अतिथि आते हैं । प्रेमी परिजन उन्हें बुलाते हैं । उन अतिथि को किसी वस्तु का अभाव नहीं होता, फिर भी प्रेमी परिजन प्रेमवश श्रद्धापूर्वक यथाशक्ति अपने साधनों द्वारा उनका सम्मान करते हैं । इससे दोनों ही पक्षों को सन्तोष होता है । पूजा-उपचार के समय भी ऐसा ही भाव उभरना चाहिए । उपचार की वस्तुएँ चढ़ाते समय अपने सर्वोत्तम साधनों-विभूतियों को प्रभु चरणों में अर्पित करने का उत्साह-उल्लास तरंगित होता रहे, तो पूजन सार्थक और सशक्त होता है ।

॥ षोडशोपचारपूजन ॥

ॐ श्री गायत्रीदेव्यै नमः । आवाहयामि, स्थापयामि ॥१ ॥आसनं समर्पयामि ॥२ ॥ पाद्यं समर्पयामि ॥३ ॥अर्घ्यं समर्पयामि ॥४ ॥

आचमनम् समर्पयामि ॥५ ॥ स्नानम् समर्पयामि ॥६ ॥ वस्त्रम् समर्पयामि ॥७ ॥यज्ञोपवीतम् समर्पयामि ॥८ ॥ गन्धम् विलेपयामि ॥९ ॥ अक्षतान् समर्पयामि ॥१० ॥ पुष्पाणि समर्पयामि ॥११ ॥ धूपम् आघ्रापयामि ॥१२ ॥ दीपम् दर्शयामि ॥१३ ॥ नैवेद्यं निवेदयामि ॥१४ ॥ ताम्बूलपूगीफलानि समर्पयामि ॥१५ ॥ दक्षिणां समर्पयामि ॥१६ ॥ सर्वाभावे अक्षतान् समर्पयामि ॥ ॥ ततो नमस्कारं करोमि-

ॐ स्तुता मया वरदा.......... ।

आरती - आरती के समय उपस्थित व्यक्ति पंक्तिबद्ध व्यवस्थित क्रम से खड़े हों । घड़ियाल, शंख आदि सधे हुए क्रम से तालबद्ध बजाए जाएँ । वातावरण में दिव्यता लाने के लिए यह आवश्यक है, अस्त-व्यस्त क्रम से यह सम्भव नहीं ।

आरती की ज्योति जलाकर पर्दा खोला जाए । पुजारी, आरती के लिए इस प्रकार खड़े हों कि प्रतिमा के दर्शन में उपस्थित परिजनों को बाधा न पड़े । आरती में पहले दीपक घुमाया जाता है । दीपक रखकर छोटे शंख में जल भरकर उसे ५-७ बार घुमाना चाहिए ।

जल के बाद वस्त्र व चँवर घुमाया जाता है, अन्त में एक-दो बार जल घुमाकर वही जल उपस्थित समुदाय पर छिड़क दिया जाता है । यह सारे कृत्य निर्धारित समय में किए जाने चाहिए । इसके बाद दैनिक आरती के निर्धारित क्रम के अनुसार प्रक्रिया पूरी की जानी चाहिए, प्रातः सायं दोनों समय आरती का यही क्रम रहेगा ।

भोजन नैवेद्य — भारतीय संस्कृति में भोजन को प्रसाद रूप- औषधि रूप में लेने का नियम है । प्रभु समर्पित पदार्थों में दिव्य संस्कारों का उदय हो जाता है । भोजन के प्रति राग-मोह की वृत्ति क्षीण होकर कर्त्तव्य बुद्धि जाग्रत् होती है ।शक्तिपीठों में साधक जो भोजन अपने लिए तैयार करें, वह शुद्ध सात्विक हो । वही नैवेद्य माँ को अर्पित किया जाए । नैवेद्य का क्रम इस प्रकार है, श्रद्धापूर्वक मन्त्र बोलते हुए क्रमशः अर्घ्य, नैवेद्य एवं आचमन अर्पित किया जाए ।

॥ अर्घ्य ॥

ॐ तापत्रय-हरं दिव्यं , परमानन्दलक्षणम् ।
नमस्तुभ्यं जगद्धात्रि ! अर्घ्यं नः प्रतिगृह्यताम् ॥

॥ नैवेद्य ॥

ॐ सत्पात्रसिद्धं नैवेद्यं, विविधभोज्यसमन्वितम् ।
निवेदयामि देवेशि, सानुगायै गृहाण तत् ॥

॥ आचमन ॥

ॐ वेदानामपि वेद्यायै, देवानां देवतात्मने ।
मया ह्याचमनं दत्तं, गृहाण जगदीश्वरि ॥

पुष्पांजलि - रात्रि में पट बन्द किए जाने के पूर्व पुष्पाञ्जलि की जाए । दिन भर माँ के अनुग्रह के प्रति कृतज्ञता का भाव रखते हुए पुष्पाञ्जलि की जाए । पुष्प की तरह माँ के चरणों में समर्पित होने का भाव किया जाए ।

दोनों हाथों में पुष्प लेकर मन्त्र बोलें तथा क्रमश: माँ के आगे चढ़ाएँ ।

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः, तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त, यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥

- ३१.१६

ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो, विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ॥
सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैः, द्यावाभूमी जनयन् देवऽ एकः ॥

- १७.१९

शयन- रात्रि में देव प्रतिमाओं को शयन कराने की परम्परा है । तदनुसार पर्दा डालकर आवश्यक आच्छादन प्रतिमा पर चढ़ाकर नीचे लिखे मन्त्र से शयन की प्रार्थना की जाए-

ॐ इमां पूजां मया देवि ! यथाशक्त्युपपादिताम् ।
शयनार्थं महादेवि ! व्रज स्वस्थानमुत्तमम् ॥

* * *

॥ कलशस्थापन ॥

सूत्र संकेत— कलश की स्थापना और पूजा लगभग प्रत्येक कर्मकाण्ड में की जाती है । सामान्य रूप से कलश पहले से तैयार रखा रहता है और पूजन क्रम में उसका पूजन करा दिया जाता है । यदि कहीं इस प्रकरण का विस्तार करना आवश्यक लगे, तो स्थापना के लिए नीचे दिये गये पाँच उपचार कराये जाते हैं । यह उपचार पूर्ण होने पर कलश प्रार्थना प्रयोग करके आगे बढ़ा जाता है । यह विस्तृत कलश स्थापन, प्राण प्रतिष्ठा, गृह प्रवेश, गृह शान्ति, नवरात्रि जैसे प्रकरणों में जोड़ा जा सकता है । बड़े यज्ञों में देव पूजन के पूर्व प्रधान कलश अथवा पंच वेदिकाओं के पाँचों कलशों पर एक साथ यह उपचार कराये जा सकते हैं ।

स्थापना प्रसंग के लिए रँगा हुआ कलश, उसके नीचे रखने का घेरा (ईडली), अलग पात्र में शुद्ध जल, कलावा, मंगल द्रव्य, नारियल पहले से तैयार रखने चाहिए ।

शिक्षण एवं प्रेरणा— कलश को सभी देव शक्तियों, तीर्थों आदि का संयुक्त प्रतीक मानकर, उसे स्थापित-पूजित किया जाता है । कलश को यह गौरव मिला है- उसकी धारण करने की क्षमता-पात्रता से । घट स्थापन के साथ स्मरण रखा जाना चाहिए कि हर व्यक्ति, हर क्षेत्र, हर स्थान में धारण करने की अपनी क्षमता होती है । उसे सजाया-सँवारा जाना चाहिए । उसके लिए उपयुक्त आधार दिया जाना चाहिए ।

पात्र में पवित्र जल भरते हैं । श्रद्धा और पवित्रता से भरी- पूरी पात्रता ही धन्य होती है । उसमें मंगल द्रव्य डालते हैं । पात्रता को मंगलमय गुणों से विभूषित किया जाना चाहिए । कलावा बाँधने का अर्थ है- पात्रता को आदर्शवादिता से अनुबन्धित करना । नारियल-श्रीफल, सुख- सौभाग्य का प्रतीक माना जाता है । उसकी स्थापना का तात्पर्य है कि ऐसी व्यवस्थित पात्रता पर ही सुख-सौभाग्य स्थिर रहते हैं ।

क्रिया और भावना— पाँचों उपचार एक-एक करके मन्त्रों के साथ सम्पन्न करें, उनके अनुरूप भावना सभी बनाये रखें ।

(१) **घटस्थापन—** मन्त्रोच्चार के साथ कलश को निर्धारित स्थान या

चौकी आदि पर स्थापित करें। भावना करें कि अपने-अपने प्रभाव क्षेत्र की पात्रता प्रभु चरणों में स्थापित कर रहे हैं।

ॐ आजिघ्र कलशं मह्या, त्वा विशन्त्विन्दवः। पुनरूर्जा निवर्त्तस्व, सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा, पयस्वती: पुनर्मा विशताद्रयिः। ८.४२

(२) **जलपूरण—** मन्त्रोच्चार के साथ सावधानी से शुद्ध जल कलश में भरें। भावना करें समर्पित पात्रता का खालीपन श्रद्धा-संवेदना से, तरलता-सरलता से लबालब भर रहा है।

ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि, वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थो, वरुणस्यऽऋतसदन्यसि, वरुणस्यऽऋत सदनमसि, वरुणस्यऽऋतसदनमासीद॥ -४.३६

(३) **मंगलद्रव्यस्थापन—** मन्त्र के साथ कलश में दूर्वा-कुश, पूगीफल-सुपारी, पुष्प और पल्लव डालें। भावना करें स्थान और व्यक्तित्व में छिपी पात्रता में दूर्वा जैसी जीवनी शक्ति, कुश जैसी प्रखरता, सुपारी जैसी गुणयुक्त स्थिरता, पुष्प जैसा उल्लास तथा पल्लवों जैसी सरलता, सादगी का संचार किया जा रहा है।

ॐ त्वां गन्धर्वाऽअखनँस्त्वाम्, इन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः। त्वामोषधे सोमो राजा, विद्वान्यक्ष्मादमुच्यत॥ १२.९८

(४) **सूत्रवेष्टन—** मन्त्र के साथ कलश में कलावा लपेटें। भावना करें पात्रता को अवांछनीयता से जुड़ने का अवसर न देकर उसे आदर्शवादिता के साथ अनुबन्धित कर रहे हैं, ईश अनुशासन में बाँध रहे हैं।

ॐ सुजातो ज्योतिषा सह, शर्मवरूथ माऽसदत्स्वः। वासोऽअग्ने विश्वरूप ঁ, सं व्ययस्व विभावसो॥ -११.४०

(५) **नारिकेल संस्थापन-**मन्त्र के साथ कलश के ऊपर नारियल रखें। भावना करें कि इष्ट के चरणों में समर्पित, पात्रता सुख-सौभाग्य की आधार बन रही है। यह दिव्य कलश जहाँ स्थापित हुआ है, वहाँ की जड़-चेतना, सारी पात्रता इन्हीं संस्कारों से भर रही है।

ॐ याः फलिनीर्या ऽ अफला ऽ, अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः। बृहस्पतिप्रसूतास्ता, नो मुञ्चन्त्व ᳪ हसः। १२.८९

तत्पश्चात् **ॐ मनोजूतिर्जुषताम्** ० मन्त्र से (दोनों हाथ लगाकर) प्रतिष्ठा करें। बाद में **तत्त्वायामि** ० मंत्र का प्रयोग करते हुए पंचोपचार पूजन करें और **कलशस्य मुखे विष्णुः** ० इत्यादि मन्त्रों से प्रार्थना करें।

॥ गणेश -गौरीपूजन ॥

कलश पूजन के साथ गणेश- गौरी पूजन की भी परम्परा अनेक स्थानों पर पायी जाती है। वास्तव में यह संक्षिप्तीकरण की पद्धति है। कलश पूजन के साथ गणपति को सभी देव शक्तियों का प्रतिनिधि तथा गौरी को सभी मातृशक्तियों की प्रतीक मानकर पूजन किया जाता है। यदि इस प्रकार का संक्षिप्त पूजन करना हो, तो इस पुस्तक के प्रथम भाग में दिये देवपूजन प्रसंग के आरम्भिक चार मन्त्रों से काम चल सकता है। उस स्थिति में क्रमशः गुरु तत्त्व का **गुरुर्ब्रह्मा.....** आद्यशक्ति गायत्री को **आयातु वरदे देवि.....**गणपति का **अभीप्सितार्थ सिद्ध्यर्थं.......** तथा गौरी का **सर्व मंगल मांगल्ये......** मन्त्र से आवाहन करके पंचोपचार पूजन करा देना चाहिए।

॥ सर्वतोभद्र वेदिका पूजन ॥

प्रधान वेदी पर अर्थात् सर्वतोभद्र मण्डल पर निम्न मन्त्रों के साथ तैंतीस देवताओं का श्रद्धा-भक्तिपूर्वक आवाहन करना चाहिए। प्रत्येक देवता के आवाहन के साथ निर्धारित वर्ग पर अक्षत, पुष्प, सुपाड़ी छोड़ते रहना चाहिए।

(१) **गणेश (विवेक)** पीला

ॐ गणानां त्वा गणपति ᳪ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपति ᳪ हवामहे निधीनां त्वा निधिपति ᳪ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥ ॐ गणपतये नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥-२३.१९

(२) गौरी (तपस्या) हरा

ॐ आयंगौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः। पितरञ्च प्रयन्त्स्वः ॥ ॐ गौर्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥ -३.६

(३) ब्रह्मा (निर्माण) लाल

ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेनऽ आवः। स बुध्न्याऽ उपमाऽ अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्चवि वः ॥ ॐ ब्रह्मणे नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥

-१३.३

(४) विष्णु (ऐश्वर्य) सफेद

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पा छं सुरे स्वाहा ॥ ॐ विष्णवे नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥ -५.१५

(५) रुद्र (दमन) लाल

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यवऽ उतो तऽ इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः ॥ ॐ रुद्राय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥ १६.१

(६) गायत्री (ऋतम्भरा प्रज्ञा) पीला

ॐ गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पंक्त्या सह। बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ॐ गायत्र्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥ २३.३३

(७) सरस्वती बुद्धि (शिक्षा) लाल

ॐ पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः। ॐ सरस्वत्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥ २०.८४

(८) लक्ष्मी (समृद्धि) सफेद

ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुम्मऽइषाण सर्वलोकं मऽ इषाण। ॐ लक्ष्म्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ -३१.२२

(९) दुर्गा शक्ति (संगठन) लाल

ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः॥ ॐ दुर्गायै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥

—ऋ० १.९९.१

(१०) पृथ्वी (क्षमा) सफेद

ॐ मही द्यौः पृथिवी च नऽ इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः॥ ॐ पृथिव्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि॥ -८.३२

(११) अग्नि (तेजस्विता) पीला

ॐ त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडो अव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषा*सि प्र मुमुग्ध्यस्मत्। ॐ अग्नये नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ - २१.३

(१२) वायु (गतिशीलता) सफेद

ॐ आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वर* सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम्। वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ॐ वायवे नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ -२७.२८

(१३) इन्द्र (व्यवस्था) लाल

ॐ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्र ँ हवेहवे सुहव ँ शूरमिन्द्रम्। ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्र ँ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः। ॐ इन्द्राय नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥ -२०.५०

(१४) यम (न्याय) सफेद

ॐ सुगन्नुपंथां प्रतिशन्नऽएहि ज्योतिष्मध्येह्यजरन्नऽआयुः । अपैतु मृत्युममृतं म ऽआगाद्वैवस्वतोनो ऽ अभयं कृणोतु। ॐ यमाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥

(१५) कुबेर (मितव्ययिता) काला

ॐ राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे। स मे कामान् कामकामाय मह्यम्। कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु। कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः। ॐ कुबेराय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥ -तै० आ० १.३१

(१६) अश्विनीकुमार (आरोग्य) पीला

ॐ अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम्। वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम्॥ ॐ अश्विनीकुमाराभ्यां नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि ॥

-२०.८०

(१७) सूर्य (प्रेरणा) काला

ॐ आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥ ॐ सूर्याय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥ -३३.४३; ३४.३१

(१८) चन्द्रमा (शान्ति) लाल

ॐ इमं देवा ऽ असपत्नꣳसुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय। इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश ऽ एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳराजा। ॐ चन्द्रमसे नमः। आवा०, स्था०, , ध्यायामि॥ -९.४०

(१९) मङ्गल (कल्याण) सफेद

ॐ अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपाꣳरेताꣳसि जिन्वति॥ ॐ भौमाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ -३.१२

(२०) बुध (सन्तुलन) हरा

ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते स ꣳसृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत॥ ॐ बुधाय नमः॥ आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ -१५.५४

(२१) बृहस्पति (अनुशासन) पीला

ॐ बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु। यद्दीदयच्छवसऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्। उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतये त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा। ॐ बृहस्पतये नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ - ऋ० २.२३.१५; २६.३

(२२) शुक्र (संयम) हरा

ॐ अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत् क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳशुक्रमन्धस-ऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु॥ ॐ शुक्राय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ -१९.७५

(२३) शनिश्चर (तितिक्षा) लाल

ॐ शन्नो देवीरभिष्टयऽ आपो भवन्तु पीतये। शं योरभिस्त्रवन्तु नः। ॐ शनिश्चराय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ - ३६.१२

(२४) राहु (संघर्ष) पीला

ॐ कया नश्चित्रऽआ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता। ॐ राहवे नमः। आवा०, स्था०, ध्यायामि॥-२७.३९

(२५) केतु (साहस) लाल

ॐ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः॥ ॐ केतवे नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि॥ २९.३७

(२६) गङ्गा (पवित्रता) सफेद

ॐ पंच नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्त्रोतसः। सरस्वती तु पंचधा सो देशेऽभवत्सरित्॥ ॐ गङ्गायै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ - ३४.११

(२७) पितृ (दान) पीला

ॐ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम्॥ ॐ पितृभ्यो नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि॥ -१९.३६

(२८) इन्द्राणी (श्रमशीलता) सफेद

ॐ अदित्यै रास्नाऽसीन्द्राण्या उष्णीषः। पूषासि घर्माय दीष्व॥ ॐ इन्द्राण्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ - ३८.३

(२९) रुद्राणी (वीरता) काला

ॐ या ते रुद्र शिवातनूरघोराऽपापकाशिनी। तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि॥ ॐ रुद्राण्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ -१६.२

(३०) ब्रह्माणी (नियमितता) पीला

ॐ इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः। उप ब्रह्माणि वाघतः। ॐ ब्रह्माण्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ -२०.८८

(३१) सर्प (धैर्य) काला

ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु। ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः। ॐ सर्पेभ्यो नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ १३.६

(३२) वास्तु (कला) हरा

ॐ वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः। यत्त्वेमहे प्रतितन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥ ॐ वास्तुपुरुषाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि॥ —ऋ० ७.५४.१

(३३) आकाश (विशालता) नीला

ॐ या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती। तया यज्ञं मिमिक्षतम्। उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा।ॐ आकाशाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ -७.११

* * *

॥ पुरुष सूक्त ॥

सूत्र संकेत— पुरुष सूक्त का प्रयोग विशेष पूजन के क्रम में किया जाता है । षोडशोपचार पूजन के एक-एक उपचार के साथ क्रमश: एक-एक मन्त्र बोला जाता है । जहाँ कहीं भी किसी देवशक्ति का पूजन विस्तार से करना हो, तो पुरुष सूक्त के मन्त्रों के साथ षोडशोपचार पूजन करा दिया जाता है । पंचोपचार पूजन में भी इस सूक्त से सम्बन्धित मन्त्रों का प्रयोग किया जा सकता है । यज्ञादि के विस्तृत देवपूजन में, पर्वों पर, पर्व से सम्बन्धित देव शक्ति के पूजन में बहुधा इसका प्रयोग किया जाता है । वातावरण में पवित्रता और श्रद्धा के संचार के लिए भी पुरुष सूक्त का पाठ सधे हुए कण्ठ वाले व्यक्ति सामूहिक रूप से करते हैं ।

शिक्षण एवं प्रेरणा— पुरुष सूक्त में परमात्मा की विराट् सत्ता का वर्णन किया गया है । उस महत् चेतना के विस्तार के संकल्प से ही इस जड़- चेतन की सृष्टि हुई है । किसी भी प्रतीक देव विग्रह का पूजन करते हुए यही चिन्तन उभरता रहता है कि हम उसी एक विराट् , सनातन, अविनाशी का पूजन कर रहे हैं ।

क्रिया और भावना— पुरुष सूक्त से पूजन प्रारम्भ कराने के पूर्व उपस्थित श्रद्धालुओं को उक्त सिद्धान्त बतलाया जाना चाहिए , ताकि पूजन में उनका भी भाव-संयोग हो सके । यदि सम्भव हो, तो सभी के हाथ में अथवा पूजन वेदी के निकटवर्ती प्रतिनिधियों के हाथ में अक्षत- पुष्प दे देने चाहिए । उसे पूरे पूजन के साथ हाथ में रखें, भाव पूजन में सम्मिलित रहें और वे पुष्पांजलि के साथ उन्हें अर्पित करें । भावना करें कि हमारे पास जो कुछ भी है, उसी का दिया हुआ है । उसके विराट् स्वरूप एवं उद्देश्यों को हम पहचानें और उनके निमित्त अपने साधनों को- क्षमताओं को अर्पित करते हुए उन्हें सार्थक करें, धन्य बनाएँ । उस सर्वव्यापी को, उसके आदर्शों को हर कदम पर, हर स्तर पर, हर प्रसंग में प्रत्यक्ष की तरह देखते हुए श्रद्धासिक्त होकर पूजन भाव से सक्रिय रहें । उसके दिये साधनों को उसके उद्देश्यों में लगाने में कृपणता न बरतें, उदार भक्ति-भावना का परिचय-प्रमाण दें ।

सम्बन्धित सामग्री हाथ में लेकर मन्त्र बोला जाए । मन्त्र पूरा होने पर

जिस देव शक्ति का पूजन है, उसका नाम लेते हुए षोडशोपचार के आधार पर **स्थापयामि, समर्पयामि** आदि कहते हुए उसे चढ़ाते चलें ।

१- आवाहनम्

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः, सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमि ँ सर्वतस्पृत्वा, अत्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥

२- आसनम्

ॐ पुरुषऽएवेद ँ सर्वं, यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो, यदन्नेनातिरोहति ॥

३- पाद्यम्

ॐ एतावानस्य महिमातो, ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वाभूतानि, त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥

४- अर्घ्यम्

ॐ त्रिपादूर्ध्व ऽ उदैत्पुरुषः, पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्, साशनानशने अभि ॥

५- आचमनम्

ॐ ततो विराडजायत, विराजो अधिपूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत, पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥

६- स्नानम्

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः, सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यान्, आरण्या ग्राम्याश्च ये ॥

७- वस्त्रम्

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽ, ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दा ँ सि जज्ञिरे तस्माद्, यजुस्तस्मादजायत ॥

८-यज्ञोपवीतम्

ॐ तस्मादश्वा ऽ अजायन्त, ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्, तस्माज्जाता ऽ अजावयः ॥

९- गन्धम्

ॐ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्, पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवाऽअयजन्त, साध्या ऽ ऋषयश्च ये ॥

१०- पुष्पाणि

ॐ यत् पुरुषं व्यदधुः, कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत्किं बाहू, किमूरू पादा उच्येते ॥

११- धूपम्

ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्, बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः, पद्भ्या ँ शूद्रो अजायत ॥

१२- दीपम्

ॐ चन्द्रमा मनसो जातः, चक्षोः सूर्यो अजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च, मुखादग्निरजायत ॥

१३- नैवेद्यम्

ॐ नाभ्याऽ आसीदन्तरिक्ष ँ, शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्, तथा लोकाँ२ अकल्पयन् ॥

१४- ताम्बूलपूगीफलानि

ॐ यत्पुरुषेण हविषा, देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं, ग्रीष्म ऽ इध्मःशरद्धविः ॥

१५- दक्षिणा

ॐ सप्तास्यासन्परिधयः, त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वानाऽ, अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥

१६- मंत्र पुष्पांजलिः

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः, तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त, यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥

- ३१.१-१६

* * *

॥ त्रिदेव पूजन ॥

सूत्र संकेत- युग निर्माण अभियान के अन्तर्गत, जो बड़े आयोजन होते हैं, उनमें त्रिदेव पूजन की परिपाटी है। इसमें आद्यशक्ति वेदमाता गायत्री, भारतीय धर्म के जनक यज्ञदेव और युगावतार के प्रतीक ज्योति पुरुष, जन-समूह युक्त लाल मशाल का पूजन किया जाता है।

तीन मन्त्रों की सशक्त व्याख्या के साथ किया जाने वाला यह संक्षिप्त पूजन अनेक दृष्टियों से उपयोगी है। इससे युग परिवर्तन की आधार रूप तीन शक्तियों का महत्त्व जन-जन के मानस में जमता है। इससे उनमें अपने दृष्टिकोण, आचरण एवं व्यवहार बदलने-सँभालने की प्रेरणा मिलती है। थोड़ी सी ही प्रखर- चिन्तन- युक्त व्याख्या से भाव-भरी श्रद्धा का वातावरण बन जाता है। लम्बे पूजन क्रम में तो थोड़े से विशिष्ट श्रद्धालुजन ही बैठते हैं। उसके साथ जो प्रेरणा का संचार किया जाता है, थोड़े समय के लिए आने वाले व्यक्ति उससे वंचित रह जाते हैं। यह पूजन उस समय भी कराया जा सकता है, जब मुख्य कार्य प्रारम्भ होने को हो और अधिकांश व्यक्ति उपस्थित हो गये हों। जैसे पर्व प्रकरण में मुख्य सन्देश देने के ठीक पहले, बड़े यज्ञों में सामान्य देवपूजन पूरा हो जाने पर, विशिष्ट गोष्ठियों आदि के समय श्रद्धा भरा वातावरण बनाने के लिए भी यह पूजन किया जा सकता है।

शिक्षण एवं प्रेरणा- यह सृष्टि त्रिआयामी कही गयी है। तीन लोक, तीन देव, तीन शरीर, तीन गुणों आदि से सभी परिचित हैं। इसी प्रकार की स्थापना के भी तीन आधार तीन देव शक्तियों के रूप में हैं। इनके सान्निध्य, संसर्ग और संयोग से ही अवांछनीयता का निवारण होकर वांछित सुयोग बन सकेंगे।

(१) आद्यशक्ति गायत्री - भारतीय संस्कृति- देव संस्कृति की जननी गायत्री, जिन्हें वेदमाता, देवमाता एवं विश्वमाता के नाम से भी जानते हैं, सद्भाव एवं सद्विचारों का उभार-उन्नयन इन्हीं की कृपा से, इनसे सम्बन्धित गुह्य सूत्रों को धारण करने से सम्भव होता है। अनास्था असुर के सर्वव्यापी अस्तित्व को यही असुर निकन्दिनी, महाप्रज्ञा के रूप में समाप्त करेगी।

(२) यज्ञ भगवान्-यह सृष्टि यज्ञमय है। ईश्वरीय अनुशासन से

चलने वाले आदान-प्रदान के क्रम को यज्ञ कहा जाता है, इसीलिए इसे देव धर्म का जनक कहा जाता है। यज्ञीय भाव की स्थापना से ही कर्म और व्यवहार में से अधोगामी प्रवृत्ति समाप्त होकर श्रेष्ठता की ऊर्ध्वगामी प्रवृत्तियों का विकास होगा। इसी आधार पर नवयुग की स्थापना सम्भव होगी।

(३) **ज्योतिपुरुष-** युगशक्ति निष्कलंक अवतार के लीला संदोह का प्रतीक जनशक्ति युक्त मशाल का चिह्न है। दिव्य संरक्षण और अनुशासन में जन समर्थित प्रचंड शक्ति प्रवाह का उदय होता है। अवांछनीयता के निवारण और वांछनीयता की स्थापना में असम्भव को सम्भव यही बनाएगी। ध्वंस और सृजन की, गलाई और ढलाई की संयुक्त प्रक्रिया इसी के द्वारा संचालित होगी।

क्रिया और भावना- हाथ में जल, पुष्प, अक्षत लेकर भावनापूर्वक मन्त्रोच्चार के साथ पूजन वेदी पर क्रमशः अर्पित करें।

(१) **आद्यशक्ति गायत्री -** भावना करें कि आद्यशक्ति करुणामयी विश्वमाता की शरण में जाकर हम सब उनकी करुणा, संवेदना, मंगल भावना से सुसंस्कारित हो रहे हैं।

ॐ गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पंक्त्या सह। बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा॥ ॐ गायत्र्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ २३.३३

(२) **यज्ञ भगवान् -** भावना करें कि दिव्य अनुशासन से जुड़कर हम सबकी चेतना क्रियाशीलता को, पराक्रम पुरुषार्थ को यज्ञ जैसी प्रखरता-पवित्रता प्राप्त हो रही है।

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः, तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त, यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥
ॐ यज्ञपुरुषाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि,
ध्यायामि। - ३१.१६

(३) **ज्योति पुरुष** भावना करें कि युग शक्ति एक प्रचण्ड प्रवाह के रूप में उभर रही है, उसकी एक किरण हम भी हैं। उस विशाल तन्त्र के एक घटक के नाते, हम उस विराट् की वन्दना- अभ्यर्थना कर रहे हैं।

ॐ अग्ने नय सुपथा राये, अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो, भूयिष्ठां ते नमऽ उक्तिं विधेम ॥ॐ ज्योतिपुरुषाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि। -५.३६, ७.४३

* * *

॥ पंचवेदी पूजन ॥

सूत्र संकेत- हमारा शरीर अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश तथा आनन्दमय कोश के द्वारा विनिर्मित है। स्वेदज, अण्डज, उद्भिज, जरायुज चार प्रकार के प्राणी और पाँचवें जड़ पदार्थ, यह पंचधा प्रकृति भी इन्हीं पाँच देवताओं की प्रतिक्रिया है। जड़- चेतन इस जगत् के पंचधा विश्लेषण को पंचदेवों के रूप में माना गया है। पंचतत्त्वों को भी उसी श्रेणी में गिना जाता है। इन्हीं से यह जगत् बना है। शरीर से लेकर समस्त दृश्य जड़ जगत् केवल परमाणुओं का बना पदार्थ ही नहीं है; वरन् उसके अन्तराल में दैवी चेतना काम करती है। जड़ में चेतन की भावना-यही अध्यात्मवाद है। चेतन को जड़ मानना-यही भौतिकवाद है। सृष्टि के आधारभूत पंचतत्त्वों को अध्यात्म ने चेतन-देवसत्ता से ओत-प्रोत माना है, उसका स्थूल रूप तो कलेवर मात्र है। इस तत्त्व - आत्मा को ही अनुष्ठानों में देवरूप में प्रतिष्ठापित और पूजित किया जाता है।

बड़े यज्ञों में कथा, अनुष्ठान, नवरात्रि पर्व, संस्कार आदि जहाँ आवश्यक लगे, पंचवेदियाँ स्थापित की जा सकती हैं।

क्रम व्यवस्था- जहाँ स्थापना की जाए, वहाँ चार कोनों पर चार चौकियाँ रखकर उन पर पीले कपड़े बिछाये जाएँ। ऊपर रँगे हुए चावलों के मंगल चिह्नबद्ध कोष्ठ बना दिये जाएँ। मध्य में सुसज्जित कलश रखे जाएँ। यह चार तत्त्वों के चार कलश हुए। मध्य पीठ को - प्रधान देवता की चौकी को आकाश कलश माना जाए।

नैर्ऋत्य (दक्षिण - पश्चिम दिशा के मध्य) में पृथ्वी वेदी (रंग हरा), ऐशान्य (उत्तर और पूर्व दिशा के मध्य) में वरुण वेदी (रंग काला), आग्नेय

(पूर्व- दक्षिण दिशा के मध्य) में अग्निवेदी (रंग लाल) और वायव्य (पश्चिम-उत्तर दिशा के बीच) में वायु वेदी (रंग पीला) स्थापित की जाती है।

आकाश का कोई रंग नहीं, उसका प्रतीक सर्वतोभद्रचक्र सब रंगों से मिलाकर बनाया जाता है और ३३ कोटि देवताओं का आवाहन उसी में कर लिया जाता है। यदि सर्वतोभद्रचक्र न बनाना हो, तो उसके स्थान पर आकाश तत्त्व के लिए सफेद चावलों का अन्य तत्त्वों जैसा कोष्ठ बना देना चाहिए।

क्रिया और भावना- पाँच चौकियों पर स्थापित पाँच कलशों को एक-एक देवता का प्रतीक मानकर प्रत्येक का पूजन जल, पुष्प-अक्षत, चन्दन, नैवेद्य इन पाँच वस्तुओं से किया जाए। पाँच देवों के मन्त्र नीचे दिये गये हैं।

॥ पृथ्वी ॥

भावना करें कि इस कृत्य में संलग्न, हर क्षेत्र से सम्बद्ध, हर साधन उपकरण और पदार्थ में व्याप्त पृथ्वी तत्त्व का कण-कण इस शुभ कार्य की सफलता के लिए स्थिरता और सहनशीलता का वातावरण बना रहा है।

ॐ मही द्यौः पृथिवी च न ऽ, इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः॥ ॐ पृथिव्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ -८.३२

॥ वरुण ॥

क्षेत्र और कार्य से सम्बद्ध जल तत्त्व की हर इकाई पूजन के साथ स्नेह, संवेदना, श्रद्धा, सरलता, निर्मलता का दिव्य संचार करते हुए, दैवी प्रयोजन में भरपूर सहयोग के लिए तरंगित हो रही है।

ॐ तत्त्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानः, तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुश ँ्स मा न ऽ आयुः प्रमोषीः॥ ॐ वरुणाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ १८.४९

॥ अग्नि ॥

भावना करें काया-पदार्थ अग्नितत्त्व- तेजस्, पुरुषार्थ, प्राणतत्त्व आदि को जाग्रत् करके उसे दिव्य ऊर्जा से भरपूर बना रहा है ।

ॐ त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्, देवस्य हेडो अव यासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो, विश्वा द्वेषा ᳪ सि प्रमुमुग्ध्यस्मत् ॥ ॐ अग्नये नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥ २१.३

॥ वायु ॥

वायुदेव इस क्षेत्र और कार्य से सम्बद्ध अपने हर घटक को दिव्य प्रवाह, सुवास और प्राण संचार में लगाकर अपने आशीर्वाद से कृतार्थ कर रहे हैं ।

ॐ आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वर ᳪ , सहस्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम् । वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व, यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ॐ वायवे नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥ - २७.२८

॥आकाश ॥

भावना करें कि सर्वव्यापी आकाश तत्त्व की दिव्य चेतन धाराएँ दिव्य प्रयोजन से सम्बद्ध हर प्राणी, हर पदार्थ को महत्-चेतना के अनुरूप सक्रियता की क्षमता से पूरित कर रही हैं ।

ॐ या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती । तया यज्ञं मिमिक्षतम् । उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां, त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा ॥ ॐ आकाशाय नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥ ७.११

* * *

॥ पंचभू-संस्कार ॥

सूत्र संकेत- यज्ञादि कर्मकाण्डों के अन्तर्गत भूमि को संस्कारित करने के लिए पंच भू-संस्कार करने की परिपाटी है । संक्षिप्त पूजन क्रम में षट्कर्मों के अन्तर्गत पृथ्वी पूजन करके उस भूमि में पवित्रता के संस्कार उभारे जाते हैं, उसी का थोड़ा विस्तृत क्रम पंच भू-संस्कार के रूप में किया जा सकता है । भूमि संस्कारित करने की अधिक विस्तृत प्रक्रिया इसी खण्ड में भूमि पूजन प्रकरण में दी गयी है । समय और आवश्यकता के अनुसार विवेकपूर्वक चयन किया जा सकता है ।

शिक्षण और प्रेरणा- इस संदर्भ में भूमिपूजन-प्रकरण देखें ।

क्रम व्यवस्था- पंच भू-संस्कार केवल मुख्य पूजन करने वाले व्यक्ति से कराया जा सकता है । अधिक व्यवस्था हो, तो मुख्य पूजन स्थल के साथ प्रत्येक तत्त्ववेदी के स्थल पर अथवा प्रत्येक कुण्ड पर एक व्यक्ति द्वारा एक साथ मन्त्रोच्चार के साथ यह क्रम चलाया जा सकता है ।

जितने स्थानों पर पंच भू-संस्कार कराना है, उतने स्थानों पर परिसमूहन- बुहारने के लिए कुशाएँ, लेपन के लिए गाय का गोबर, रेखांकन के लिए स्रुवा-स्फ्य या पवित्र काष्ठ का टुकड़ा तथा सिंचन के लिए जल रहना चाहिए ।

क्रिया और भावना- प्रत्येक मन्त्र में क्रिया के लिए तीन-तीन निर्देश हैं । क्रिया तीन बार प्रत्येक निर्देश के साथ की जानी चाहिए । प्रत्येक क्रिया के साथ उससे सम्बद्ध भावना का संचार किया जाना चाहिए ।

१. परिसमूहन

दाहिने हाथ में कुशाएँ लेकर तीन बार **पश्चिम से पूर्व की ओर या दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ते हुए**, निम्न मन्त्र बोलते हुए बुहारें, भावना करें कि इस क्षेत्र में पहले से यदि कोई कुसंस्कार व्याप्त है, तो उन्हें मन्त्र और भावना की शक्ति से बुहार कर दूर किया जा रहा है । बाद में कुशाओं को पूर्व की ओर फेंक दें ।

ॐ दर्भैः परिसमूह्य, परिसमूह्य, परिसमूह्य ।

२. उपलेपन

बुहारे हुए स्थल पर गोमय (गाय के गोबर) से **पश्चिम से पूर्व की ओर को या दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ते हुए** लेपन करें और निम्न मन्त्र बोलते रहें। भावना करें कि शुभ संस्कारों का आरोपण और उभार इस क्रिया के साथ किया जा रहा है।

ॐ गोमयेन उपलिप्य, उपलिप्य, उपलिप्य।

३. उल्लेखन

लेपन हो जाने पर उस स्थल पर स्रुवा- मूल से **तीन रेखाएँ पश्चिम से पूर्व की ओर या दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ते हुए** निम्न मन्त्र बोलते हुए खींचें, भावना करें कि भूमि में देवत्व की मर्यादा रेखा बनाई जा रही है।

ॐ स्रुवमूलेन उल्लिख्य, उल्लिख्य, उल्लिख्य।

४. उद्धरण

रेखांकित किये गये स्थल के ऊपर की मिट्टी अनामिका और अंगुष्ठ के सहकार से निम्न मन्त्र बोलते हुए पूर्व या ईशान दिशा की ओर फेंकें, भावना करें कि मर्यादा में न बाँध सकने वाले तत्त्वों को विराट् की गोद में सौंपा जा रहा है।

ॐ अनामिकांगुष्ठेन उद्धृत्य, उद्धृत्य, उद्धृत्य ।

५. अभ्युक्षण

पुन: उस स्थल पर निम्न मन्त्र बोलते हुए जल छिड़कें, भावना करें कि इस क्षेत्र में जाग्रत् सुसंस्कारों को विकसित होने के लिए सींचा जा रहा है।

ॐ उदकेन अभ्युक्ष्य, अभ्युक्ष्य, अभ्युक्ष्य।

***

॥ कुशकण्डिका ॥

सूत्र संकेत- कुश पवित्रता और प्रखरता के प्रतीक माने जाते हैं। कुश-कण्डिका के अन्तर्गत निर्धारित क्षेत्र के चारों दिशाओं में कुश बिछाये जाते हैं। बड़े यज्ञों और विशिष्ट कर्मकाण्डों में यज्ञशाला, यज्ञकुण्ड अथवा पूजा क्षेत्र के चारों ओर मन्त्रों के साथ कुश स्थापित किए जाते हैं।

क्रम व्यवस्था- कुश कण्डिका में प्रत्येक दिशा के लिए चार-चार कुश लिये जाते हैं। पूरे क्षेत्र को इकाई मानकर उसके चारों ओर एक ही व्यक्ति से कुश स्थापित कराने हैं, तो कुल १६ कुशाएँ चाहिए। यदि प्रत्येक कुण्ड या वेदी पर कराना है, तो प्रत्येक के लिए सोलह-सोलह कुशाएँ चाहिए।

क्रिया और भावना- कुश स्थापना करने वाले व्यक्ति एक बार में चार कुश हाथ में लें। मन्त्रोच्चार के साथ कुशाओं सहित उस दिशा में हाथ जोड़कर मस्तक झुकाएँ और एक-एक करके चारों कुशाएँ उसी दिशा में स्थापित कर दें। कुश स्थापित करते समय कुश का ऊपरी नुकीला भाग पूर्व या उत्तर की ओर रहे तथा मूल (जड़) भाग पश्चिम या दक्षिण की ओर रहे। प्रत्येक मन्त्र के साथ दिशा विशेष के लिए यही क्रम अपनाया जाए।

भावना की जाए कि इस दिशा में व्याप्त देवशक्तियों को नमस्कार करते हुए उनके सहयोग से दिव्य प्रयोजन के लिए कुशाओं जैसी पवित्रता और प्रखरता का जागरण और स्थापन किया जा रहा है।

(१) पूर्व दिशा में

ॐ प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो, रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नमऽइषुभ्यो, नम ऽ एभ्यो अस्तु।यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं, द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥अ० ३.२७.१

(२) दक्षिण दिशा में

ॐ दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी, रक्षिता पितरऽ इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नमऽ इषुभ्यो, नमऽ एभ्यो अस्तु।यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं, द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः। - ३.२७.२

(३) पश्चिम दिशा में

ॐ प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू, रक्षितान्नमिषवः ।तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नमऽइषुभ्यो, नमऽएभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं, द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।अथर्व ३.२७.३

(४) उत्तर दिशा में

ॐ उदीची दिक्सोमोऽधिपतिः, स्वजो रक्षिताशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नमऽ इषुभ्यो, नमऽ एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं, द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।

- अथर्व० ३.२७.४

* * *

॥ मेखलापूजन ॥

सूत्र संकेत- यज्ञ कुण्ड के चारों ओर मेखलाएँ बनाई जाती हैं। कुण्डों में यह सीढ़ीनुमा होती हैं। वेदी पर यज्ञ करते समय तीन रेखाएँ विनिर्मित की जाती हैं। अन्दर वाली मेखला सफेद, बीच वाली लाल तथा बाहर वाली काली होती है। इन्हें तीनों गुणों सत्, रज और तम का प्रतीक माना जाता है। संसार तीन गुणों के संयोग से बना है। यज्ञ उनके बीच सन्तुलन और चेतना को ऊर्ध्वगामी करने में समर्थ बनाने के लिए किया जाता है।

तीनों मेखलाओं में ब्रह्मा, विष्णु और महेश की सत्ता स्थापित करके उन्हें पूजित किया जाता है। यज्ञ एक महान् ऊर्जा है, इसे बिजली और अणु शक्ति की तरह अनुशासन तथा मर्यादा के अन्तर्गत प्रयुक्त किया जाना चाहिए, मेखलाएँ मर्यादा और अनुशासन की प्रतीक मानी जाती हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश-सृजन, पालन और परिवर्तन की संयोजक देव शक्तियाँ हैं। इनके अनुरूप ही यज्ञ का विकास और प्रयोग किया जाता है।

क्रम व्यवस्था- बड़े यज्ञों में, विस्तारपूर्वक कराये जाने वाले संस्कारों आदि के समय यज्ञ में मेखलाओं का पूजन कराया जा सकता है। पूजन करने वालों के हाथ में जल, पुष्प, अक्षत, चन्दन या रोली आदि देकर मन्त्र बोले जाएँ और **आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि** के साथ सम्बन्धित मेखला पर सामग्री चढ़ा दी जाए। मन्त्र के साथ भावना रखी जाए कि त्रिदेवों की चेतना की स्थापना की जा रही है, जो हमारे यज्ञ और यज्ञीय भाव को सन्तुलित, अनुशासित और प्रभावशाली बनाने में समर्थ है।

॥ विष्णु पूजन(ऊपर की सफेद मेखला) ॥

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे, त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पाᳬ सुरे स्वाहा ॥ ॐ विष्णवे नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि। -५.१५

॥ ब्रह्मा पूजन (बीच की लाल मेखला) ॥

ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्, विसीमतः सुरुचो वेन ऽ आवः। सऽबुध्न्या उपमा ऽ अस्यविष्ठाः, सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ ॐ ब्रह्मणे नमः।आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि।-१३.३

॥ रुद्र पूजन(नीचे की काली मेखला) ॥

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यवऽ, उतो तऽइषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः ॥ ॐ रुद्राय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि ॥ - १६.१

* * *

॥ पंचामृतकरण ॥

सूत्र संकेत- गौ का महत्त्व ब्राह्मण और माँ के समान कहा गया है। उसके महत्त्व को समझने तथा उसके गुणों का लाभ उठाने के लिए धार्मिक कर्मकाण्डों के साथ पंचामृत पान का क्रम जोड़ा गया है। सामान्य क्रम में पंचामृत बनाकर रखा जाता है तथा उसका प्रसाद बनाकर वितरित किया जाता है। जहाँ कहीं उचित और आवश्यक लगे, देव पूजन के साथ पंचामृत बनाकर, भोग लगाकर पान कराया जाना चाहिए। पंचामृत बनाने और पान कराने के मन्त्र एक साथ दिये जा रहे हैं; परन्तु बनाने और पान कराने की क्रियाएँ क्रम- व्यवस्था के अनुसार अलग-अलग समय पर ही कराई जानी चाहिए।

शिक्षा एवं प्रेरणा- प्रसाद अमृत तुल्य पौष्टिक और सुसंस्कार देने में समर्थ पदार्थों का ही बनाया जाए। उसे ही प्रभु अर्पित किया जाए और प्रसाद रूप में पान किया जाए- इसके लिए प्रतीक रूप में गोरस लिया जाता है।

तुलसी, आँवला, पीपल, बेल की तरह गाय में दिव्यता (सतोगुण) की मात्रा अत्यधिक है। गोरस हमारे शरीर को ही नहीं, मन-मस्तिष्क और अन्तःकरण को भी उत्कृष्टता के तत्त्वों से भर देता है। गोरस केवल उत्तम आहार ही नहीं, दिव्यगुण सम्पन्न देव प्रसाद भी है। उसकी सात्त्विकता का अनुष्ठानों में समुचित समावेश होना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो यज्ञ आहुतियों के लिए गो-घृत का प्रबन्ध करना चाहिए, न मिलने पर ही दूसरे घृत काम में लाने चाहिए। इसी प्रकार प्रसाद के रूप में पंचामृत को ही उसकी विशेषताओं के कारण उपयोगी मानना चाहिए। सस्ता होने की दृष्टि से भी वह सर्वसुलभ है। उपस्थिति अधिक हो जाने पर जल और शर्करा मिला देने से सहज ही बढ़ भी सकता है, यह सुविधा अन्य किसी प्रसाद में नहीं है। गौ रक्षा की दृष्टि से यह नितान्त आवश्यक है कि हमारे धर्मानुष्ठानों में गौ रक्षा का महत्त्व जनसाधारण को विदित होता रहे और उस ओर आज जो उपेक्षा बरती जा रही है, उसका अन्त हो सके। गोरस के उपयोग का प्रचलन करने से ही गौ रक्षा, गौ संवर्धन सम्भव हो सकेगा।

क्रम व्यवस्था- पंचामृत में पाँच वस्तुएँ काम में आती हैं- (१) दूध (२) दही (३) घृत (४) शहद या शक्कर (५) तुलसी पत्र। प्राचीनकाल में शहद का बाहुल्य था, इसलिए उसे मिलाते थे। आज की परिस्थितियों में शक्कर भी किसी जमाने के शहद से अनेक गुनी मँहगी है, अब शक्कर से ही काम चलाना पड़ता है। संभव हो सके, तो पाउडर का उपयोग किये बिना, बनने वाली देशी शक्कर (खाण्डसारी) को प्राथमिकता देनी चाहिए। गोरस न मिले, तो ही भैंस का दूध-दही लेना चाहिए। तुलसी पत्र प्रायः हर जगह मिल जाते हैं। धर्मानुष्ठानों पर विश्वास रखने वालों को उसे अपने घरों में स्थापित करना चाहिए।

दूध अधिक, दही कम, घी बहुत थोड़ा, शक्कर भी आवश्यकतानुसार यह सब अन्दाज से बना लेना चाहिए, इसका कोई अनुपात निश्चित नहीं किया जा सकता। तुलसी पत्र के महीन टुकड़े करके डालने चाहिए; ताकि कुछ टुकड़े हर किसी के पास जा सकें। जल भी आवश्यकतानुसार मिलाया जा सकता है। पंचामृत की सभी वस्तुएँ अलग-अलग पात्रों में रखी जाएँ। जिस पात्र में पंचामृत बनाया जाना है, उसमें एक-एक वस्तु क्रमशः

मन्त्रोच्चार के साथ डालें। यज्ञ के अन्त में प्रसाद स्वरूप यह पंचामृत दिया जाए। दाहिनी हथेली पर लोग लें । हाथ चिपचिपे हो जाते हैं, इसलिए पास ही बाल्टी-लोटा हाथ धुलाने और हाथ पोंछने के लिए तौलिया भी रखनी चाहिए।

पात्र में दूध डालने का मन्त्र

दूध के बराबर धवल और निर्मल कोई पदार्थ नहीं होता है। पंचामृत में दूध का भाग मनुष्य को निर्मल, अन्दर से दुग्धवत् धवल अर्थात् सच्चरित्र बनाने का काम करता है।

ॐ पयः पृथिव्यां पयऽओषधीषु, पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः। पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्। १८.३६

दही मिलाने का मन्त्र

दही शीतल तथा गाढ़ा होने से मनुष्य में सूक्ष्मरूप से गम्भीरता, शीतलता अर्थात् सन्तुलन, स्थिरता आदि सद्गुणों को बढ़ाता है।

ॐ दधिक्राव्णो अकारिषं, जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत्प्र णऽ, आयू ँ षि तारिषत्॥ २३.३२

घी मिलाने का मंत्र

घी तरल, स्नेहयुक्त, सुगन्धियुक्त और गंभीरता प्रदर्शक है। इसके सेवन करने से मनुष्य का व्यवहार नम्र -स्नेहपूर्ण, प्रसन्नतादायक और शान्त बनता है। शुभ कार्यों में इसी तरह का व्यवहार अपेक्षित है।

ॐ घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः, पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा। दिशः प्रदिशऽआदिशो विदिश ऽ, उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा॥ ६.१९

शहद मिलाने का मन्त्र

मधु या शहद स्वास्थ्यवर्धक, रोगनिवारक, शुद्धिकारक प्राकृतिक पदार्थ होता है। मनुष्य अपने आहार-विहार में प्राकृतिक पदार्थ का अधिकाधिक उपयोग करे, इसी के लिए शहद पंचामृत में मिलाया जाता है।

पंचामृत में मधु (शहद) तथा शर्करा (खाँड़) दोनों को मिलाने

का विधान है। प्राचीन समय में शहद का ही विशेष रूप से प्रयोग होता था; पर वर्तमान परिस्थितियों में शुद्ध मधु मिलना कठिन हो गया है, इसलिए थोड़ा शहद और अधिक शर्करा भी मिलाकर काम चलाया जाता है।

ॐ मधु वाता ऽऋतायते, मधुक्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। ॐ मधु नक्तमुतोषसो, मधुमत्पार्थिव छं रजः। मधुद्यौरस्तु नः पिता। ॐ मधुमान्नो वनस्पतिः, मधुमाँ२ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ १३.२७-२९

तुलसी दल मिलाने का मन्त्र

तुलसी शरीर और मन को नीरोग करने वाली अद्‌भुत ओषधि है। उसमें दिव्य तत्त्वों की प्रधानता है। उसे पृथ्वी का अमृत माना गया है। पाँच अमृतों में तुलसी भी एक है, इसलिए इसे पंचामृत में सम्मिलित करते हैं।

ॐ या ओषधीः पूर्वा जाता, देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।
मनै नु बभ्रूणामह छं , शतं धामानि सप्त च॥ १२.७५

पञ्चामृत पान का मन्त्र

पंचामृत में अधिकांश वस्तुएँ गो-द्रव्य होती हैं, इसलिए इसे माता के पयः पान तथा भगवान् के प्रसाद के रूप में श्रद्धा, निष्ठा एवं प्रसन्नता के साथ ग्रहण करना चाहिए। इस भूलोक के प्राणियों को अमरत्व प्रदान करने वाला यही पंचामृत होता है। निम्न मन्त्र को बोलते हुए पंचामृत पान करें।

ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां, स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय, मा गामनागामदितिं वधिष्ट॥

- ऋ० ८.१०१.१५

* * *

॥ दशविध स्नान ॥

सूत्र संकेत- दस स्नान का प्रयोग देव प्रतिमाओं की स्थापना के समय, श्रावणी उपाकर्म, वानप्रस्थ संस्कार तथा प्रायश्चित्त विधानों में किया जाता है, उनमें यह प्रकरण ले लेना चाहिए।

क्रम व्यवस्था- यज्ञ या संस्कार स्थल से कुछ हटकर दस स्नान की व्यवस्था करनी चाहिए। इन स्नानों में (१) भस्म (२) मिट्टी (३) गोबर (४) गोमूत्र (५) गो-दुग्ध (६) गो-दधि (७) गो-घृत (८) सर्वौषधि (हल्दी) (९) कुश (१०) मधु- ये दस वस्तुएँ होती हैं। क्रमशः एक-एक वस्तु से स्नान करते समय बायीं हथेली पर भस्म आदि पदार्थ रखें, उसमें थोड़ा पानी डालें। दोनों हथेलियों से उसे मिलाएँ। मिलाते समय निर्धारित मन्त्र बोलें, फिर बायें हाथ से कमर से नीचे के अंगों पर और दायें हाथ से कमर से ऊपर के अंगों पर उसका लेपन करें। इसके बाद स्वच्छ जल से स्नान कर डालें। इसी प्रकार अन्य दस वस्तुओं से स्नान करें। इसके पश्चात् अन्तिम बार शुद्ध जल से स्नान कर शरीर को भली प्रकार पोंछ कर पीले वस्त्र धारण करें। ये दस स्नान अब तक के किये हुए पापों का प्रायश्चित्त करने तथा अभिनव जीवन में प्रवेश करने के लिए हैं। जैसे साँप केंचुली छोड़कर नई त्वचा प्राप्त करता है, वैसे इसमें पिछले ढर्रे को समाप्त करके उत्कृष्ट जीवन जीने का व्रत लेते हैं।

भावना और प्रेरणा- (१) भस्म से स्नान की भावना यह है कि शरीर भस्मान्त है। कभी भी मृत्यु आ सकती है, इसलिए सम्भावित मृत्यु को स्मरण रखते हुए, भावी मरणोत्तर जीवन की सुख-शान्ति के लिए तैयारी आरम्भ की जा रही है। (२) मिट्टी से स्नान का मतलब है कि जिस मातृभूमि का असीम ऋण अपने ऊपर है, उससे उऋण होने के लिए देशभक्ति का, मातृभूमि की सेवा का व्रत ग्रहण किया जा रहा है। (३) गोबर से तात्पर्य है- गोबर की तरह शरीर को खाद बनाकर संसार को फलने-फूलने के लिए उत्सर्ग करना। (४) गोमूत्र क्षार प्रधान रहने से मलिनता नाशक माना गया है। रोग कीटाणुओं को नष्ट करता है। इस स्नान में शारीरिक और मानसिक दोष-दुर्गुणों को हटाकर भीतरी और बाहरी स्वच्छता की नीति हृदयंगम करनी चाहिए। (५) दुग्ध स्नान से जीवन को दूध-सा धवल, स्वच्छ, निर्मल, सफेद, उज्ज्वल बनाने की प्रेरणा है। (६) दधि स्नान का अर्थ है- नियन्त्रित होना, दूध पतला

होने से इधर-उधर ढुलकता है, पर दही गाढ़ा होकर स्थिर बन जाता है । भाव करें - अब अपनी रीति-नीति दही के समान स्थिर रहे । (७) घृत स्नान की भावना है, चिकनाई । जीवन क्रम को चिकना-सरल बनाना, जीवन में प्यार की प्रचुरता भरे रहना ।(८) सर्वौषधि (हरिद्रा) स्नान का अर्थ है- अवांछनीय तत्त्वों से संघर्ष । हल्दी रोग-कीटाणुओं का नाश करती है, शरीर-मन में जो दोष-दुर्गुण हों, समाज में जो विकृतियाँ दीखें, उनसे संघर्ष करने को तत्पर होना । (९) कुशाओं के स्पर्श का अर्थ है- तीक्ष्णतायुक्त रहना । अनीति के प्रति नुकीले, तीखे बने रहना । (१०) मधु स्नान का अर्थ है- समग्र मिठास । सज्जनता, मधुर भाषण आदि सबको प्रिय लगने वाले गुणों का अभ्यास । दस स्नानों का कृत्य सम्पन्न करने से दिव्य प्रभाव पड़ता है । उनके साथ समाविष्ट प्रेरणा से आन्तरिक उत्कर्ष में सहायता मिलती है ।

१. भस्म-स्नानम्

ॐ प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने ।
स ᳪ सृज्य मातृभिष्ट्वं, ज्योतिष्मान्पुनराऽसदः ।। १२.३८

२. मृत्तिका स्नानम्

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे, त्रेधा निदधे पदम् ।
समूढमस्य पा ᳪ सुरे स्वाहा ।। ५.१५

३. गोमय-स्नानम्

ॐ मा नस्तोके तनये मा नऽआयुषि, मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः । मा नो वीरान् रुद्र भामिनो, वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे । १६.१६

४. गोमूत्र-स्नानम्

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ।। ३.३५

५. दुग्ध-स्नानम्

ॐ आप्यायस्व समेतु ते, विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य संगथे । -१२.११२

६. दधि-स्नानम्

ॐ दधिक्राव्णोऽअकारिषं, जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।
सुरभि नो मुखा करत्प्र णऽ, आयू ꣳ षि तारिषत्॥ - २३.३२

७. घृत-स्नानम्

ॐ घृतं घृतपावानः, पिबत वसां वसापावानः। पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा। दिशः प्रदिशऽ आदिशो विदिशऽ, उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा॥ ६.१९

८. सर्वौषधि-स्नानम्

ॐ ओषधयः समवदन्त, सोमेन सह राज्ञा।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्त ꣳ, राजन् पारयामसि॥ - १२.९६

९. कुशोदक-स्नानम्

ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोः, बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रिये दधामि, बृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ॥ ९.३०

१०. मधु-स्नानम्

ॐ मधु वाता ऽऋतायते, मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। ॐ मधु नक्तमुतोषसो, मधुमत्पार्थिव ꣳ रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता। ॐ मधुमान्नो वनस्पतिः, मधुमाँ२ऽअस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥ - १३.२७-२८-२९

शुद्धोदक-स्नानम्

अन्त में समग्र शुद्धता के लिए शुद्ध जल से सिंचन-स्नान किया जाए—

ॐ शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो, मणिवालस्तऽआश्विनाः, श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते, रुद्राय पशुपतये कर्णा यामाऽ, अवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः॥ - २४.३

* * *

॥ जलयात्राविधान ॥

सूत्र संकेत- जल यात्रा युग निर्माण योजना के यज्ञाभियान की एक बहुत प्रभावशाली और उपयोगी प्रक्रिया रही है। यदि जल यात्रा की व्यवस्था ठीक ढंग से की जाए तो उससे अनेक प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष लाभ होते हैं। जैसे-

*जनता को होने वाले आयोजन की भव्यता और विशालता आदि विशेषताओं की झलक मिलना।

*जन स्तर पर खुला निमन्त्रण तथा आयोजन में सम्मिलित होने के उत्साह का संचार।

*भावनासिक्त मातृ-शक्तियों द्वारा देवपूजन सहित मंगल कलश स्थापित करके आयोजन का सुसंस्कार भरा उद्घाटन।

*नारी शक्ति के जागरण, विकास और उपयोगिता की दिशा में महत्त्वपूर्ण चरण।

*धर्मघट घर-घर स्थापित कराये जाने की सरस सशक्त पृष्ठभूमि का निर्माण।

इन सब लाभों को ध्यान में रखते हुए जलयात्रा यज्ञों के अतिरिक्त नवरात्रि साधना, प्रज्ञापुराण कथा आयोजनों जैसे अन्य कार्यक्रमों के साथ भी जोड़ी जा सकती है; किन्तु समय, परिस्थिति एवं सामर्थ्य देखकर ही उसके बारे में निर्णय करना चाहिए। मात्र चिह्न-पूजा और फीके प्रदर्शन से बचना ही ठीक है। व्यवस्था और भव्यता न बन सके, तो कलश स्थापना को सामान्य रीति से यज्ञशाला या आयोजन स्थल पर ही कर लेना ठीक है।

जलयात्रा हेतु आवश्यक निर्देश-

* पर्याप्त मात्रा में मिट्टी के कलश एवं ईडली सुन्दर ढंग से रँगकर समय पर तैयार हों।

* उत्साही महिलाएँ घर-घर जाकर जलयात्रा में सम्मिलित होने के लिए बहिनों में उत्साह पैदा करें। यज्ञ का महत्त्व, उसका उद्घाटन करने का श्रेय बताना, प्राप्त होने वाले पुण्य एवं सौभाग्य का बोध कराना आदि ऐसे

ढंग हैं, जिससे इच्छित संख्या में नारियों का भावभरा सहयोग प्राप्त किया जा सकता है ।

* जुलूस को भव्य बनाने के लिए बैंड, कीर्तन- मण्डलियों, बैनर, पोस्टर झाँकियों आदि की व्यवस्था स्थिति एवं सामर्थ्य के अनुसार की जाए ।

* शिक्षित, सधे हुए स्वयंसेवकों को जुलूस व्यवस्था के लिए तैयार किया जाए , ताकि महिलाओं की सुरक्षा तथा जुलूस का अनुशासन बनाने में कठिनाई न हो ।

* जलयात्रा का मार्ग नगर के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों से होकर हो ; किन्तु इतना लम्बा न हो कि शामिल होने वाली महिलाएँ उस मार्ग को पूरा करने का श्रम सहन न कर सकें ।

* जलयात्रा जहाँ समाप्त हो, वहीं घट लाने वाली महिलाओं को प्रसाद देकर सम्मानित करने की व्यवस्था करनी चाहिए ।

क्रम व्यवस्था- जलयात्रा का मुख्य कर्मकाण्ड जलाशय पर किया जाता है । कर्मकाण्ड का क्रम नीचे दिया जा रहा है, उसमें मन्त्र सामान्य प्रकरण से देख लेने चाहिए । क्रम इस प्रकार है-

(१) पवित्रीकरण- **अपवित्रः.........** मन्त्र से स्थिति के अनुसार महिलाएँ स्वयं अपने ऊपर जल छिड़क लें अथवा स्वयंसेवक कुश या पल्लवों से सिंचन करें ।(२) पृथ्वी पूजन- **पृथ्वि त्वया...** मन्त्र बोलकर हाथ से भूमि स्पर्श के साथ नमस्कार कराएँ । (३) सर्वदेव नमस्कार (४) स्वस्तिवाचन (५) कलावा एवं तिलक (६) वरुणदेवता का आवाहन **वरुणस्योत्तम्भनमसि....** मन्त्र से कराया जाए , अक्षत- पुष्प से पूजन कराकर नमस्कार कराएँ । (७) वही मन्त्र दुहराते हुए कलशों में जल भरा जाए । (८) कलश वन्दना- **कलशस्य मुखे विष्णुः ...** मन्त्र से की जाए । उसी के साथ सभी महिलाएँ अपने-अपने कलश के कण्ठ में कलावा बाँधें और नमस्कार करें ।(९) कलशों को सिर पर रखकर जुलूस का स्वरूप बनाकर चल पड़ें । (१०) आयोजन स्थल पर पहुँचकर केवल कलशधारी महिलाओं को "**भद्रं कर्णेभिः** ......" मन्त्र से अक्षत वर्षा के साथ अन्दर प्रवेश कराएँ, गायत्री मन्त्र बोलते हुए यथास्थान रखवाएँ । (११) तत्पश्चात् आरती एवं महिलाओं का शान्ति अभिषेक **द्यौः शान्ति.....** से करके मंगल मन्त्र बोलते हुए प्रसाद दिया जाए । *

॥ स्फुट प्रकरण ॥

कर्मकाण्ड में रक्षासूत्र-बन्धन, तिलक, आशीर्वाद आदि ऐसे क्रम हैं, जो कर्मकाण्ड में बराबर आते रहते हैं। सामूहिक क्रम में यह कृत्य लम्बे समय तक भी चलते हैं। उस समय मन्त्रोच्चार और प्रेरणा- व्याख्या का मिला-जुला प्रवाह चलता रहे, तो वातावरण में सौम्यता तथा प्रभाव की वृद्धि होती है। इसी दृष्टि से स्फुट प्रकरण में कुछ क्रम और उनके मन्त्र दिए जा रहे हैं। इन्हें समय-समय पर प्रयुक्त करते रहा जा सकता है।

॥ रक्षासूत्रबन्धन ॥

(१) ॐ यदाबध्नन्दाक्षायणा, हिरण्य ঙ্ঁ शतानीकाय, सुमनस्य मानाः। तन्मऽआबध्नामि शत शारदाय, आयुष्मांजरदष्टिर्यथासम्। ३४.५२

(२) ॐ येन बद्धो बलीराजा, दानवेन्द्रो महाबलः।
तेन त्वां प्रति बध्नामि, रक्षे मा चल मा चल॥

(३) ॐ व्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धया सत्यमाप्यते॥ १९.३०

॥ तिलक मंत्र ॥

(१) ॐ अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाऽ अधूषत।अस्तोषत स्वभानवो विप्रा, नविष्ठया मती योजान्विन्द्र ते हरी॥ ३.५१

(२) ॐ युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं, चरन्तं परि तस्थुषः।रोचन्ते रोचना दिवि॥ युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी, विपक्षसा रथे।शोणा धृष्णू नृवाहसा॥ - २३.५-६

(३) ॐ स्वस्ति नऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः, स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः, स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु। - २५.१९

(४) ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां, नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां, तामिहोपह्वये श्रियम्॥ - श्री० सू० ९

(५) ॐ दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे, सुप्रजास्त्वाय
सहसा अथोजीव शरदः शतम्॥

॥ कुशपवित्रधारण ॥

सूत्र संकेत- यह कर्म संकल्प, दान, व्रतधारण, तर्पण आदि से पूर्व कराया जाता है। इसके लिए लम्बा कुश लेकर, उसे बटकर दुहरा कर लेते हैं। उस दुहरे बटे हुए कुश खण्ड के दोनों छोर मिलाकर किनारे पर गाँठ लगा देते हैं- इस प्रकार पवित्री तैयार हो जाती है। इसे अँगूठी की तरह अनामिका अँगुली में मन्त्र के साथ पहना दिया जाता है, भावना की जाती है कि पवित्र कार्य करने के पूर्व हाथों में पवित्रता का संचार किया जा रहा है।

ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः, प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण, पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य, यत्कामः पुने तच्छकेयम्॥ -१.१२,४.४

॥ आशीर्वचन ॥

ॐ विवेकसंयुतां प्रज्ञां, दूरदृष्टिन्तथैव च।
चारित्र्यं सर्वदाऽऽदर्शं, वेदमाता प्रयच्छतु॥१॥
ब्रह्मवर्चसमास्तिक्यं, सात्मनिर्भरतां मुदा।
सज्जनताऽऽत्मविश्वासं, देवमाता ददातु ते॥२॥
सद्भविष्योज्ज्वलाकांक्षा, प्रभुविश्वासमेव च।
उच्चादर्शान्प्रति श्रद्धां, तुभ्यं यच्छतु वैष्णवी॥३॥
श्रेष्ठकर्त्तव्यनिष्ठान्ते, प्रतिभां हृष्टमानसम्।
उदारात्मीयतां तुभ्यं, विश्वमाता प्रयच्छतु॥४॥
शालीनतां च सौन्दर्यं, स्नेहसौजन्यमिश्रितम्।
ध्रुवं धैर्यं च सन्तोषं, देयात्तुभ्यं सरस्वती॥५॥

स्वास्थ्यं मन्युमनालस्यं, सोत्साहं च पराक्रमम्।
साहसं शौर्यसम्पन्नं, महाकाली प्रवर्धताम्॥६॥
वैभवं ममतां नूनं, मैत्रीविस्तारमेव च।
शुचितां समतां तुभ्यं, महालक्ष्मी प्रयच्छतु॥७॥
स्वस्त्यस्तु ते कुशलमस्तु चिरायुरस्तु,
उत्साह-शौर्य-धन-धान्य-समृद्धिरस्तु।
ऐश्वर्यमस्तु बलमस्तु रिपुक्षयोऽस्तु,
वंशे सदैव भवतां हरिभक्तिरस्तु॥८॥

* * *

॥ भूमि पूजन प्रकरण ॥

सूत्र संकेत- भूमि में बीज ही नहीं संस्कार भी उपजते हैं। मरघटों के वीभत्स-चीत्कार भरे डरावने और आश्रमों के शान्त, सुरभित, मनोरम वातावरण को हर कोई स्पष्ट अनुभव कर सकता है। इस अन्तर का कारण इन स्थानों में प्रसन्नता का प्रस्फुटन है, यह इस तथ्य का प्रतीक है कि भूमि में अच्छे-बुरे संस्कार ग्रहण करने, आत्मसात् करने की विलक्षण शक्ति होती है। इसी कारण भारतीय संस्कृति में प्रत्येक कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व भूमि पूजन आवश्यक माना गया है। गायत्री शक्तिपीठें प्रज्ञा आलोक की प्रेरणा केन्द्र बनने जा रही हैं। अत: इन देवालयों में प्रारम्भ से ही वह संस्कार पैदा किये जाने चाहिए। इसके लिए भूमि पूजन समारोह अनिवार्य बना दिये गये हैं। पौरोहित्य की परम्परा की दृष्टि से भी भूमि पूजन कृत्य अपने उत्तरदायी सभी परिजनों को अवश्य जानना चाहिए। भवन बनाने के पूर्व, नये स्थान पर बड़े यज्ञादि करने के पूर्व तथा गृह प्रवेश क्रम में भी इस प्रक्रिया का उपयोग किया जा सकता है।

क्रम व्यवस्था- भूमि पूजन जहाँ करना हो, उस स्थान पर सामर्थ्य के अनुसार सुरुचि एवं स्वच्छता का वातावरण बनाना चाहिए। कर्मकाण्ड के लिए ऐसा स्थान चुनना चाहिए, जहाँ पर होने वाले पूजन-उपचार को उपस्थित

समुदाय भली प्रकार देख-सुन सके। भूमि पूजन का विशेष कर्मकाण्ड भर यहाँ दिया जा रहा है। उसके आगे-पीछे सामान्य कर्मकाण्डों की विवेकपूर्ण शृंखला जोड़ लेनी चाहिए। यदि समय हो और व्यवस्था ठीक प्रकार बनाई-सँभाली जा सके, तो यह कार्य यज्ञ सहित सम्पन्न किया जा सकता है। पहले **षट्कर्म** से लेकर **रक्षाविधान** तक का कृत्य पूरा कर लिया जाए। उसके बाद भूमि पूजन का विशेष क्रम चलाया जाए। उसके पूर्ण होने पर अग्नि स्थापना से लेकर अन्त तक के शेष कर्मकाण्ड पूरे किये जाएँ।

यदि समय और व्यवस्था की दृष्टि से यह अधिक कठिन लगे , तो **षट्कर्म** के बाद **संकल्प, सर्वदेव नमस्कार, स्वस्तिवाचन** कराकर भूमि पूजन कर्म कराया जाए। उसके बाद गायत्री मन्त्र बोलते हुए पाँच घी के दीपक जलाए जाएँ। अन्त में **क्षमा प्रार्थना, नमस्कार, शुभकामना, अभिषिंचन, विसर्जन** एवं **जयघोष** कराकर कार्यक्रम समाप्त किया जा सकता है। क्रम इस प्रकार है:-

(१) षट्कर्म- उपयुक्त प्रतिनिधियों को पूजा स्थान पर बिठाकर पहले षट्कर्म अर्थात् (१) पवित्रीकरण (२) आचमन (३) शिखावन्दन (४) प्राणायाम (५) न्यास (६) पृथ्वी पूजन कराये जाएँ। यदि बिठाकर षट्कर्म कराने की स्थिति न हो, तो खड़े-खड़े ही केवल पवित्रीकरण मन्त्र से सामूहिक सिंचन कराकर आगे बढ़ा जा सकता है।

(२) संकल्प- प्रतिनिधियों के हाथ में अक्षत, पुष्प, जल आदि देकर भूमि पूजन का संकल्प बोला जाए। मन्त्र बोलने के बाद पुष्प-अक्षत उसी भूमि पर चढ़ा दिये जाएँ , जिसका पूजन किया जा रहा हो।

...नामाहं पृथिवीमातुः ऋणं अपाकर्त्तुं तां प्रतिस्वकर्त्तव्यं स्मर्त्तुं अस्याः निकृष्टसंस्कार-निस्सारणार्थं श्रेष्ठसंस्कार- स्थापनार्थञ्च देवपूजनपूर्वकं सपरिजनाः श्रद्धापूर्वकं भूमिपूजनं वयं करिष्यामहे।

(३) सामान्य पूजा-उपचार- संकल्प के बाद व्यवस्थानुसार देव पूजन-स्वस्तिवाचन आदि कार्य कराए जाएँ।

(४) भूमि अभिषिंचन- शुभ कार्य के लिए जिस भूमि का प्रयोग

किया जाना है, उसमें पवित्रता के संचार के लिए यह प्रक्रिया है । एक प्रतिनिधि पात्र में पवित्र जल लेकर कुशाओं, आम्र -पल्लवों या पुष्पों से भूमि के चारों ओर छींटे लगाएँ । नीचे लिखे पाँचों मन्त्रों के साथ देवशक्तियों से उस क्षेत्र सहित सभी परिजनों के लिए पवित्रता की याचना की जाए ।

ॐ पुनन्तु मा देवजनाः, पुनन्तु मनसा धियः ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि, जातवेदः पुनीहि मा ॥ १९.३९

ॐ पुनाति ते परिस्रुत ॐ, सोम ॐ सूर्यस्य दुहिता ।
वारेण शश्वता तना ॥ १९.४

ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः, प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य, यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥ १.१२४-४

ॐ पवित्रेण पुनीहि मा, शुक्रेण देव दीद्यत् ।
अग्ने कृत्वा क्रतूँ१ रनु ॥ -१९.४०

ॐ पवमानः सो अद्य नः, पवित्रेण विचर्षणिः ।
यः पोता स पुनातु मा ॥ १९.४२

(५) **प्राण - प्रतिष्ठा एवं पूजन-** प्राणवान्-तेजस्वितायुक्त व्यक्तित्व ही अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील हो सकता है और उसे हस्तगत कर सकता है । स्थान विशेष को भी प्राण-सम्पन्न बनाने के उद्देश्य से भूमि-प्राण-प्रतिष्ठा एवं पूजन का क्रम बनाया गया है । दाहिने हाथ में अक्षत-पुष्प लेकर पृथ्वी पर प्राण तत्त्व संचारणार्थ निम्न मन्त्र बोलकर छोड़े जाएँ ।

ॐ मही द्यौः पृथिवी च न ऽ, इमं यज्ञं मिमिक्षताम् ।
पिपृतां नो भरीमभिः ॥ ८.३२

तत्पश्चात् गन्धाक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्यादि से पृथ्वी पूजन करें ।

ॐ गन्धाक्षतं, पुष्पाणि, धूपं, दीपं, नैवेद्यं समर्पयामि ।
ॐ श्री पृथिव्यै नमः ।

पूजन के पश्चात् दोनों हाथ जोड़कर नीचे लिखे मन्त्र बोलकर धरती माता को नमस्कार करें—

ॐ शेषमूर्ध्निस्थितां रम्यां, नानासुखविधायिनीम्।
विश्वधात्रीं महाभागां, विश्वस्य जननीं पराम्॥
यज्ञभागं प्रतीक्षस्व, सुखार्थं प्रणमाम्यहम्।
तवोपरि करिष्यामि, मंडपं सुमनोहरम्॥
क्षन्तव्यं च त्वया देवि, सानुकूला मखे भव।
निर्विघ्नं मम कर्मेदं, यथा स्यात्त्वं तथा कुरु॥ - गा० पु० प०

(६) **मांगलिक द्रव्य स्थापना-** पूजन के उपरान्त भूमि में मांगलिक द्रव्य स्थापित किये जाते हैं। यह धरती माँ के प्रति अपनी सद्भावना की अभिव्यक्ति भी है और होने वाले कार्य का शुभारम्भ भी। हम धरती माँ के आँचल में मांगलिक पदार्थ रखकर अपनी सद्भावना का परिचय देते हैं। इस कर्म के दो भाग हैं- (१) खनित्र (खोदने वाले उपकरणों) का पूजन एवं उत्खनन। (२) द्रव्य स्थापना।

सत्कार्य के लिए जो माध्यम बनते हैं, वे सम्माननीय हैं, उन्हें भी सुसंस्कारित करना चाहिए। इन भावों के साथ खनित्र पूजन करें। प्रतिनिधि दाहिने हाथ में रोली, अक्षत, पुष्प एवं जल लें, मन्त्र बोलते हुए उन्हें खनित्र पर चढ़ाएँ, साथ ही निर्धारित स्थान पर उससे छोटा-सा गड्ढा खोद लें।

ॐ शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता, नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसीः। निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय, प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय॥ ३.६३

इसके बाद पाँच द्रव्य-हल्दी, दूर्वा, सुपारी, कलावा एवं अक्षत लिये जाते हैं। हल्दी शुभ, सौभाग्य एवं आरोग्यदात्री मानी जाती है। दूर्वा (दूब) विकास एवं अजरता की प्रतीक है, सुपारी स्थिर सुपरिणाम वाले फल का प्रतीक है। कलावा व्रत-संयम के बन्धन का प्रतीक एवं अक्षत श्री, समृद्धि और पूर्णता का प्रतीक माना जाता है। भूमि में इन सभी विशेषताओं की स्थापना के भाव सहित मन्त्र के साथ इन द्रव्यों को भूमि में स्थापित करें।

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे, भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां, कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ २३.१

अंत में आवश्यक उद्बोधन, पूर्णाहुति, आरती आदि सम्पन्न करें।

।। गृह प्रवेश-वास्तु शान्ति प्रयोग ।।

नये-पुराने निर्मित मकान, दुकान आदि में निवास प्रारम्भ करने के पूर्व या रहने के समय गृह प्रवेश या वास्तु शान्ति का प्रयोग सम्पन्न करना प्रायः अनिवार्य सा माना जाता है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए इस कर्मकाण्ड की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की जा रही है-

सर्वप्रथम षट्कर्म, तिलक, रक्षासूत्र, कलशपूजन, दीपपूजन, देवावाहन-पूजन, सर्वदेव नमस्कार, स्वस्तिवाचन, रक्षाविधान तक की प्रक्रिया पूरी करके पूजावेदी पर वास्तु पुरुष का आवाहन-पूजन सम्पन्न करें।

।।वास्तुपुरुषपूजन ।।

प्रत्येक वस्तु- पदार्थ में एक देवशक्ति सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहती है, जिसे उस वस्तु-पदार्थ का अधिष्ठाता देवता कहा जाता है। इस प्रकार मकान-दुकान आदि के अधिष्ठाता देवता की अनुकूलता प्राप्त करने एवं उस स्थान की प्रतिकूलता दूर करने के लिए वास्तुपुरुष (अधिष्ठाता देवता) का अक्षत-पुष्प से आवाहन-स्थापन करें-

ॐ वास्तोष्पते प्रतिजानीहि अस्मान्, स्वावेशो अनमीवो भवा नः। यत्त्वेमहे प्रतितन्नो जुषस्व, शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ।।

- ऋ० ७.५४.१

ॐ भूर्भुवः स्वः वास्तुपुरुषाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि। गन्धाक्षतं पुष्पाणि, धूपं, दीपं, नैवेद्यं समर्पयामि। ततो नमस्कारं करोमि-

ॐ विशन्तु भूतले नागाः, लोकपालाश्च सर्वतः।
मण्डलेऽत्रावतिष्ठन्तु, ह्यायुर्बलकराः सदा ।।
वास्तुपुरुष देवेश! सर्वविघ्न- विदारण।
शान्तिं कुरु सुखं देहि, यज्ञेऽस्मिन्मम सर्वदा ।।

तत्पश्चात् अग्निस्थापन, प्रदीपन आदि करते हुए २४ बार गायत्री मन्त्र की आहुति समर्पित करें। इसके बाद खीर, मिष्टान्न या केवल घृत से ५ बार विशेष आहुति समर्पित करें।

॥विशेषाहुतिः॥

१. ॐ वास्तोष्पते प्रतिजानीहि अस्मान्, स्वावेशो अनमीवो भवा नः। यत्त्वे महे प्रतितन्नो जुषस्व, शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा। इदं वास्तोष्पतये इदं न मम॥ - ऋ० ७.५४.१

२. ॐ वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि, गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो। अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव, पुत्रान् प्रतिनो जुषस्व स्वाहा। इदं वास्तोष्पतये इदं न मम॥ - ऋ० ७.५४.२

३. ॐ वास्तोष्पते शग्मया संसदा, ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या। पाहि क्षेम उत योगे वरं नो, यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः स्वाहा। इदं वास्तोष्पतये इदं न मम॥ - ऋ० ७.५४.३

४. ॐ अमीवहा वास्तोष्पते, विश्वा रूपाण्याविशन्। सखा सुशेव एधि नः स्वाहा॥ इदं वास्तोष्पतये इदं न मम॥ - ऋ० ७.५५.१

५. ॐ वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणां, सत्रं सोम्यानाम्। द्रप्सो भेत्ता पुरां शश्वतीनाम्, इन्द्रो मुनीनां सखा स्वाहा। इदं वास्तोष्पतये इदं न मम॥ - ऋ० ८.१७.१४

तत्पश्चात् पूर्णाहुति, वसोर्धारा, आरती आदि का क्रम सम्पन्न करते हुए कार्यक्रम पूर्ण किया जाए।

* * *

।। प्राण-प्रतिष्ठा प्रकरण ।।

सूत्र संकेत- देवालयों में प्रतिमा का पूजन प्रारम्भ करने से पूर्व उनमें प्राण- प्रतिष्ठा की जाती है । उसके पीछे मात्र परम्परा नहीं, परिपूर्ण तत्त्वदर्शन सन्निहित है । इस परम्परा के साथ हमारी सांस्कृतिक मान्यता जुड़ी है कि पूजा मूर्ति की नहीं की जाती- दिव्य सत्ता की, महत् चेतना की, की जाती है । स्थूल दृष्टि से मूर्ति को माध्यम बनाकर भी प्रमुखता उस दिव्य चेतना को ही दी जानी चाहिए । अस्तु, प्राण-प्रतिष्ठा प्रक्रिया-क्रम में जिस प्रतिमा को हम अपनी आराधना का माध्यम बना रहे हैं, उसे संस्कारित करके उसमें दिव्य-सत्ता के अंश की स्थापना का उपक्रम किया जाता है ।

यह भी एक विज्ञान है । पृथ्वी में हर जगह पानी है, बोरिंग करके पम्प द्वारा उसे एकत्रित किया जा सकता है । वायु को कम्प्रेसर पम्प द्वारा किसी पात्र में घनीभूत किया जा सकता है । लैंसों के माध्यम से सर्वत्र फैले प्रकाश को सघन करके स्थान विशेष पर एकत्रित किया जाना सम्भव है । पानी, वायु और प्रकाश की तरह परमात्म तत्त्व भी सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, उसे घनीभूत करके किसी माध्यम विशेष में स्थापित करना भी एक विशिष्ट प्रक्रिया है । उसके लिए श्रद्धासिक्त कर्मकाण्ड की व्यवस्था तत्त्वदर्शियों ने बनाई है । मन्दिर एवं प्रतिमा को उस महत् सत्ता के अवतरण के उपयुक्त बनाकर उसमें उसकी स्थापना करने के लिए प्राण-प्रतिष्ठा प्रयोग किया जाता है ।

क्रम व्यवस्था- प्राण-प्रतिष्ठा के लिए यज्ञीय वातावरण बनाना आवश्यक है । अस्तु, प्राण-प्रतिष्ठा के क्रम में सामूहिक गायत्री यज्ञ का एक या अधिक दिन का आयोजन रखा जाना चाहिए । उसमें जल यात्रा से लेकर अन्यान्य कर्मकाण्ड सुविधा-व्यवस्था एवं समय का सन्तुलन बिठाते हुए किये जाने चाहिए । यज्ञीय वातावरण में प्राण-प्रतिष्ठा का कर्मकाण्ड किया जाए ।

मूर्ति स्थापना- स्थल पर पहले से रखी रहे । उसके आगे पर्दा लगा रहे । दस-स्नान एवं पूजन की सामग्री पर्दे के अन्दर पहले से तैयार रखी जाए । जितनी मूर्तियों में प्राण-प्रतिष्ठा करनी है, उतने स्वयं सेवकों-व्यक्तियों को पहले से उस कार्य के लिए नियुक्त कर लिया जाना चाहिए । वे व्यक्ति ही पर्दे के अन्दर जाकर संचालक के निर्देशानुसार प्राण-प्रतिष्ठा का कार्य

करें। अच्छा हो कि यह कृत्य समझदार कुमारी कन्याओं से कराया जाए। उसके लिए उन्हें पहले से सारा क्रम समझा दिया जाना चाहिए। नीचे लिखे क्रम से कर्मकाण्ड कराया जाए।

(१) **षट्कर्म-** जिन्हें प्राण- प्रतिष्ठा करनी है, उन्हें प्रतिमाओं के पर्दे के बाहर आसन पर बिठाकर पहले षट्कर्म करा दिया जाए।

(२) **शुद्धि सिंचन-** यज्ञ के कलशों का जल अनेक पात्रों में निकाल कर रखा जाए। मन्त्र पाठ के साथ उस जल का सिंचन, उपस्थित व्यक्तियों, पूजन सामग्री, मन्दिर एवं मूर्तियों पर किया जाए।

ॐ आपोहिष्ठा मयोभुवः, ता न ऽ ऊर्जे दधातन।महेरणाय चक्षसे॥ॐ यो वः शिवतमो रसः, तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः॥ॐ तस्माऽअरंगमाम वो, यस्य क्षयाय जिन्वथ।आपो जनयथा च नः॥ -११.५०-५२;३६.१४-१६

(३) **दशविध-स्नान-** प्रारम्भ में मूर्तियों को दस- स्नान कराये जाते हैं। मूर्ति जिस पत्थर या धातु की बनी है, उसे न जाने कैसे-कैसे संस्कार के स्थान एवं व्यक्तियों के सम्पर्क में रहना पड़ा होगा। उसमें सन्निहित अवाञ्छनीय कुसंस्कारों के निवारण तथा वांछित संस्कारों की स्थापना के लिए यह क्रम चलाया जाता है। इसके बाद ही प्रतिमा दैवी सत्ता की प्रतीक बनने योग्य होती है।प्रथम चार स्नान भस्म, मिट्टी, गोबर एवं गोमूत्र से होते हैं। यह अवांछनीय संस्कारों के निवारण के लिए है। कर्मकाण्ड करने वाले व्यक्ति स्नान के पदार्थ को हथेलियों में लगाकर उसे मंत्र के साथ मूर्ति पर मलें। चारों पदार्थों का प्रयोग हो जाने पर गीले वस्त्र (तौलिये) से उसे भलीप्रकार पोंछ दिया जाए। उसके बाद शेष छः पदार्थों दूध, दही, घी, सर्वौषधि, कुशोदक एवं शहद का प्रयोग इसी प्रकार किया जाए। अन्त में शुद्ध जल से स्नान करा देना चाहिए, यह जल एकत्रित करके चरणामृत के रूप में वितरित किया जा सकता है। इसके लिए शुद्ध मुलायम कपड़े से प्रयुक्त जल को सोखकर किसी पात्र में निचोड़ते रहना चाहिए, इससे जल फैलकर मन्दिर में गन्दगी एवं फिसलन का कारण भी नहीं बनेगा और चरणामृत भी सुविधापूर्वक एकत्रित हो जाएगा। इस कार्य के लिए एक

अतिरिक्त स्वयं सेवक रखा जाना चाहिए। मंत्रों एवं क्रिया की संगति बिठाते हुए भावनापूर्वक दस- स्नान का क्रम चलाया जाए।

(४) **प्राण आवाहन-** प्राण तत्त्व को दिव्य विद्युत् कह सकते हैं। कुशल इंजीनियर विद्युत् को विभिन्न स्वरूपों में प्रयुक्त करके विभिन्न कार्य कर लेते हैं। स्थूल विद्युत् के प्रवाह के नियम पदार्थ विज्ञान के अंग हैं। 'प्राण' चेतन विद्युत् है। अस्तु, उसके प्रवाह के नियमन पर चेतना विज्ञान के नियम लागू होते हैं। तीव्र भावना एवं प्रखर संकल्प द्वारा प्राण शक्ति को, स्थान-विशेष, वस्तु-विशेष की दिशा में प्रवाहित किया जा सकता है। आचार्य कर्मकाण्ड करने वाले व्यक्ति सहित सभी उपस्थित श्रद्धालु जन हाथ जोड़कर मन्त्र के साथ प्राण का आवाहन करें।

ॐ प्राणमाहुर्मातरिश्वानं, वातो ह प्राण उच्यते।
प्राणे ह भूतं भव्यं च, प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ - अथर्व० ११.४.१५

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं, षं सं हं लं क्षं हं सः। अस्याः गायत्रीदेवीप्रतिमायाः, प्राणाः इह प्राणाः॥ ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं, षं सं हं लं क्षं हं सः। अस्याः प्रतिमायाः जीव इह स्थितः। ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं, षं सं हं लं क्षं हं सः। अस्याः प्रतिमायाः सर्वेन्द्रियाणि, वाङ् मनस्त्वक् चक्षुः श्रोत्रजिह्वा, घ्राण-पाणिपादपायूपस्थानि, इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा॥

नोट- अन्य सभी देवताओं की प्रतिष्ठा हेतु (**अस्याः शिव, राम, दुर्गा प्रतिमायाः**) प्रतिमा शब्द के पूर्व उस देवता का नाम बोलकर प्रतिष्ठा करें।

(५) **प्राण - प्रतिष्ठा हेतु न्यास-** न्यास प्रक्रिया के द्वारा प्रतिमा के विभिन्न अंगों में विभिन्न देव शक्तियों को समाविष्ट करने का विधान है। सभी उपस्थित व्यक्ति मन्त्रों के साथ यही भावना करें। कर्मकाण्ड करने वाला व्यक्ति हर उक्ति के साथ अपने दाहिने हाथ से क्रमशः उन अंगों का स्पर्श करता चले, जिनका उल्लेख मन्त्रों में किया गया है।

ॐ ब्रह्मा मूर्ध्नि। शिखायां विष्णुः। रुद्रो ललाटे। भ्रुवोर्मध्ये परमात्मा। चक्षुषोः चन्द्रादित्यौ। कर्णयोः शुक्रबृहस्पती।

नासिकयोः वायुदैवतम्। दन्तपंक्तौ अश्विनौ। उभे सन्ध्ये ओष्ठयोः। मुखे अग्निः। जिह्वायां सरस्वती। ग्रीवायां तु बृहस्पतिः। स्तनयोः वसिष्ठः। बाह्वोः मरुतः। हृदये पर्जन्यः। आकाशम् उदरे। नाभौ अन्तरिक्षम् । कट्योः इन्द्राग्नी। विश्वेदेवा जान्वोः। जङ्घायां कौशिकः। पादयोः पृथिवी। वनस्पतयोऽगुलीषु। ऋषयो रोमसु। नखेषु मुहूर्ताः। अस्थिषु ग्रहाः।असृङ्.मांसयोः ऋतवः । संवत्सरो वै निमिषे।अहोरात्रं त्वादित्यश्चन्द्रमा देवता ॥

तत्पश्चात् हाथ जोड़कर मन्त्र बोलें-

ॐ प्रवरां दिव्यां गायत्रीं सहस्रनेत्रां शरणमहं प्रपद्ये। ॐ तत्सवितुर्वरेण्याय नमः। ॐ तत्पूर्वजयाय नमः। ॐ तत्प्रातरादित्याय नमः। ॐ तत्प्रातरादित्यप्रतिष्ठायै नमः। गा० पु० प०

नोट- अन्य सभी देवों की प्रतिष्ठा के समय उन-उन देवताओं की स्तुति, आरती, प्रार्थना आदि की जाए।

प्राण स्थिरीकरण- न्यास के बाद सभी व्यक्ति दोनों हथेलियाँ मूर्ति की ओर करके स्थापित प्राण को स्थिर करने की भावना के साथ मंत्र बोलें।

ॐ अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु, अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च।
अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन॥ -प्रति० म० पृ० ३५२

शोभा - श्रृंगार- प्राण-प्रतिष्ठा के बाद प्रतिमा को वस्त्र आभूषण पहनाये जाएँ। इस कार्य में दक्ष व्यक्तियों को इसके लिए नियुक्त किया जाना चाहिए। शोभा - श्रृंगार में अधिक समय न लगे- इसका ध्यान रहे, अन्यथा उपस्थित जन समुदाय ऊबने लगेगा। इस क्रिया के समय मधुर स्वर से गायत्री चालीसा पाठ या किसी वन्दना के गान का क्रम चलता रहे। श्रृंगार हो जाने पर षोडशोपचार पूजन किया जाए।

षोडशोपचार- जिस प्रतिमा में प्राण- प्रतिष्ठा की गई है, इष्ट भाव से उसका पूजन करके अपनी श्रद्धा की अभिव्यक्ति की जानी चाहिए। पूजन में पुरुष सूक्त के मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। इस सूक्त में परमात्मा के

विराट् रूप का वर्णन है । इस सूक्त से पूजन के साथ यह भाव तरंगित होता रहता है कि हम प्रतिमा के माध्यम से उसी विराट् सत्ता की अर्चना कर रहे हैं, जिसका वर्णन पुरुष सूक्त के मन्त्रों में है ।

आरती- षोडशोपचार पूजन समाप्त होने पर जितनी प्रतिमाओं की प्राण-प्रतिष्ठा की गई है, उन सभी के लिए पृथक्-पृथक् आरती सजाई जाए । आरती की तैयारी होते ही शंख, घण्टे आदि सधे हुए क्रम से बजाने प्रारम्भ कर दिये जाएँ । आरती प्रारम्भ होने के साथ ही मूर्ति के आगे लगा पर्दा हटा दिया जाए । आरती के साथ निम्न मन्त्र का सस्वर पाठ किया जाए ।

ॐ त्वं मातः सवितुर्वरेण्यमतुलं, भर्गः सुसेव्यः सदा,
यो बुद्धीर्नितरां प्रचोदयति नः, सत्कर्मसु प्राणदः ।
तद्रूपां विमलां द्विजातिभिरुपा, स्यां मातरं मानसे,
ध्यात्वा त्वां कुरु शं ममापि जगतां, सम्प्रार्थयेऽहं मुदा ॥

- गा० पु० प०

नमस्कार- आरती समाप्त होने पर सभी उपस्थित श्रद्धालुजन भावना सहित मातेश्वरी को नमस्कार करें । नमस्कार के साथ यह मन्त्र बोला जाए ।

ॐ नमस्ते देवि गायत्रि ! सावित्रि त्रिपदेऽक्षरे ।
अजरे अमरे मातः , त्राहि मां भवसागरात् ॥
नमस्ते सूर्यसंकाशे, सूर्यसावित्रिकेऽमले ।
ब्रह्मविद्ये महाविद्ये, वेदमातर्नमोऽस्तु ते ॥
अनन्तकोटिब्रह्माण्ड-व्यापिनि ब्रह्मचारिणि ।
नित्यानन्दे महामाये, परेशानि नमोऽस्तु ते ॥ - गा० पु० प०

समापन- इसके पश्चात् जयघोष करके प्राण-प्रतिष्ठा का विशेष कर्मकाण्ड समाप्त किया जाए । साथ ही प्रतिमा पर पुष्पार्पण करने, आरती एवं चरणामृत वितरण की क्रम व्यवस्था बना दी जानी चाहिए । लोग पंक्ति बद्ध होकर मंदिर में प्रवेश करते रहें । पुष्प चढ़ा कर आरती लें एवं चरणामृत ग्रहण करें । यह क्रम देर तक चलता रहेगा । अस्तु , पूर्णाहुति का क्रम भी साथ ही प्रारम्भ कर लिया जाना उचित है । स्थिति एवं व्यवस्था के अनुरूप प्रसाद वितरण आदि का क्रम सम्पन्न करें । * * *

॥ संस्कार प्रकरण ॥

शास्त्रीय पृष्ठभूमि

व्युत्पत्तिपरक अर्थ-

सम् पूर्वक कृञ् धातु से घञ् प्रत्यय होकर संस्कार शब्द निष्पन्न होता है ।जिसका अर्थ है-

संस्करणं सम्यक्करणं वा संस्कारः अर्थात् परिष्कार करना अथवा भली प्रकार निर्माण करना 'संस्कार' है ।

'संस्कार-प्रकाश' में संस्कार शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा गया है- **समुपसर्गात् कृञो घञि निष्पन्नोऽयं संस्कार शब्दः स्वयमेव स्वलक्षणमप्यभिधत्ते। तद्यथा- आत्मशरीरान्यतरनिष्ठो हीनाङ्गपूरको दोषापमार्जनकरो ऽ तिशयाधायकश्च विहितक्रियाजन्योऽतिशयविशेष एव 'संस्कार' इत्युच्यते।**

सम् उपसर्गपूर्वक कृ धातु से घञ् प्रत्यय होकर निष्पन्न 'संस्कार' शब्द स्वयमेव अपना लक्षण भी प्रकट कर देता है । यथा-शरीर और आत्मा में कमी या त्रुटि को पूर्ण करते हुए, दोषों का परिमार्जन करते हुए, अतिशय गुणों का आधान करने वाले शास्त्र विहित विधि (कर्मकाण्ड) से समुद्भूत अतिशय विशेष को ही 'संस्कार' कहा जाता है । 'संस्कार' शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता रहा है । मेदिनी कोश के अनुसार इसका अर्थ है- **क.** प्रतियत्न **ख.** अनुभव **ग.** मानस कर्म । सर्व प्रथम ऋग्वेद में इस शब्द का प्रयोग हुआ, जिसका अर्थ वहाँ धर्म (बरतन) की शुद्धता-पवित्रता लिया गया । तदनन्तर शतपथ ब्राह्मण, छान्दोग्य उपनिषद् में इस शब्द का अर्थ निर्मलता-स्वच्छता लगाया गया । जैमिनिकृत मीमांसा सूत्र में इसका प्रयोग 'चमकाने' के अर्थ में हुआ । तब से अब तक यह शब्द अपने अर्थ और स्वरूप को काफी सारगर्भित और वैज्ञानिकता से अभिपूरित कर चुका है ।

संस्कार की परिभाषाएँ, प्रभेद एवं प्रयोजन-

मीमांसा दर्शन का भाष्य करते हुए शबरमुनि लिखते हैं- **'संस्कारो नाम स भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्य'** अर्थात्

संस्कार वह प्रक्रिया है, जिसके होने से कोई व्यक्ति या पदार्थ किसी कार्य के योग्य हो जाता है । -(जै० सू० ३.१.३)

प्रसिद्ध मीमांसक कुमारिल भट्ट कृत तन्त्र वार्तिक में कहा गया है-

'योग्यतां चादधाना: क्रिया: संस्कारा इत्युच्यन्ते' अर्थात् संस्कार वे क्रियाएँ तथा रीतियाँ हैं, जो योग्यता प्रदान करती हैं ।महर्षि हारीत ने लिखा है- **'द्विविधो हि संस्कारो-ब्राह्मो दैवश्च । गर्भाधानादिस्मार्तो ब्राह्म: पाक यज्ञ सौम्यश्च दैव:** - अर्थात् संस्कार दो प्रकार के होते हैं- (i) ब्राह्म संस्कार और (ii) दैव संस्कार ।गर्भादानादि संस्कार, जो स्मृति ग्रन्थों द्वारा विहित हैं, ब्राह्म संस्कार कहलाते हैं और पाकयज्ञ, हवियज्ञ, सोम यागादि दैव संस्कार कहे जाते हैं ।हारीत मुनि आगे लिखते हैं-

'ब्रह्मेण संस्कारेण ऋषीणां सलोकतां समानतां सायुज्यतां वा गच्छति इति। दैवेन संस्कारेण देवानां समानतां सालोक्यतां सायुज्यतां सारूप्यतां वा गच्छति।'

'ब्राह्म' संस्कार से मानव में ब्राह्मणोचित-ऋषि कल्प गुणों, उनकी समानता (समान सम्मान) उनकी समीपता अथवा उनसे युक्त होने की योग्यता का विकास होता है । 'दैव' संस्कार से देवों के समान गुणों, उनकी समीपता, उनसे युक्त होने की योग्यता अथवा उनके सदृश रूप, गुण आदि की योग्यता प्राप्त होती है ।

आज जिन संस्कारों का मानव समाज में प्रचलन है, उनकी संख्या मुख्यत: सोलह मानी गयी है जैसा कि महर्षि व्यास जी ने लिखा है-

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च ।
नामक्रिया निष्क्रमोऽन्न-प्राशनं वपनक्रिया ।।
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधि: ।
केशान्त: स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रह: ।।
त्रेताग्निसंग्रहश्चैव संस्कारा: षोडशस्मृता: ।

-व्यास स्मृति- १.१३-१४

अर्थात् गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ (विद्यारम्भ) , समावर्त्तन, विवाह तथा अग्न्याधान ।' अग्न्याधान के अन्तर्गत तीन अग्नियाँ (गार्हपत्य,

आहवनीय, दक्षिणाग्नि) स्थापित की जाती थीं। इन अग्नियों का व्यावहारिक उपयोग वानप्रस्थ अन्त्येष्टि और मरणोत्तर संस्कारों में होने से संस्कारों की मान्य संख्या सोलह सिद्ध हो जाती है। इन नामों में कहीं-कहीं भिन्नता भी दिखाई देती है।

आयुर्वेदिक रसायन बनाने की अवधि में ओषधियों पर कितने ही संस्कार डाले जाते हैं। कई बार कई प्रकार के रसों में उन्हें खरल किया जाता है और कई बार उन्हें गजपुट द्वारा अग्नि में जलाया- तपाया जाता है, तब कहीं वह रसायन ठीक तरह तैयार होता है और साधारण-सी राँगा, जस्ता, ताँबा, लोहा, अभ्रक जैसी कम महत्त्व की धातु चमत्कारिक शक्ति- सम्पन्न बन जाती है। ठीक इसी प्रकार मनुष्य को भी समय-समय पर विभिन्न आध्यात्मिक उपचारों द्वारा सुसंस्कृत बनाने की महत्त्वपूर्ण पद्धति भारतीय तत्त्ववेत्ताओं ने विकसित की थी। उसका परिपूर्ण लाभ देशवासियों ने हजारों, लाखों वर्षों से उठाया है। यों किसी व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाने के लिए शिक्षा, सत्संग, वातावरण, परिस्थिति, सूझ-बूझ आदि अनेक बातों की आवश्यकता होती है। सामान्यतः ऐसे ही माध्यमों से लोगों की मनोभूमि विकसित होती है। इसके अतिरिक्त भारतीय तत्त्ववेत्ताओं ने मनुष्य की अन्तःभूमि को श्रेष्ठता की दिशा में विकसित करने के लिए कुछ ऐसे सूक्ष्म उपचारों का भी आविष्कार किया है, जिनका प्रभाव शरीर तथा मन पर ही नहीं सूक्ष्म अन्तःकरण पर भी पड़ता है और उसके प्रभाव से मनुष्य को गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से समुन्नत स्तर की ओर उठने में सहायता मिलती है।

इस आध्यात्मिक उपचार का नाम संस्कार है। भारतीय धर्म के अनुसार संस्कार १६ प्रकार के हैं, जिन्हें 'षोडश संस्कार' कहते हैं। माता के गर्भ में आने के दिन से लेकर मृत्यु तक की अवधि में समय-समय पर प्रत्येक भारतीय धर्मावलम्बी को १६ बार संस्कारित करके एक प्रकार का आध्यात्मिक रसायन बनाया जाता था। प्राचीनकाल में प्रत्येक भारतीय इसी प्रकार का एक जीता जागता रसायन होता था। मनुष्य शरीर में रहते हुए भी उसकी आत्मा देवताओं के स्तर की बनती थी। यहाँ के निवासी 'भूसुर' अर्थात् पृथ्वी के देवता माने जाते थे। उनके निवास की यह पुण्य भूमि भारत माता

'स्वर्गादपि गरीयसी' समझी जाती थी, संस्कारवान् व्यक्तियों को तथा उनके निवास स्थान को ऐसा गौरव मिलना उचित भी था।

हमारी प्राचीन महत्ता एवं गौरव-गरिमा को गगनचुम्बी बनाने में जिन अनेक सत्प्रवृत्तियों को श्रेय मिला था, उसमें एक बहुत बड़ा कारण यहाँ की संस्कार पद्धति को भी माना जा सकता है। यह पद्धति सूक्ष्म अध्यात्म विज्ञान की अतीव प्रेरणाप्रद प्रक्रिया पर अवलम्बित है। वेद मंत्रों के सस्वर उच्चारण से उत्पन्न होने वाली ध्वनि तरंगें, यज्ञीय ऊष्मा के साथ सम्बद्ध होकर अलौकिक वातावरण प्रस्तुत करती हैं, जो भी व्यक्ति इस वातावरण में एकत्र होते हैं या जिनके लिए भी उस पुण्य प्रक्रिया का प्रयोग होता है, वे उससे प्रभावित होते हैं। यह प्रभाव ऐसे परिणाम उत्पन्न करता है, जिससे व्यक्तियों में गुण, कर्म, स्वभाव आदि की अनेक विशेषतायें प्रस्फुटित होती हैं। संस्कारों की प्रक्रिया एक ऐसी आध्यात्मिक उपचार पद्धति है, जिसका परिणाम व्यर्थ नहीं जाने पाता। व्यक्तित्व के विकास में इन उपचारों से आश्चर्यजनक सहायता मिलती देखी जाती है।

संस्कारों में जो विधि- विधान हैं, उनका मनोवैज्ञानिक प्रभाव मनुष्य को सन्मार्गगामी होने की प्रेरणा देता है। संस्कार के मन्त्रों में अनेक ऐसी दिशायें भरी पड़ी हैं, जो उन परिस्थितियों के लिए प्रत्येक दृष्टि से उपयोगी हैं। पुंसवन संस्कार के समय उच्चारण किए जाने वाले मन्त्रों में गर्भवती के लिए रहन-सहन, आहार-विहार सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रशिक्षण मौजूद है। इस प्रकार विवाह में दाम्पत्य जीवन की, अन्नप्राशन में भोजन-छाजन की, वानप्रस्थ में सेवापरायण जीवन की आवश्यक शिक्षायें भरी पड़ी हैं। उन्हें यदि कोई प्रभावशाली वक्ता, ठीक ढंग से समझाकर संस्कार के समय उपस्थित लोगों को बता सके, तो जिनका संस्कार से सम्बन्ध है, उन्हीं को नहीं; वरन् सुनने वाले दूसरे लोगों को भी इस सन्देश से आवश्यक कर्त्तव्यों का ज्ञान हो सकता है और वे भी जीवन को उचित दिशा में ढालने के लिए तत्पर हो सकते हैं।

परिवार को संस्कारवान् बनाने की, कौटुम्बिक जीवन को सुविकसित बनाने की, एक मनोवैज्ञानिक एवं धर्मानुमोदित प्रक्रिया को संस्कार पद्धति कहा जाता है। हर्षोत्सव के वातावरण में देवताओं की साक्षी, अग्निदेव का सान्निध्य, धर्म- भावनाओं से ओत-प्रोत मनोभूमि, स्वजन- सम्बन्धियों की

उपस्थिति, पुरोहित द्वारा कराया हुआ धर्म कृत्य, यह सब मिल-जुलकर संस्कार से सम्बन्धित व्यक्तियों को एक विशेष प्रकार की मानसिक अवस्था में पहुँचा देते हैं और उस समय जो प्रतिज्ञायें की जाती हैं- जो प्रक्रियायें कराई जाती हैं, वे अपना गहरा प्रभाव सूक्ष्म मन पर छोड़ती हैं और वह प्रभाव बहुधा इतना गहरा एवं परिपक्व होता है कि उसकी छाप अमिट नहीं, तो चिरस्थायी अवश्य बनी रहती है।

एक शिक्षा सामान्य ढङ्ग से रास्ता चलते, उथले 'मूड' में कह दी जाए, तो उसका प्रभाव दूसरा होगा और उसी बात को धर्म सम्मिश्रित गम्भीर वातावरण में कहा जाए, तो उसका प्रभाव अन्य प्रकार का होता है। मजाक में किसी की झूठी कसम खाई जा सकती है; पर गङ्गाजी में खड़े होकर या गङ्गाजली हाथ में लेकर गम्भीरतापूर्वक कसम खाना कुछ दूसरा ही अर्थ रखता है। व्यभिचारी लोग अपनी प्रेमिका को लम्बे चौड़े आश्वासन देते रहते हैं, उनकी कोई कीमत नहीं होती; पर विवाह संस्कार के अवसर पर सात भाँवर फिरते हुए जो वचन दिये जाते हैं, उनका वर-वधू दोनों पर ऐसा अमिट प्रभाव पड़ता है कि वे आजीवन परस्पर एक दूसरे से बँधा हुआ ही अनुभव करते रहते हैं। यों ध्यान से देखा जाए, तो उस भाँवर फिरने का कोई विशेष मूल्य दिखाई नहीं पड़ता। भाँवर फिरना, गाँठ जोड़ना, सात कदम साथ-साथ चलना इन सब बातों में साधारण से खेलकूद में होने वाले श्रम से अधिक क्या कोई विशेषता दिखाई पड़ती है ? इनमें तो और भी कम श्रम लगता है; किन्तु जिस भावना के साथ, जिस वातावरण में विवाह विधान की छोटी-छोटी विधियाँ पूरी की जाती हैं, उनकी ऐसी मनोवैज्ञानिक छाप पड़ती है कि उससे जीवनभर इन्कार नहीं किया जा सकता।

यही मनोविज्ञान सम्मत धर्म विधान अन्य सब संस्कारों के अवसर पर काम करता है। उनके द्वारा अन्तर्मन पर ऐसी छाप डाली जाती है, जो किसी व्यक्ति को सुसंस्कृत, सुविकसित, सौजन्ययुक्त एवं कर्त्तव्यपरायण बनाने में समर्थ हो सके। ऋषियों ने अपनी आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक शोधों के आधार पर इस पुण्य प्रक्रिया का निर्माण किया है। वह जितनी प्रभावशाली पूर्वकाल में थी, उतनी ही आज भी है, यदि उसे ठीक ढङ्ग से, उचित व्यवस्था के साथ, उपयुक्त वातावरण में सम्पन्न किया जाए तो।

परिष्कृत एवं सरल प्रक्रिया

प्रस्तुत पुस्तक में प्राचीन संस्कार पद्धतियों को आधार मानकर यह संशोधित एवं परिष्कृत प्रक्रिया प्रस्तुत की गई है । इसमें निम्न बातों का विशेष रूप से ध्यान रखा गया है, (१) संस्कार कराने में बहुत अधिक समय न लगे । (२) प्रत्येक संस्कार में आवश्यक शिक्षाओं का समुचित समावेश हो । (३) विधान ऐसा सरल हो, जिससे करने वाले को विशेष कठिनाई न हो ।

आमतौर से संस्कार पद्धति में विधान तो दिये गये हैं, पर उनकी आवश्यकता उपयोगिता एवं पृष्ठभूमि नहीं बताई गई है । इस पुस्तक में यह प्रयत्न किया गया है कि प्रतीक क्रिया के साथ-साथ यह भी बता दिया जाए कि ऐसा क्यों कराया जा रहा है ?

कोई व्यक्ति संस्कारों की संगति पदार्थ-विज्ञान से जोड़ते रहते हैं । वे कहा करते हैं, कान छेदने से बवासीर नहीं होता । मुण्डन कराने से सिर दर्द नहीं उठता । इस प्रकार के प्रतिपादन अक्सर काल्पनिक होते हैं । कोई डॉक्टर या वैज्ञानिक इसका खण्डन कर दे, तो पुरोहित को अपना कथन वापस लेना पड़ेगा । हमें झंझट में नहीं पड़ना चाहिए । कोई स्थूल लाभ होते हों, पदार्थ विज्ञान से किसी संस्कार की कोई उपयोगिता सिद्ध होती हो, तो कोई हर्ज नहीं; परन्तु उसी पर अवलम्बित होना उचित नहीं । प्रत्येक धार्मिक कर्मकाण्ड का मुख्य आधार मनोविज्ञान एवं अध्यात्म है । यह भी तो एक विज्ञान है, स्थूल विज्ञान से उसकी उपयोगिता एवं क्षमता किसी भी प्रकार कम नहीं, वरन् अधिक ही है । पुण्य-पाप, सदाचार-दुराचार में अन्तर करना पदार्थ विज्ञान से नहीं, धर्म- विज्ञान से ही सम्भव हो सकता है । बहिन और पत्नी का अन्तर धर्म सिखाता है-विज्ञान नहीं । इसलिए जहाँ मानवीय अन्तःकरण को विकसित करने का प्रश्न उपस्थित होता है, वहाँ विज्ञान की कुछ उपयोगिता नहीं, वहाँ तो आस्था, विश्वास, उदारता, सद्भावना जैसी मनोवृत्तियाँ सहायक होती हैं । संस्कारों का वैज्ञानिक दृष्टि से क्या महत्त्व है ? इस पर विवाद करना व्यर्थ है । उनके आध्यात्मिक एवं मानवीय लाभ इतने अधिक हैं कि उनकी तुलना में भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में मिल सकने वाले सभी लाभ तुच्छ सिद्ध होते हैं । संस्कार पद्धति निश्चित रूप से एक विज्ञान सम्मत एवं प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाने वाली प्रक्रिया है, पर उसका

प्रतिपादन प्रयोगशालाओं के भौतिकविज्ञानियों द्वारा नहीं, वरन् आध्यात्मिक लाभों, सामाजिक सत्परिणामों एवं मनोवैज्ञानिक तथ्यों के द्वारा ही समझा और प्रतिपादित किया जाना चाहिए ।सोलह संस्कारों में से अब सभी की उपयोगिता नहीं रही, इसलिए इन सबका वर्णन आवश्यक नहीं । जो उपयोगी हों, उन्हें यदि ठीक प्रकार मनाया जाने लगे, तो बहुत बड़ा प्रयोजन सिद्ध हो सकता है ।

वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए संस्कारों की संख्या इस पुस्तक में सोलह से घटाकर १० कर दी गई है । इन पर भी यदि जोर दिया जा सके, तो उसका परिणाम भी कम नहीं होगा; फिर जिन्हें सुविधा हो, वे १६ करें । उसके लिए पुरानी पद्धतियाँ मौजूद हैं । इस पुस्तक में उन्हीं संस्कारों को लिया गया है, जो आज भी उपयोगी हैं और जिन्हें करने के लिए प्रयत्न किया ही जाना चाहिए । प्रयत्न यह किया गया है कि इस प्रकार जिन संस्कारों को छोड़ना पड़ा है, उनकी महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाएँ एवं शिक्षाएँ उन संस्कारों में जोड़ दी गई है, जिन्हें उन्हीं दिनों मनाया जाता है । गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त इन तीनों की प्रमुख प्रक्रिया गर्भवती के लिए नियत एक ही संस्कार में जोड़ दी गई है । जातकर्म और नामकरण का विधान सम्मिलित बना दिया गया है । विद्यारम्भ, उपनयन एवं समावर्तन का विधान एक ही यज्ञोपवीत संस्कार में है । कोई महत्त्वपूर्ण बात छूटने न पाए, इसका यथा सम्भव पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है ।

बच्चों का नाक-कान-छेदन पुरानी परम्पराओं के अनुसार भले ही आभूषण धारण करने या शोभा शृंगार का माध्यम माना जाता रहा हो, पर आज विवेकशील क्षेत्रों में उसकी उपयोगिता स्वीकार नहीं की जाती । इतना ही नहीं स्वास्थ्य एवं सफाई की दृष्टि से उसे हानिकारक ही माना जाता है । अब शोभा शृंगार की कसौटी नाक, कान छेदना या शरीर पर लीला गुदाना नहीं रह गये हैं । इस विचार परिवर्तन के पीछे तथ्य भी है और बल भी । इसलिए कर्णवेध संस्कार को भी हटा दिया गया है । हमारे सामने परम्परा ही नहीं उपयोगिता की कसौटी भी प्रस्तुत है । उन्हीं परम्पराओं को प्रचलित रखने के हम पक्षपाती हैं, जो अपनी उपयोगिता सिद्ध कर सकें ।

दो नये, किन्तु उपयोगी संस्कार

दो संस्कार इस पद्धति में नये बढ़ाए गए हैं ।(१) जन्मदिवसोत्सव,(२) विवाहदिवसोत्सव । इन्हें हर व्यक्ति हर साल मना सकता है ।(१) मनुष्य के लिए इस संस्कार में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उसका अपना व्यक्तित्व निर्माण ही है । अपना नाम, अपना रूप, अपना यश, अपना धन सबको प्यारा लगता है । अपना जन्मदिन भी किसी व्यक्ति के लिए उसके अवतरण की सुखद स्मृति का सबसे आनन्ददायक दिन हो सकता है । उसे हर्षोत्सव के रूप में मनाते हुए भला किसको प्रसन्नता न होगी ? बच्चों का जन्मदिन मनाने की प्रथा हमारे देश में सर्वत्र प्रचलित है । विदेशों में बड़े आदमियों का जन्मदिन भी उनके जीवन के व्यक्तिगत विशेष त्यौहार के रूप में मनाये जाने की प्रथा है । इष्ट-मित्र, स्वजन सम्बन्धी एकत्रित होकर उस दिन अपनी शुभ कामनाएँ व्यक्त करते और आमोद-प्रमोद मनाते हैं । हमारे यहाँ इसे जीवन समस्या पर विचार करने, शेष जीवन को अधिक परिष्कृत बनाने, मानव जीवन के उपलब्ध सौभाग्य पर सन्तोष अनुभव करने और स्वजन सम्बन्धियों को, इष्ट-मित्रों को इन अभिव्यक्तियों में सम्मिलित करने के रूप में मनाया जाता है ।

(२) इसी प्रकार विवाहदिवसोत्सव भी महत्त्वपूर्ण है । विवाह से ही हर व्यक्ति अपने नये परिवार एवं समाज का निर्माण करता है । आत्म-भाव को द्विगुणित करने की अद्‌भुत आध्यात्मिक क्रान्ति विवाह द्वारा ही मूर्तिमान् होती है । वह दिन हर गृहस्थ के लिए बड़ा प्रेरणाप्रद है । अनेक सामाजिक उत्तरदायित्त्व गृहस्थ के साथ ही कन्धे पर आते हैं । उन्हें गाड़ी के दो पहियों की तरह स्त्री-पुरुष मिल-जुलकर अग्रसर करते हैं । ऐसा शुभ दिन एक हर्षोल्लास के रूप में मनाया ही जाना चाहिए । उस दिन को-अतीत की स्मृति को ताजा करने वाले एक जीवन्त संस्मरण के रूप में मनाया जाना चाहिए और उन प्रतिज्ञाओं को हर वर्ष दुहराना चाहिए, जो विवाह के दिन दोनों ने गृहस्थ की सार्थकता के लिए की थीं । ऐसा करने से वैवाहिक जीवन में जिम्मेदारियों को निबाहने के लिए नई प्रेरणा एवं स्फूर्ति मिलती है ।

यह दो उत्सव हर व्यक्ति के जीवन में एक नया संदेश एवं उल्लास लेकर आते हैं । इन्हें मनाने की व्यवस्था में थोड़ा धन और समय लगे, तो चिन्ता नहीं करनी चाहिए । इसके बदले में जो मिलने वाला है, वह अधिक

महत्त्वपूर्ण एवं अधिक मूल्यवान् है । जिनके घर में और कोई हर्षोत्सव मनाने का अवसर नहीं है, उन्हें भी वर्ष में दो बार आनन्द विभोर होने एवं अपने इष्टमित्रों के साथ प्रमुदित होने का अवसर मिल सकता है । संगठन की दृष्टि से सामाजिकता, सामूहिकता एवं स्नेह- सौहार्द्र बढ़ाने की दृष्टि से भी यह आयोजन उत्तम है । इष्ट-मित्रों से बार-बार मिलना-जुलना होता रहे, तो उससे आत्मीयता बढ़ती है और यह बढ़ती हुई मैत्री कुछ न कुछ सत्परिणाम ही उत्पन्न करती है ।

युग निर्माण योजना में विवेकशील सज्जनों का संगठन सबसे पहला काम है । इन दिनों हर्षोत्सवों के माध्यम से यह उद्देश्य अधिक आसानी और तेजी से पूरा होता रह सकता है । बार-बार निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति के सम्बन्ध में चर्चा करना निरर्थक नहीं कहा जा सकता है । उसका परिणाम नव-निर्माण आन्दोलन को सफल बनाने की दृष्टि से उत्साहवर्द्धक ही हो सकता है ।

संस्कारों की पद्धति परिवार प्रशिक्षण की सर्वोत्तम पद्धति है, आमतौर से घर के लोगों का असर घर वालों पर नहीं पड़ता । 'अति परिचय से अवज्ञा' वाली उक्ति के विरुद्ध कुछ सिखाना-समझाना सम्भव नहीं होता । दूसरी बात यह भी है कि कोई बात बार-बार कही जाती रहे और उसे एक ही व्यक्ति कहे, तो वह कानों के अभ्यास में आ जाती है और फिर उसका विशेष प्रभाव नहीं पड़ता । संस्कारों की प्रथा प्रचलित करके हम इस कमी को दूर कर सकते हैं । सुयोग्य पुरोहित या वक्ता बाहर के आदमी होते हैं, उनके तर्कपूर्ण प्रवचन प्रभावित करते हैं । फिर उस धर्मानुष्ठान के अवसर पर वातावरण एवं 'मूड' भी ऐसा लगता है कि कोई शिक्षाप्रद बात गम्भीरता से सुनी- समझी जा सके । परिवार में कई लोग होते हैं । किसी न किसी का कोई न कोई संस्कार आता ही रहता है । फिर जन्मोत्सव का भी तो क्रम चलाया जाता है । इस प्रकार साल में दो बार तो घर में संस्कार आयोजन की बात बन ही सकती है और इस बहाने परिवार के प्रशिक्षण का ठोस क्रम व्यवस्थित रूप से चलता रह सकता है । इन आयोजनों में लोगों से बहुत कुछ कहने समझने का अवसर मिल सकता है और वह प्रेरणा यदि तर्क और तथ्यपूर्ण हो, तो उसका प्रभाव एवं परिणाम होना ही चाहिए । व्यक्तियों के स्वभाव में, पारिवारिक वातावरण में एवं लोक व्यवहार में हमें अनेक सत्प्रवृत्तियों का समावेश करना है ।

रचनात्मक सत्कर्म में लोक-मानस को संलग्न करना है, उसके लिए प्रथम कार्य प्रेरणा देना ही तो है। कोई बात पहले विचार में आती है, तभी तो उसके कार्यरूप में परिणत होने का अवसर आता है। बीज बोने के बाद ही तो पौधा उगने की आशा बँधती है। विचार बीज है, तो कर्म पौधा। सत्प्रवृत्ति के रूप में सत्कर्म के बीज बोने के लिए संस्कार आयोजन पूर्णत: समर्थ होते हैं।

संस्कार-क्रम व्यवस्था

संस्कारों की व्यवस्था सामूहिक यज्ञों, साप्ताहिक यज्ञायोजनों, प्रज्ञा-संस्थानों तथा घरों पर भी की जा सकती है। प्रयास यह किया जाना चाहिए कि संस्कार कराने वालों को व्यवस्था में परेशान न होना पड़े। उपकरणों से लेकर विशेष सामग्री आदि की व्यवस्था शाखा परिजन अपनी ओर से करें। प्रज्ञा संस्थान या शाखा केन्द्र पर सभी संस्कारों से सम्बन्धित वस्तुएँ सहज क्रम में आसानी से संचित रह सकती हैं। संस्कार कराने वालों को एक-एक वस्तु के लिए बहुत समय और श्रम लगाना पड़ता है। यदि घरों पर संस्कार कराये जाएँ, तो भी उनके जिम्मे वही व्यवस्थाएँ दी जाएँ जो वे सुगमता से कर सकें। प्रज्ञा संस्थानों एवं बड़े यज्ञायोजनों में तो पूरी व्यवस्था रखी ही जाती है।

कार्यक्रम प्रारम्भ करने से पूर्व सारी व्यवस्था जमा ली जाए। यदि किसी वस्तु की कमी हो, तो उसके लिए हो हल्ला मचाकर वातावरण में तनाव पैदा न किया जाए। शान्त मस्तिष्क से विचार करके यदि सहज क्रम में व्यवस्था हो सकती है, तो प्रामाणिक व्यक्ति को जिम्मेदारी सौंपकर कार्य प्रारम्भ कराया जाए। यदि व्यवस्था होती न दिखे, तो संस्कार कराने वालों के मन में अभाव का कुसंस्कार न जमने दिया जाए। चुपचाप विवेकपूर्वक उसका विकल्प मन में बना लिया जाए। किसी वस्तु के अभाव से कर्मकाण्ड में जो कमी आती है, उसकी पूर्ति सशक्तभावना तथा उल्लास भरे क्रम से हो जाती है; परन्तु अभाव के संस्कार या तनाव से भावना कुण्ठित होती है और उससे होने वाली कमी, कमी ही रह जाती है। संचालकों को भावना और उल्लास का वातावरण कायम रखने की कला में प्रवीणता प्राप्त करनी चाहिए। सारी व्यवस्था जमाकर संस्कार कराने से सम्बद्ध प्रमुख पात्रों को बुलाकर नीचे लिखे क्रम से कर्मकाण्ड चलाया जाए। यह क्रम घरों या स्वतन्त्र रूप से देव स्थलों पर

संस्कार कराने की दृष्टि से बनाया गया है। सामूहिक यज्ञायोजनों में आवश्यकतानुसार थोड़ा- बहुत हेर-फेर कर लिया जा सकता है।

(१) संस्कार कराने वालों पर **भद्रं कर्णेभिः** .... मन्त्र के साथ अक्षत वर्षा करते हुए उन्हें आसन पर बिठाया जाए। यह मंत्र इसी पुस्तक में यज्ञारम्भ के स्थल पर है।

(२) यज्ञ एवं पूजन के लिए जिन्हें बिठाया गया है, उन सबको **षट्कर्म** कराया जाए।

(३) षट्कर्म के बाद संक्षेप में संस्कार का उद्देश्य और महत्त्व समझाते हुए उन्हें संकल्प कराया जाए। यज्ञ संकल्प के अनुसार......**नामाहं** के आगे यह संकल्प जोड़ें।

श्रुति स्मृति पुराणोक्त फल पाने के लिए आत्मकल्याण, लोकमंगल, वातावरण परिष्कार एवं उज्ज्वल भविष्य के लिए.....संस्कार का महत्त्व और उत्तरदायित्व स्वीकार करते हुए, देव आवाहन एवं यज्ञादि सहित संस्कार कर्म, श्रद्धा, निष्ठापूर्वक सम्पन्न करने का संकल्प हम करते हैं।

(४) संस्कार कर्म करने वालों का यज्ञोपवीत बदलवायें। यदि वह पहले से न पहने हो, तो संस्कार कर्म के लिए अस्थाई रूप से ही पहना दें। उन्हें समझा दें कि यज्ञोपवीत-व्रतबन्ध कहा जाता है। संस्कारों के लिए व्रतशील जीवन जीना चाहिए। उसके पुण्य प्रतीक रूप में यज्ञोपवीत धारण कर लें। यदि वे स्थाई उत्साह दिखायें, तो उन्हें समझा दें कि यह यज्ञोपवीत तब तक काम देगा, जब तक स्थाई संस्कार नहीं करा लेते। यज्ञोपवीत परिवर्तन के लिए मन्त्र याद न हों, तो यज्ञोपवीत संस्कार से देख लें।

बाँयें हाथ में यज्ञोपवीत देकर गायत्री मन्त्र के साथ उस पर जल के छींटे लगवाएँ। फिर निर्धारित क्रम के साथ पाँच देव शक्तियों का आवाहन करके 'धारण- मन्त्र' के साथ यज्ञोपवीत धारण करा दें।

(५) इसके बाद रक्षासूत्र-कलावा बाँधें और तिलक करें। यह कार्य आचार्य स्वयं करें या अपने किसी सहयोगी-प्रतिनिधि से करवाएँ। मंत्रादि यज्ञ प्रकरण में हैं।

(६) इतना करके संक्षिप्त हवन विधि के क्रम से रक्षाविधान तक का कर्मकाण्ड पूरा करें।

(७) रक्षाविधान के बाद संस्कार विशेष के विशिष्ट कर्मकाण्ड प्रेरक व्याख्याओं सहित सम्पन्न कराएँ। यह सब सम्बन्धित संस्कारों में दिये गये हैं। केवल विशेष आहुति एवं आशीर्वाद बाद के लिए रोक लेने चाहिए।

(८) इन कृत्यों के बाद अग्नि स्थापना से लेकर गायत्री मन्त्र की आहुतियाँ कराने तक का क्रम संक्षिप्त हवन विधि से चलाया जाए।

(९) अब विशेष आहुतियाँ, संस्कार की मर्यादानुसार खीर, मिष्टान्नादि से कराएँ।

(१०) विशेष आहुति के बाद स्विष्टकृत आहुति से लेकर विसर्जन के पूर्व तक के क्रम समय एवं परिस्थिति के अनुसार करा लिए जाएँ।

(११) अन्त में आशीर्वाद का क्रम भाव भरे वातावरण में किया जाए। तत्पश्चात् विसर्जन करा दिया जाए। आशीर्वाद के लिए मङ्गल मन्त्र इसी पुस्तक के पृ०११३ में दिये गये हैं। उनमें से आवश्यकतानुसार प्रयोग कर लेना चाहिए।

समय की सीमा ध्यान में रखते हुए कर्मकाण्ड तथा व्याख्याओं का संक्षेप या विस्तार कर लेना चाहिए। सन्तुलन ऐसा बनाना चाहिए कि विशेष कर्मकाण्ड तथा उससे सम्बन्धित प्रेरणाओं को उभारने के लिए पर्याप्त समय मिल जाए। जहाँ समय की कमी हो, वहाँ यज्ञ एवं कर्मकाण्ड की टिप्पणियाँ न्यूनतम करते हुए विशेष कर्मकाण्ड के लिए समय बचा लेना चाहिए।

संस्कार आयोजन के अन्तर्गत दुहरी प्रक्रिया चलती है। एक तो जिसका संस्कार है, उसके अन्तःकरण में दिव्य वातावरण में वांछित श्रेष्ठ संस्कारों का बीजारोपण किया जाता है। साथ ही उन बीजों को विकसित और फलित करने के मुख्य सूत्रों पर सबका ध्यान खींचने तथा आस्था जमाने का क्रम भी चलता है। बीजारोपण शिशुओं से लेकर वयस्कों तक में समान रूप से होता है, परन्तु उसे फलित करने के सूत्रों को विकसित मस्तिष्क ही समझ और ग्रहण कर पाते हैं। इन दोनों प्रक्रियाओं को जीवन्त बनाये रखकर ही संस्कारों को प्रभावशाली बनाया जाता है। कर्मकाण्ड संचालकों को व्याख्याएँ, टिप्पणियाँ तथा समग्र प्रवाह इन दोनों बातों को ध्यान में रखकर ही बनाना चाहिए। इसके विपरीत शिक्षण-प्रेरणा तथा क्रिया और भावना दोनों को ही संतुलित ढंग से उभारा जाना चाहिए। *

॥ पुंसवन संस्कार ॥

गर्भस्थ शिशु के समुचित विकास के लिए गर्भिणी का यह संस्कार किया जाता है। कहना न होगा कि बालक को संस्कारवान् बनाने के लिए सर्वप्रथम जन्मदाता माता-पिता को सुसंस्कारी होना चाहिए। उन्हें बालकों के प्रजनन तक ही दक्ष नहीं रहना चाहिए, वरन् सन्तान को सुयोग्य बनाने योग्य ज्ञान तथा अनुभव भी एकत्रित कर लेना चाहिए। जिस प्रकार मोटर चलाने से पूर्व उसके कल-पुर्जों की आवश्यक जानकारी प्राप्त कर ली जाती है, उसी प्रकार गृहस्थ जीवन आरम्भ करने से पूर्व इस सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी इकट्ठी कर लेनी चाहिए। अच्छा होता अन्य विषयों की तरह शिक्षा व्यवस्था में दाम्पत्य जीवन एवं शिशु निर्माण के सम्बन्ध में शास्त्रीय प्रशिक्षण दिये जाने की व्यवस्था रही होती। इस महत्त्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति संस्कारों के शिक्षणात्मक पक्ष से भली प्रकार पूरी हो जाती है।

यों तो षोडश संस्कारों में सर्वप्रथम गर्भाधान संस्कार का विधान है, जिसका अर्थ यह है कि दम्पती अपनी प्रजनन प्रवृत्ति से समाज को सूचित करते हैं। विचारशील लोग यदि उन्हें इसके लिए अनुपयुक्त समझें, तो मना भी कर सकते हैं। प्रजनन वैयक्तिक मनोरंजन नहीं, वरन् सामाजिक उत्तरदायित्व है। इसलिए समाज के विचारशील लोगों को निमंत्रित कर उनकी सहमति लेनी पड़ती है। यही गर्भाधान संस्कार है। पूर्वकाल में यही सब होता था। आज लोगों के शरीर खोखले हो गये और सन्तानोत्पत्ति को भी वैयक्तिक मनोरंजन मान लिया, तो फिर गर्भाधान संस्कार का महत्त्व चला गया। इतने पर भी उसकी मूल भावना को भुलाया न जाए, उस परम्परा को किसी न किसी रूप में जीवित रहना चाहिए। पति-पत्नी एकान्त मिलन के साथ वासनात्मक मनोभाव न रखें, मन ही मन आदर्शवादी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते रहें तो उसकी मानसिक छाप बच्चे की मनोभूमि पर अङ्कित होगी। लुक-छिपकर पाप कर्म करते हुए भयभीत और आशंकाग्रसित अनैतिक समागम-व्यभिचार के फलस्वरूप जन्मे बालक अपना दोष-दुर्गुण साथ लाते हैं। इसी प्रकार उस समय दोनों की मनोभूमि यदि आदर्शवादी मान्यताओं से भरी हुई हो, तो मदालसा, अर्जुन आदि की

तरह मनचाहे स्तर के बालक उत्पन्न किए जा सकते हैं। गर्भाधान संस्कार का प्रयोजन यही है। वस्तुत: वह प्रजनन-विज्ञान का आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्थिति का मार्गदर्शन कराने वाला प्रशिक्षण ही था ।

आज संस्कारों का जबकि एक प्रकार से लोप ही हो गया है, गर्भाधान का प्रचलन कठिन पड़ता है, इसलिए उसे आज व्यावहारिक न देखकर उस पर विशेष जोर नहीं दिया गया है; फिर भी उसकी मूल भावना यथावत् है। सन्तान उत्पादन से पूर्व उपर्युक्त तथ्यों पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए।

संस्कार प्रयोजन- गर्भ सुनिश्चित हो जाने पर तीन माह पूरे हो जाने तक पुंसवन संस्कार कर देना चाहिए। विलम्ब से भी किया तो दोष नहीं, किन्तु समय पर कर देने का लाभ विशेष होता है। तीसरे माह से गर्भ में आकार और संस्कार दोनों अपना स्वरूप पकड़ने लगते हैं। अस्तु, उनके लिए आध्यात्मिक उपचार समय पर ही कर दिया जाना चाहिए। इस संस्कार के नीचे लिखे प्रयोजनों को ध्यान में रखा जाए।

गर्भ का महत्त्व समझें, वह विकासशील शिशु , माता-पिता, कुल परिवार तथा समाज के लिए विडम्बना न बने, सौभाग्य और गौरव का कारण बने। गर्भस्थ शिशु के शारीरिक, बौद्धिक तथा भावनात्मक विकास के लिए क्या किया जाना चाहिए, इन बातों को समझा-समझाया जाए।

गर्भिणी के लिए अनुकूल वातावरण खान-पान, आचार-विचार आदि का निर्धारण किया जाए।गर्भ के माध्यम से अवतरित होने वाले जीव के पहले वाले कुसंस्कारों के निवारण तथा सुसंस्कारों के विकास के लिए, नये सुसंस्कारों की स्थापना के लिए अपने सङ्कल्प, पुरुषार्थ एवं देव अनुग्रह के संयोग का प्रयास किया जाए।

विशेष व्यवस्था - (क) ओषधि अवघ्राण के लिए वट वृक्ष की जटाओं के मुलायम सिरों का छोटा टुकड़ा, गिलोय, पीपल की कोपल-मुलायम पत्ते लाकर रखे जाएँ। सबका थोड़ा-थोड़ा अंश पानी के साथ सिल पर पीसकर एक कटोरी में उसका घोल तैयार रखा जाए।

(ख) साबूदाने या चावल की खीर तैयार रखी जाए। जहाँ तक सम्भव हो सके, इसके लिए गाय का दूध प्रयोग करें। खीर गाढ़ी हो।

तैयार हो जाने पर निर्धारित क्रम से मंगलाचरण, षट्कर्म, सङ्कल्प,

यज्ञोपवीत परिवर्तन, कलावा-तिलक एवं रक्षाविधान तक का यज्ञीय क्रम पूरा करके नीचे लिखे क्रम से पुंसवन संस्कार के विशेष कर्मकाण्ड कराएँ ।

॥ओषधि अवघ्राण॥

वट वृक्ष, विशालता और दृढ़ता का प्रतीक है । धीरे-धीरे बढ़ना धैर्य का सूचक है । इसकी जटाएँ भी जड़ और तने बन जाती हैं, यह विकास-विस्तार के साथ पुष्टि की व्यवस्था है, वृद्धावस्था को युवावस्था में बदलने का प्रयास है ।

गिलोय-वृक्ष में ऊपर चढ़ने की प्रवृत्ति है ।यह हानिकारक कीटाणुओं की नाशक है, शरीर में रोगाणुओं, अन्तःकरण के कुविचार-दुर्भावों, परिवार और समाज में व्याप्त दुष्टता-मूढ़ता आदि के निवारण की प्रेरणा देती है । शरीर को पुष्ट कर, प्राण ऊर्जा की अभिवृद्धि कर सत्प्रवृत्तियों के पोषण की सामर्थ्य पैदा करती है ।

पीपल-देव योनि का वृक्ष माना जाता है । देवत्व के-परमार्थ के संस्कार इसमें सन्निहित हैं । उनका वरण, धारण और विकास किया जाए ।

सूँघने और पान करने का तात्पर्य श्रेष्ठ संस्कारों का वरण करने, उन्हें आत्मसात् करने की व्यवस्था बनाना है । ऐसे आहार तथा दिनचर्या का निर्धारण किया जाए । श्रेष्ठ पुरुषों के प्रसंगों के अध्ययन, श्रवण, चिन्तन द्वारा गर्भिणी अपने में, अपने गर्भ में श्रेष्ठ संस्कार पहुँचाए ।इस कार्य में परिजन उसका सहयोग करें ।

क्रिया और भावना - औषधि की कटोरी गर्भिणी के हाथ में दी जाए । वह दोनों हाथों से उसे पकड़े ।मन्त्र बोला जाए, गर्भिणी नासिका के पास औषधि को ले जाकर धीरे-धीरे श्वास के साथ उसकी गन्ध धारण करे ।भावना की जाए कि ओषधियों के श्रेष्ठ गुण और संस्कार खींचे जा रहे हैं । वेदमन्त्रों तथा दिव्य वातावरण द्वारा इस उद्देश्य की पूर्ति में सहयोग मिल रहा है ।

ॐ अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च, विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे ।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति, तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥
३१.१७

॥ गर्भ पूजन ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा - गर्भ कौतुक नहीं, एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। उसे समझा जाए और उस जिम्मेदारी को उठाने की तैयारी मानसिक तथा व्यावहारिक क्षेत्र में की जाए।

गर्भ के माध्यम से जो जीव प्रकट होना चाहता है, उसे ईश्वर का प्रतिनिधि मानकर उसके लिए समुचित व्यवस्था बनाकर, उसके स्वागत की तैयारी करनी चाहिए।

गर्भ पूज्य है। कोई पूज्य व्यक्ति सामने हो, तो अपने स्वभाव तथा परस्पर के द्वेष-वैर को भुलाकर भी शालीनता का वातावरण बनाया जाता है। गर्भ के लिए भी ऐसा ही किया जाए।

गर्भ का पूजन केवल एक सामयिकता औपचारिकता न रह जाए। संस्कारित करने के लिए पूजा-उपासना का सतत प्रयोग चले। घर में आस्तिकता का वातावरण रहे। गर्भिणी स्वयं भी नियमित उपासना करे। उसे आहार और विश्राम जितना ही महत्त्वपूर्ण मानकर चलाया जाए। अधिक न बने, तो गायत्री चालीसा पाठ एवं पंचाक्षरी मंत्र '**ॐ भूर्भुवः स्वः**' का जप ही कर लिया करे।

क्रिया और भावना - गर्भ पूजन के लिए गर्भिणी के घर परिवार के सभी वयस्क परिजनों के हाथ में अक्षत, पुष्प आदि दिये जाएँ। मन्त्र बोला जाए। मन्त्र समाप्ति पर एक तश्तरी में एकत्रित करके गर्भिणी को दिया जाए। वह उसे पेट से स्पर्श करके रख दे।

भावना की जाए, गर्भस्थ शिशु को सद्भाव और देव अनुग्रह का लाभ देने के लिए पूजन किया जा रहा है। गर्भिणी उसे स्वीकार करके गर्भ को वह लाभ पहुँचाने में सहयोग कर रही है।

ॐ सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो, गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ। स्तोमऽआत्मा छन्दा ꣳसि स्यङ्गानि यजू ꣳषि नाम। साम ते तनूर्वामदेव्यं, यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः। सुपर्णोऽसि गरुत्मान् दिवं गच्छ स्वःपत॥ १२.४

॥ आश्वास्तना ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- गर्भ के माध्यम से प्रकट होने वाले जीव को अपेक्षा होती है कि उसे विकास के लिए सही वातावरण मिलेगा । जिस सत्ता ने गर्भ प्रदान किया है, वह भी उस उत्तरदायित्व को पूरा होते देखना चाहती है । दोनों को आश्वस्त किया जाना चाहिए कि उन्हें निराश नहीं होना पड़ेगा ।

पहला आश्वासन गर्भिणी दे । वह अपने कर्त्तव्य का ध्यान रखे । आहार-विहार, चिन्तन सही रखे । दूसरों के व्यवहार और वातावरण की शिकायत करने में समय और शक्ति न गँवाकर, धैर्यपूर्वक गर्भ को श्रेष्ठ संस्कार देने का प्रयास करे । प्रसन्न रहे, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि मनोविकारों से बचती रहे । धैर्यपूर्वक उज्ज्वल भविष्य की कामना करे ।

दूसरा आश्वासन उसके पति और परिजनों की ओर से होता है । गर्भिणी माता अपने शरीर तथा रक्त-मांस से बालक का शरीर बनाती है, अपना रक्त सफेद दूध के रूप में निकाल-निकाल कर बच्चे का पोषण करती है, उसके मल-मूत्र, स्नान, वस्त्र तथा दिनचर्या की हर घड़ी साज- सँभाल रखती है । इतना भार तथा त्याग कुछ कम नहीं । माता इतना करके भी अपने हिस्से की जिम्मेदारी का बहुत बड़ा भाग पूरा कर लेती है । अब शिशु को सुसंस्कारी बनाने की उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न करना, पिता का काम रह जाता है । उसे पूरा करने के लिए उतना ही त्याग करना, उतना ही कष्ट सहना और उतना ही ध्यान रखना, पिता का और परिजनों का भी कर्त्तव्य है ।

सब मिलकर प्रयास करें कि गर्भ पर अभाव और कुसंस्कारों की छाया न पड़ने पाए । गर्भिणी गलत आकांक्षाएँ पास न आने दे । परिजन उसकी उचित आकांक्षाएँ जानें और पूरी करें । क्या खाना चाहती है ? यही पूछना पर्याप्त नहीं, कैसा व्यवहार चाहती है ? यह भी पूछा जाए, समझा जाए और पूरा किया जाए ।

क्रिया और भावना- गर्भिणी अपना दाहिना हाथ पेट पर रखे । पति सहित परिवार के सभी परिजन अपना दाहिना हाथ गर्भिणी की तरफ आश्वासन की मुद्रा में उठाएँ । मन्त्र पाठ तक वही स्थिति रहे ।भावना की जाए कि गर्भिणी गर्भस्थ शिशु तथा दैवी सत्ता को आश्वस्त कर रही है । सभी

परिजन उसके इस प्रयास में भरपूर सहयोग देने की शपथ ले रहे हैं। इस शुभ संकल्प में दैवी शक्तियाँ सहयोग दे रही हैं। इस श्रेष्ठ संकल्प-पूर्ति की क्षमता दे रही हैं।

ॐ यत्ते सुशीमे हृदये हितमन्तः प्रजापतौ।
मन्येऽहं मां तद्विद्वांसं, माहं पौत्रमघन्नियाम्॥

आश्व० गृ० सू० १.१३

आश्वास्तना के बाद अग्नि स्थापन से लेकर गायत्री मन्त्र की आहुतियाँ पूरी करने का क्रम चलाएँ। उसके बाद विशेष आहुतियाँ प्रदान करें।

॥ विशेष आहुति ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा - यज्ञीय जीवन भारतीय संस्कृति की विशेष उपलब्धि है। जीवन का हर चरण एक आहुति है। कृत्य विशेष को यज्ञमय बनाने के लिए विशेष क्रम बनाने होते हैं। विशेष आहुति उसी बोध को जीवन्त बनाती हैं।

यज्ञ में पोषक, सात्त्विक पदार्थ खीर की आहुति डाली जाती है। इसी प्रकार अन्तःकरण में दूध की तरह श्वेत, कलुषरहित भावों का संचार करें। दूध में घी समाया रहता है, अपने चिन्तन एवं आचरण में स्नेह समाया रहे। गर्भिणी स्वयं भी तथा परिवार के परिजन मिलकर गर्भस्थ शिशु के लिए ऐसा ही परमार्थपरक वातावरण बनाएँ।

क्रिया और भावना- गायत्री मन्त्र की आहुतियाँ हो जाने के बाद खीर की पाँच आहुतियाँ विशेष मन्त्र से की जाएँ।

भावना की जाय कि दिव्य मन्त्र शक्ति के संयोग से गर्भस्थ शिशु और सभी परिजनों के लिए अभीष्ट मंगलमय वातावरण बन रहा है।

ॐ धातादधातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमक्षिताम्। वयं देवस्य धीमहि सुमतिं वाजिनीवतः स्वाहा। इदं धात्रे इदं न मम॥

- आश्व० गृ० सू० १.१४

॥ चरु प्रदान ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा - यज्ञ से बची खीर गर्भिणी को सेवन के लिये दी जाती है। यज्ञ से संस्कारित अन्न ही मन में देवत्व की वृत्तियाँ पैदा करता

है। स्वार्थ वृत्ति से स्वाद को लक्ष्य करके तैयार किया गया भोजन अकल्याणकारी होता है।

आहार प्रभु का प्रसाद बनाकर लिया जाए। बिना भोग लगाये न खाना, संयम की वृत्ति को पैदा करता है, पुष्ट करता है।

नित्य का आहार भी यज्ञीय संस्कार युक्त हो, इसके लिए घर में बलिवैश्व परम्परा डाली जानी चाहिए। गर्भिणी विशेष रूप से नित्य बलिवैश्व करके, यज्ञ का प्रसाद बनाकर ही भोजन ले।

भोजन में सात्त्विक पदार्थ हों। उत्तेजक, पेट और वृत्तियों को खराब करने वाले पदार्थ न हों। उन्हीं में रस लिया जाए।

क्रिया और भावना- विशेष आहुतियों के बाद शेष बची खीर प्रसाद रूप में एक कटोरी में गर्भिणी को दी जाए। वह उसे लेकर मस्तक से लगाकर रख ले। सारा कृत्य पूरा होने पर पहले उसी का सेवन करे।

भावना करे कि यह यज्ञ का प्रसाद दिव्य शक्ति-सम्पन्न है। इसके प्रभाव से राम-भरत जैसे नर पैदा होते हैं। ऐसे संयोग की कामना की जा रही है।

ॐ पयः पृथिव्यां पयऽओषधीषु, पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः। पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्॥ -यजु० १८.३६

॥ आशीर्वचन ॥

सारा कृत्य पूरा हो जाने पर विसर्जन के पूर्व आशीर्वाद दिया जाए। आचार्य गर्भिणी को शुभ मन्त्र बोलते हुए फल-फूल आदि दें। गर्भिणी साड़ी के आँचल में ले। अन्य बुजुर्ग भी आशीर्वाद दे सकते हैं। सभी लोग पुष्प वृष्टि करें। गर्भिणी एवं उसका पति बड़ों के चरण स्पर्श करें, सबको नमस्कार करें। विसर्जन और जयघोष करके आयोजन समाप्त किया जाए।

* * *

॥ नामकरण संस्कार ॥

संस्कार प्रयोजन- नामकरण शिशु जन्म के बाद पहला संस्कार कहा जा सकता है । यों तो जन्म के तुरन्त बाद ही जातकर्म संस्कार का विधान है, किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में वह व्यवहार में नहीं दीखता । अपनी पद्धति में उसके तत्त्व को भी नामकरण के साथ समाहित कर लिया गया है ।

इस संस्कार के माध्यम से शिशु रूप में अवतरित जीवात्मा को कल्याणकारी यज्ञीय वातावरण का लाभ पहुँचाने का सत्प्रयास किया जाता है । जीव के पूर्व संचित संस्कारों में जो हीन हों, उनसे मुक्त कराना, जो श्रेष्ठ हों उनका आभार मानना -अभीष्ट होता है ।

नामकरण संस्कार के समय शिशु के अन्दर मौलिक कल्याणकारी प्रवृत्तियों, आकांक्षाओं के स्थापन, जागरण के सूत्रों पर विचार करते हुए उनके अनुरूप वातावरण बनाना चाहिए । शिशु कन्या है या पुत्र, इसके भेद-भाव को स्थान नहीं देना चाहिए । भारतीय संस्कृति में कहीं भी इस प्रकार का भेद नहीं है । शीलवती कन्या को दस पुत्रों के बराबर कहा गया है । **"दश पुत्र-समा कन्या यस्य शीलवती सुता ।"** इसके विपरीत पुत्र भी कुल धर्म को नष्ट करने वाला हो सकता है । "जिमि कपूत के ऊपजे कुल सद्धर्म नसाहिं ।" इसलिए पुत्र या कन्या जो भी हो, उसके भीतर के अवांछनीय संस्कारों का निवारण करके श्रेष्ठतम की दिशा में प्रवाह पैदा करने की दृष्टि से नामकरण संस्कार कराया जाना चाहिए ।यह संस्कार कराते समय शिशु के अभिभावकों और उपस्थित व्यक्तियों के मन में शिशु को जन्म देने के अतिरिक्त उन्हें श्रेष्ठ व्यक्तित्व सम्पन्न बनाने के महत्त्व का बोध होता है । भाव भरे वातावरण में प्राप्त सूत्रों को क्रियान्वित करने का उत्साह जागता है ।

आमतौर से यह संस्कार जन्म के दसवें दिन किया जाता है । उस दिन जन्म सूतिका का निवारण- शुद्धिकरण भी किया जाता है । यदि प्रसूति कार्य घर में ही हुआ हो, तो उस कक्ष को लीप-पोतकर, धोकर स्वच्छ करना चाहिए । शिशु तथा माता को भी स्नान कराके नये स्वच्छ वस्त्र पहनाये जाते हैं । उसी के साथ यज्ञ एवं संस्कार का क्रम वातावरण में दिव्यता घोलकर अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति करता है । यदि दसवें दिन किसी कारण नामकरण

संस्कार न किया जा सके । तो अन्य किसी दिन, बाद में भी उसे सम्पन्न करा लेना चाहिए। घर पर, प्रज्ञा संस्थानों अथवा यज्ञ स्थलों पर भी यह संस्कार कराया जाना उचित है ।

विशेष व्यवस्था- यज्ञ पूजन की सामान्य व्यवस्था के साथ ही नामकरण संस्कार के लिए विशेष रूप से इन व्यवस्थाओं पर ध्यान देना चाहिए।

१- यदि दसवें दिन नामकरण घर में ही कराया जा रहा है, तो वहाँ समय पर स्वच्छता का कार्य पूरा कर लिया जाए तथा शिशु एवं माता को समय पर संस्कार के लिए तैयार कराया जाए।

२- अभिषेक के लिए कलश-पल्लव युक्त हो, तथा कलश के कण्ठ में कलावा बँधा हो, रोली से ॐ, स्वस्तिक आदि शुभ चिह्न बने हों ।

३- शिशु की कमर में बाँधने के लिए मेखला सूती या रेशमी धागे की बनी होती है । न हो, तो कलावा के सूत्र की बना लेनी चाहिए।

४- मधु प्राशन के लिए शहद तथा चटाने के लिए चाँदी की चम्मच । वह न हो, तो चाँदी की सलाई या अँगूठी अथवा स्टील की चम्मच आदि का प्रयोग किया जा सकता है ।

५- संस्कार के समय जहाँ माता शिशु को लेकर बैठे, वहीं वेदी के पास थोड़ा सा स्थान स्वच्छ करके, उस पर स्वस्तिक चिह्न बना दिया जाए। इसी स्थान पर बालक को भूमि स्पर्श कराया जाए।

६- नाम घोषणा के लिए थाली, सुन्दर तख्ती आदि हो। उस पर निर्धारित नाम पहले से सुन्दर ढङ्ग से लिखा रहे । चन्दन रोली से लिखकर, उस पर चावल तथा फूल की पंखुड़ियाँ चिपकाकर, साबूदाने हलके पकाकर, उनमें रङ्ग मिलाकर, उन्हें अक्षरों के आकार में चिपकाकर, स्लेट या तख्ती पर रङ्ग - बिरङ्गी खड़िया के रङ्गों से नाम लिखे जा सकते हैं। थाली, ट्रे या तख्ती को फूलों से सजाकर उस पर एक स्वच्छ वस्त्र ढककर रखा जाए। नाम घोषणा के समय उसका अनावरण किया जाए।

७- विशेष आहुति के लिए खीर, मिष्टान्न या मेवा जिसे हवन सामग्री में मिलाकर आहुतियाँ दी जा सकें।

८- शिशु को माँ की गोद में रहने दिया जाए। पति उसके बायीं ओर बैठे । यदि शिशु सो रहा हो या शान्त रहता है, तो माँ की गोद में प्रारम्भ से

ही रहने दिया जाए। अन्यथा कोई अन्य उसे सम्भाले, केवल विशेष कर्मकाण्ड के समय उसे वहाँ लाया जाए। निर्धारित क्रम से मंगलाचरण, षट्कर्म, संकल्प, यज्ञोपवीत परिवर्तन, कलावा, तिलक एवं रक्षा- विधान तक का क्रम पूरा करके विशेष कर्मकाण्ड प्रारम्भ किया जाए।

॥अभिषेक॥

शिक्षण एवं प्रेरणा - बालक तो अनेक योनियों में भ्रमण करता हुआ मानव शरीर में आया है, इसलिए उसके मन पर पाशविक संस्कारों की छाया रहनी स्वाभाविक है। इसको हटाया जाना आवश्यक है। यदि पशु प्रवृत्ति बनी रही, तो मनुष्य-शरीर की विशेषता ही क्या रही। जिनके अन्तःकरण में मानवीय आदर्शों के प्रति निष्ठा भावना है, उन्हीं को सच्चे अर्थों में मनुष्य कहा जा सकता है। इन्द्रिय-परायणता, स्वार्थपरता, निरुद्देश्यता, भविष्य के बारे में न सोचना, असंयम जैसे दोषों को पशुवृत्ति कहते हैं। इनका जिनमें बाहुल्य है, वे नरपशु हैं। अपना नवजात शिशु नर-पशु नहीं रहना चाहिए, उसके चिर संचित कुसंस्कारों को दूर किया ही जाना चाहिए। इस परिशोधन के लिए संस्कार मण्डप में प्रवेश करते ही सर्वप्रथम बालक का अभिषेक किया जाता है।

क्रिया और भावना- सिंचन के लिए तैयार कलश में मुख्य कलश का थोड़ा- सा जल या गंगाजल मिलाएँ। मन्त्र के साथ बालक का संस्कार कराने वालों तथा उपकरणों पर उसका सिंचन किया जाए।

भावना करें कि जो जीवात्मा शिशु रूप में ईश्वर प्रदत्त सुअवसर का लाभ लेने अवतरित हुई है, उसका अभिनन्दन किया जा रहा है। ईश्वरीय योजना के अनुरूप शिशु में उत्तरदायित्वों के निर्वाह की क्षमता पैदा करने के लिए श्रेष्ठ संस्कारों तथा सत् शक्तियों के स्रोत से, उस पर अनुदानों की वृष्टि हो रही है। उपस्थित सभी परिजन अपनी भावनात्मक संगति से उस प्रक्रिया को अधिक प्राणवान् बना रहे हैं।

ॐ आपो हिष्ठा मयोभुवः, ता नऽऊर्जे दधातन, महे रणाय चक्षसे। ॐ यो वः शिवतमो रसः, तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः। ॐ तस्माऽअरंगमामवो, यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जन यथा च नः॥ -३६.१४-१६

॥मेखला बन्धन॥

शिक्षण और प्रेरणा - संस्कार के लिए तैयार मेखला शिशु की कमर में बाँधी जाती है । इसे कहीं-कहीं कौंधनी, करधनी, छूटा आदि भी कहा जाता है ।यह कटिबद्ध रहने का प्रतीक है । फौजी जवान, पुलिस के सिपाही कमर में पेटी बाँधकर अपनी ड्यूटी पूरी करते हैं । शरीर सुविधा की दृष्टि से उसकी अनुपयोगिता भी हो सकती है; पर भावना की दृष्टि से कमर में बँधी हुई पेटी चुस्ती, मुस्तैदी, निरालस्यता, स्फूर्ति, तैयारी एवं कर्त्तव्य- पालन के लिए तत्परता का प्रतिनिधित्त्व करती है । यह गुण मनुष्य का प्रारम्भिक गुण है । यदि इसमें कमी रहे तो उसे गयी-गुजरी, दीन-हीन, स्थिति में पड़े रहकर अविकसित जीवन व्यतीत करना पड़ेगा । आलसी- प्रमादी व्यक्ति अपनी प्रतिभा एवं क्षमता को यों ही बर्बाद करते रहते हैं । ढीला-पोला स्वभाव आदमी को कहीं का नहीं रहने देता, उसके सब काम अधूरे और अस्त-व्यस्त रहते हैं, फलस्वरूप कोई आशाजनक सत्परिणाम भी नहीं मिल पाता ।

इस दोष का बीजांकुर बच्चे में जमने न पाए, इसकी सावधानी रखने के लिए जागरूकता एवं तत्परता का प्रतिनिधित्त्व करने के उद्देश्य से नामकरण संस्कार के अवसर पर कमर में मेखला बाँध दी जाती है । अभिभावक जब-जब इस मेखला को देखें तब-तब यह स्मरण कर लिया करें कि बच्चे को आलस्य-प्रमाद के दोष-दुर्गुण से बचाये रखने के लिए उन्हें प्राण-पण से प्रयत्न करना है । जैसे-जैसे बच्चा समझदार होता चले, वैसे-वैसे उसके स्वभाव में मुस्तैदी, श्रमशीलता एवं काम में मनोयोगपूर्वक जुटने का गुण बढ़ाते चलना चाहिए । इस सम्बन्ध में जो हानि- लाभ हो सकते हैं, उन्हें भी समय-समय पर बताते- सिखाते, समझाते रहना चाहिए ।

क्रिया और भावना- मन्त्र के साथ शिशु के पिता उसकी कमर में मेखला बाँधें । भावना करें कि इस संस्कारित सूत्र के साथ बालक में तत्परता, जागरूकता, संयमशीलता जैसी सत्प्रवृत्तियों की स्थापना की जा रही है ।

ॐ इयं दुरुक्तं परिबाधमाना, वर्णं पवित्रं पुनतीम आगात्।
प्राणापानाभ्यां बलमादधाना, स्वसादेवी सुभगा मेखलेयम्।

- पार० गृ० सू० २.२.८

॥मधु प्राशन॥

शिक्षण और प्रेरणा- इसमें बालक को निर्धारित उपकरण से शहद चटाया जाता है ।शहद चटाने में मधुर भाषण की शिक्षा का समावेश है । सज्जनता की पहचान किसी व्यक्ति की वाणी से ही होती है । शालीनता की परख मधुर, नम्र, प्रिय, शिष्टता से भरी हुई वाणी को सुनकर ही की जा सकती है । इसी गुण के आधार पर दूसरों का स्नेह, सद्भाव एवं सहयोग प्राप्त होता है । वशीकरण मन्त्र मधुर भाषण ही होता है । कोयल की प्रशंसा और कौए की निन्दा उनका रङ्ग-रूप एकसा होने पर भी वाणी सम्बन्धी अन्तर के कारण ही होती है ।चाँदी-रजत सफेद, शुभ्र होती है । उसे पवित्रता-निर्विकारिता का प्रतीक माना जाता है । पवित्रता, निर्विकारिता के आधार पर वाणी में मधुरता हो, स्वार्थी- धूर्तों जैसी न हो- इसलिए चाँदी का प्रतीक प्रयुक्त होता है ।

क्रिया और भावना- मन्त्रोच्चार के साथ थोड़ा- सा शहद निर्धारित उपकरण से बालक को चटाया जाए। घर के किसी बुजुर्ग या उपस्थित समुदाय में से किन्हीं चरित्र निष्ठ संभ्रांत व्यक्ति द्वारा भी यह कार्य कराया जा सकता है । भावना की जाए कि सभी उपस्थित परिजनों के भाव संयोग से बालक की जिह्वा में शुभ, प्रिय, हितकारी, कल्याणप्रद वाणी के संस्कार स्थापित किये जा रहे हैं ।

ॐ प्रते ददामि मधुनो घृतस्य, वेदं सवित्रा प्रसूतं मघोनाम् ।
आयुष्मान् गुप्तो देवताभिः, शतं जीव शरदो लोके अस्मिन् ।

-आश्व० गृ० सू० १.१५.१

॥ सूर्य नमस्कार ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा - सूर्य गतिशीलता, तेजस्विता प्रकाश एवं उष्णता का प्रतीक है । उसकी किरणें इस संसार में जीवन-संचार करती हैं । बालक में भी इन गुणों का विकास होना चाहिए । सूर्य निरन्तर चलता रहता है, उसे विश्राम का अवकाश नहीं, अपने कर्त्तव्य से एक क्षण के लिए भी विमुख नहीं होता । न बहुत जल्दबाजी, उतावली करता है और न थककर शिथिलता,

उदासीनता, उपेक्षा बरतता है । जो कर्त्तव्य निर्धारित कर लिया, उस पर पूर्ण दृढ़ता एवं समस्वरता के साथ चलता रहता है । मनुष्य की क्रिया पद्धति भी यही होनी चाहिए । जो पक्ष चुन लिया, जो कार्यक्रम अपना लिया, उसमें न तो शिथिलता बरतनी चाहिए और न ही अधीर होकर उतावली, जल्दी करनी चाहिए । धैर्य, स्थिरता और दृढ़ निश्चय के साथ निरन्तर आगे चलते रहना है । सूर्यदर्शन के साथ बालक को यह प्रेरणा दी जाती है कि उसे भावी जीवन में आलसी, ढीला-पोला या अनियमित नहीं बनना है । नियमितता, लगन, परिश्रम के द्वारा ही वह कुछ कर सकेगा, इसलिए सूर्य को वह देखे और उसकी रीति-नीति का अनुसरण करे ।अभिभावक शिशु के मन- मस्तिष्क के पूर्ण विकास के लिए उत्तम प्रेरणाएँ एवं साधन प्रदान करते रहें ।

क्रिया और भावना - यदि सूर्य को देखने की स्थिति हो, तो माता शिशु को बाहर ले जाकर सूर्य दर्शन कराए। सूर्यदेव को नमस्कार करें । किसी कारण संस्कार के समय सूर्य दृश्यमान न हो, तो उनका ध्यान करके नमस्कार करें ।भावना की जाए कि माँ अपने स्नेह के प्रभाव से बालक में तेजस्विता के प्रति आकर्षण पैदा कर रही है, बालक में तेजस्वी जीवन के प्रति सहज अनुराग पैदा हो रहा है । इसे सब मिलकर स्थिर रखेंगे, बढ़ाते रहेंगे ।

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शत ँ्, शृणुयाम शरदः शतं, प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः, स्याम शरदः शतं, भूयश्च शरदः शतात्।। - ३६.२४

।।भूमि पूजन-स्पर्शन ।।

शिक्षण और प्रेरणा - बालक को सूतक के दिनों में जमीन पर नहीं बिठाते । नामकरण के बाद उसे भूमि पर बिठाते हैं, इससे पूर्व धरती का पूजन किया जाता है । प्रथम बार उस सम्पूजित भूमि पर बालक को बिठाते हैं । भूमि को लीपकर चौक पूरते हैं और उसका अक्षत, पुष्प, गन्ध, धूप आदि से पूजन करते हैं ।भूमि को केवल मिट्टी ही न मानकर उसे देवभूमि, जन्मभूमि, धरती माता, भारतमाता मानकर सदैव उसके प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति का परिचय देना चाहिए । विश्व-माता, प्राणि-माता, भारत- माता, धरती-माता का

वही सम्मान होना चाहिए, जो शरीर को जन्म देने वाली माता का होता है। अपनी सगी माता की तरह मातृभूमि की सेवा के लिए भी मनुष्य के मन में भावनाएँ रहनी चाहिए। मातृभूमि, विश्व वसुधा की रक्षा और सेवा के लिए जिससे जितना त्याग एवं प्रयत्न बन सके, करना चाहिए।

देशभक्ति से मतलब समाज सेवा से ही है। देशवासी, साथी और सहयोगियों की सुविधा के लिए कुछ कार्य करना चाहिए। अपना पेट पालने, अपनी ही उन्नति और सुविधा चाहने की प्रवृत्ति ओछे लोगों में पाई जाती है। श्रेष्ठ व्यक्ति अपनी आन्तरिक महानता के अनुरूप घर तक ही अपनी ममता सीमित नहीं रखते, वरन् उसे व्यापक बनाते हैं। सुदूरवर्ती व्यक्ति भी अपने ही बन्धुबान्धव प्रतीत होते हैं और "वसुधैव कुटुम्बकम्" की निष्ठा जम जाती है। ऐसे देशभक्त व्यक्ति, समाज सेवा एवं लोकमङ्गल के कार्यों को अपने निजी लाभ एवं स्वार्थ से भी बढ़कर मानते हैं, इन्हीं की यशोगाथा इस संसार को सुरक्षित करती रहती है। भूमि स्पर्श करते हुए बालक को मातृभूमि की सेवा देशभक्ति की भावनाएँ जाग्रत् करने की शिक्षा दी जाती है।

धरती माता की क्षमाशीलता प्रसिद्ध है। वह सबका भार अपने ऊपर उठाती है, अपनी छाती में अन्न, फल, रस, खनिज आदि विविध-विध पदार्थ उपजाकर प्राणियों का पालन करती है। लोग मल-मूत्र आदि से उसे गन्दा करते हैं, तो भी रुष्ट नहीं होती और वह सब सहन करती है। अपना अधिकांश भाग जल की शीतलता से भरे रहती है। विशाल सम्पदा की स्वामिनी होने पर इतराती नहीं, पुरुषार्थियों को उदारतापूर्वक अपनी सम्पत्ति का उपहार देती है। अपनी सभी सन्तानों को गोदी में लेकर अपनी निश्चित रीति-नीति के अनुसार गतिशील रहती है। भीतरी अग्नि को भीतर ही छिपी रहने देती है और बाहर से ठण्डी ही रहती है। भूमि में से पौधे आहार खींचते और बढ़ते हैं; परन्तु माली उनकी बाढ़ को सही दिशा देने के लिए उनकी साज-सँभाल के साथ-साथ काट-छाँट भी करता है। मातृभूमि के अनुदानों से बालक के विकास में भी माली जैसी सावधानी अभिभावकों को बरतनी चाहिए।

क्रिया और भावना - शिशु के माता-पिता हाथ में रोली, अक्षत, पुष्प आदि लेकर मन्त्र के साथ भूमि का पूजन करें। भावना की जाए कि धरती माता से इस क्षेत्र में बालक के हित के लिए श्रेष्ठ संस्कारों को घनीभूत करने

की प्रार्थना की जा रही है। अपने आवाहन-पूजन से उस पुण्य-प्रक्रिया को गति दी जा रही है। मन्त्र पूरा होने पर पूजन सामग्री भूमि पर चढ़ाई जाए।

ॐ मही द्यौः पृथिवी च न ऽ, इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः॥ ॐ पृथिव्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि। ८.३२

स्पर्श क्रिया और भावना - माता बालक को मन्त्रोच्चार के साथ उस पूजित भूमि पर लिटा दे। सभी लोग हाथ जोड़कर भावना करें कि जैसे माँ अपनी गोद में बालक को अपने स्नेह-पुलकन के साथ जाने-अनजाने में श्रेष्ठ प्रवृत्ति और गहरा सन्तोष देती रहती है-वैसे ही माता वसुन्धरा इस बालक को अपना लाल मानकर गोद में लेकर धन्य बना रही है।

ॐ स्योना पृथिवि नो, भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथाः। अप नः शोशुचदघम्॥ - ३५.२१

॥ नाम घोषणा ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा - यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि मनुष्य को जिस तरह के नाम से पुकारा जाता है, उसे उसी प्रकार की छोटी-सी अनुभूति होती रहती है। यदि किसी को कूड़ेमल, घूरेमल, नकछिद्दा, नत्थो, घसीटा आदि नामों से पुकारा जायेगा, तो उसमें हीनता के भाव ही जागेंगे। नाम सार्थक बनाने की कई हलकी, अभिलाषाएँ मन में जगती रहती हैं। पुकारने वाले भी किसी के नाम के अनुरूप उसके व्यक्तित्व की हल्की या भारी कल्पना करते हैं। इसलिए नाम का अपना महत्त्व है। उसे सुन्दर ही चुना और रखा जाए।

बालक का नाम रखते समय निम्न बातों का ध्यान रखें।

(१) गुणवाचक नाम रखे जाएँ जैसे-सुन्दरलाल, सत्यप्रकाश, धर्मवीर, मृत्युंजय, विजयकुमार, तेजसिंह, शूरसिंह, विद्याभूषण, ज्ञानप्रकाश, विद्याराम आदि। इसी तरह बालिकाओं के नाम-दया, क्षमा, प्रभा, करुणा, प्रेमवती, सुशीला, माया, शान्ति, सत्यवती, प्रतिभा, विद्या आदि।

(२) महापुरुषों एवं देवताओं के नाम पर भी बच्चों के नाम रखे जा

सकते हैं। जैसे रामअवतार, कृष्णचन्द्र, शिवकुमार, गणेश, सवितानन्दन, विष्णुप्रसाद, लक्ष्मण, भरत, याज्ञवल्क्य, पाराशर, सुभाष, रवीन्द्र, बुद्ध, महावीर, हरिश्चन्द्र, दधीचि आदि। लड़कियों के नाम-कौशल्या, सुमित्रा, देवकी, पार्वती, दमयन्ती, पद्मावती, लक्ष्मी, कमला, सरस्वती, सावित्री, गायत्री, मदालसा, सीता, उर्मिला, अनसूया आदि।

(३) प्राकृतिक विभूतियों के नाम पर भी बच्चों के नाम रखे जा सकते हैं। जैसे-रजनीकान्त, अरुणकुमार, रत्नाकर, हिमाचल, घनश्याम, वसन्त, हेमन्त, कमल, गुलाब, चन्दन, पराग आदि। लड़कियों के नाम-उषा, रजनी, सरिता, मधु, गंगा, यमुना, त्रिवेणी, वसुन्धरा, सुषमा आदि। लड़की और लड़कों के नामों की एक बड़ी लिस्ट बनाई जा सकती है, उसी में से छाँटकर लड़के और लड़कियों के उत्साहवर्धक, सौम्य एवं प्रेरणाप्रद नाम रखने चाहिए। समय-समय पर बालकों को यह बोध भी कराते रहना चाहिए कि उनका यह नाम है, इसलिए गुण भी अपने में वैसे ही पैदा करने चाहिए।

क्रिया और भावना - मन्त्रोच्चार के साथ नाम से सज्जित थाली या तख्ती पर से वस्त्र हटाया जाए। सबको दिखाया जाए। यह कार्य आचार्य या कोई सम्माननीय व्यक्ति करे। भावना की जाए कि यह घोषित नाम ऐसे व्यक्तित्व का प्रतीक बनेगा, जो सबका गौरव बढ़ाने वाला होगा।

ॐ मेधां ते देवः सविता मेधां देवी सरस्वती।
मेधां ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ॥ -आश्व० गृ० १.१५.२

मन्त्र पूरा होने पर सबको नाम दिखाएँ और तीन नारे लगवाएँ-

(प्रमुख कहे) (सब कहें)

१. शिशु........ चिरंजीवी हो। (तीन बार कहें)
२ शिशु........ धर्मशील हो।(")
३ शिशु........ प्रगतिशील हो।(")

॥ परस्पर परिवर्तन ॥

शिक्षण और प्रेरणा - माता अपने रक्त-मांस से उदरस्थ बालक के शरीर का निर्माण करती है। अपना श्वेत रक्त-दूध पिलाकर उसका पालन करती है, इसलिए इस उत्पादन में उसका श्रेय अधिक है। बालक माता के

समीप ही अधिक रहता है, इसलिए उसके क्रिया-कलापों एवं भावनाओं से प्रेरणा भी अधिक लेता है, यह बात ठीक है; पर साथ ही यह भी निश्चित है कि अकेली माता उसका सर्वांगीण विकास कर सकने में समर्थ नहीं हो सकती। आहार, चिकित्सा, खेल, शिक्षा, संस्कार आदि का बहुत कुछ उत्तरदायित्व परिवार के अन्य लोगों पर भी समान रूप से है। इस परिवर्तन की क्रिया द्वारा घर के सभी लोग क्रमश: बालक को अपनी गोदी में लेते हैं और यह उत्तरदायित्व अनुभव करते हैं कि इस बालक के स्वस्थ विकास में सभी शक्ति भर योगदान करेंगे। वेशक माता के बाद अधिक उत्तरदायित्व पिता पर आता है; पर घर के अन्य सदस्य भी उससे मुक्त नहीं रह सकते। साझे की खेती की तरह बालकों के निर्माण में घर के सब लोगों का समान योगदान रहना चाहिए।

क्रिया और भावना - मन्त्रोच्चारण प्रारम्भ के साथ माता बालक को पहले उसके पिता की गोद में दे। पिता अन्य परिजनों को दे। शिशु एक-दूसरे के हाथ में जाता स्नेह-दुलार पाता हुआ पुन: माँ के पास पहुँच जाए। भावना की जाए कि बालक सबका स्नेह पात्र बन रहा है, सबके स्नेह-अनुदानों का अधिकार पा रहा है।

ॐ अथ सुमंगल नामानᳯ्ह्वयति,बहुकार श्रेयस्कर भूयस्करेति।
यऽएव वन्नामाभवत्ति,कल्याणमेवैतन्मानुष्यै वाचो वदति॥

॥ लोक दर्शन ॥

शिक्षण और प्रेरणा - कोई वयोवृद्ध व्यक्ति बच्चे को गोदी में लेकर घर से बाहर ले जाते हैं और उसे बाहर का खुला संसार, खुला वातावरण दिखाते हैं। बालक घर में ही कूपमण्डूक न बना रहे, वरन् वह जगती के विस्तृत प्रांगण में भी अपने को गतिशील बनाए, प्रकृति की गोद में रहे, विशाल वातावरण में बढ़े, इसके लिए बाहर खुले वातावरण में उसे घुमाया जाता है। विनोद, क्रीड़ा एवं ज्ञान संवर्धन द्वारा सर्वांगीण विकास का द्वार खोला जाता है।यह संसार विराट् ब्रह्म है। इसे प्रत्यक्ष परमेश्वर समझना चाहिए। भगवान् राम ने कौशल्या और काकभुशुण्डि को एवं भगवान् कृष्ण ने यशोदा तथा अर्जुन को विराट् रूप दिखाते हुए विश्व ब्रह्माण्ड का ही साक्षात्कार कराया

था, जो इस जगत् को ईश्वर की विशाल शक्ति के रूप में देखने लगा, समझना चाहिए कि उसने ईश्वर का दर्शन कर लिया ।

क्रिया और भावना - मन्त्रोच्चारण के साथ नियुक्त व्यक्ति उसे गोद में उठायें-खुले में जाकर विभिन्न दृश्य दिखाकर ले आएँ । भावना की जाए कि बालक में इस विराट् विश्व को सही दृष्टि से देखने, समझने एवं प्रयुक्त करने की क्षमता देव अनुग्रह और सद्भावना के सहयोग से प्राप्त हो रही है ।

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे , भूतस्य जातः पतिरेकऽ आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां, कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

-१३.४

इसके बाद अग्नि स्थापन से लेकर गायत्री मन्त्र की आहुतियाँ पूरी करने का क्रम चलाया जाए, तब विशेष आहुतियाँ दी जाएँ ।

॥ विशेष आहुति ॥

क्रिया और भावना - हवन सामग्री के साथ निर्धारित मेवा-मिष्टान्न खीर आदि मिलाकर पाँच आहुतियाँ नीचे लिखे मन्त्र से दी जाएँ । भावना की जाए कि विशेष उद्देश्य के लिए विशेष वातावरण का निर्माण हो रहा है ।

ॐ भूर्भुवः स्वः । अग्निर्ऋषिः पवमानः, पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।
तमीमहे महागयं स्वाहा । इदम् अग्नये पवमानाय इदं न मम ।

—ऋ० ९.६६.२०

॥ बाल प्रबोधन ॥

शिक्षण और प्रेरणा - शिशु के विकास के लिए जितना आवश्यक स्नेह-दुलार है, उतना ही आवश्यक है, उसे समयानुकूल उद्बोधन देना । यह नहीं सोचना चाहिए कि बालक क्या समझता है ? यह बड़ी भ्रांति है । समझने-समझाने के लिए भाषा भी एक माध्यम है; पर वही सब कुछ नहीं, स्नेह-स्पन्दनों और विचार-तरङ्गों के सहारे मनुष्य अधिक गहराई से समझता है । भाषा भी उसी को स्पष्ट करती है । बालक भाषा न भी समझे, तो भी मूल स्पन्दनों के प्रति बहुत संवेदनशील होता है । अपने मनोरंजन या खीझ की प्रतिक्रिया स्वरूप उसके साथ फूहड़ वार्तालाप नहीं करना चाहिए, उसे

सम्बोधित करके प्रबोधन देने का शुभारम्भ इस संस्कार के समय किया जाता है, जिसे विचारशीलों, हितैषियों द्वारा आगे भी चलाते रहना चाहिए ।

क्रिया और भावना - आचार्य बालक को गोद में लें । उसके कान के पास नीचे वला मन्त्र बोलें । सभी लोग भावना करें कि भाव-भाषा को शिशु हृदयंगम कर रहा है और श्रेष्ठ सार्थक जीवन की दृष्टि प्राप्त कर रहा है ।

ॐ शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि,
संसारमाया परिवर्जितोऽसि ।
संसारमायां त्यज मोहनिद्रां,
त्वां सद्गुरुः शिक्षयतीति सूत्रम् ।।

प्रबोधन के बाद पूर्णाहुति आदि शेष कृत्य पूरे किये जाएँ । विसर्जन के पूर्व आचार्य, शिशु एवं अभिभावकों को पुष्प, अक्षत, तिलक सहित आशीर्वाद दें, फिर सभी मंगल मन्त्रों के साथ अक्षत, पुष्प वृष्टि करके आशीर्वाद दें ।

आशीर्वचन-आचार्य बालक-अभिभावक को आशीर्वाद दें ।नीचे लिखे मन्त्र के अतिरिक्त आशीर्वचन के अन्य मन्त्रों का पाठ भी करना चाहिए ।

हे बालक ! त्वमायुष्मान् वर्चस्वी, तेजस्वी श्रीमान् भूयाः ।।

* * *

॥ अन्नप्राशन संस्कार ॥

संस्कार प्रयोजन - बालक को जब पेय पदार्थ, दूध आदि के अतिरिक्त अन्न देना प्रारम्भ किया जाता है, तो वह शुभारम्भ यज्ञीय वातावरण युक्त धर्मानुष्ठान के रूप में होता है। इसी प्रक्रिया को अन्नप्राशन संस्कार कहा जाता है।बालक के दाँत निकल आने पर उसे पेय के अतिरिक्त खाद्य दिये जाने की पात्रता का संकेत है। तदनुसार अन्नप्राशन ६ माह की आयु के आस-पास कराया जाता है।

अन्न का शरीर से गहरा सम्बन्ध है। मनुष्यों और प्राणियों का अधिकांश समय साधन-आहार व्यवस्था में जाता है। उसका उचित महत्त्व समझकर उसे सुसंस्कार युक्त बनाकर लेने का प्रयास करना उचित है। अन्नप्राशन संस्कार में भी यही होता है। अच्छे प्रारम्भ का अर्थ है- आधी सफलता। अस्तु, बालक के अन्नाहार के क्रम को श्रेष्ठतम संस्कारयुक्त वातावरण में करना अभीष्ट है।

यजुर्वेद ४० वें अध्याय का पहला मन्त्र, **'तेन त्यक्तेन भुंजीथा'** (त्याग के साथ भोग करने) का निर्देश करता है। हमारी परम्परा यही है- भोजन थाली में आते ही चींटी, कुत्ता आदि का भाग उसमें से निकालकर पंचबलि करते हैं। भोजन ईश्वर को समर्पण कर या अग्नि में आहुति देकर तब खाते हैं। होली का पर्व तो इसी प्रयोजन के लिए है। नई फसल में से एक दाना भी मुख में डालने से पूर्व, पहले उसकी आहुतियाँ होलिका यज्ञ में देते हैं, तब उसे खाने का अधिकार मिलता है। किसान फसल मींज-माँड़कर जब अन्नराशि तैयार कर लेता है, तो पहले उसमें से एक टोकरी भर कर धर्म कार्य के लिए अन्न निकालता है, तब घर ले जाता है। त्याग के संस्कार के साथ अन्न को प्रयोग करने की दृष्टि से ही धर्मघट-अन्नघट रखने की परिपाटी प्रचलित है।भोजन के पूर्व बलिवैश्व देव प्रक्रिया भी अन्न को यज्ञीय संस्कार देने के लिए की जाती है।

विशेष व्यवस्था - यज्ञ एवं देवपूजन आदि की व्यवस्था के साथ अन्नप्राशन के लिए नीचे लिखी व्यवस्था विशेष रूप से

बनाकर रखनी चाहिए।

अन्न प्राशन के लिए प्रयुक्त होने वाली कटोरी तथा चम्मच। चाटने के लिए चाँदी का उपकरण हो सके, तो अच्छा है।

अलग पात्र में बनी हुई चावल या सूजी (रवा) की खीर, शहद, घी, तुलसीदल तथा गंगाजल— ये पाँच वस्तुएँ तैयार रखनी चाहिए।

विशेष कर्मकाण्ड - निर्धारित क्रम में मंगलाचरण से लेकर रक्षाविधान तक के क्रम पूरे करके विशेष कर्मकाण्ड कराया जाता है। उसमें - (१) पात्रपूजन, (२) अन्न-संस्कार, (३) विशेष आहुति तथा (४) क्षीर प्राशन सम्मिलित है।

॥ पात्र-पूजन ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा - पात्र, पात्रता का प्रतीक होता है। ईश्वरीय अनुदान या लौकिक सफलता अभीष्ट हो, तो पात्रता प्राप्त करनी पड़ती है, इसलिए पात्र पूजनीय है।संस्कारयुक्त आहार कुसंस्कारयुक्त पात्र में नहीं रखा जा सकता है। दवा सामान्य पात्र में नहीं रखी जा सकती, उसे यन्त्रों में स्टरलाइज, आटोक्लेप विधि से स्वच्छ बनाया जाता है। संस्कारयुक्त अन्न के लिए माध्यम-पात्र संस्कारयुक्त बनाने के लिए पूजन कृत्य किया जाता है।

चटाने के लिए यथासम्भव चाँदी का उपकरण लेते हैं। चाँदी शुभ निर्विकारिता की प्रतीक है। जल्दी विकारग्रस्त नहीं होती। ऐसे ही माध्यमों से बालक तक आहार पहुँचना चाहिए।

क्रिया और भावना - मन्त्रोच्चार के साथ अभिभावक पात्रों पर चन्दन, रोली से स्वस्तिक बनाएँ-अक्षत पुष्प चढ़ाएँ।

भावना करें कि पवित्र वातावरण के प्रभाव से पात्रों में दिव्यता की स्थापना की जा रही है, जो बालक के लिए रखे गये अन्न को दिव्यता प्रदान करेगी-उसकी रक्षा करेगी।

ॐ हिरणमयेन पात्रेण, सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु, सत्यधर्माय दृष्टये॥ - ईश० उ० १५

॥ अन्न संस्कार ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा - शिशु को पेय से अन्न पर लाते समय लेह्य (चाटने योग्य) खीर दी जाती है । यह पेय और खाद्य के बीच की स्थिति है अर्थात् उसकी आयु , पाचन- क्षमता तथा आवश्यकता को ध्यान में रखकर ही खाद्य का चयन किया जाना चाहिए । जब चाहे, सो खिलाते रहना ठीक नहीं ।

खीर के साथ मधु , घृत, तुलसीदल तथा गंगाजल मिलाते हैं । ये सभी पौष्टिक, रोगनाशक तथा पवित्र आध्यात्मिक गुण संवर्धक हैं । विशेष रूप से खीर सुपाच्य-सन्तुलित आहार, मधु-मधुरता, घी-स्नेह, तुलसी-विकारनाशक तथा गंगा जल पवित्रता का प्रतीक है । खाद्य में सभी सुसंस्कार जाग्रत् किये जाने चाहिए ।पात्र में सभी वस्तुएँ मन्त्रोच्चार के साथ मिलाई जाती हैं । भोजन सिद्ध करते (पकाते, तैयार करते) समय उसमें सद्‌भावों, सद्‌विचारों और श्रेष्ठ सङ्कल्पों का सन्निवेश कराया जाना चाहिए । अन्न-जल में भावनाओं के अधिग्रहण की पर्याप्त क्षमता होती है । इसीलिए भोजन पकाते, परोसते समय प्रसन्न मन तथा ईश्वर के प्रति समर्पण का भाव रखने का विधान है ।

प्रयोग के लिए आवश्यकता के अनुसार मुख्य पात्र से सभी वस्तुएँ निकालते हैं । भावना यही है कि अपनी आवश्यकतानुसार ही पदार्थ लिया जाए । अधिक ले लेने से या तो छोड़ने से-उसका तिरस्कार होगा या फिर खाने से पेट का सन्तुलन बिगड़ेगा । दोनों ही स्थितियों से बचकर सही मात्रा में प्रसाद रूप भोजन लेना और पाना चाहिए ।

क्रिया और भावना - नीचे लिखे मन्त्रों के पाठ के साथ अन्न प्राशन के लिए रखे गये पात्र में एक-एक करके भावनापूर्वक सभी वस्तुएँ डाली-मिलाई जाएँ ।पात्र में खीर डालें । मात्रा इतनी लें कि ५ आहुतियाँ करने के बाद भी शिशु को चटाने के लिए कुछ बची रहे । भावना करें कि यह अन्न दिव्य संस्कारों को ग्रहण करके बालक में उन्हें स्थापित करने जा रहा है ।

ॐ पयः पृथिव्यां पयऽओषधीषु , पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः ।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥ - यजु० १८.३६

पात्र की खीर के साथ थोड़ा शहद मिलाएँ । भावना करें कि यह मधु उसे सुस्वादु बनाने के साथ-साथ उसमें मधुरता के संस्कार उत्पन्न कर रहा है । इससे शिशु के आचरण, वाणी- व्यवहार सभी में मधुरता बढ़ेगी ।

ॐ मधुवाता ऋतायते, मधुक्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। ॐ मधु नक्तमुतोषसो, मधुमत्पार्थिव ꣳ रजः। मधुद्यौरस्तु नः पिता। ॐ मधुमान्नो वनस्पतिः, मधुमाँ२ऽअस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः। - १३.२७-२९

पात्र में थोड़ा घी डालें-मन्त्र के साथ मिलाएँ। यह घी रूखापन मिटाकर स्निग्धता देगा। यह पदार्थ बालक के अन्दर शुष्कता का निवारण करके उसके जीवन में स्नेह, स्निग्धता, सरसता का संचार करेगा।

ॐ घृतं घृतपावानः, पिबत वसां वसापावानः। पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा। दिशः प्रदिशऽआदिशो विदिशऽ, उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा॥ ६.१९

पात्र में तुलसीदल के टुकड़े मन्त्र के साथ डालें। यह ओषधि शारीरिक ही नहीं आधिदैविक-आध्यात्मिक रोगों का शमन करने में भी सक्षम है। यह अपनी तरह ईश्वर को समर्पित होने के संस्कार बालक को प्रदान करेगी।

ॐ या ओषधीः पूर्वा जाता, देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।
मनै नु बभ्रूणामह ꣳ, शतं धामानि सप्त च॥ १२.७५

गंगाजल की कुछ बूँदें पात्र में डालकर मिलाएँ। पतित पावनी गंगा खाद्य की पापवृत्तियों का हनन करके उसमें पुण्य सम्वर्द्धन के संस्कार पैदा कर रही हैं। ऐसी भावना के साथ उसे चम्मच से मिलाकर एक दिल कर दें। जैसे यह सब भिन्न-भिन्न वस्तुएँ एक हो गयीं, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न श्रेष्ठ संस्कार बालक को एक समग्र श्रेष्ठ व्यक्तित्व प्रदान करें।

ॐ पंच नद्यः सरस्वतीम्, अपि यन्ति सस्रोतसः।
सरस्वती तु पंचधा, सो देशेऽभवत्सरित्॥ ३४.११

सभी वस्तुएँ मिलाकर वह मिश्रण पूजा वेदी के सामने संस्कारित होने के लिए रख दिया जाए। इसके बाद अग्नि स्थापन से लेकर गायत्री मन्त्र की आहुतियाँ पूरी करने तक का क्रम चलाया जाए।

॥ विशेष आहुति ॥

गायत्री मन्त्र की आहुतियाँ पूरी हो जाने पर पहले तैयार की गई खीर से ५ विशेष आहुतियाँ नीचे लिखे मन्त्र के साथ दी जाएँ । भावना की जाए कि वह खीर इस प्रकार यज्ञ भगवान् का प्रसाद बन रही है ।

ॐ देवीं वाचमजनयन्त देवाः, तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना, धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु स्वाहा ।
इदं वाचे इदं न मम । - ऋ० ८.१००.११

॥ अन्नप्राशन ॥

आहुतियाँ पूरी होने पर शेष खीर से बच्चे को अन्नप्राशन कराया जाए ।

शिक्षण और प्रेरणा - 'जैसा अन्न-वैसा मन' की उक्ति सर्वविदित है । **"आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः"** का शास्त्र वचन भी विज्ञजन जानते हैं । इसीलिए अन्न को संस्कारित करके देना आवश्यक है ।

अन्न के रूप, रंग, उसका स्वाद और गुण-धर्म भिन्न-भिन्न होते हैं । यह सब जानते हैं । यज्ञीय भावना द्वारा उसके संस्कारों का शोधन नवीनीकरण सम्भव है, इसीलिए अन्नप्राशन यज्ञावशिष्ट अन्न से कराया जाता है । यह एक संकेत मात्र है । यह क्रम सहज जीवन में भी रखा जाना चाहिए । बलिवैश्व एवं भोग लगाकर भोजन करने की परम्परा इसीलिए बनाई गई थी ।

गीता में कहा गया है कि "यज्ञ से बचा हुआ अन्न खाने वाला सनातन ब्रह्म की प्राप्ति करता है । ऐसा न करने वालों को तो इस जीवन में भी सद्गति नहीं मिल पाती, आगे की तो क्या कहें ?" इस उक्ति का मर्म है- अन्न वही लें, जो श्रेष्ठ संस्कारयुक्त है । बालकों के लिए सुस्वादु एवं स्वास्थ्यवर्धक आहार की तरह ही सुसंस्कारवान् अन्न जुटाने का प्रयत्न करना चाहिए ।

यज्ञ से बचा हुआ अन्न ही खाया जाए । इस तथ्य को बालक के मुख में सर्वप्रथम अन्नग्रास देते हुए समझाया जाता है । अपनी कमाई में से प्रथम सामाजिक उत्कर्ष की आवश्यकता पूरी की जानी चाहिए ।सर्वप्रथम अपनी कमाई का उपयोग अपने से भी अधिक पिछड़े हुए दुःखी, दिग्भ्रान्त लोगों को प्रकाश पहुँचाने के लिए होना चाहिए । फालतू पैसा या समय बचे, तब

कुछ शुभ कार्य के लिए दिया जा सकता है, ऐसा सोचना धर्म के विरुद्ध है। मानवता का अर्थ यह है कि प्राथमिकता लोकमंगल को मिलनी चाहिए। दान करना किसी पर अहसान करना नहीं है वरन् धर्म की-"ऐक्साइज ड्यूटी" है। उत्पादन-कर चुकाये बिना जिस तरह माल फैक्टरी से बाहर नहीं निकल सकता, उसी तरह लोकमंगल के लिए अपना आवश्यक योगदान दिये बिना शरीर, मन और धन अशुद्ध एवं अनुपयुक्त ही बने रहते हैं। इस प्रकार का अनुपयुक्त उपयोग अवांछनीय एवं धर्म विरुद्ध ही ठहराया गया है।कानून में इसके लिए दण्ड भले ही न हो, पर ईश्वरीय व्यवस्था में वह दण्डनीय है।

खीर खिलाने में इस तथ्य की ओर प्रत्येक अभिभावक का ध्यान आकर्षित किया जाता है कि वे अधिक मात्रा व अनुपयुक्त भोजन के खतरे को समझें और बच्चे को कुछ भी खिलाते समय इस सम्बन्ध में पूरी-पूरी सतर्कता बरतें। भोजन देने, कराने का उत्तरदायित्व कुछ ही व्यक्तियों पर रहना चाहिए। हर कोई जो चीज जब चाहे मुँह में न ठूँस दे, इसकी रोकथाम करना बालक की जीवन-रक्षा की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए सारे घर का वातावरण ही बदलना पड़ेगा। मिर्च-मसाले खाकर, चाय-काफी पीकर बच्चे अपनी आँतों को तथा रक्त को खराब न करें। यदि यह अभीष्ट हो, तो बच्चे के आहार में से नहीं, सारे घर के आहार में से इस प्रकार की अनुपयुक्त वस्तुओं को हटाना पड़ेगा। अन्यथा आगे-पीछे देखा-देखी उन सब चीजों को बच्चे सीख ही जायेंगे, घर में जिस प्रकार का वातावरण बना हुआ है, दूसरे लोग जिन आदतों से ग्रसित हैं, उनसे बालकों को बचाया नहीं जा सकता।

क्रिया और भावना - खीर का थोड़ा-सा अंश चम्मच से मन्त्र के साथ बालक को चटा दिया जाए। भावना की जाए कि वह यज्ञावशिष्ट खीर अमृतोपम गुणयुक्त है और बालक के शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक सन्तुलन, वैचारिक उत्कृष्टता तथा चारित्रिक प्रामाणिकता का पथ प्रशस्त करेगी।

ॐ अन्नपतेऽन्नस्य नो, देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्रप्रदातारं तारिषऽऊर्जं, नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥ ११८३

इसके बाद स्विष्टकृत् होम से लेकर विसर्जन तक के कर्म पूरे किये जाएँ। विसर्जन के पूर्व बालक को सभी लोग आशीर्वाद दें।

* * *

॥ मुण्डन (चूडाकर्म) संस्कार ॥

संस्कार प्रयोजन - इस संस्कार में शिशु के सिर के बाल पहली बार उतारे जाते हैं। लौकिक रीति यह प्रचलित है कि मुण्डन, बालक की आयु एक वर्ष की होने तक करा लें अथवा दो वर्ष पूरे होने पर तीसरे वर्ष में कराएँ।

यह समारोह इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि मस्तिष्कीय विकास एवं सुरक्षा पर इस समय विशेष विचार किया जाता है और वह कार्यक्रम शिशु पोषण में सम्मिलित किया जाता है, जिससे उसका मानसिक विकास व्यवस्थित रूप से आरम्भ हो जाए, चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते रहने के कारण मनुष्य कितने ही ऐसे पाशविक संस्कार, विचार, मनोभाव अपने भीतर धारण किये रहता है, जो मानव जीवन में अनुपयुक्त एवं अवांछनीय होते हैं। इन्हें हटाने और उस स्थान पर मानवतावादी आदर्शों को प्रतिष्ठापित किये जाने का कार्य इतना महान् एवं आवश्यक है कि वह न हो सका, तो यही कहना होगा कि आकृति मात्र मनुष्य की हुई- प्रवृत्ति तो पशु की बनी रही। ऐसे नर-पशुओं की संसार में कमी नहीं, जो चलते-बोलते तो मनुष्यों की तरह ही हैं; पर उनके आदर्श और मनोभाव पशुओं जैसे होते हैं। ईश्वर की अनुपम देन को निरर्थक गँवाने वाले इन लोगों को अभागा ही कहना पड़ता है।

जीव साँप की योनि में रहते हुए बड़ा क्रोधी होता है, अपने बिल के आस-पास किसी को निकलते देख ले तो, उस पर बड़ा क्रुद्ध होकर प्राण हरण करने वाला आक्रमण करने से नहीं चूकता। कितने ही मनुष्य उन क्रूर संस्कारों को धारण किये रहते हैं और छोटा-सा कारण होने पर भी इतने क्रुद्ध, कुपित होते हैं कि उस आवेश में सामने वाले का प्राण हरण कर लेना भी उनके लिए कठिन नहीं रहता। जिन जीवों को शूकर की योनि के अभ्यास बने हुए हैं, वे अभक्ष्य खाने में कोई सङ्कोच नहीं करते। मल-मूत्र, रक्त, माँस कुछ भी वे रुचिपूर्वक खा सकते हैं, वरन् फल, मेवा, दूध, घी जैसे सात्त्विक पदार्थों की उपेक्षा करते हुए ये उन अभक्ष्यों में ही अधिक रुचि एवं तृप्ति का अनुभव करते हैं। कुत्ते की तरह दुम हिलाने वाले, लकड़बग्घे की तरह निष्ठुर, लोमड़ी की तरह चंचल, जोंक की तरह रक्त पिपासु, कौए की तरह चालाक,

मधुमक्खियों की तरह जमाखोर, बिच्छू की तरह दुष्ट, छिपकली की तरह घिनौने कितने ही मनुष्य होते हैं। किसी का भी खेत चरने में संकोच न हो, ऐसे साँड़ कम नहीं। जिन्होंने कामुकता की उफान में लज्जा और मर्यादा को तिलांजलि दे दी, ऐसे श्वान-प्रकृति के नर -पशुओं की कमी नहीं। दूसरों के घोंसले में अपने अण्डे पालने के लिए रख जाने वाली हरामखोर कोयलें कम नहीं, जो आरामतलबी के लिए अपने शिशु-पोषण जैसे महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्यों को भुलाते हुए दूसरों का मनोरंजन करने के लिए फूल वाली डालियों पर गाती-नाचती फिरती हैं। ऐसे लोभी भौंरे जो फूल के मुरझाते ही बेवफाई के साथ मुँह मोड़ लेते हैं, मनुष्य समाज में कम नहीं हैं। शुतुरमुर्ग की तरह अदूरदर्शी, भैंसे की तरह आलसी, खटमल और मच्छरों की तरह परपीड़क, मकड़ी और मक्खियों की तरह निरर्थक मनुष्यों की यहाँ कुछ कमी नहीं।

यही प्रकृति मनुष्यों में भी रहे, तो उसका मनुष्य शरीर धारण करना निरर्थक ही नहीं, मानवता को कलंकित करने वाला ही कहा जायेगा। समझदार व्यक्तियों का सदा यह प्रयत्न रहता है कि उनके द्वारा पाली पोसी गई सन्तान ऐसी न हो। संस्कारों की प्रतिष्ठापना बालकपन में ही होती है, इसलिए हमें अपने माता-पिता की वैसी सहायता न मिलने से मानवोचित विकास करने का अवसर भले ही न मिला हो, पर अपने बालकों के सम्बन्ध में तो वैसी भूल न की जाए, उन्हें तो सुसंस्कारी बनाया ही जाए। चूड़ाकर्म, मुण्डन-संस्कार के माध्यम से किसी बालक के सम्बन्ध में उसके सम्बन्धी परिजन, शुभचिन्तक यही योजना बनाएँ कि उसे पाशविक संस्कारों से विमुक्त एवं मानवीय आदर्शवादिता से ओत-प्रोत किस प्रकार बनाया जाए?

मुण्डन का प्रतीक कृत्य किसी देव स्थल तीर्थ आदि पर इसीलिए कराया जाता है कि इस सद्‌द्देश्य में वहाँ के दिव्य वातावरण का लाभ मिल सके। यज्ञादि धार्मिक कर्मकाण्डों द्वारा इस निमित्त किये जाने वाले मानवी पुरुषार्थ के साथ-साथ सूक्ष्म सत्ता का सहयोग उभारा और प्रयुक्त किया जाता है।

विशेष व्यवस्था - इस संस्कार के लिए सामान्य व्यवस्था के साथ नीचे लिखे अनुसार विशेष तैयारी पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

(१) मस्तक लेपन के लिए यथा सम्भव गाय का दूध एवं दही पचास-पचास ग्राम भी बहुत है।

(२) कलावे के लिए लगभग छः छः इञ्च के तीन टुकड़ों के बीच में छोटे-छोटे कुश के टुकड़ों को बाँधकर रखना चाहिए।

(३) प्रज्ञा संस्थानों शाखाओं को इस उद्देश्य के लिए कैंची, छुरा अलग से रखना चाहिए। उन्हीं का पूजन कराकर नाई से केश उतरवाना चाहिए।

(४) बालक के लिए मुण्डन के बाद नवीन वस्त्रों की व्यवस्था रखनी चाहिए।

(५) बाल एकत्र करने के लिए गुँधे आटे या गोबर की व्यवस्था रखनी चाहिए।

विशेष कर्मकाण्ड- बालक एवं उसके अभिभावकों का मंगलाचरण से स्वागत करते हुए क्रमबद्ध रूप से निर्धारित प्राथमिक उपचार तथा रक्षाविधान तक का क्रम पूरा कर लेना चाहिए। उसके बाद क्रमशः विशेष कर्मकाण्ड कराये जाएँ।

॥ मस्तक लेपन ॥

शिक्षण और प्रेरणा- बालक के बालों को गौ के दूध, दही, घी में जल मिलाकर भिगोते हैं। गौ माता कल्याणकारक, परोपकारी, सरल, सौम्य प्रकृति की होती है। उसके शरीर से निकले हुए गोरस भी इसी प्रकृति के होते हैं। इन पदार्थों में वे सब गुण रहते हैं, जो गौ माता में विद्यमान हैं। इनसे मस्तक का लेपन, बालों का भिगोना इस बात का प्रतीक है कि हमारी विचारणा- मानसिक प्रवृत्ति गौ माता जैसी- गोरस जैसी स्निग्ध, सौम्य होनी चाहिए। घृत को स्नेह कहते हैं। स्नेह का दूसरा नाम प्रेम भी है। दूध, दही, घी तीनों ही स्नेहसिक्त हैं। इनसे शिरस्थ रोमकूपों का भिगोया जाना इस बात का निर्देश करता है कि हम जो कुछ सोचें-विचारें उसके पीछे प्रेमभावना का समुचित पुट होना चाहिए।

मस्तक लेपन की क्रिया चूड़ाकर्म में इसलिए कराई जाती है कि इस आधार पर यह स्मरण रखा जा सके कि इस बालक का मानसिक विकास रूखा, संकीर्ण तथा अनैतिक-अवांछनीय दिशा में न होने पाए। उसकी रुझान गौ जैसी- गोरस जैसी रहे। गौ अपने बछड़े को जैसे प्यार करती है, वैसे ही हम समस्त परिवार और समाज में करें। अपने लिए ही मरते खपते न रहें वरन् गौ अपना रस, चर्म, अस्थि, मांस, गोबर तथा सन्तान को दूसरों के लिए

उत्सर्ग करती रहती है, वैसी ही रीति हमारी भी हो। रूखे सिर को इस गोरस से आर्द्र इसलिए बनाया जाता है कि उसमें सहृदयता, भावुकता, करुणा, मैत्री, प्रेम एवं उदारता की आर्द्रता बनी रहे। बालक की श्रेष्ठ प्रकृति बनाने के लिए अभिभावकों को ऐसा ही वातावरण बनाना पड़ता है।

क्रिया और भावना- मन्त्र के साथ माता-पिता दूध, दही से बालक-बालिका के केश गीले करें। गर्मी की ऋतु हो, तो अच्छी तरह भी भिगो सकते हैं, अन्यथा थोड़ा-थोड़ा स्पर्श भर करके काम चला लिया जाए।

भावना करें कि मस्तिष्क के इस दिव्योपचार प्रसंग में द्रव्यों के माध्यम से बालक के मस्तिष्क में शुभ देव-शक्तियों, देव- वृत्तियों का स्पर्श दिया जा रहा है। अशुभ के उच्छेदन तथा शुभ की स्थापना का कार्य स्नेह-प्रेम के आधार पर ही किया जाना चाहिए।

ॐ सवित्रा प्रसूता दैव्या, आप उदन्तु ते तनूम्।
दीर्घायुत्वाय वर्चसे। - पार० गृ० सू० २.१.९

॥ त्रिशिखा बन्धन ॥

शिक्षण और प्रेरणा- मनुष्य का मस्तिष्क अपने आप में एक चमत्कार है। इसमें अगणित अद्भुत सामर्थ्ययुक्त केन्द्र हैं। इन केन्द्रों को तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

१- निर्माण परक केन्द्र- जो काया में चलने वाली निर्माण प्रक्रिया का नियन्त्रण संचालन करते हैं।

२- पोषण परक केन्द्र- जो काय संस्थान में चलने वाली पुष्टि, पोषण, स्वास्थ्य, आरोग्य सम्बन्धी प्रक्रियाओं के लिए उत्तरदायी हैं।

३- नियन्त्रणपरक केन्द्र- जो विकारों के निष्कासन परिवर्तन और विकास क्रम का नियन्त्रण करते हैं। क्रिया- प्रक्रिया का चक्र सँभालते हैं।

यह केन्द्र क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र से सम्बद्ध माने जाते हैं। इन केद्रों को उनके अधिष्ठाता देवताओं की साक्षी में शोधित विकसित किया जाता है, इसलिए सिर के बालों को तीन भागों में विभक्त करके, उन्हें कुश बँधे कलावे से तीन गुच्छे में बाँधते हैं। ये हिस्से हैं- सामने एक, पीछे दायें और बायें भाग अलग-अलग। पिछले दायें गुच्छे को ब्रह्म- ग्रन्थि, पिछले

बायें गुच्छे को विष्णु ग्रन्थि तथा सामने वाले को रुद्र ग्रन्थि कहते हैं ।

कुश पवित्रता तथा तेजस्विता के प्रतीक होते हैं, कलावा मंगलकामना का प्रतीक है । मस्तिष्क के विभिन्न केन्द्रों से अवांछित कुसंस्कारों के उन्मूलन तथा शुभ के जागरण के लिए मंगलकामना, पवित्रता तथा तेजस्वी प्रक्रिया का त्रिवेणी योग निभाना-बिठाना कठिन होता है ।

क्रिया और भावना- एक-एक करके मन्त्रों के क्रम से निर्धारित केन्द्रों को कलावे से बाँधा जाए । तदनुरूप भावना की जाए ।

ब्रह्म ग्रन्थि बन्धन- सिर के पिछले भाग में दायीं ओर के बालों में मन्त्र के साथ कलावा बाँधें । भावना करें कि मस्तिष्क की रचना शक्ति के प्रतीक ब्रह्मा की शक्ति से देवों की साक्षी में प्रतिबद्ध किया जा रहा है । आसुरी शक्तियाँ इसका उपयोग न कर सकेंगी । यह उनका उपकरण न बन सकेगा- देवत्व की मर्यादा में ही इसका विकास और संचालन होगा ।

ॐ ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्, विसीमतः सुरुचो वेनऽआवः । सबुध्न्या ऽ उपमा ऽ अस्यविष्ठाः , सतश्च योनिमसतश्च विवः ।

१३.३

विष्णु ग्रन्थि बन्धन- पिछले हिस्से के बायें भाग के केशों में कलावा बाँधें, भावना करें कि मस्तिष्क के पोषण, संचालन करने वाले केन्द्र भगवान् विष्णु की शक्ति से प्रतिबद्ध हो रहे हैं । उन पर असुरत्व का शासन न चल सकेगा । देव मर्यादा से नियन्त्रित ये केन्द्र सत्प्रवृत्तियों को ही पोषण देंगे ।

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे, त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पा ᳪ सुरे स्वाहा । -५.१५

रुद्र ग्रन्थि बन्धन- सिर के अगले भाग के केशों में मन्त्र के साथ कलावा बाँधें । भावना करें कि रुद्र-शिव की शक्ति इस क्षेत्र पर आधिपत्य कर रही है । असुरता की दाल अब नहीं गलेगी । रुद्र की शक्ति विकारों को जला डालेगी और ईश्वरीय मर्यादा के अनुकूल कल्याणकारी अनुशासन लागू करेगी ।

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यवऽ, उतो तऽइषवे नमः । बाहुभ्यामुत ते नमः ।

-१६.१

॥ छुरा पूजन ॥

शिक्षण और प्रेरणा- जिस छुरे से नाई सिर का मुण्डन करेगा, वह इन्हीं प्रयोजनों में काम आने वाला होना चाहिए। अच्छा हो एक बढ़िया कैंची, उस्तरा तेज धार किया हुआ, शाखा या पुरोहित अपने पास तैयार रखें और उसे ही मुण्डन संस्कारों के काम में लाया करें। प्राचीन काल में प्रथम केश उतारने का कार्य पुरोहित ही करते थे। अब उन्हें यह कला नहीं आती, इसलिए क्षौर कर्म नाई से करा सकते हैं। पर छुरा ऐसा ही लिया जाए, जो सर्वसाधारण के उपयोग में न आता हो।

उपयोग से पूर्व औजार गरम पानी से तथा मिट्टी से अच्छी तरह धो-माँज लेना चाहिए तथा सिल्ली पर घिस लेना चाहिए, उसे तश्तरी में रखकर पूजन के लिए माता-पिता के सामने रखा जाए। दोनों रोली, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप से पूजन करें और उसके मूल में कलावा बाँध दें। इस पूजन का उद्देश्य यह है कि यह छुरा साधारण लौह उपकरण मात्र न रहकर मंत्र शक्ति-सम्पन्न होकर मस्तिष्क के कुसंस्कारों को काटकर उसमेंसुसंस्कारों का प्रवेश करा सके।

गर्भ में आने वाले बाल सामान्य संस्कार वाले होते हैं। इस आच्छादन को उतारकर उसके स्थान पर ऐसे बाल उगने चाहिए, जो उत्कृष्ट भावनाएँ साथ लेकर ऊपर आएँ। पुराने बालों को पिछले जीवन में जमे हुए अनुपयुक्त संस्कारों का प्रतीक माना गया है। इन बालों को काटने का प्रयोजन पाशविक विचारणाओं एवं आकांक्षाओं को हटाने-मिटाने का प्रयत्न करना है। इस उद्देश्य के लिए जिस छुरे का प्रयोग किया जा रहा है, वही पर्याप्त नहीं; क्योंकि लौह उपकरणों से कुसंस्कारों को हटाया-मिटाया जाना सम्भव नहीं। विचार तो विचारों से कटते हैं। लोहे को लोहा काटता है। काँटे से काँटा निकलता है। विष से विष का शमन होता है, लाठी का जवाब लाठी से दिया जाता है। इसी प्रकार कुविचारों का शमन उनके विरोधी तीव्र विचारों से ही सम्भव होता है। वह छुरा प्रखर विचारों का प्रतीक-प्रतिनिधि है, जो पाशविक विचारधारा को परास्त करके अपनी गहरी छाप छोड़ सके। छुरा पूजन का अर्थ है ऐसे उत्कृष्ट विचारों का श्रद्धापूर्वक आवाहन अभिनन्दन, जो मनोभूमि

में जमे हुए असुर संस्कारों को निरर्थक झाड़-झंखाड़ों की तरह उखाड़ फेंकने में सफल हो सकें। कँटीली झाड़ियाँ कुदाल, फावड़े से ही खोदी जाती हैं। उसी प्रकार अवांछनीय विचारों तथा आदतों को उखाड़ने के लिए जीवन निर्माण की आध्यात्मिक विचारधारा को उग्र स्तर पर विकसित करना पड़ता है। प्रारम्भिक बालों को इसी भावना के साथ काटा जाता है।

क्रिया और भावना- थाली-तश्तरी में रखे कैंची-छुरे की पूजा मन्त्रोच्चार के साथ अभिभावक द्वारा करायी जाए। वे भावना करें कि बालक के कुविचारों को काटने के लिए, उनकी काट करने में समर्थ पैने उपकरण-सद्विचारों की अभ्यर्थना कर रहे हैं। जिस प्रकार स्थूल बालों की सफाई के लिए ये औजार प्रभु कृपा से मिलें हैं, वैसे ही सूक्ष्म प्रवाह भी मिलेंगे। उनका उपयोग पूरी तत्परता, जागरूकता से करेंगे।

ॐ यत् क्षुरेण मज्जयता सुपेशसा, वप्ता वपति केशान्।
छिन्धि शिरो मास्यायुः प्रमोषीः। -पा० गृ० सृ० २.१.१८

॥ त्रिशिखाकर्त्तन ॥

शिक्षण और प्रेरणा- शिशु के मस्तिष्क के विभिन्न केन्द्रों का ग्रन्थि-बन्धन देव-शक्तियों के आवाहन के साथ किया गया। उस नाते उन्हें उसी मर्यादा में रहने और उसी दिशा में बढ़ने की व्यवस्था बनानी होती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बालक के कुसंस्कारों, दुष्प्रवृत्तियों को काटना-उखाड़ना पड़ता है। जंगली पौधा मनमाने ढंग से बढ़ता है, उपवन के पौधे को माली का अनुशासन मानना होता है। उसके लिए उसे जहाँ स्नेह का खाद- पानी मिलता है, वहाँ कड़ाई से काटा-छाँटा भी जाता है। यही उद्देश्य केश कर्त्तन के समय ध्यान में रखना चाहिए और उससे सम्बद्ध उत्तरदायित्वों के पालन की दृष्टि और व्यवस्था विकसित करनी चहिए।

ब्रह्म ग्रन्थि कर्त्तन का तात्पर्य यह है कि मस्तिष्क में द्वेष, दुर्भाव, ईर्ष्या आदि के आधार पर दूसरों को नीचा गिराने के लिए विध्वंसक योजना न रचने दी जाए। उस प्रकृति का उच्छेदन किया जाए। अपने विकास तथा निर्माणकारी योजनाओं के लिए स्थान सुरक्षित रखा जाए।

विष्णु ग्रन्थि कर्त्तन के पीछे उद्देश्य है कि अंतर में उठने वाली हीन आकांक्षाओं का पालन न होने दिया जाए। मस्तिष्क अपनी नहीं, प्रभु की सम्पत्ति है। अस्तु, स्वार्थपरक आकाक्षाओं के पोषण की उसे छूट नहीं, उन्हें काटा जाए। ईश्वरोन्मुख आकांक्षाओं के पोषण के लिए ही शक्ति सुरक्षित रहे।

रुद्र ग्रन्थि कर्त्तन का अर्थ है ईश्वरीय मर्यादा में बढ़ने में बाधक हर प्रवृत्ति को कठोरता से काटा जाए। जो भी परिवर्तन लाये जाएँ, वे अशिव न होकर शिव ही हों। अशिव वृत्तियों को शिव की शक्ति से काट फेंकें।

क्रिया और भावना- पुरोहित स्वयं कैंची या उस्तरे से एक-एक करके मन्त्रों के उच्चारण के साथ-साथ तीनों ग्रन्थियों को क्रमश: काट दें। सभी लोग भावना प्रवाह पैदा करने में योगदान दें।

ब्रह्म ग्रन्थि कर्त्तन के साथ भावना करें कि निर्माण की शक्ति विनाशक प्रवृत्तियों को काट रही है। अब रचनात्मक प्रवृत्तियों के लिए यह केन्द्र सुरक्षित रहेंगे।

ॐ येनावपत् सविता क्षुरेण, सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान्।
तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य, गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान्॥

- अथर्व० ६.६८.३

विष्णु ग्रन्थि कर्त्तन के साथ भावना करें, भगवान् विष्णु की शक्ति अपने प्रतिकूल प्रवृत्तियों का उन्मूलन-निवारण कर रही है। मस्तिष्क अब अनैतिक पोषण न दे सकेगा-नीतिमत्ता में ही प्रयुक्त होगा।

ॐ येन धाताबृहस्पतेः, अग्नेरिन्द्रस्य चायुषेऽवपत्। तेन त आयुषे वपामि, सुश्लोक्याय स्वस्तये। -आश्व० गृ० सू० १.१७.१२

रुद्र ग्रन्थि कर्त्तन के साथ यह भावना करें कि रुद्र त्रिपुरारि की प्रचण्ड शक्ति दुर्धर्ष, दुष्प्रवृत्तियों पर चोट कर रही है, अब उनका निवारण होगा; ताकि मस्तिष्क में दिव्य दृष्टि, दिव्यानुभूति की क्षमता विकसित हो सके।

ॐ येन भूयश्च रात्र्यां, ज्योक् च पश्याति सूर्यम्। तेन त ऽआयुषे वपामि, सुश्लोक्याय स्वस्तये। -आश्व० गृ० सू० १.१७.१२

॥ नवीन वस्त्र पूजन ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- नवीन वस्त्र धारण करने का तात्पर्य है- नवीन कलेवर धारण करना । पुराना चोला उतारकर नया चोला धारण करना । जिस प्रकार सर्प पुरानी केंचुली त्यागकर नई धारण करता है, उसी प्रकार मुण्डन के अवसर पर सिर के बाल ही नहीं मुँडाते; वरन् पुरानी केंचुली बदलते हैं, पुराने कपड़ों को उतारकर नये पहनते हैं, उन वस्त्रों में एक वस्त्र पीला भी होना चाहिए ।नवीन कलेवर इस बात का प्रतीक है कि सिर के बाल उतारकर केवल पाशविक विचारों को ही नहीं हटाया गया है, वरन् शरीर पर लिपटे हुए पुराने सड़े गले जीर्ण स्वभाव एवं क्रम-प्रभाव को भी बदल दिया गया है ।

क्रिया और भावना- एक थाली में रखकर बालक के नये वस्त्रों पर अक्षत-पुष्प मन्त्रोच्चार के साथ चढ़ाये जाएँ । भावना की जाए कि जिस प्रकार अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप वस्त्र-आच्छादनों की व्यवस्था करने की सामर्थ्य प्रभु ने दी है-वैसे ही अपने गौरव के अनुरूप व्यक्तित्व बनाने की सामर्थ्य भी मिल रही है । उस दिव्यता के प्रति वस्त्रों-प्रतीकों के पूजन द्वारा अपनी आस्था व्यक्त की जा रही है ।

ॐ तस्माद् यज्ञात्सर्वहुतऽ, ऋचः सामानि जज्ञिरे ।

छन्दा ᳪ सि जज्ञिरे तस्माद्, यजुस्तस्मादजायत ॥ -३१.७

वस्त्र पूजन के बाद अग्नि स्थापन से गायत्री मन्त्र की आहुति देने तक का क्रम पूरा करके विशेष आहुतियाँ दी जाएँ ।

॥ विशेष आहुति ॥

हवन सामग्री में थोड़ा मेवा, मिष्टान्न मिलाकर ५ आहुतियाँ निम्न मंत्र से दें । भावना करें कि यज्ञीय ऊष्मा बालक को सुसंस्कारों से भर रही है ।

ॐ भूर्भुवः स्वः । अग्न आयू ᳪ षि पवस ऽ आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्वदुच्छुना ᳪ स्वाहा । इदम् अग्नये इदं न मम ॥

१९.३८, ३५.१६

इसके बाद यज्ञ के शेष कृत्य पूरे कर लिये जाएँ । विसर्जन न किया जाए । नाई द्वारा मुण्डन कर देने पर बालक को स्नान के बाद नये वस्त्र पहनाकर

पुन: देवस्थल पर लाया जाता है। तब शिखा पूजन और स्वस्तिक लेखन और आशीर्वाद के बाद विसर्जन किया जाता है। यदि घर पर आयोजन है, तो इस बीच गीत, भजन-कीर्त्तन, उद्‌बोधन का क्रम चलाते रहना चाहिए। सार्वजनिक स्थल पर हो, तो अन्य लोग बालक पर अक्षत, पुष्प वृष्टि करके प्रसाद लेकर विदा भी हो सकते हैं अथवा सर्वोपयोगी भजन-सत्संग का लाभ उठाते रह सकते हैं।

॥ मुण्डन कृत्य ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- बालक और माता को यज्ञशाला से बाहर भेज देते हैं। यज्ञ-मण्डप में क्षौर कर्म नहीं होता, इसलिए उसे बाहर भेजना आवश्यक होता है। समीप ही किसी स्थान पर बैठकर मुण्डन कराया जाए। मुण्डन करते समय अभिभावक तथा अन्य उपस्थित व्यक्ति मन ही मन गायत्री मन्त्र का जप करते रहें और भावना करें कि उनके द्वारा किया गया यह जप बालक के मस्तिष्क में सद्‌बुद्धि का प्रकाश बनकर प्रवेश कर रहा है। बालों को आटे या गोबर के गोले में बन्द करके जमीन में गाड़ देते हैं या जलाशय में विसर्जित कर देते हैं। मुण्डन होने के बाद बच्चे को स्नान कराया जाए।

बालों को गोबर में रखकर जमीन में इसलिए गाड़ा जाता है कि उनका भी गोबर की तरह खाद बन जाए। पशुओं के शरीर का हर अवयव मल-मूत्र, दूध आदि दूसरों के काम आते हैं। वृक्ष-वनस्पतियाँ अपना सब कुछ परमार्थ के लिए समर्पित करते हैं। मनुष्य के लिए भी यह उचित है कि अपनी उपलब्धियों का अधिकाधिक उपयोग परमार्थ के लिए करे। बाल भी जहाँ-तहाँ बिखर कर गन्दगी न बढ़ाएँ, वरन् वे गोबर के साथ मिलकर किसी खेत की खाद बनें और उर्वरा शक्ति बढ़ाएँ, यही उनकी सार्थकता है।

इस तथ्य को सब लोग समझें और गोबर को जमीन में ही गाड़ने का ध्यान रखें, बालों के साथ गोबर इस दृष्टि से ही जमीन में गाड़ा जाता है।

क्रिया और भावना- नाई द्वारा केश उतारना प्रारम्भ किया जाए, तब नीचे वाला मन्त्र बोला जाए। बच्चे को बहलाने-फुसलाने के साथ माता मानसिक रूप से गायत्री मन्त्र का जप करती रहे। भावना की जाए कि गर्भ से आये बालों को हटाने के साथ दिव्य सत्ता के प्रभाव से सारी मानसिक

दुर्बलताएँ हट रही हैं । इस प्रक्रिया में सहायक हर शक्ति और हर व्यक्ति के प्रति कृतज्ञता के भाव रखे जाएँ । भगवान् से प्रार्थना की जाए कि इस संस्कार से प्राप्त दिशा धारा के निर्वाह की क्षमता प्रदान करें ।

ॐ येन पूषा बृहस्पतेः, वायोरिन्द्रस्य चावपत्। तेन ते वपामि ब्रह्मणा, जीवातवे जीवनाय, दीर्घायुष्ट्वाय वर्चसे ।- मं० ब्रा० १.६.७

॥ शिखा पूजन ॥

शिक्षण और प्रेरणा- यह संस्कार शिखा स्थापन संस्कार है । भारतीय धर्म के दो प्रधान प्रतीक हैं, एक शिखा दूसरा सूत्र-यज्ञोपवीत । मुसलमानों में जिस तरह सुन्नत कराना, सिक्खों में केश रखना आवश्यक माना जाता है, उसी प्रकार प्रत्येक हिन्दू धर्मानुयायी को अपने मस्तिष्क रूपी किले के ऊपर हिन्दू धर्म की-गायत्री मंत्र में सन्निहित दूरदर्शिता, विवेकशीलता की ध्वजा फहरानी चाहिए। शिखा यही है। विवेकशीलता अपनाना, मन को सद्भावनाओं से भरे रखना, अन्तःकरण में ऋतम्भरा प्रज्ञा का प्रकाश भरना, यही प्रयोजन शिखा के साथ जुड़े हुए हैं । मुण्डन संस्कार के अवसर पर अथवा उसके तुरंत बाद बाल बढ़ने पर शिखा रखी जाती है । इसके प्रति संकल्प रूप में शिखा स्थल का पूजन किया जाता है ।

क्रिया और भावना- शिशु के माता-पिता से बालक के सिर में शिखा के स्थान पर रोली, चावल द्वारा शिखा-पूजन कराया जाए । भावना की जाए कि यह बालक ध्वजाधारी सैनिक की तरह गौरव एवं तेजस्विता का धनी बनेगा । भारतीय संस्कृति की ध्वजा लेकर उसके अनुरूप उच्चतम लक्ष्यों को प्राप्त करके गौरवान्वित होगा ।

ॐ चिद्रूपिणि महामाये, दिव्यतेजः समन्विते ।
तिष्ठ देवि शिखामध्ये, तेजोवृद्धिं कुरुष्व मे ॥ -सं० प्र०

॥ स्वस्तिक लेखन ॥

शिक्षण और प्रेरणा- मुण्डन किये हुए मस्तिष्क पर स्वस्तिक या 'ॐ' शब्द चन्दन अथवा रोली से लिखते हैं । यों तो यह लेखन कार्य संस्कार कराने वाले आचार्य कर सकते हैं, पर अच्छा हो ऐसा कार्य किन्हीं सम्भ्रांत

सज्जन से कराया जाए। इससे उन्हें सम्मान मिलता है, उनकी रुचि और सद्‌भावना उस कार्य में बढ़ती है। अतएव छुट-पुट कार्य सदा उपस्थित लोगों में से किसी गणमान्य व्यक्ति से कराने चाहिए। हर संस्कार में कई-कई ऐसे कार्यक्रम होते हैं, अच्छा हो तो उनमें से प्रत्येक के लिए अलग-अलग सम्भ्रांत व्यक्ति को श्रेय दिया जाए, उनके हाथों वे कार्य कराये जाएँ। मुण्डन संस्कार में वस्त्र धारण, स्वस्तिक लेखन, मस्तक लेपन, शिखा-बंधन आदि प्रयोजनों के लिए अलग-अलग व्यक्ति रखे जाएँ, तो हर्ज नहीं, वैसे इन कार्यों को माता-पिता, अभिभावक अथवा कोई गुरुजन कर सकते हैं।सर्वव्यापी न्यायकारी परमात्मा को जो व्यक्ति अपने भीतर और बाहर उपस्थित देखता है, वह पाप नहीं करता। सशक्त कोतवाल को सामने उपस्थित देखकर भला कौन चोरी का साहस करेगा ? ईश्वर विश्वासी को सर्वत्र उपस्थित परमात्मा पर जब सच्चा विश्वास हो जाता है, तब वह गुप्त या प्रकट रूप से कोई पाप नहीं कर सकता। पाप ही दु:खों का कारण है। जो पाप से बचा रहेगा, वह दु:खों से बचा रहेगा। आस्तिकता मनुष्य को पाप करने से रोकती है और कुकर्मों के फलस्वरूप मिलने वाले विविध-विध शोक-संतापों से, अनिष्ट संकटों से बचाती है। मुण्डन के उपरांत मस्तक पर 'ॐ' या स्वस्तिक लिखने का प्रयोजन बालक को, अभिभावकों तथा उपस्थित लोगों को सच्चे अर्थों में ईश्वर भक्त, आस्तिक बनाने की प्रेरणा देना है।

क्रिया और भावना- आचार्य या कोई सम्माननीय पूज्य व्यक्ति बालक के मुण्डित सिर पर रोली या चन्दन से शुभ चिह्न स्वस्तिक बनाए। मन्त्रोच्चार के साथ इस चिह्न के अनुरूप श्रेष्ठ प्रवृत्तियों की मस्तिष्क में स्थापना की भावना की जाए। संयुक्त सद्‌भाव एवं प्रभु अनुग्रह से एकता, शान्ति, प्रखरता, समता, पवित्रता, संकल्पशीलता, सरलता, उदारता, प्रसन्नता, ज्ञान, परमार्थ जैसी सत्प्रवृत्तियों और श्रेष्ठ गुणों के स्थापन की भावभरी प्रार्थना की जाए।

ॐ स्वस्ति नऽ इन्द्रो वृद्धश्रवाः, स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्तिनस्ताक्ष्योंअरिष्टनेमिः, स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥-२५.१९

आशीर्वाद, विसर्जन, जयघोष के साथ कार्यक्रम समाप्त किया जाए।

* * *

॥ विद्यारम्भ संस्कार ॥

संस्कार प्रयोजन- प्रत्येक अभिभावक का यह परम पुनीत धर्म कर्त्तव्य है कि बालक को जन्म देने के साथ-साथ आई हुई जिम्मेदारियों में से भोजन, वस्त्र आदि की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति होने पर उसकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध करे। जिस प्रकार कोई माता-पिता जन्म देने के बाद उसके पालन-पोषण की जिम्मेदारी से इंकार कर उसे कहीं झाड़ी आदि में फेंक दें, तो वे अपराधी माने जायेंगे। ठीक उसी प्रकार जो लोग बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध न करके, उन्हें मानसिक विकास एवं मानव जाति की संगृहीत ज्ञान-सम्पत्ति का साझेदार बनने से वंचित रखते हैं, वे भी उसी श्रेणी के अपराधी हैं, जैसे कि बच्चों को भूखों मार डालने वाले। इस पाप एवं अपराध से मुक्ति पाने के लिए हर अभिभावक को अपने हर बच्चे की शिक्षा का चाहे वह लड़की हो या लड़का, अपनी सामर्थ्यानुसार पूरा-पूरा प्रबंध करना होता है। इस धर्म कर्त्तव्य की पूर्ति का, अनुशासन का पालन करते हुए उसे अपने उत्तरदायित्व को निभाने की घोषणा के रूप में बालक का विद्यारम्भ संस्कार करना पड़ता है। देवताओं की साक्षी में समाज को यह बताना पड़ता है कि मैं अपने परम पवित्र कर्त्तव्य को भूला नहीं हूँ, वरन् उसकी पूर्ति के लिए समुचित उत्साह के साथ कटिबद्ध हो रहा हूँ। ऐसा ही प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिए। किसी को भी अपनी सन्तान को विद्या से वंचित नहीं रहने देना चाहिए। विद्यारम्भ संस्कार द्वारा बालक-बालिका में उन मूल संस्कारों की स्थापना का प्रयास किया जाता है, जिनके आधार पर उसकी शिक्षा मात्र ज्ञान न रहकर जीवन निर्माण करने वाली हितकारी विद्या के रूप में विकसित हो सके। समारोह द्वारा बालक के मन में ज्ञान प्राप्ति के लिए उत्साह पैदा किया जाता है। उत्साहभरी मनोभूमि में देवाराधन तथा यज्ञ के संयोग से वांछित ज्ञानपरक संस्कारों का बीजारोपण भी संभव हो जाता है।

विशेष व्यवस्था-विद्यारम्भ संस्कार के लिए सामान्य तैयारी के अतिरिक्त नीचे लिखी व्यवस्थाएँ पहले से ही बना लेनी चाहिए।

१-पूजन के लिए गणेशजी एवं माँ सरस्वती के चित्र या प्रतिमाएँ।

२-पट्टी, दवात और लेखनी, पूजन के लिए। बच्चे को लिखने में

सुविधा हो, इसके लिए स्लेट, खड़िया भी रखी जा सकती है ।

३-गुरु पूजन के लिए प्रतीक रूप में नारियल रखा जा सकता है । बालक के शिक्षक प्रत्यक्ष में हों, तो उनका पूजन भी कराया जा सकता है ।

॥ गणेश एवं सरस्वती पूजन ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- गणेश को विद्या और सरस्वती को शिक्षा का प्रतीक माना गया है । विद्या और शिक्षा एक दूसरे के पूरक हैं । एक के बिना दूसरी अधूरी है । शिक्षा उसे कहते हैं जो स्कूलों में पढ़ाई जाती है । भाषा, लिपि, गणित, इतिहास, शिल्प, रसायन, चिकित्सा, कला, विज्ञान आदि विभिन्न प्रकार के भौतिक ज्ञान इसी क्षेत्र में आते हैं । शिक्षा से मस्तिष्क की क्षमता विकसित होती है और उससे लौकिक सम्पत्तियों, सुविधाओं , प्रतिष्ठाओं एवं अनुभूतियों का लाभ मिलता है । सांसारिक जीवन की सुख-सुविधा के लिए इस प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता भी है । यह सरस्वती आराधना है ।

विद्या के प्रतिनिधि गणेश जी हैं । विद्या का अर्थ है विवेक एवं सद्भाव की शक्ति । सद्गुण इसी वर्ग में गिने जाते हैं । उचित और अनुचित का, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का विवेक विद्वानों को ही होता है । आज के छोटे से लाभ-हानि की तुलना में वे दूरवर्त्ती हानि-लाभ को महत्त्व देते हैं और इतना साहस और धैर्य बनाये रहते हैं , जिसके आधार पर दूरवर्त्ती बड़े लाभ के लिए वर्तमान में थोड़ा कष्ट सह सकें अथवा भविष्य की अधिक हानि को कठिनाइयों का स्वरूप समझते हुए आज के छोटे-मोटे प्रलोभन या आकर्षण का परित्याग कर सकें । विचारों और वर्णों को सुव्यवस्थित बनाने के लिए किया हुआ श्रम-गणेश की आराधना के लिए किया गया तप ही मानना चाहिए । आदर्शवादिता की उच्चस्तरीय सद्भावनाओं का समावेश जिस विचारणा में सन्निहित हो, उन्हें गणेश कहना चाहिए ।

गणेश के बाद सरस्वती का पूजन कराया जाता है । गणेश का स्थान प्रथम और सरस्वती का दूसरा है । भावना को प्रधान और चतुरता को गौण माना गया है । शिक्षा के, चतुरता के ऊपर विवेक एवं आदर्श को अंकुश लिए हुए देखा जा सकता है ।धर्म, कर्त्तव्य एवं औचित्य का, गणेश का नियंत्रण हमारी सारी गतिविधियों पर होना चाहिए । अन्यथा वे निरंकुश

होकर उच्छृंखलता बरतेंगी और पतन के गहन गर्त में गिरा देंगी । बालक चाहे जितनी विद्या पढ़े, विद्वान् और क्रियाकुशल कितना ही अधिक क्यों न हो जाए, उसे आजीवन यह स्मरण रखना चाहिए कि सदुद्देश्य से एक कदम भी विचलित न हुआ जाए । समृद्धियों एवं विभूतियों को तनिक भी उच्छृंखल न होने दिया जाए । शिक्षा और बुद्धि का दुरुपयोग न होने पाए । उनके द्वारा जो भी प्रगति हो, वह पतन की ओर नहीं, उत्थान की ओर ही ले जाने वाली हो । मस्तिष्क पर सदैव विवेक का नियंत्रण बना रहे, इस तथ्य को हृदय में प्रतिष्ठापित करने के लिए बालक विद्यारम्भ के समय गणेश पूजन करता है ।

माता का स्नेह जिस प्रकार पुत्र के लिए आजीवन आवश्यक है, उसी प्रकार विद्या का, सरस्वती का अनुग्रह भी मनुष्य पर आजीवन रहना चाहिए । सरस्वती माता हमारी प्रत्यक्ष देवी हैं-अध्ययन के द्वारा ही उनकी आराधना होती है । उपासना, आहार, स्नान, शयन आदि की तरह अध्ययन भी हमारे दैनिक जीवन में आवश्यकता का एक अंग बना रहे, तो समझना चाहिए कि सरस्वती पूजन का वास्तविक तात्पर्य समझ लिया गया ।

॥ गणेश पूजन ॥

क्रिया और भावना- बालक के हाथ में अक्षत, पुष्प, रोली देकर मन्त्र के साथ गणपति जी के चित्र के सामने अर्पित कराएँ । भावना करें कि इस आवाहन-पूजन के द्वारा विवेक के अधिष्ठाता से बालक की भावना का स्पर्श हो रहा है । उनके अनुग्रह से बालक मेधावी और विवेकशील बनेगा ।

ॐ गणानां त्वा गणपति ꣳ हवामहे, प्रियाणां त्वा प्रियपति ꣳ हवामहे, निधीनां त्वा निधिपति ꣳ हवामहे, वसोमम । आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम् । ॐ गणपतये नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥-२३.१९

॥ सरस्वती पूजन ॥

क्रिया और भावना- बालक के हाथ में अक्षत, पुष्प, रोली आदि देकर मन्त्र बोलकर माँ सरस्वती के चित्र के आगे पूजा भाव से समर्पित कराएँ । भावना करें कि यह बालक कला, ज्ञान, संवेदना की देवी माता सरस्वती के स्नेह का पात्र बन रहा है । उनकी छत्रछाया का रसास्वादन करके यह ज्ञानार्जन

में सतत रस लेता हुआ आगे बढ़ सकेगा ।

ॐ पावका नः सरस्वती, वाजेभिर्वाजिनीवती ।यज्ञं वष्टुधियावसुः । ॐ सरस्वत्यै नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि । -२०.८४

।। उपकरणों-माध्यमों की पवित्रता ।।

गणेश और सरस्वती पूजन के उपरांत शिक्षा के उपकरणों - दवात, कलम और पट्टी का पूजन किया जाता है । शिक्षा प्राप्ति के लिए यह तीनों ही प्रधान उपकरण हैं । इन्हें वेदमंत्रों से अभिमंत्रित किया जाता है, ताकि उनका प्रारम्भिक प्रभाव कल्याणकारी हो सके । विद्या प्राप्ति में सहायता मिल सके । मंत्रों से इन तीनों को पवित्र अभिमंत्रित किया जाता है, ताकि इन उपकरणों में पवित्रता स्थिर रखी जा सके ।

उपकरणों की पवित्रता हर कार्य में आवश्यक है । साधन पवित्र होंगे, तो ही साध्य की उत्कृष्टता कायम रखी जा सकेगी । गलत उपायों से, दूषित उपकरणों से यदि कोई सफलता प्राप्त कर भी ली जाए, तो उस सफलता का लाभ उतना सुखप्रद नहीं होता, जितना कि अनुपयुक्त माध्यमों को अपनाने में बिगड़ा अपना स्वभाव अपने लिए दूरगामी अहित एवं अनिष्ट उत्पन्न करता है । जिस प्रकार स्वच्छ बर्तन में रखा हुआ दूध ही पीने योग्य होता है, मैले-गंदे बर्तन में रखने से वह फट जाता है और पीने पर रोग-विकार उत्पन्न करता है, उसी प्रकार अनुपयुक्त उपकरणों से जो भी कार्य किया जाता है, वह बाहर से कितना ही अच्छा क्यों न दीखता हो, कितना ही जल्दी सफल क्यों न हुआ हो-अवांछनीय है ।

विद्यारम्भ संस्कार का प्रयोजन यह है कि शिक्षार्थी का ध्यान विद्या की महत्ता एवं उपकरणों की पवित्रता की ओर आकर्षित किया जाए । अध्ययन तो निमित्त मात्र है, वस्तुतः 'उपकरणों की पवित्रता' यह एक आदर्श दृष्टिकोण है, जिसे हर क्षेत्र में अपनाया जाना चाहिए । हम जो कुछ भी कार्य, व्यवहार एवं प्रयोग करें, उसमें इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखें कि किसी प्रलोभन या जल्दबाजी में अनुपयुक्त साधनों का उपयोग न किया जाए । अपना हर उपकरण पूरी तरह पवित्र रहे ।

शिक्षा की तीन अधिष्ठात्री देवियाँ- उपासना विज्ञान की मान्यताओं के आधार पर कलम की अधिष्ठात्री देवी 'धृति', दवात की अधिष्ठात्री देवी 'पुष्टि' और पट्टी की अधिष्ठात्री देवी 'तुष्टि' मानी गई है । षोडश मातृकाओं में धृति, पुष्टि, तथा तुष्टि तीन देवियाँ उन तीन भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो विद्या प्राप्ति के लिए आधारभूत हैं। विद्यारम्भ संस्कार में कलम-पूजन का मन्त्र बोलते समय धृति का आवाहन करते हैं । निर्धारित मंत्रों में उन्हीं की वंदना, अभ्यर्थना की गयी है ।

॥ लेखनी पूजन ॥

शिक्षण और प्रेरणा- विद्यारम्भ करते हुए पहले कलम हाथ में लेनी पड़ती है । कलम की देवी धृति का भाव है 'अभिरुचि' । विद्या प्राप्त करने वाले के अन्तःकरण में यदि उसके लिए अभिरुचि होगी, तो प्रगति के समस्त साधन बनते चले जायेंगे । बिना रुचि जाग्रत् हुए पढ़ना ही नहीं, कोई भी काम भाररूप प्रतीत होता है, उसमें मन नहीं लगता, अधूरे मन से किये हुए काम तो अस्त-व्यस्त एवं बेतुके रहते हैं । ऐसी दशा में कोई उल्लेखनीय सफलता भी नहीं मिलती । तीव्र बुद्धि और बढ़िया मस्तिष्क भी तब कुछ विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं होते; किन्तु यदि पढ़ने में तीव्र अभिरुचि हो, तो मंद बुद्धि भी अपने अध्यवसाय के बल पर आशाजनक प्रगति कर लेते हैं ।

अभिभावकों का कर्त्तव्य है कि शिक्षार्थी की अभिरुचि जगाएँ, उसे विद्या प्राप्ति के लाभ बताएँ । उनके उदाहरण सुनाएँ, जो पढ़े-लिखे होने के कारण ऊँची स्थिति प्राप्त करने में धन, यश एवं सुविधा- साधन उपार्जित कर सकने में सफल हुए । साथ ही ऐसे उदाहरण भी सुनाने चाहिए, जिनमें पारिवारिक सुख साधनों से संतुष्ट लड़कों ने पढ़ने में उपेक्षा की और अंत में साधन जब बिखर गये, तब उन्हें अपने अशिक्षित, अविकसित व्यक्तित्व के आधार पर जीवन-यापन के साधन जुटाने में कितनी कठिनाई उठानी पड़ी । शिक्षा मनुष्यत्व का सम्मान है और अशिक्षित होना अपमान । अशिक्षित या स्वल्प शिक्षित रहना किसी व्यक्ति के पारिवारिक या व्यक्तित्व स्तर के गिरे हुए होने का ही प्रमाण माना जाता है । इस अपमान से हर किसी को बचना व बचाया जाना चाहिए ।'धृति' की अभियोजना कलम का पूजन कराते समय इस प्रकार

की जाए कि शिक्षार्थी की अभिरुचि अध्ययन में निरंतर बढ़ती चली जाए ।

क्रिया और भावना- पूजन सामग्री बालक के हाथ में दी जाए । पूजा की चौकी पर स्थापित कलम पर उसे मंत्र के साथ श्रद्धापूर्वक चढ़ाया जाए । भावना की जाए कि धृति शक्ति बालक की विद्या के प्रति अभिरुचि को परिष्कृत कर रही है ।

ॐ पुरुदस्मो विषुरूपऽ इन्दुः, अन्तर्महिमानमानञ्जधीरः ॥ एकपदीं द्विपदीं त्रिपदीं चतुष्पदीम्, अष्टापदीं भुवनानु प्रथन्ताᳬस्वाहा । -८.३०

॥ दवात पूजन ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- कलम का उपयोग दवात के द्वारा होता है । स्याही या खड़िया के सहारे ही कलम कुछ लिख पाती है । इसलिए कलम के बाद दवात के पूजन का नंबर आता है । दवात की अधिष्ठात्री देवी 'पुष्टि' हैं । पुष्टि का भाव है-एकाग्रता । एकाग्रता से अध्ययन की प्रक्रिया गतिशील-अग्रगामिनी होती है । कितने ही व्यक्ति तीव्र बुद्धि के होते हैं, मस्तिष्क बढ़िया काम करता है, पढ़ना भी चाहते हैं; पर मन अनेक दिशाओं में भागा फिरता है, एकाग्र नहीं होता, चंचलता भरी रहती है, प्रस्तुत विषय में चित्त जमता नहीं । ऐसे डावाँडोल मन वाले शिक्षार्थी की प्रगति संदिग्ध बनी रहती है । जब चित्त लगेगा ही नहीं, तो मस्तिष्क पकड़ेगा क्या ? आरंभ में मन्द बुद्धि समझे जाने वाले शिक्षार्थी आगे चलकर बहुत ही प्रतिभावान् सिद्ध होते हुए भी देखे गये हैं । आश्चर्यजनक परिवर्तन के पीछे उनकी एकाग्रता ही प्रधान कारण होती है ।

दवात के कंठ में कलावा बाँधा जाता है व रोली, धूप, अक्षत, पुष्प आदि से पूजन किया जाता है । यह दवात की अधिष्ठात्री देवी 'पुष्टि' का अभिवंदन है । इस पूजा का प्रयोजन यह है कि शिक्षार्थी को एकाग्रता का महत्त्व समझाया जाना चाहिए और इसका उसे व्यावहारिक अभ्यास भी कराया जाना चाहिए । समुचित मात्रा में अभिरुचि हो और साथ ही एकाग्रता का अभ्यास हो जाए, तो फिर विद्या लाभ की दिशा में आशाजनक सफलता संभव हो जाती है ।

क्रिया और भावना- पूजा वेदी पर स्थापित दवात पर बालक के हाथ से मन्त्रोच्चार के साथ पूजन सामग्री अर्पित कराई जाए । भावना की जाए कि

पुष्टि शक्ति के सान्निध्य से बालक में बुद्धि की तीव्रता एवं एकाग्रता की उपलब्धि हो रही है ।

ॐ देवीस्तिस्त्रस्तिस्त्रो देवीर्वयोधसं, पतिमिन्द्रमवर्द्धयन् । जगत्या छन्दसेन्द्रिय थ्ठ शूषमिन्द्रे, वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ २८.४१

॥ पट्टी पूजन ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- उपकरणों में तीसरा पूजन पट्टी का है । कलम, दवात की व्यवस्था हो जाने पर उसका उपयोग पट्टी या कापी-कागज पर ही होता है, इनकी अधिष्ठात्री 'तुष्टि' है । 'तुष्टि' का भाव है-श्रमशीलता । अध्ययन के लिए श्रम की भी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी कि अभिरुचि एवं एकाग्रता की । किसी छात्र की पढ़ने में अभिरुचि भी है, चित्त भी एकाग्र कर लेता है, पर आलसी स्वभाव होने के कारण परिश्रम नहीं करता, जल्दी ऊब जाता है और पढ़ाई बंद करके दूसरे काम में लग जाता है, तो देर तक लगातार मेहनत न करने का दुर्गुण उसकी अन्य विशेषताओं पर पानी फेर देता है । जिस प्रकार भौतिक निर्माणात्मक कार्यों की सफलता शारीरिक श्रम पर निर्भर रहती है, उसी तरह मानसिक उपलब्धियाँ, मानसिक श्रम पर अवलंबित हैं । श्रम के बिना इस संसार में कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता । साधन कितने ही प्रचुर एवं प्रखर क्यों न हों, उनका लाभ तो तभी मिलेगा, जब उनका उपयोग किया जायेगा । उपयोग में श्रम अपेक्षित है । इसलिए शिक्षार्थी को परिश्रमी भी होना चाहिए । उसे पढ़ने में जी लगाकर मेहनत करने का अभ्यास बनाना चाहिए । यह आदत जिस प्रकार पड़े, उसका उपाय अभिभावकों को करना चाहिए ।

पट्टी, दवात, कलम तीनों उपकरणों का पूजन करने के साथ-साथ यह तथ्य भी हृदयंगम किया जाता है कि हमारे सभी साधन पवित्र हों । विद्या भी पवित्र साधनों से पवित्र उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्राप्त की जाए । अभिरुचि, एकाग्रता और श्रमशीलता का आधार लेकर विद्या लाभ के महत्त्वपूर्ण मार्ग पर बढ़ा जाए ।

क्रिया और भावना- बालक द्वारा मन्त्रोच्चार के साथ पूजा-स्थल पर स्थापित पट्टी पर पूजन सामग्री अर्पित कराई जाए। भावना की जाए कि इस आराधना से बालक तुष्टि शक्ति से सम्पर्क स्थापित कर रहा है। उस शक्ति से परिश्रम, साधना करने की क्षमता का विकास होगा।

ॐ सरस्वती योन्यां गर्भमन्तरश्विभ्यां, पत्नी सुकृतं बिभर्ति।
अपा थं रसेन वरुणो न साम्नेन्द्र थं, श्रियै जनयन्नप्सु राजा॥
१९.९४

॥ गुरु पूजन ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- शिक्षा प्राप्ति के लिए अध्यापक के सान्निध्य में जाना पड़ता है। जिस प्रकार गौ अपने बछड़े को दूध पिलाती है, उसी तरह गुरु अपने शिष्य को विद्या रूपी अमृत पिलाते हैं। इस प्रक्रिया में परस्पर श्रद्धा- सद्भावना का होना आवश्यक है। गाय और बछड़े के बीच प्रेम न हो, तो दूध पिलाने की प्रक्रिया कैसे चले ? इसी प्रकार शिक्षार्थी के प्रति वात्सल्य न रखे, तो ऊपरी मन से रुखाई के साथ सिखाने का कार्य सारहीन ही रहेगा। जिस प्रकार गाढ़ी कमाई का पैसा ही फलता-फूलता है, उसी प्रकार गुरु के प्रति श्रद्धा, सद्भावना रखकर उनका स्नेह वात्सल्य प्राप्त करते हुए जो सीखा जाता है, वह जीवन में लाभदायक सिद्ध होता है। परस्पर उपेक्षा, उदासीनता अथवा मनोमालिन्य, तिरस्कार के भाव रखकर सिखाने से एक तो विद्या आती ही नहीं, यदि आती भी है, तो वह फलती-फूलती नहीं। माता-पिता की तरह गुरु का भी स्थान है। माता को ब्रह्मा, पिता को विष्णु और गुरु को महेश कहा गया है। यह तीनों ही देवताओं की तरह श्रद्धा, सम्मान के पात्र हैं। अतएव विद्यारम्भ संस्कार में गुरु पूजन को एक अंग माना गया है। कलम, दवात, पट्टी का पूजन करने के उपरांत शिक्षा आरंभ करने वाले गुरु को पुष्प, माला, कलावा, तिलक, आरती, फल आदि की श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए पूजनकर नमस्कार करना चाहिए।

इस पूजन का प्रयोजन है कि शिक्षार्थी अपने शिक्षकों के प्रति पिता जैसी श्रद्धा रखे, उन्हें समय-समय पर प्रणाम- अभिवादन करे, समुचित शिष्टाचार बरते, अनुशासन माने और जैसा वे निर्देश करें, वैसा आचरण करे।

अपने परिश्रम और शिष्टाचार से उन्हें प्रसन्न रखने का प्रयत्न करे । इसी प्रकार अध्यापक का भी कर्त्तव्य है कि वह शिक्षार्थी को अपने पुत्र की तरह समझें, उसे अक्षर ज्ञान ही नहीं, स्नेह, सद्‌भाव, वात्सल्य भी प्रदान करें ।

क्रिया और भावना- मंत्र के साथ बालक द्वारा गुरु के अभाव में उनके प्रतीक का पूजन कराया जाए । भावना की जाए कि इस श्रद्धा प्रक्रिया द्वारा बालक में वे शिष्योचित गुण विकसित हो रहे हैं, जिनके आधार पर शिष्य भी धन्य हो जाता है और गुरु भी ।गुरु तत्त्व का कृपा भाजन बालक बना रहे ।

ॐ बृहस्पते अति यदर्योऽ, अर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ,
यद्दीदयच्छवसऽ ऋतप्रजात, तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ।
उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतये, त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा ।।
ॐ श्री गुरवे नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ।

२६.३, तैत्ति० सं० १८.२२.१२

।। अक्षर लेखन एवं पूजन ।।

शिक्षण और प्रेरणा- इसके पश्चात् पट्टी पर बालक के हाथ से '**ॐ भूर्भुवः स्वः**' शब्द लिखाया जाए । खड़िया से उन अक्षरों को अध्यापक बना दें और बालक उस पर कलम फेरकर अक्षर बना दे अथवा अध्यापक और छात्र दोनों कलम पकड़ लें और उपरोक्त पंचाक्षरी गायत्री मन्त्र को पट्टी पर लिख दें ।ॐ परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ नाम है, भूः भुवः स्वः के यों अनेक प्रयोजनों के लिए अनेक अर्थ हैं, पर विद्यारंभ संस्कार में उनके गुण बोधक अर्थ ही व्याख्या योग्य हैं । भूः का तात्पर्य श्रम, भुवः का संयम और स्वः का विवेक है । शिक्षा का प्रयोजन इन तीन महान् प्रवृत्तियों को जाग्रत्, समुन्नत करना ही है । शिक्षित व्यक्ति यदि परिश्रमी, संयमी और विवेकवान् हैं, तो समझना चाहिए कि उसका पढ़ना सार्थक हुआ, अन्यथा पढ़े गधे, तो लगभग करोड़ों गली-कूचों में भरे पड़े हैं, वे अधिक पैसा बनाने और अधिक खुरापात करने के अतिरिक्त और कुछ बड़ी बात कर नहीं पाते । विद्यारम्भ करते हुए सबसे प्रथम यह पाँच अक्षर इसलिए लिखाये जाते हैं कि बालक ॐ परमात्मा को अपनी मनोभूमि में सर्वोपरि स्थान दे । आस्तिक बने, ईश्वर से डरे,

सदाचारी बने, निरालस्य कर्मरत रहे, संयम और व्यवस्था का कदम-कदम पर ध्यान रखे, भ्रान्तियों से बचकर विवेक को अपनाये और हँसते-खेलते दूसरों को प्रसन्न रखते हुए जीवन व्यतीत करे। यही पंचाक्षरी प्रशिक्षण शिक्षा के उद्देश्य का सार है।विद्या उसी का नाम है, जो मनुष्य के सद्गुणों को बढ़ाए। **ॐ भूर्भुवः स्वः** का सर्वप्रथम लेखन विद्यारम्भ संस्कार के समय इसी दृष्टि से कराया जाता है।

क्रिया और भावना-अक्षर लेखन करा लेने के बाद उन पर अक्षत, पुष्प छुड़वाएँ। ज्ञान का उदय अन्तःकरण में होता है, पर यदि उसकी अभिव्यक्ति करना न आए, तो भी अनिष्ट हो जाता है। ज्ञान की प्रथम अभिव्यक्ति अक्षरों को पूजकर अभिव्यक्ति की महत्ता और साधना के प्रति उमंग पैदा की जाए।

ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च, नमः शंकराय च मयस्कराय च, नमः शिवाय च शिवतराय च। -१६.४१

इसके बाद अग्नि स्थापन से लेकर गायत्री मन्त्र की आहुति तक का क्रम चले। बालक को भी उसमें सम्मिलित रखें।

॥ विशेष आहुति ॥

हवन सामग्री में कुछ मिष्टान्न मिलाकर पाँच आहुतियाँ निम्न मन्त्र से कराएँ। भावना करें, यज्ञीय ऊर्जा बालक के अन्दर संस्कार द्वारा पड़े प्रभाव को स्थिर और बलिष्ठ बना रही है।

ॐ सरस्वती मनसा पेशलं, वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः। रसं परिस्रुता न रोहितं, नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम स्वाहा। इदं सरस्वत्यै इदं न मम॥ -१९.८३

विशेष आहुति के बाद यज्ञ के शेष कर्म पूरे करके आशीर्वचन, विसर्जन एवं जयघोष के बाद प्रसाद वितरण करके समापन किया जाए।

* * *

।। यज्ञोपवीत संस्कार ।।

संस्कार प्रयोजन- शिखा और सूत्र भारतीय संस्कृति के दो सर्वमान्य प्रतीक हैं। शिखा भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था की प्रतीक है, जो मुण्डन संस्कार के समय स्थापित की जाती है। यज्ञोपवीत सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर अपने जीवन में आमूलचूल परिवर्तन के संकल्प का प्रतीक है। इसके साथ ही गायत्री मंत्र की गुरुदीक्षा भी दी जाती है। दीक्षा यज्ञोपवीत मिलकर द्विजत्व का संस्कार पूरा करते हैं। इसका अर्थ होता है- 'दूसरा जन्म' शास्त्रवचन है- **'जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते'** ।।

जन्म से मनुष्य एक प्रकार का पशु ही है। उसमें स्वार्थपरता की वृत्ति अन्य जीव-जन्तुओं जैसी ही होती है, पर उत्कृष्ट आदर्शवादी मान्यताओं द्वारा वह मनुष्य बनता है। जब मानव की आस्था यह बन जाती है कि उसे इन्सान की तरह ऊँचा जीवन जीना है और उसी आधार पर वह अपनी कार्यपद्धति निर्धारित करता है, तभी कहा जा सकता है कि इसने पशु-योनि छोड़कर मनुष्य योनि में प्रवेश किया। अन्यथा नर-नारियों से तो यह संसार भरा पड़ा है। स्वार्थ की संकीर्णता से निकलकर परमार्थ की महानता में प्रवेश करने को, पशुता को त्याग कर मनुष्यता ग्रहण करने को दूसरा जन्म कहते हैं। शरीर-जन्म माता-पिता के रज-वीर्य से वैसा ही होता है, जैसा अन्य जीवों का। आदर्शवादी जीवन लक्ष्य अपना लेने की प्रतिज्ञा करना ही वास्तविक मनुष्य जन्म में प्रवेश करना है। इसी को द्विजत्व कहते हैं। द्विजत्व का अर्थ है दूसरा जन्म। हर हिन्दू धर्मानुयायी को आदर्शवादी जीवन जीना चाहिए, द्विज बनना चाहिए। इस मूल तथ्य को अपनाने की प्रक्रिया को समारोहपूर्वक यज्ञोपवीत संस्कार के नाम से सम्पन्न किया जाता है। इस व्रत बंधन को आजीवन स्मरण रखने और व्यवहार में लाने की प्रतिज्ञा का प्रतीक तीन लड़ों वाला यज्ञोपवीत कन्धे पर डाले रहना होता है।

यज्ञोपवीत बालक को तब देना चाहिए, जब उसकी बुद्धि और भावना का इतना विकास हो जाए कि इस संस्कार के प्रयोजन को समझकर उसके निर्वाह के लिए उत्साहपूर्वक लग सके।

यज्ञोपवीत से सम्बन्धित स्थूल-सूक्ष्म मर्यादाएँ इस प्रकार हैं-

१- यज्ञोपवीत गायत्री की मूर्तिमान् प्रतिमा है ।गायत्री त्रिपदा है, गायत्री मंत्र में तीन चरण हैं; इसी आधार पर यज्ञोपवीत में तीन लड़ें हैं। यज्ञोपवीत की प्रत्येक लड़ में तीन धागे होते हैं । यज्ञोपवीत में तीन गाँठों को भू: भुव: स्व: तीन व्याहृतियाँ माना गया है । गायत्री के 'ॐकार' को बड़ी ब्रह्म ग्रन्थि कहा गया है । गायत्री के एक-एक पद को लेकर ही उपवीत की रचना हुई है। इस प्रतिमा को शरीर मन्दिर में स्थापित करने पर उसकी पूजा-अर्चना करने का उत्तरदायित्व भी स्वीकार करना होता है । इसके लिए नित्य कम से कम एक माला गायत्री मन्त्र जप की साधना करनी चाहिए।

२- यज्ञोपवीत को व्रत बन्ध कहते हैं। व्रतों से बँधे बिना मनुष्य का उत्थान सम्भव नहीं। यज्ञोपवीत को व्रतशीलता का प्रतीक मानते हैं। इसीलिए इसे सूत्र (फार्मूला-सहारा) भी कहते हैं। यज्ञोपवीत के नौ धागे नौ गुणों के प्रतीक हैं । प्रत्येक धारण करने वाले को इन गुणों को अपने में बढ़ाने का निरन्तर ध्यान बना रहे, यह स्मरण जनेऊ के धागे दिलाते रहते हैं। गायत्री गीता (गायत्री महाविज्ञान भाग-२) के अनुसार गायत्री मंत्र के नौ शब्दों में सन्निहित सूत्र इस प्रकार है:-

१.तत्- यह परमात्मा के उस जीवन्त अनुशासन का प्रतीक है, जन्म और मृत्यु जिसके ताने-बाने हैं। इसे आस्तिकता - ईश्वर-निष्ठा के सहारे जाना जाता है । उपासना इसका आधार है ।

२.सवितुर् - सविता, शक्ति उत्पादक केन्द्र है । साधक में शक्ति विकास का क्रम चलना चाहिए। यह जीवन-साधना से साध्य है।

३.वरेण्यं - श्रेष्ठता का वरण, आदर्श-निष्ठा, सत्य, न्याय, ईमानदारी के रूप में यह भाव फलित होता है ।

४. भर्गो - विकारनाशक तेज है, जो मन्यु साहस के रूप में उभरता और निर्मलता, निर्भयता के रूप में फलित होता है ।

५.देवस्य - दिव्यतावर्द्धक है। संतोष, शान्ति निस्पृहता, संवेदना, करुणा आदि के रूप में प्रकट होता है।

६.धीमहि - सद्गुण धारण का गुण, जो पात्रता विकास और समृद्धिरूप में फलित होता है ।

७. धियो - दिव्य मेधा, विवेक का प्रतीक शब्द है, समझदारी,

विचारशीलता, निर्णायक क्षमता आदि का संवर्द्धक है ।

८. यो नः - दिव्य अनुदानों के सुनियोजन , संयम का प्रतीक है । धैर्य, ब्रह्मचर्यादि का उन्नायक है ।

९. प्रचोदयात् - दिव्य प्रेरणा , आत्मीयताजन्य सेवा साधना, सत्कर्त्तव्य निष्ठा का विकासक है ।

यज्ञोपवीत के धागों में नीति का सम्पूर्ण सार सन्निहित कर दिया गया है । जैसे कागज और स्याही के सहारे किसी नगण्य से पत्र या तुच्छ सी लगने वाली पुस्तक में अत्यंत महत्त्वपूर्ण ज्ञान-विज्ञान भर दिया जाता है, उसी प्रकार सूत्र के इन नौ धागों में जीवन-विकास का सारा मार्गदर्शन समाविष्ट कर दिया गया है । इन धागों को कन्धे पर, कलेजे पर, हृदय पर, पीठ पर प्रतिष्ठित करने का प्रयोजन यह है कि सन्निहित शिक्षा को यज्ञोपवीत के धागे स्मरण कराते रहें, ताकि उन्हें जीवन-व्यवहार में उतारा जा सके ।

यज्ञोपवीत को माँ गायत्री और यज्ञ पिता की संयुक्त प्रतिमा मानते हैं । उसकी मर्यादा के कई नियम हैं, जैसे-

(१) यज्ञोपवीत को मल-मूत्र विसर्जन के पूर्व दाहिने कान पर चढ़ा लेना चाहिए और हाथ स्वच्छ करके ही उतारना चाहिए । इसका स्थूल भाव यह है कि यज्ञोपवीत कमर से ऊँचा हो जाए और अपवित्र न हो । अपने व्रतशीलता के संकल्प का ध्यान इसी बहाने बार-बार किया जाए ।

(२) यज्ञोपवीत का कोई तार टूट जाए या ६ माह से अधिक समय हो जाए, तो बदल देना चाहिए । खण्डित प्रतिमा शरीर पर नहीं रखते । धागे कच्चे और गंदे होने लगें, तो पहले ही बदल देना उचित है ।

(३) जन्म-मरण के सूतक के बाद इसे बदल देने की परम्परा है । जिनके गोद में छोटे बच्चे नहीं हैं, वे महिलाएँ भी यज्ञोपवीत सँभाल सकती हैं; किन्तु उन्हें हर मास मासिक शौच के बाद उसे बदल देना पड़ता है ।

(४) यज्ञोपवीत शरीर से बाहर नहीं निकाला जाता । साफ करने के लिए उसे कण्ठ में पहने रहकर ही घुमाकर धो लेते हैं । भूल से उतर जाए, तो प्रायश्चित्त की एक माला जप करने या बदल लेने का नियम है ।

(५) देव प्रतिमा की मर्यादा बनाये रखने के लिए उसमें चाबी के गुच्छे आदि न बाँधें । इसके लिए भिन्न व्यवस्था रखें ।

बालक जब इन नियमों के पालन करने योग्य हो जाएँ तभी उनका यज्ञोपवीत करना चाहिए।

यज्ञोपवीत भारतीय धर्म का पिता है और गायत्री भारतीय संस्कृति की माता, दोनों का जोड़ा है। यज्ञ पिता को कन्धे पर और गायत्री माता को हृदय में एक साथ धारण किया जाता है। गायत्री प्रत्येक भारतीय धर्मानुयायी का गुरु मन्त्र है। उसे यज्ञोपवीत के समय पर ही विधिवत् ग्रहण करना चाहिए। ज्ञान की मशाल को, अन्तःकरण में अवस्थित सद्गुणों को ही गुरु मानना चाहिए। आज उस स्तर के गुरु दीख नहीं पड़ते, जो स्वयं पार हो चले हों और दूसरों को अपनी नाव पर बिठा कर पार लगा सकें। जिधर भी दृष्टि डाली जाती है, नकलीपन और धोखा ही भरा मिलता है। अस्तु, यह अच्छा है कि व्यक्तियों को गुरु न बनाया जाए। अन्तःकरण के प्रकाश को तथा प्रत्यक्ष में ज्ञान-यज्ञ की दिव्य ज्योति - लाल मशाल को सद्गुरु माना जाए और यज्ञोपवीत के समय शुद्ध उच्चारण की दृष्टि से किसी भी श्रेष्ठ व्यक्ति से मन्त्रारम्भ की प्रक्रिया पूरी की जाए।

विशेष व्यवस्था- यज्ञोपवीत संस्कार के लिए यज्ञादि की सामान्य व्यवस्था के साथ-साथ नीचे लिखी व्यवस्थाओं पर भी दृष्टि रखनी चाहिए-

१- पुरानी परम्परा के अनुसार यज्ञोपवीत लेने वाले बालकों का मुण्डन करा दिया जाता था, उद्देश्य था शरीर की शृंगारिकता के प्रति उदासीनता। जिन्हें यज्ञोपवीत लेना हो, उनसे एक दिन पूर्व बाल कटवा- छँटवा कर शालीनता के अनुरूप करा लेने का आग्रह किया जा सकता है।

२- जितनों का यज्ञोपवीत होना है, उसके अनुसार मेखला, कोपीन, दण्ड, यज्ञोपवीत, पीले दुपट्टों की व्यवस्था करा लेनी चाहिए।

मेखला और कोपीन संयुक्त रूप से दी जाती है। मेखला कहते हैं कमर में बाँधने योग्य नाड़े जैसे सूत्र को। कपड़े की सिली हुई सूत की डोरी, कलावे के लम्बे टुकड़े से मेखला बना लेनी चाहिए। कोपीन लगभग ४ इञ्च चौड़ी डेढ़ फुट लंबी लँगोटी होती है। इसे मेखला के साथ टाँक कर भी रखा जा सकता है। दण्ड के लिए लाठी या ब्रह्म दण्ड जैसा रोल भी रखा जा सकता है। यज्ञोपवीत पीले रँगकर रखे जाने चाहिए। न रंग पाएँ, तो उनकी गाँठ को हल्दी से पीला कर देना चाहिए। संस्कार कराने वालों से पहले से ही

कहकर रखा जाए कि सभी या कम से कम एक नया वस्त्र धारण करके बैठें। नया दुपट्टा भी लेना पर्याप्त है। संस्कार कराने वाले हर व्यक्ति के लिए पीले दुपट्टे की व्यवस्था करा ही लेनी चाहिए।

३- गुरु पूजन के लिए लाल मशाल का चित्र रखना चाहिए। गुरु व्यक्ति नहीं चेतना रूप है, ऐसा समझकर युग शक्ति की प्रतीक मशाल को ही गुरु का प्रतीक मानकर रखना अधिक उपयुक्त है।

४- वेद का अर्थ है- ज्ञान। वेद पूजन के लिए वेद की पुस्तक उपलब्ध न हो, तो कोई भी पवित्र पुस्तक पीले वस्त्र में लपेट कर पूजा वेदी पर रख देनी चाहिए।

५- गायत्री, सावित्री एवं सरस्वती पूजन के लिए पूजन वेदी पर चावल की तीन छोटी-छोटी ढेरियाँ रख देनी चाहिए।

देव पूजन, रक्षाविधान तक के उपचार पूरे करके विशेष कर्मकांडों को क्रमबद्ध रूप से कराया जाता है। समय और परिस्थितियों के अनुरूप प्रेरणाएँ एवं व्याख्याएँ भी की जानी चाहिए। क्रिया-निर्देश और भाव-संयोग का क्रम पूरी सावधानी के साथ बनाया जाए।

॥ मेखला-कोपीन धारण ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- मेखला कोपीन धारण करने का प्रयोजन ब्रह्मचर्य पालन और प्रत्येक कार्य में जागरूक, निरालस्य एवं कर्त्तव्य पालन में कटिबद्ध रहने की प्रेरणा देना है। कोपीन पहनना अर्थात् लँगोट बाँधना। ब्रह्मचारी भी पहलवान की तरह लँगोट बाँधते हैं। लँगोट बाँधना ब्रह्मचर्य पालन का प्रतीक है। किशोरों को यही रीति-नीति अपनानी चाहिए, उन्हें ध्यान रखना चाहिए कि शारीरिक बढ़ोतरी की उम्र में आवश्यक शक्ति का उपयोग शरीर एवं मन को विकसित होने में लगाना चाहिए। यदि उस अवधि में उसे नष्ट किया गया, तो शरीर और मन दोनों का ही विकास रुक जायेगा। अपव्यय के कारण जो खोखलापन इन दिनों उत्पन्न हो जायेगा, उसकी क्षति पूर्ति फिर कभी न हो सकेगी, लड़कियों की शारीरिक अभिवृद्धि २० वर्ष की आयु तक और लड़कों की २५ वर्ष तक होती है। यह समय दोनों के लिए सतर्कतापूर्वक शक्तियों के संरक्षण का है, ताकि उनका उपयोग शारीरिक एवं

मानसिक स्वास्थ्य की नींव पक्की करने में हो सके । यह अवधि विद्या पढ़ने, मानसिक विकास करने एवं व्यायाम, ब्रह्मचर्य आदि के द्वारा शारीरिक परिपुष्टता प्राप्त करने की है । जो कच्ची उम्र में जीवन रस के साथ खिलवाड़ करना शुरू कर देते हैं, वे एक प्रकार से आत्म-हत्या करते हैं ।

कमर में मेखला बाँधने का प्रयोजन वही है, जो पुलिस तथा फौज के सैनिक कमर में पेटी बाँधकर पूरा करते हैं । कमर बाँधकर कटिबद्ध रहना जागरूकता एवं सतर्कता का चिह्न है । आलस्य और प्रमाद छोड़कर अपने नियत कर्त्तव्य-कर्म के लिए मनुष्य को सदा उत्साह एवं प्रसन्नता के साथ तत्पर रहना चाहिए । आलस्य, प्रमाद, लापरवाही, ढील-पोल, दीर्घसूत्रता जैसे दुर्गुणों को पास भी नहीं फटकने देना चाहिए, आलसी और लापरवाह व्यक्ति हर दिशा में अपनी अपार क्षति करते हैं । आलस्य चाहे शारीरिक, आर्थिक हो, चाहे मानसिक उसे साक्षात् मूर्तिमान् दारिद्र्य या दुर्भाग्य ही कहना चाहिए । इस बुरी आदत से सर्वथा बचा जाए, इसके लिए मेखला पहनाते हुए यज्ञोपवीतधारी को यह प्रेरणा दी जाती है कि वह कार्य क्षेत्र में संसार में सदा अपने कर्त्तव्य पालन के लिए फौजी सैनिक की तरह कटिबद्ध रहें । जागरूकता और सतर्कता को, स्फूर्ति और आशा को, साहस और धैर्य को अपना सच्चा सहचर समझें ।

क्रिया और भावना- मेखला एवं कोपीन एकत्रित रखकर आचार्य तीन बार गायत्री मन्त्र बोलते हुए उन पर जल के छींटे लगायें । भावना करें कि इनमें समय और तत्परता के संस्कार पैदा किये जा रहे हैं ।

सिंचन के बाद उन्हें संस्कार कराने वालों के पास पहुँचा दिया जाए । वे उन्हें हाथों के सम्पुट में रखें । मन्त्रोच्चार के साथ भावना करें कि प्राणशक्ति का संरक्षण तथा सही योजना करने का उत्तरदायित्व हम पर आ रहा है । उसे हम साहस और प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करते हैं । उस दिशा में मिलने वाले हर विचार, सहयोग एवं भावना को हम सम्मान के साथ स्वीकार करते रहेंगे । मेखला, कोपीन के साथ दैवी संस्कार का वरण हम कर रहे हैं । मन्त्र पूरा होने पर उसे कमर में स्वयं बाँध लें या खोंस लें । लँगोट पहनने का अभ्यास बनाने का आग्रह भी किया जाए ।

ॐ इयं दुरुक्तं परिबाधमाना, वर्णं पवित्रं पुनतीम आगात्। प्राणापानाभ्यां बलमादधाना, स्वसादेवी सुभगा मेखलेयम्॥ -पार० गृ० सू० २.२.८

॥ दण्ड धारण ॥

शिक्षण और प्रेरणा- आश्रमवासी ब्रह्मचारियों को दण्ड धारण कराया जाता था। उसके साथ अनेक स्थूल प्रेरणाएँ जुड़ी हैं। दैनिक उपयोग में कुत्ते, साँप, बिच्छू आदि से रक्षा, पानी की थाह लेना, आक्रमणकारियों से आत्मरक्षा, अपनी शक्ति एवं साहसिकता का प्रदर्शन आदि इसके कितने ही छिटपुट लाभ हैं। शस्त्र सज्जा में लाठी सर्वसुलभ और अधिक विश्वस्त है। उसे साथ रखने से साहस बढ़ता है। लाठी चलाना एक बहुत ही उच्च स्तर का व्यायाम है। इससे देहबल तथा मनोबल भी बढ़ता है। लाठी चलाना हर धर्म प्रेमी को आना चाहिए; ताकि दुष्ट, आतताई और अधर्मियों के हौसले पस्त करने की सामर्थ्य दिखा सकें।

अन्याय सहना अन्याय करने के समान ही पाप है। अन्याय करने वाला मरने के बाद नरक को जाता है और अन्याय सहने वाला इसी जन्म में हानि, अपमान, असुविधा, आघात आदि के कष्ट सहता है। इसलिए हर धर्मप्रेमी को अनीति का प्रबल विरोध करने के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए। इस तत्परता का एक प्रतीक-उपकरण लाठी है। यज्ञोपवीत धारण करने का अर्थ है-पशुता का परित्याग एवं मानवता को अंगीकार करना। इस परिवर्तन की प्रक्रिया में यह तो होता ही है कि नर- पशुओं के रोष एवं असंतोष का निमित्त बनना पड़े। जहाँ सौ झूठे रहते हों, वहाँ एक सत्यवादी को सताया एवं तिरस्कृत किया जाता है। ऐसी सम्भावनाओं को ध्यान में रखते हुए धैर्य, साहस एवं आत्मबल का एकत्रीकरण करना होता है, इस तैयारी को- इस बात को सदा स्मरण रखने के लिए दण्ड का विधान रखा गया है।

लाठी आमतौर से बाँस की होती है। बाँस की अनेक गाँठें मिलकर पूरा दण्ड बनाती हैं। इसका प्रयोजन यह है कि अनेक व्यक्तियों के मिलजुल कर रहने से, संगठित होने से ही धर्मरक्षा की शक्ति का निर्माण होता है। संघ शक्ति ही इस युग में सर्वोपरि है। उसी के द्वारा धर्म-रक्षा एवं अधर्म का

प्रतिकार हो सकता है, धर्मात्मा व्यक्ति वैसे ही थोड़े हैं। इस पर भी वे असंगठित रहें, तो फिर उनके आदर्श अच्छे रहते हुए भी व्यवहार की दृष्टि से उन्हें बेवकूफ कहा जायेगा। बेवकूफ सदा पिटते रहते हैं। असंगठित धर्म प्रेमियों को यदि तिरस्कृत एवं असफल रहना पड़े, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। खण्डों से मिलकर बना हुआ दण्ड हाथ में धारण करते समय यज्ञोपवीतधारी- आदर्शों को अपनाने वाले को यह ध्यान रखना पड़ता है कि उसे साहसी-शूरवीर ही नहीं, संगठन की उपयोगिता एवं आवश्यकता को भी समझना और स्वीकार करना है। अपने क्षेत्र के धर्म प्रेमियों को संगठित करने की बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए।

क्रिया और भावना- दण्ड पर गायत्री मंत्र के साथ कलावा बाँध देना चाहिए। यह कार्य पहले से भी करके रखा जा सकता है और उसी समय भी किया जा सकता है। दण्ड मंत्र के साथ संस्कार कराने वालों को दिया जाए। वे उसे दोनों हाथों से लेकर मस्तक से लगाएँ।भावना करें कि अध्यात्म क्षेत्र के प्रखर अनुशासन को ग्रहण किया जा रहा है, इसके साथ देव शक्तियों द्वारा उसके अनुरूप प्रवृत्ति और शक्ति प्रदान की जा रही है।

आचार्य निम्न मंत्र बोलते हुए ब्रह्मचारी को दण्ड प्रदान करें-

ॐ यो मे दण्डः परापतद्, वैहायसोऽधिभूम्याम्।
तमहं पुनरादद आयुषे, ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय।

- पार० गृ० सू० २.२.१२

॥ यज्ञोपवीत पूजन ॥

यज्ञोपवीत देव प्रतिमा है। उसकी स्थापना के पूर्व उसकी शुद्धि तथा उसमें प्राण-प्रतिष्ठा का उपक्रम किया जाता है। जनेऊ को सबसे प्रथम पवित्र करना चाहिए। उसे शुद्ध जल से सम्भव हो, तो गंगाजल से धोया जाए, ताकि अब तक उस पर पड़े हुए स्पर्श संस्कार दूर हो जाएँ। इसके बाद उसे दोनों हाथों के बीच रखकर १० बार गायत्री मन्त्र का मानसिक जप किया जाए। इतना करने से वह पवित्र एवं अभिमंत्रित हो जाता है। फिर हाथ में अक्षत, पुष्प लेकर यज्ञोपवीत पूजन का मंत्र बोला जाए। मंत्र पूरा होने पर अक्षत पुष्प उस पर चढ़ा दिये जाए।भावना की जाए कि सूत्र की बनी इस देव प्रतिमा

को शुद्ध एवं संस्कारवान् बनाकर उसमें सन्निहित देवत्व के प्रति अपनी भावना आस्था समर्पित की जा रही है ।

ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य, बृहस्पतिर्यज्ञमिमं
तनोत्वरिष्टं, यज्ञ ँ समिमं दधातु ।
विश्वे देवास ऽ इह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ । - २.१३

॥ पंच देवावाहन ॥

शिक्षण और प्रेरणा- ब्रह्मा, विष्णु, महेश, यज्ञ और सूर्य-इन पाँचों देवताओं को पाँच दिव्य भावनाओं का प्रतीक माना गया है । ब्रह्मा अर्थात् आत्मबल, विष्णु अर्थात् समृद्धि, महेश अर्थात् व्यवस्था, यज्ञ अर्थात् परमार्थ, सूर्य अर्थात् पराक्रम- इन पाँचों गुणों को देवता मानकर हम यज्ञोपवीत के माध्यम से अपने हृदय और कलेजे पर धारण करें अर्थात् उन्हें अपनी आस्था एवं प्रकृति का अंग बनाएँ, तभी वास्तविक कल्याण का मार्ग मिलेगा । देवता भावनाओं के प्रतिबिम्ब होते हैं ।

(१) **ब्रह्मा-** जीवन के भौतिक और आत्मिक दोनों ही पहलू सुविकसित होने चाहिए । हमें आत्मबल से सम्पन्न होने के लिए संयमी, सदाचारी, मधुरभाषी, शालीन, नेक, सज्जन, आस्तिक, सद्गुणी होना चाहिए, जिसका व्यक्तित्व-जीवन पवित्र एवं सद्भावना युक्त है, उसी का आत्मबल बढ़ता है । यज्ञोपवीत में आवाहित प्रथम ब्रह्मा को धारण करने का तात्पर्य इस मान्यता को हृदयंगम करना एवं उसके लिए प्रयत्नशील रहना ही है ।

क्रिया और भावना- यज्ञोपवीत खोलकर उसे हाथ के दोनों अँगूठों में फैला लें, ताकि फिर से न उलझे । अब दोनों हाथों के सम्पुट में लें । मन्त्रोच्चार के साथ भावना करें कि आवाहित देवशक्ति का प्रवाह इस सूत्र में स्थापित हो रहा है । मन्त्र पूरा होने पर हाथों को मस्तक से लगाएँ ।

ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्, विसीमतः सुरुचो वेनऽआवः ।
सबुध्न्या ऽउपमा ऽ अस्य विष्ठाः , सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥
ॐ ब्रह्मणे नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ।

१३.३, अथर्व० ५.६.१

(२) **विष्णु-** विष्णु लक्ष्मी के स्वामी हैं, हमें भी दीन, दरिद्र, हेय, परावलंबी, गई-गुजरी स्थिति में नहीं पड़ा रहना चाहिए। स्वास्थ्य, शिक्षा, कुशलता आदि गुणों को बढ़ाना चाहिए, ताकि उसकी कीमत पर सुख साधनों को, समृद्धि को प्राप्त किया जा सके। समृद्धि उपलब्ध करने का सही मार्ग केवल एक ही है, अपनी सर्वाङ्गीण प्रतिभा एवं योग्यता को बढ़ाना। इस दिशा में जो जितना कर लेगा, उसे उस मूल्य पर आसानी से अधिक सुख-साधन मिल जायेंगे। समृद्धि को मनुष्य अपनी तथा दूसरों की सुविधा बढ़ाने में खर्च करे, तो उससे लोक एवं परलोक की सुख-शान्ति बढ़ेगी। यज्ञोपवीत में स्थापित विष्णु का यही सन्देश है।

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे, त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पा ꣳ सुरे स्वाहा॥ ॐ विष्णवे नमः।
आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि। -५.१५

(३) **महेश-** महेश का अर्थ है- नियंत्रण, व्यवस्था, क्रमबद्धता, उचित का चुनाव। ब्रह्मा को उत्पादन का, विष्णु को पालन का और शिव को संहार का देवता माना गया है। संहार का अर्थ है- अनुपयोगिता एवं अनौचित्य का निवारण। हमारी आधी से अधिक शक्ति-सामर्थ्य अव्यवस्था एवं अनौचित्य को अपनाये रहने से नष्ट होती है, इसे बचाया जाना चाहिए। यज्ञोपवीत में शिव देवता का आवाहन इन्हीं मान्यताओं को हृदयंगम करने के लिए किया जाता है।

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यवऽ, उतो तऽ इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः।
ॐ रुद्राय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ - १६.१

(४) **यज्ञ-** आत्मबल बढ़ाने के लिए एक अनिवार्य माध्यम परमार्थ है, यज्ञ इसी प्रवृत्ति का परिचायक है। धार्मिक व्यक्ति वही है, जिसके जीवन में सेवा, उदारता, सहायता एवं परोपकार की वृत्ति फूट पड़ती है, जिसे सभी अपने लगते हैं, जिसे सभी से प्रेम है, वही सच्चा अध्यात्मवादी कहा जायेगा। उसे अनिवार्यतः अपनी आकांक्षाओं और गतिविधियों में परमार्थ को प्रधानता देनी ही होगी। ब्रह्म और यज्ञ इन दो देवताओं की-वैयक्तिक जीवन की पवित्रता एवं लोक सेवा की प्रवृत्ति को अपनाने से आत्मिक बल बढ़ता है

और मनुष्यत्व से देवत्व की ओर प्रगति होती है ।

यज्ञोपवीत खोलकर कनिष्ठिका व अंगुष्ठ में फँसाकर यज्ञ भगवान् के सामने करें ।

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः, तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त, यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥
ॐ यज्ञपुरुषाय नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ।

३१.१६

(५) **सूर्य-** सूर्य अर्थात् तेजस्विता, पराक्रम, श्रमशीलता । सूर्य की तरह हम निरंतर कार्य में संलग्न रहें, परिश्रम को अपना जीवन सहचर एवं गौरव का आधार मानें । आलस्य और प्रमाद को पास न फटकने दें । सदा जागरूक एवं चैतन्य रहें । पुरुषार्थी बनें । आत्महीनता एवं दीनता की भावना मन में न आने दें, तेजस्वी बनें । एक पैर से खड़े होकर पानी का लोटा सूर्य के सामने लुढ़का देने से नहीं, सूर्य की सच्ची उपासना उसकी प्रेरणाओं को अपनाने से होती है ।यज्ञोपवीत को लिये हुए दोनों हाथ ऊपर उठाएँ, सूर्य भगवान् का ध्यान करें-

ॐ आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो, निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना, देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥
ॐ सूर्याय नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ।

- ३३.४३

॥ यज्ञोपवीत धारण ॥

शिक्षण और प्रेरणा- कोई भी वस्त्र-आभूषण हो, अपनी शोभा प्रतिष्ठा तब बढ़ाता है, जब उसे धारण किया जाए । यज्ञोपवीत प्रतीक को धारण करते हुए यह ध्यान रखा जाए कि यह सूत्र नहीं, इस माध्यम से जीवन में दिव्यता-आदर्शवादिता को धारण किया जा रहा है । इसे सहज ही धारण किया जाना चाहिए; क्योंकि इसके बिना मनुष्य में मनुष्यता का विकास सम्भव नहीं ।

क्रिया और भावना- पाँच यज्ञोपवीतधारी व्यक्ति मिलकर यज्ञोपवीत पहनाते हैं। भाव यह है कि इस दिशा में नया प्रयास, प्रवेश करने वाले को अनुभवियों का सहयोग एवं मार्गदर्शन मिलता रहे। पहनाने वाले जब यज्ञोपवीत पकड़ लें, तो धारण करने वाला उसे छोड़ दे। बायाँ हाथ नीचे कर ले और दाहिना हाथ ऊपर ही उठाये रहे। मन्त्र के साथ यज्ञोपवीत पहना दिया जाए। मन्दिर में प्रतिमा स्थापना जैसा दिव्य भाव बनाये रखें।

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं, प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं , यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥

- पार० गृ० सू० २.२.११

॥ सूर्य-दर्शन ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- तदुपरान्त सूर्य दर्शन एवं सूर्य अर्घ्यदान की क्रिया है। संस्कारार्थी सूर्य भगवान् को देखता है और तीन अंजलि भर के उन्हें जल प्रदान करता है।

सूर्य के समान तेजस्वी बनना, उष्णता धारण किये रहना, गतिशील रहना, लोक कल्याण के लिए जीवन समर्पित करना, अन्धकार रूपी अज्ञान दूर करना, अपने प्रकाश से दूसरों को प्रकाशित करना जैसी अनेक प्रेरणाएँ सूर्य दर्शन करते हुए ग्रहण की जाती हैं। सूर्य आगे बढ़ता चलता है, पर साथ में अपने अन्य ग्रह, उपग्रहों को भी घसीटता ले चलता है। यज्ञोपवीतधारी को स्वयं तो प्रगति के पथ पर आगे बढ़ना ही है, पर साथ ही यह भी ध्यान रखना है कि व्यक्तिगत उन्नति से ही सन्तोष न कर लिया जाए, अपने साथी समीपवर्ती लोगों को भी आगे बढ़ाते हुए साथ चलाने का प्रयत्न करना है। सूर्य उदय और अस्त में, लाभ और हानि में मनुष्य को सन्तुलित धैर्य युक्त एवं एक-सा रहना चाहिए। न तो सम्पत्ति से उन्मत्त हों और न विपत्ति में शोक सन्ताप से विक्षुब्ध हों। धूप-छाँव की तरह जीवन में प्रिय- अप्रिय परिस्थितियाँ आती-जाती रहती हैं। उन्हें हँसते-खेलते एवं क्रीड़ा -विनोद की तरह देखना चाहिए और शान्त- चित्त से अपने निर्धारित लक्ष्य की ओर बिना एक क्षण भी उद्वेगों में गँवाये, आगे बढ़ते रहना चाहिए। सूर्य के समान लोककल्याण के आयोजनों में पूरी अभिरुचि रखने की कार्य पद्धति अपनाने की योजना

बनानी चाहिए। भगवान् भास्कर अपनी किरणों द्वारा समुद्र के पानी को भाप बनाकर बादलों के रूप में परिणत करते हैं। बादलों से वर्षा होती है। उसी पर वृक्ष, वनस्पति, जीव-जन्तु, पशु-पक्षी और मनुष्य का जीवन निर्भर है।

सूर्य किरणों की गर्मी निर्जीव प्रकृति को सजीव बनाती है। संसार में जितना जीवन तत्त्व है, वह सब सूर्य से ही आया है। इसलिए सूर्य को जगत् की आत्मा भी कहा गया है। हमें भी सूर्य के दर्शन करते हुए इसी रीति-नीति को अपनाना चाहिए और श्रद्धापूर्वक तीन बार अंजलि देते हुए शरीर, मन और धन से इन आदर्शों में तत्पर रहने की सहमति-स्वीकृति प्रकट करनी होती है।

क्रिया और भावना- मन्त्रोच्चार के साथ सूर्य नारायण का ध्यान करते हुए हाथ जोड़कर नमस्कार करें, भावना करें जगदात्मा सूर्य जिस प्रकार सारी प्रकृति को शक्ति देते हैं, वैसे ही उनका सूक्ष्म प्रवाह हमें भी मिल रहा है, हम उससे, धारण और नियोजन की सामर्थ्य पा रहे हैं।

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शत ꣳ, शृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः, स्याम शरदः शतं, भूयश्च शरदः शतात्॥ ३६.२४

॥ त्रिपदा पूजन ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- गायत्री माता के तीन चरण कहे गये हैं। यज्ञोपवीत की तीन लड़ें उनकी प्रतीक हैं। उन्हें सूत्र रूप में गायत्री, सरस्वती और सावित्री शक्तियों के रूप में जाना जाता है। इनकी प्रतिनिधि धाराएँ क्रमशः श्रद्धा, प्रज्ञा और निष्ठा हैं। ये मनुष्य के कारण, सूक्ष्म और स्थूल कलेवरों को नियन्त्रित, विकसित करने वाली हैं। इन्हीं के सहारे देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋणों से मुक्त हुआ जा सकता है। इन्हें ही भक्ति, ज्ञान और कर्म की धाराओं की गङ्गोत्री माना जाता है। इनका मर्म समझने तथा अनुसरण करने के भाव से त्रिपदा पूजन के अन्तर्गत इन्ही तीन शक्तियों का पूजन किया जाता है।

क्रिया और भावना- पूजन वेदी पर स्थापित चावल की तीन ढेरियों को गायत्री, सरस्वती एवं सावित्री का प्रतीक मानकर उनके मन्त्र बोलकर अक्षत, पुष्प उन पर चढ़ाएँ। भावना की जाए कि ऊँची सतह का

पानी निचली सतह पर आता है। इन शक्तियों के आगे उनका पूजन करके झुककर- उनके प्रवाह को हम प्राप्त कर रहे हैं। गायत्री पूजन के साथ श्रद्धा, सरस्वती के साथ प्रज्ञा और सावित्री के साथ निष्ठा सम्पदाओं के सम्वर्धन की भावना की जाए।

॥ गायत्री पूजन ॥

ॐ ता ँ सवितुर्वरेण्यस्य, चित्रामाऽहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम्। यामस्य कण्वो अदुहत्प्रपीना ँ सहस्रधारां पयसा महीं गाम्। ॐ भूर्भुवः स्वः गायत्र्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि - १७.७४

॥सरस्वती पूजन ॥

ॐ पावका नः सरस्वती, वाजेभिर्वाजिनीवती।यज्ञं वष्टु धियावसुः॥ ॐ भूर्भुवः स्वः सरस्वत्यै नमः। २०.८४
आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि।

॥ सावित्री पूजन ॥

ॐ सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या, वाचा त्वष्ट्रा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे, बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाऽग्निना, तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना, दशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्पामि॥ॐ भूर्भुवः स्वः सावित्र्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ - १०.३०

॥ दीक्षा प्रकरण ॥

यज्ञोपवीत संस्कार के साथ दीक्षा अनिवार्य रूप से जुड़ी है। बहुत बार प्रतिनिधि रूप में आस्थावान् व्यक्तियों को भी दीक्षा देनी पड़ती है। दोनों ही प्रकरणों में दीक्षा के उद्देश्य, महत्त्व और मर्यादाओं पर उनका ध्यान दिला देना चाहिए।

महत्त्व और मर्यादाएँ- दीक्षा पाने के लिए व्यक्ति बहुधा सहज श्रद्धावश पहुँच जाते हैं। दीक्षा के पूर्व उन्हें इस कृत्य का महत्त्व और उसकी मर्यादाएँ समझा देनी चाहिए। उसके मुख्य सूत्र ये हैं-

(१) गुरुदीक्षा सामान्य कर्मकाण्ड नहीं, एक सूक्ष्म आध्यात्मिक प्रयोग है। उसके अन्तर्गत शिष्य अपनी श्रद्धा और संकल्प के सहारे गुरु के समर्थ व्यक्तित्व के साथ जुड़ता है। कर्मकाण्ड उस सूक्ष्म प्रक्रिया का एक अंग है।

(२) दीक्षा में समर्थ गुरु के विकसित प्राण का एक अंश शिष्य के अन्दर स्थापित किया जाता है। यह कार्य समर्थ गुरु ही कर सकता है। उन्हीं का प्राणानुदान दीक्षा लेने वालों को मिलता है, कर्मकाण्ड कराने वाला स्वयंसेवक मात्र होता है।

(३) व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से आगे बढ़ता है, यह उसी प्रकार ठीक है जैसे पौधा अपनी ही जड़ों से जीवित रहता है और बढ़ता है; किन्तु यह भी सत्य है कि वृक्ष की कलम सामान्य पौधे में बाँध देने पर उसके उत्पादन में भारी परिवर्तन हो जाता है। दीक्षा में साधक रूपी सामान्य पौधे पर गुरु रूपी श्रेष्ठ वृक्ष की टहनी प्राणानुदान के रूप में स्थापित की जाती है। साधक इसका अनुपम लाभ उठा सकता है।

(४) कलम बाँधना एक कार्य है। यह कार्य गुरु द्वारा किया जाता है। उसे रक्षित और विकसित करना दूसरा कार्य है, जिसके लिए शिष्य को पुरुषार्थ करना पड़ता है। दीक्षा लेने वालों को अपने इस दायित्व के प्रति जागरूक रहना चाहिए। इसके लिए गुरु के विचारों के सतत सान्निध्य में रहना आवश्यक है, मिशन की पत्रिकाओं से उनका मार्गदर्शन पाते रहना तथा तदनुरूप जीवन क्रम बनाने का प्रयास करना चाहिए।

(५) दीक्षा के बाद गुरु- शिष्य परस्पर पूरक बन जाते हैं। गुरु की शक्ति शिष्य के उत्कर्ष के लिए लगती रहती है; पर यह तभी सम्भव है, जब शिष्य की शक्ति गुरु के कार्यों-लोक मंगल के लिए नियमित रूप से लगती रहे। इसे देवत्व की साझेदारी कहा जा सकता है। शिष्य को अपने समय, पुरुषार्थ, प्रभाव, ज्ञान एवं धन का एक अंश नियमित रूप से गुरु के कार्य के लिए लगाना होता है। यह क्रम चलता रहे, तो लगाई हुई कलम का फलित होना अवश्यम्भावी है।

क्रम व्यवस्था- यदि यज्ञोपवीत के साथ दीक्षा क्रम चलाना है, तो त्रिपदा पूजन के बाद गुरु पूजन-नमस्कार कराके दीक्षा दे दी जाए। यदि अलग से दीक्षा क्रम चलता है, तो नीचे लिखे क्रम से उपचार कराते हुए आगे बढ़ें।

(१) पहले षट्कर्म- पवित्रीकरण, आचमन, शिखावन्दन, प्राणायाम, न्यास एवं भूमि पूजन कराएँ। इसके साथ संक्षिप्त भावभरी सारगर्भित व्याख्याएँ की जाएँ।

(२) षट्कर्म के बाद देव पूजन एवं सर्वदेव नमस्कार कराएँ।

(३) नमस्कार के बाद हाथ में पुष्प, अक्षत, जल लेकर स्वस्तिवाचन कराया जाए। स्वस्तिवाचन के अक्षत, पुष्प एकत्रित करने के साथ ही नियुक्त स्वयं सेवकों द्वारा ही कलावा बाँधने एवं तिलक करने का क्रम चलाया जाए। उसके मन्त्र एवं व्याख्याएँ संचालक बोलते रहें।

यदि दीक्षा क्रम यज्ञ के साथ चल रहा है, तो उपर्युक्त में से जो उपचार पहले कराये जा चुके हैं, उन्हें पुनः कराना आवश्यक नहीं। उस स्थिति में गुरु पूजन करके ही दीक्षा दी जाए।

॥ गुरु पूजन ॥

जिस प्रकार भगवान् मूर्ति नहीं एक चेतना है, उसी प्रकार गुरु को व्यक्ति नहीं चेतना रूप मानना चाहिए। जो ईश्वर को मूर्तियों, चित्रों तक सीमित मानता है, वह ईश्वरीय सत्ता का समुचित लाभ नहीं उठा सकता। इसी प्रकार जो गुरु को शरीर तक सीमित मानता है, वह गुरु सत्ता का लाभ नहीं उठा सकता। जिस प्रकार ईश्वर सर्वसमर्थ है; पर भक्त की मान्यता और भावना के अनुरूप ही प्रत्यक्ष फल देता है, वैसे ही गुरु भी शिष्य की आस्था के अनुरूप फलित होता है। यह ध्यान में रखकर गुरु वन्दना के साथ अन्तः करण में गुरु चेतना के प्रकटीकरण होने की प्रार्थना की जानी चाहिए।

क्रिया और भावना- गुरु के प्रतीक चित्र पर मन्त्र के साथ अक्षत-पुष्प चढ़ाकर उनका पूजन करें। फिर हाथ जोड़कर भाव-भरी वन्दना करें। भावना करें कि उनकी कृपा से उन्हें चेतना रूप में समझने, अपनाने की क्षमता का विकास हो रहा है।

ॐ बृहस्पते ऽअति यदर्यो, अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु।
यद्दीदयच्छवसऽ ऋतप्रजात, तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्।
उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतये, त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा।
ॐ श्री गुरवे नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि। ततो नमस्कारं करोमि। २६.३, तै० सं० १.८.२२.२, ऋ० २.२३.१५

ॐ वन्दे बोधमयं नित्यं, गुरुं शंकररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि, चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य, ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः॥
नमोऽस्तु गुरवे तस्मै, गायत्रीरूपिणे सदा।
यस्य वागमृतं हन्ति, विषं संसारसंज्ञकम्॥
मातृवत् लालयित्री च, पितृवत् मार्गदर्शिका।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै, श्रद्धाप्रज्ञायुता च या॥

॥ मन्त्र दीक्षा ॥

शिक्षण और प्रेरणा- गायत्री मन्त्र सहज रूप से एक छन्द है, प्रार्थना है। गुरु जब उसके साथ अपने तप, पुण्य और प्राण को जोड़ देता है, तो वह मन्त्र बन जाता है। यह सब देने की सामर्थ्य जिसमें न हो, वह दीक्षा देने का प्रयास करे, तो निरर्थक रूप से पातक का भागी बनता है। स्वयंसेवक भाव से गुरु की ही चेतना का प्रवाह दीक्षित व्यक्ति से जोड़ने में अपनी सद्‌भावना का प्रयोग करना उचित है।

क्रिया और भावना- अब साधकों को सावधान होकर बैठने को कहें। कमर सीधी, हाथ की अँगुलियाँ परस्पर फँसाकर हाथ के अँगूठों को सीधा रखते हुए परस्पर मिलाएँ। अँगूठे के नाखूनों पर साधक अपनी दृष्टि टिकाएँ। यह स्थिति मन्त्र दीक्षा चलने तक बनी रहे। कहीं इधर-उधर न देखें। मन्त्र दीक्षा के बाद जब सिंचन हो जाए, तब दृष्टि हटाएँ और हाथ खोलें। उपरोक्त मुद्रा बनाने के बाद दीक्षा कर्मकाण्ड कराने वाला स्वयंसेवक गुरु का ध्यान करते हुए गायत्री मन्त्र का एक- एक शब्द अलग-अलग करके

बोले । दीक्षा लेने वाले उसे दुहराते चलें । इस क्रम से पाँच बार गायत्री मन्त्र दुहराया जाए ।

भावना की जाए ' गुरु की दिव्य सामर्थ्य, उनके तप, पुण्य और प्राण का अंश मन्त्राक्षरों के साथ साधक के अन्दर प्रविष्ट- स्थापित हो रहा है । उपयुक्त मनोभूमि में वह फलित होकर ही रहेगा ।'

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३६.३

॥ सिंचन- अभिषेक ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- वृक्ष, बीज या कलम आरोपित करने के बाद उसमें पानी दिया जाता है । पानी उसके अनुरूप होना चाहिए अन्यथा तेल, साबुन, तेजाबयुक्त पानी पौधे को नष्ट करेगा । गुरु के अनुदानों को दिव्य रस- श्रेष्ठ कर्मों तथा उनके द्वारा निर्दिष्ट अनुशासनों के पालन में उल्लास की अनुभूति से सींचा जाता है । पेड़ लगे, फले- फूले यह भाव सींचने का है । अभिषेक राजाओं, योद्धाओं, सत्पुरुषों का किया जाता है । दीक्षा लेकर नया श्रेष्ठ जीवन प्रारम्भ किये जाने का अभिनन्दन करते हुए अभिषेक किया जाता है ।

क्रिया और भावना- कुछ स्वयंसेवक कलश लें । आम के पत्ते, कुश या पुष्प द्वारा मन्त्र के साथ जल के छींटे दीक्षितों पर लगाएँ । भावना की जाए कि सिंचन के साथ दैवी शक्तियों, स्नेहियों के सद्भावों की वर्षा हो रही है, साधकों की साधना फलीभूत होने की स्थिति बन रही है ।

ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवः , तानऽऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे। ॐ यो वः शिवतमो रसः, तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः। ॐ तस्मा ऽअरं गमाम वो, यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपोजनयथा च नः ॥ ३६.१४-१६,११.५०-५२

यदि केवल दीक्षा क्रम अलग से चल रहा है, तो सिंचन के बाद गुरु दक्षिणा संकल्प कराएँ । यज्ञोपवीत के साथ दीक्षा है, तो यज्ञोपवीत के शेष कर्म पूरे करा कर संकल्प कराएँ ।

॥ भिक्षाचरण ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- गुरु दक्षिणा द्वारा साधक अपने विकास की सुनिश्चित मर्यादा घोषित करता है। सदुद्देश्य के लिए अपना अंशदान देता है; परन्तु बात यहीं समाप्त नहीं होती। सत्कार्यों में अपने योगदान के लिए औरों के योगदान भी जोड़ने का प्रयास किया जाना चाहिए। इसके लिए देने की स्थिति और इच्छा जिनमें है, उनसे लेकर उसे सत्कार्यों में लगाना परम पुनीत कार्य माना जाता है। भिक्षा की परम्परा इसी दृष्टि से श्रेष्ठ मानी जाती थी। शिष्य इस परिपाटी के पालन का साहस करे। अपने अहं को गलाकर जन सहयोग एकत्रित करके गुरुकार्य में लगाए। इसी भाव से यज्ञोपवीत के साथ भिक्षा चरण का क्रम भी जुड़ा रहता है।

क्रिया और भावना- शिष्य दुपट्टे की झोली बनाकर भिक्षा माँगे। पहले माँ के पास जाए, कहे " **भवति भिक्षां देहि"**, फिर पिता के पास जाकर कहे " **भवान् भिक्षां देहि"**। फिर इसी प्रकार कहता हुआ अपने कुटुम्बियों महिलाओं- पुरुषों से याचना करे, जो मिले उसे गुरु के सम्मुख अर्पित कर दे। भिक्षा देने वालों के हाथों में अक्षत दे दिये जाएँ। अपनी इच्छा से वे कुछ द्रव्य डालना चाहें, तो डाल सकते हैं।

'भवति- भिक्षां देहि' (महिलाओं से) और **'भवान् भिक्षां देहि'** (पुरुषों से) कहते हुए भिक्षा पूरी करके उपलब्ध सामान गुरु के सम्मुख चढ़ा दिया जाता है।

॥ वेद पूजन- अध्ययन ॥

वेदों का सार गायत्री है। गायत्री को ही वेदमाता, वेदबीज या वेदमूल कहते हैं। वेदमाता गायत्री के निर्देशों के अनुरूप, जीवन निर्माण की अपनी आस्था के प्रतीक रूप में वेद भगवान् का पूजन किया जाता है।

क्रिया और भावना - हाथ में पुष्प-अक्षत लेकर वेदों का प्रतीक पूजन किया जाए। फिर नीचे दिये प्रत्येक वेद के एक-एक मन्त्र बुलवाये जाएँ। आचार्य कहे, दीक्षित व्यक्ति दुहराएँ।

ॐ वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः। देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पत ऽइमं देव यज्ञ ᳪ स्वाहा वाते धाः॥ ॐ वेदपुरुषाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि। -२.२१

॥ वेदाध्ययन ॥

ॐ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥ -ऋ० १.१.१

ॐ इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽ आप्यायध्व मघ्न्याऽ इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा व स्तेन ऽईशत माघश ᳪ सो ध्रुवाऽ अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि॥ -१.१

ॐ अग्न आ याहि वीतये गृणानोहव्य दातये। निहोता सत्सि बर्हिषि॥ -साम० १.१.१

ॐ ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वारूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वोऽ अद्य दधातु मे॥ -अथर्व० १.१.१

॥ विशेष - आहुति ॥

इसके बाद अग्नि स्थापन से लेकर गायत्री मन्त्र की आहुतियों तक के उपचार पूरे करें। स्विष्टकृत् आहुति के पूर्व विशेष आहुतियाँ प्रदान करें।

शिक्षण एवं प्रेरणा - यज्ञोपवीत व्रतबन्ध है। व्रतशील तेजस्वी जीवन जीने का आरम्भ यहाँ से किया जाता है। इस व्रतशीलता के लिए पाँच व्रतपति देवताओं के नाम की आहुतियाँ डालते हैं। ये देव शक्तियाँ हैं-अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र और इन्द्र।अग्नि से ऊष्मा, प्रकाश, ऊँचे उठना, सबको अपने जैसा बनाना तथा प्राप्त को वितरित करके अपने लिए कुछ शेष न रखना आदि प्रेरणाएँ प्राप्त होती हैं।

वायु से सतत गतिशीलता, जीवों की प्राण रक्षा के लिए स्वयं उन तक

पहुँचना, सहज उपलब्ध रहना, बादल, सुगन्धि जैसी सत्प्रवृत्तियों के प्रसार-वितरण का माध्यम बनने की प्रेरणाएँ उभरती हैं ।

सूर्य से प्रकाश, नियमितता, सतत चलते रहना, बिना भेद-भाव सब तक अपनी किरणें पहुँचाने जैसा श्रेष्ठ शिक्षण प्राप्त होता है ।

चन्द्र स्वप्रकाशित नहीं, फिर भी प्रकाश देता है । स्वयं सूर्यताप सहकर शीतल प्रकाश फैलाता है-ऐसी सत्प्रवृत्तियों के प्रतीक चन्द्रदेव से प्रेरणाएँ प्राप्त करते हैं ।

इन्द्र देवत्व के संगठक हैं । बिखराव से ही देवत्व का पराभव होता है, देववृत्तियों के एकीकरण तथा हजार नेत्रों से सतत जागरूकता की प्रेरणा इन्द्रदेव से प्राप्त होती है ।

क्रिया और भावना - मन्त्र के साथ आहुतियाँ दें । प्रत्येक आहुति के साथ भावना करें कि इस देवशक्ति के पोषण के लिए यह हमारा योगदान है । वह हमें संरक्षण और मार्गदर्शन देंगे । यह वृत्तियाँ उनके आशीर्वाद से हमें मिल रही हैं, जिससे हमारा कल्याण होता है ।

ॐ अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम् ।
तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा ।
इदं अग्नये इदं न मम ।

ॐ वायो व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम् ।
तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा ।
इदं वायवे इदं न मम ।

ॐ सूर्य व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम् ।
तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा ।
इदं सूर्याय इदं न मम ।

ॐ चन्द्र व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम् ।
तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा ।
इदं चन्द्राय इदं न मम ।

ॐ व्रतानां व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्।
तेनर्ध्यासमिदमहम्,अनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा।
इदं इन्द्राय व्रतपतये इदं न मम। - म० ब्रा० १.६.९-१३

॥ वैश्वानर-नमस्कार ॥

हाथ जोड़कर अग्निदेव को नमस्कार करें।भावना करें कि यज्ञाग्नि जिसके सान्निध्य से देवत्व मिलता है, उसके प्रति हम श्रद्धा प्रकट कर रहे हैं।

ॐ वैश्वानरो नऽऊतयऽआ प्र यातु परावतः। अग्निर्नः सुष्टुतीरुप।ॐ वैश्वानराय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि। - १८.७२

इसके बाद पूर्णाहुति आदि कृत्य कराए जाएँ। विसर्जन के पूर्व गुरु दक्षिणा संकल्प कराएँ।

॥ गुरु दक्षिणा संकल्प ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा - दीक्षा के साथ व्रतशीलता की शर्त जुड़ी है। व्रत कहते हैं सुनिश्चित लक्ष्य के लिए सुनिश्चित साधना-क्रम बनाना। जो व्रतशील नहीं, वह जीवन के ढर्रे को बदल नहीं सकता। उसे बदले बिना दीक्षा फलित नहीं होती। यह ढर्रा बदलने के लिए गुरु दक्षिणा दी जाती है। अपने समय, प्रभाव, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश गुरु के निर्देशानुसार खर्च करने का संकल्प ही गुरु दक्षिणा में किया जाता है। इसके लिए न्यूनतम पच्चीस पैसे से एक रुपया तक तथा दो घण्टे का समय प्रतिदिन निकालना चाहिए। इससे अधिक करने की जिनकी स्थिति हो, वे महीने में एक दिन का वेतन दे सकते हैं। दीक्षा लेने वालों के संकल्प पत्र पहले से भरवा लेने चाहिए। संकल्प के साथ संकल्प पत्र में ऊपरी बातों का स्मरण किया जाता है।

गुरु, दीक्षा के साथ अपनी शक्ति देता है, शिष्य दक्षिणा देकर अपनी पात्रता, प्रामाणिकता सिद्ध करता है। दीक्षा आहार प्रदान करने जैसा है। दक्षिणा उसे पचाने की क्रिया है। दीक्षा कलम लगाने जैसी प्रक्रिया है, दक्षिणा जड़ों का रस उस कलम तक पहुँचाकर उसे विकसित फलित करने का उपक्रम है।

क्रिया और भावना - साधकों के हाथ में अक्षत, पुष्प देकर दक्षिणा संकल्प बोला जाए। भावना की जाए इस दिव्य आदान-प्रदान द्वारा गुरु शिष्य का व्यक्तित्व मिलकर एक नया व्यक्तित्व बन रहा है।

संकल्प- गोत्र और नाम तक यथावत् क्रम से बोला जाए। आगे जोड़ा जाए-

.......श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त-फलप्राप्त्यर्थं मम कायिक- वाचिक मानसिक ज्ञाताज्ञात- सकलदोषनिवारणार्थं, आत्मकल्याण-लोककल्याणार्थं, गायत्री महाविद्यायां श्रद्धापूर्वकं दीक्षितो भवामि। तन्निमित्तकं युगऋषि वेदमूर्ति तपोनिष्ठ परम पूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्येण, वन्दनीया माता भगवती देवी शर्मणा च निर्धारितानि अनुशासनानि स्वीकृत्य, तयोः प्राण-तपः- पुण्यांशं स्वान्तःकरणे दधामि, तत्साधयितुं च समय-प्रतिभा-साधनानां एकांशं ..... नवनिर्माणकार्येषु प्रयोक्तुम् गुरु-दक्षिणायाः संकल्पं अहं करिष्ये।

संकल्प बोले जाने के बाद अपने व्रतों की घोषणा सहित संकल्प-पत्र, दक्षिणा, फल आदि गुरुदेव के प्रतीक के आगे चढ़वाये जाएँ। आचार्य की भूमिका निभा रहे स्वयंसेवक या कोई वरिष्ठ साधक कार्यकर्ता उन्हें तिलक करे। दीक्षित व्यक्ति सबको नमस्कार प्रणाम करे, सभी लोग उन पर शुभकामना, आशीर्वाद के अक्षत-पुष्प छोड़ें। जयघोष आदि के साथ संस्कार क्रम समाप्त किया जाए।

* * *

॥ विवाह-संस्कार ॥

संस्कार प्रयोजन- विवाह दो आत्माओं का पवित्र बन्धन है । दो प्राणी अपने अलग-अलग अस्तित्वों को समाप्त कर एक सम्मिलित इकाई का निर्माण करते हैं । स्त्री और पुरुष दोनों में परमात्मा ने कुछ विशेषताएँ और कुछ अपूर्णताएँ दे रखी हैं । विवाह सम्मिलन से एक-दूसरे की अपूर्णताओं को अपनी विशेषताओं से पूर्ण करते हैं, इससे समग्र व्यक्तित्व का निर्माण होता है । इसलिए विवाह को सामान्यतया मानव जीवन की एक आवश्यकता माना गया है । एक-दूसरे को अपनी योग्यताओं और भावनाओं का लाभ पहुँचाते हुए गाड़ी में लगे हुए दो पहियों की तरह प्रगति-पथ पर अग्रसर होते जाना विवाह का उद्देश्य है । वासना का दाम्पत्य-जीवन में अत्यन्त तुच्छ और गौण स्थान है, प्रधानतः दो आत्माओं के मिलने से उत्पन्न होने वाली उस महती शक्ति का निर्माण करना है, जो दोनों के लौकिक एवं आध्यात्मिक जीवन के विकास में सहायक सिद्ध हो सके ।

विवाह का स्वरूप- आज विवाह वासना- प्रधान बनते चले जा रहे हैं । रंग, रूप एवं वेष- विन्यास के आकर्षण को पति-पत्नी के चुनाव में प्रधानता दी जाने लगी है, यह प्रवृत्ति बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है । यदि लोग इसी तरह सोचते रहे, तो दाम्पत्य-जीवन शरीर प्रधान रहने से एक प्रकार के वैध-व्यभिचार का ही रूप धारण कर लेगा । पाश्चात्य जैसी स्थिति भारत में भी आ जायेगी । शारीरिक आकर्षण की न्यूनाधिकता का अवसर सामने आने पर विवाह जल्दी-जल्दी टूटते- बनते रहेंगे । अभी पत्नी का चुनाव शारीरिक आकर्षण को ध्यान में रखकर किये जाने की प्रथा चली है, थोड़े ही दिनों में इसकी प्रतिक्रिया पति के चुनाव में भी सामने आयेगी । तब असुन्दर पतियों को कोई पत्नी पसन्द न करेगी और उन्हें दाम्पत्य सुख से वंचित ही रहना पड़ेगा । समय रहते इस बढ़ती हुई प्रवृत्ति को रोका जाना चाहिए और शारीरिक आकर्षण की उपेक्षा कर सद्गुणों तथा सद्भावनाओं को ही विवाह का आधार पूर्वकाल की तरह बने रहने देना चाहिए । शरीर का नहीं आत्मा का सौन्दर्य देखा जाए और साथी में जो कमी है, उसे प्रेम, सहिष्णुता, आत्मीयता एवं विश्वास की छाया में जितना सम्भव हो सके , सुधारना

चाहिए, जो सुधार न हो सके, उसे बिना असन्तोष लाये सहन करना चाहिए। इस रीति-नीति पर दाम्पत्य जीवन की सफलता निर्भर है। अतएव पति-पत्नी को एक-दूसरे से आकर्षण लाभ मिलने की बात न सोचकर एक-दूसरे के प्रति आत्म समर्पण करने और सम्मिलित शक्ति उत्पन्न करने, उसके जीवन विकास की सम्भावनाएँ उत्पन्न करने की बात सोचनी चाहिए।

चुनाव करते समय तक साथी को पसन्द करने न करने की छूट है। जो कुछ देखना, ढूँढ़ना, परखना हो, वह कार्य विवाह से पूर्व ही समाप्त कर लेना चाहिए। जब विवाह हो गया, तो फिर यह कहने की गुंजायश नहीं रहती कि भूल हो गई, इसलिए साथी की उपेक्षा की जाए। जिस प्रकार के भी गुण-दोष युक्त साथी के साथ विवाह बन्धन में बँधें, उसे अपनी ओर से कर्त्तव्यपालन समझकर पूरा करना ही एक मात्र मार्ग रह जाता है। इसी के लिए विवाह संस्कार का आयोजन किया जाता है।

समाज के सम्भ्रान्त व्यक्तियों की, गुरुजनों की, कुटुम्बी-सम्बन्धियों की, देवताओं की उपस्थिति इसीलिए इस धर्मानुष्ठान के अवसर पर आवश्यक मानी जाती है कि दोनों में से कोई इस कर्त्तव्य-बन्धन की उपेक्षा करे, तो उसे रोकें और प्रताड़ित करें। पति-पत्नी इन संभ्रान्त व्यक्तियों के सम्मुख अपने निश्चय की, प्रतिज्ञा-बन्धन की घोषणा करते हैं। यह प्रतिज्ञा समारोह ही विवाह संस्कार है। इस अवसर पर दोनों को ही यह भावनाएँ गहराई तक अपने मन में जमानी चाहिए कि वे पृथक् व्यक्तित्वों की सत्ता समाप्त कर एकीकरण की आत्मीयता में विकसित होते हैं। कोई किसी पर न तो हुकूमत जमायेगा और न अपने अधीन- वशवर्ती रखकर अपने लाभ या अहंकार की पूर्ति करना चाहेगा। वरन् वह करेगा, जिससे साथी को सुविधा मिलती हो। दोनों अपनी इच्छा-आवश्यकता को गौण और साथी की आवश्यकता को मुख्य मान कर सेवा और सहायता का भाव रखेंगे, उदारता एवं सहिष्णुता बरतेंगे, तभी गृहस्थी का रथ ठीक तरह आगे बढ़ेगा।

इस तथ्य को दोनों भली प्रकार हृदयंगम कर लें और इसी रीति-नीति को आजीवन अपनाये रहने का व्रत धारण करें, इसी प्रयोजन के लिए यह पुण्य-संस्कार आयोजित किया जाता है। इस बात को दोनों भली प्रकार समझ लें और सच्चे मन से स्वीकार कर लें, तो ही विवाह-बन्धन में बँधें। विवाह

संस्कार आरम्भ करने से पूर्व या विवाह वेदी पर बिठाकर दोनों को यह तथ्य भली प्रकार समझा दिया जाए और उनकी सहमति माँगी जाए। यदि दोनों इन आदर्शों को अपनाये रहने की हार्दिक सहमति- स्वीकृति दें, तो ही विवाह संस्कार आगे बढ़ाया जाए।

विशेष व्यवस्था- विवाह संस्कार में देव पूजन, यज्ञ आदि से सम्बन्धित सभी व्यवस्थाएँ पहले से बनाकर रखनी चाहिए। सामूहिक विवाह हो, तो प्रत्येक जोड़े के हिसाब से प्रत्येक वेदी पर आवश्यक सामग्री रहनी चाहिए, कर्मकाण्ड ठीक से होते चलें, इसके लिए प्रत्येक वेदी पर एक-एक जानकार व्यक्ति भी नियुक्त करना चाहिए। एक ही विवाह है, तो आचार्य स्वयं ही देख-रेख रख सकते हैं। सामान्य व्यवस्था के साथ जिन वस्तुओं की जरूरत विशेष कर्मकाण्ड में पड़ती है, उन पर प्रारम्भ में दृष्टि डाल लेनी चाहिए। उसके सूत्र इस प्रकार हैं।

* वर सत्कार के लिए सामग्री के साथ एक थाली रहे; ताकि हाथ, पैर धोने की क्रिया में जल फैले नहीं। मधुपर्क पान के बाद हाथ धुलाकर उसे हटा दिया जाए।

* यज्ञोपवीत के लिए पीला रंगा हुआ यज्ञोपवीत एक जोड़ा रखा जाए।

* विवाह घोषणा के लिए वर-वधू पक्ष की पूरी जानकारी पहले से ही नोट कर ली जाए।

* वस्त्रोपहार तथा पुष्पोपहार के वस्त्र एवं मालायें तैयार रहें।

* कन्यादान में हाथ पीले करने की हल्दी, गुप्तदान के लिए गुँधा हुआ आटा (लगभग एक पाव) रखें।

* ग्रन्थिबन्धन के लिए हल्दी, पुष्प, अक्षत, दूर्वा और द्रव्य हों।

* शिलारोहण के लिए पत्थर की शिला या समतल पत्थर का एक टुकड़ा रखा जाए।

* हवन सामग्री के अतिरिक्त लाजा (धान की खीलें) रखनी चाहिए।

* वर-वधू के पद प्रक्षालन के लिए परात या थाली रखी जाए।

* वर-वधू को आशीर्वाद के लिए पुष्प आदि पर्याप्त रखे जाएँ।

* पहले से वातावरण ऐसा बनाना चाहिए कि संस्कार के समय वर और कन्या पक्ष के अधिक से अधिक परिजन, स्नेही उपस्थित रहें।

* सबके भाव संयोग से कर्मकाण्ड के उद्देश्य में रचनात्मक सहयोग मिलता है । इसके लिए व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों ही ढंग से आग्रह किए जा सकते हैं ।

* विवाह के पूर्व यज्ञोपवीत संस्कार हो चुकता है । अविवाहितों को एक यज्ञोपवीत तथा विवाहितों को जोड़ा पहनाने का नियम है ।

* यदि यज्ञोपवीत न हुआ हो, तो नया यज्ञोपवीत और हो गया हो , तो एक के स्थान पर जोड़ा पहनाने का संस्कार विधिवत् किया जाना चाहिए । अच्छा हो कि जिस शुभ दिन को विवाह-संस्कार होना है, उस दिन प्रातःकाल यज्ञोपवीत धारण का क्रम व्यवस्थित ढंग से करा दिया जाए । विवाह-संस्कार के लिए सजे हुए वर के वस्त्र आदि उतरवाकर यज्ञोपवीत पहनाना अटपटा-सा लगता है । इसलिए उसको पहले ही पूरा कर लिया जाए । यदि वह सम्भव न हो, तो स्वागत के बाद यज्ञोपवीत धारण करा दिया जाता है । उसे वस्त्रों पर ही पहना देना चाहिए, जो संस्कार के बाद अन्दर कर लिया जाता है ।

* जहाँ पारिवारिक स्तर के परम्परागत विवाह आयोजनों में मुख्य संस्कार से पूर्व द्वारचार (द्वार पूजा) की रस्म होती है, वहाँ यदि हो-हल्ला के वातावरण को संस्कार के उपयुक्त बनाना सम्भव लगे, तो स्वागत तथा वस्त्र एवं पुष्पोपहार वाले प्रकरण उस समय भी पूरे कराये जा सकते हैं । विशेष आसन पर बिठाकर वर का सत्कार किया जाए । फिर कन्या को बुलाकर परस्पर वस्त्र और पुष्पोपहार सम्पन्न कराये जाएँ । परम्परागत ढंग से दिए जाने वाले अभिनन्दन-पत्र आदि भी उसी अवसर पर दिये जा सकते हैं ।इसके कर्मकाण्ड का संकेत आगे किया गया है ।

* पारिवारिक स्तर पर सम्पन्न किये जाने वाले विवाह संस्कारों के समय कई बार वर-कन्या पक्ष वाले किन्हीं लौकिक रीतियों के लिए आग्रह करते हैं। यदि ऐसा आग्रह है, तो पहले से नोट कर लेना-समझ लेना चाहिए । कर्मकाण्ड के मुख्य प्रवाह में उसे कुशलता से फिट कर देना चाहिए ।पारिवारिक स्तर पर विवाह- प्रकरणों में वरेच्छा, **तिलक** (शादी पक्की करना) **हरिद्रा लेपन** (हल्दी चढ़ाना) तथा **द्वारपूजन** आदि के आग्रह उभरते हैं । उन्हें संक्षेप में दिया जा रहा है ; ताकि समयानुसार उनका निर्वाह किया जा सके ।

॥ पूर्व विधान ॥

॥ वर-वरण (तिलक) ॥

विवाह से पूर्व 'तिलक' का संक्षिप्त विधान इस प्रकार है - वर पूर्वाभिमुख तथा तिलक करने वाले (पिता, भाई आदि) पश्चिमाभिमुख बैठकर निम्नकृत्य सम्पन्न करें - मंगलाचरण, षट्कर्म, तिलक, कलावा, कलशपूजन, गुरुवन्दना, गौरी-गणेश पूजन, सर्वदेव नमस्कार, स्वस्तिवाचन आदि इसके बाद कन्यादाता वर का यथोचित स्वागत- सत्कार (पैर धुलाना, आचमन कराना तथा हल्दी से तिलक करके अक्षत लगाना) करें । तदुपरान्त 'वर' को प्रदान की जाने वाली समस्त सामग्री (थाल- थान, फल- फूल, द्रव्य- वस्त्रादि) कन्यादाता हाथ में लेकर संकल्प मन्त्र बोलते हुए वर को प्रदान कर दें -

॥ संकल्प ॥

......(कन्यादाता) **नामाऽहं...** (कन्या-नाम) **नाम्न्या कन्यायाः (भगिन्याः) करिष्यमाण उद्वाहकर्मणि एभिर्वरणद्रव्यैः....** (वर का गोत्र) **गोत्रोत्पन्नं ....**(वर का नाम) **नामानं वरं कन्यादानार्थं वरपूजनपूर्वकं त्वामहं वृणे, तन्निमित्तकं यथाशक्ति भाण्डानि, वस्त्राणि, फलमिष्टान्नानि द्रव्याणि च** (वर का नाम) **वराय समर्पये ।**

तत्पश्चात् क्षमाप्रार्थना, नमस्कार, विसर्जन तथा शान्तिपाठ करते हुए कार्यक्रम समाप्त करें ।

॥ हरिद्रालेपन ॥

विवाह से पूर्व वर-कन्या के प्रायः हल्दी चढ़ाने का प्रचलन है, उसका संक्षिप्त विधान इस प्रकार है - सर्वप्रथम षट्कर्म, तिलक, कलावा, कलशपूजन, गुरुवन्दना, गौरी-गणेश पूजन, सर्वदेवनमस्कार, स्वस्तिवाचन करें। तत्पश्चात् निम्न मन्त्र बोलते हुए वर/कन्या की हथेली - अंग-अवयवों में (लोक रीति के अनुसार) हरिद्रालेपन करे -

ॐ काण्डात् काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि।
एवा नो दूर्वे प्र तनु सहस्रेण शतेन च॥ -१३.२०

इसके बाद वर के दाहिने हाथ में तथा कन्या के बायें हाथ में रक्षा सूत्र-कंकण (पीले वस्त्र में कौड़ी, लोहे की अँगूठी, पीली सरसों, पीला अक्षत आदि बाँधकर बनाया गया।) निम्नलिखित मन्त्र से पहनाएँ -

ॐ यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्य ँ शतानीकाय सुमनस्यमानाः। तन्मऽआबध्नामि शतशारदाय, आयुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम्॥
३४.५२

तत्पश्चात् क्षमाप्रार्थना, नमस्कार विसर्जन, शान्तिपाठ के साथ कार्यक्रम पूर्ण करें।

॥ द्वारपूजा ॥

विवाह हेतु बरात जब द्वार पर आती है, तो सर्वप्रथम 'वर' का स्वागत-सत्कार किया जाता है, जिसका क्रम इस प्रकार है - 'वर' के द्वार पर आते ही आरती की प्रथा हो, तो कन्या की माता आरती कर लें। तत्पश्चात् 'वर' और कन्यादाता परस्पर अभिमुख बैठकर षट्कर्म, कलावा, तिलक, कलशपूजन, गुरुवन्दना, गौरी-गणेश पूजन, सर्वदेवनमस्कार स्वस्तिवाचन करें। इसके बाद कन्यादाता वर सत्कार के सभी कृत्य आसन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, मधुपर्क आदि (विवाह संस्कार से) सम्पन्न कराएँ।

तत्पश्चात् **'ॐ' गन्धद्वारां दुराधर्षां......**(पृ० ११३) से तिलक लगाएँ तथा **ॐ अक्षन्नमीमदन्त.....** (पृ०११२) से अक्षत लगाएँ। माल्यार्पण एवं कुछ द्रव्य 'वर' को प्रदान करना हो, तो निम्नस्थ मंत्रों से सम्पन्न करा दें -

माल्यार्पण मन्त्र - **ॐ मंगलं भगवान् विष्णुः ......** पृ० ४६
द्रव्यदान मन्त्र **ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे ......** पृ० ११७

तत्पश्चात् क्षमाप्रार्थना, नमस्कार, देवविसर्जन एवं शान्तिपाठ करें।

*

॥ विवाह संस्कार-विशेष कर्मकाण्ड ॥

विवाह वेदी पर वर और कन्या दोनों को बुलाया जाए, प्रवेश के साथ मंगलाचरण "**भद्रं कर्णेभिः....**" मन्त्र बोलते हुए उन पर पुष्पाक्षत डाले जाएँ। कन्या दाँयीं ओर तथा वर बायीं ओर बैठे। कन्यादान करने वाले प्रतिनिधि कन्या के पिता, भाई जो भी हों, उन्हें पत्नी सहित कन्या की ओर बिठाया जाए। पत्नी दाहिने और पति बायीं ओर बैठें। सभी के सामने आचमनी, पंचपात्र आदि उपकरण हों। **पवित्रीकरण, आचमन, शिखा-वन्दन, प्राणायाम, न्यास, पृथ्वी-पूजन** आदि षट्कर्म सम्पन्न करा लिये जाएँ।

वर-सत्कार- (अलग से द्वार पूजा में वर सत्कार कृत्य हो चुका हो, तो दुबारा करने की आवश्यकता नहीं है।) अतिथि रूप में आये हुए वर का सत्कार किया जाए। (१) आसन (२) पाद्य (३) अर्घ्य (४) आचमन (५) नैवेद्य आदि निर्धारित मन्त्रों से समर्पित किए जाएँ।

दिशा और प्रेरणा- वर का अतिथि के नाते सत्कार किया जाता है। गृहस्थाश्रम में गृहलक्ष्मी का महत्त्व सर्वोपरि होता है। उसे लेने वर एवं उसके हितैषी परिजन कन्या के पिता के पास चल कर आते हैं। श्रेष्ठ उद्देश्य से सद्भावनापूर्वक आये अतिथियों का स्वागत करना कन्या पक्ष का कर्त्तव्य हो जाता है। दोनों पक्षों को अपने-अपने इन सद्भावों को जाग्रत् रखना चाहिए।

* वर का अर्थ होता है- श्रेष्ठ, स्वीकार करने योग्य। कन्या-पक्ष वर को अपनी कन्या के अनुरूप श्रेष्ठ व्यक्ति मानकर ही सम्बन्ध स्वीकार करें, उसी भाव से श्रेष्ठ भाव रखते हुए सत्कार करें और भगवान् से प्रार्थना करें कि यह भाव सदा बनाये रखने में सहायता करें।

* वर पक्ष सम्मान पाकर निरर्थक अहं न बढ़ाएँ। जिन मानवीय गुणों के कारण श्रेष्ठ मानकर वर का सत्कार करने की व्यवस्था ऋषियों ने बनाई है, उन शालीनता, जिम्मेदारी, आत्मीयता, सहकारिता जैसे गुणों को इतना जीवन्त बनाकर रखें कि कन्या पक्ष की सहज श्रद्धा उसके प्रति उमड़ती ही रहे। ऐसा सम्भव हो, तो पारिवारिक सम्बन्धों में देवोपम स्नेह-मधुरता का संचार अवश्य होगा।

* इन दिव्य भावों के लिए सबसे अधिक घातक है, संकीर्ण स्वार्थपरक

लेन-देन का आग्रह। दहेज, चढ़ावा आदि के नाम पर यदि एक-दूसरे पर दबाव डाले जाते हैं, तो सद्भावना तो समाप्त हो ही जाती है, द्वेष और प्रतिशोध के दुर्भाव उभर आते हैं। वर-वधू के सुखद भविष्य को ध्यान में रखकर ऐसे अप्रिय प्रसंगों को विष मानकर उनसे सर्वथा दूर रहना चाहिए।ध्यान रखें कि सत्कार में स्थूल उपचारों को नहीं हृदयगत भावों को प्रधान माना जाता है। उन्हीं के साथ निर्धारित क्रम पूरा किया - कराया जाए।

क्रिया और भावना- स्वागतकर्त्ता हाथ में अक्षत लेकर भावना करें कि वर की श्रेष्ठतम प्रवृत्तियों का अर्चन कर रहे हैं। देव-शक्तियाँ उन्हें बढ़ाने-बनाये रखने में सहयोग करें। निम्न मन्त्र बोलें—

ॐ साधु भवान् आस्ताम्, अर्चयिष्यामो भवन्तम्। - पार० गृ० १.३.४

वर दाहिने हाथ में अक्षत स्वीकार करते हुए भावना करें कि स्वागत कर्त्ता की श्रद्धा पाते रहने के योग्य व्यक्तित्व बनाये रखने का उत्तरदायित्व स्वीकार कर रहे हैं। बोलें- **"ॐ अर्चय"**।

आसन- स्वागतकर्त्ता आसन या उसका प्रतीक (कुश या पुष्प आदि) हाथ में लेकर निम्न मन्त्र बोलें। भावना करें कि वर को श्रेष्ठता का आधार-स्तर प्राप्त हो। हमारे स्नेह में उसका स्थान बने।

ॐ विष्टरो, विष्टरो, विष्टरः, प्रतिगृह्यताम्। -पार० गृ० सू० १.३.६

वर कन्या के पिता के हाथ से विष्टर (कुश या पुष्प आदि) लेकर कहें—

" ॐ प्रतिगृह्णामि " पार० गृ० सू० १.३.७

उसे बिछाकर बैठ जाए, इस क्रिया के साथ निम्न मन्त्र बोला जाए-

ॐ वर्ष्मोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्यः।
इमन्तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति॥ - पार० गृ० सू० १.३.८

पाद्य- स्वागतकर्त्ता पैर धोने के लिए छोटे पात्र में जल लें। भावना करें कि ऋषियों के आदर्शों के अनुरूप सद्गृहस्थ बनने की दिशा में बढ़ने वाले पैर पूजनीय हैं। कन्यादाता कहे—

ॐ पाद्यं, पाद्यं, पाद्यं प्रतिगृह्यताम्॥ - पार० गृ० सू० १.३.६

वर कहे -

'ॐ प्रतिगृह्णामि'॥ - पार० गृ० सू० - १.३.७

भावना करें कि आदर्शों की दिशा में चरण बढ़ाने की उमंग इष्टदेव बनाये रखें। पद प्रक्षालन की क्रिया के साथ यह मन्त्र बोला जाए।

ॐ विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय मयि,
पाद्यायै विराजो दोहः ॥ पार० गृ० सू० १.३.१२

अर्घ्य- स्वागतकर्त्ता चन्दन युक्त सुगन्धित जल पात्र में लेकर भावना करे कि सत्पुरुषार्थ में लगने का संस्कार वर के हाथों में जाग्रत् करने हेतु अर्घ्य दे रहे हैं। कन्यादाता कहे-

ॐ अर्घो, अर्घो , अर्घः प्रतिगृह्यताम्। - पार० गृ० सू० १.३.६

जल पात्र स्वीकार करते हुए वर कहे-

ॐ प्रतिगृह्णामि। पार० गृ० सू० १.३.७

भावना करें कि सुगन्धित जल सत्पुरुषार्थ के संस्कार दे रहा है। जल से हाथ धोएँ। क्रिया के साथ निम्न मन्त्र बोला जाए।

ॐ आपःस्थ युष्माभिः सर्वान्कामानवाप्नवानि।
ॐ समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत।
अरिष्टाअस्माकं वीरा मा परासेचि मत्पयः ।पार० गृ० सू० १.३.१३-१४

आचमन- स्वागतकर्त्ता आचमन के लिए जल पात्र प्रस्तुत करें। भावना करें वर-श्रेष्ठ अतिथि का मुख उज्ज्वल रहे, उसकी वाणी उसका व्यक्तित्व तदनुरूप बने। कन्यादाता कहे-

ॐ आचमनीयम् , आचमनीयम् , आचमनीयम् प्रतिगृह्यताम् ॥
ॐ प्रतिगृह्णामि। (वर कहे) - पार० गृ० सू० १.३.६

भावना करें कि मन, बुद्धि और अन्तःकरण तक यह भाव बिठाने का प्रयास कर रहे हैं। तीन बार आचमन करें। यह मन्त्र बोला जाए।

ॐ आमागन् यशसा स ँ सृज वर्चसा। तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनाम्। पार० गृ० स० १.३.१५

नैवेद्य-मधुपर्क- एक पात्र में दूध, दही, शर्करा (मधु) और तुलसीदल डाल कर रखें। स्वागतकर्त्ता वह पात्र हाथ में लें। भावना करें कि वर की श्रेष्ठता बनाये रखने योग्य सात्त्विक , सुसंस्कारी और स्वास्थ्यवर्धक आहार उन्हें सतत प्राप्त होता रहे। कन्यादाता कहे-

ॐ मधुपर्को, मधुपर्को, मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम्।- पार० गृ० सू० १.३.६

वर पात्र स्वीकार करते हुए कहे- **ॐ प्रतिगृह्णामि।**

वर मधुपर्क का पान करे। भावना करें अभक्ष्य के कुसंस्कारों से बचने, सत्पदार्थों से सुसंस्कार अर्जित करते रहने का उत्तरदायित्व स्वीकार रहे हैं। पान करते समय यह मंत्र बोला जाए।

ॐ यन्मधुनो मधव्यं परम ᳬ रूपमन्नाद्यम्। तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण, रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि।

-पार० गृ० १.३.२०

तत्पश्चात् जल से वर हाथ-मुख धोए। स्वच्छ होकर अगले क्रम के लिए बैठे। इसके बाद चन्दन धारण कराएँ। यदि यज्ञोपवीत धारण पहले नहीं कराया गया है, तो यज्ञोपवीत प्रकरण के आधार पर संक्षेप में उसे सम्पन्न कराया जाए। इसके बाद क्रमशः **कलशपूजन, नमस्कार, षोडशोपचार पूजन, स्वस्तिवाचन, रक्षाविधान** आदि सामान्य क्रम करा लिये जाएँ। रक्षा-विधान के बाद संस्कार का विशेष प्रकरण चालू किया जाए।

विवाह घोषणा- विवाह घोषणा की एक छोटी-सी संस्कृत भाषा की शब्दावली है, जिसमें वर-कन्या के गोत्र पिता-पितामह आदि का उल्लेख और घोषणा है कि यह दोनों अब विवाह सम्बन्ध में आबद्ध होते हैं। इनका साहचर्य धर्म-संगत जन साधारण की जानकारी में घोषित किया हुआ माना जाए। बिना घोषणा के गुपचुप चलने वाले दाम्पत्य स्तर के प्रेम संबंध, नैतिक, धार्मिक एवं कानूनी दृष्टि से अवांछनीय माने गये हैं। जिनके बीच दाम्पत्य सम्बन्ध हो, उसकी घोषणा सर्वसाधारण के समक्ष की जानी चाहिए। समाज की जानकारी से जो छिपाया जा रहा हो, वही व्यभिचार है। घोषणापूर्वक विवाह सम्बन्ध में आबद्ध होकर वर-कन्या धर्म परम्परा का पालन करते हैं।

स्वस्ति श्रीमन्नन्दनन्दन चरणकमल भक्ति सद् विद्या विनीतनिजकुलकमलकलिकाप्रकाशनैकभास्कर सदाचार सच्चरित्र सत्कुल सत्प्रतिष्ठा गरिष्ठस्य.... गोत्रस्य..... महोदयस्य प्रपौत्रः महोदयस्य पौत्रः......महोदयस्य पुत्रः ॥

......महोदयस्य प्रपौत्री,... महोदयस्य पौत्री......महोदयस्य पुत्री प्रयतपाणिः शरणं प्रपद्ये। स्वस्ति संवादेषूभयोर्वृद्धिर्वर-कन्ययोश्चिरंजीविनौ भूयास्ताम्॥

॥ मंगलाष्टक ॥

विवाह घोषणा के बाद, सस्वर मंगलाष्टक मन्त्र बोले जाएँ। इन मन्त्रों में सभी श्रेष्ठ शक्तियों से मंगलमय वातावरण, मंगलमय भविष्य के निर्माण की प्रार्थना की जाती है। पाठ के समय सभी लोग भावनापूर्वक वर-वधू के लिए मंगल कामना करते रहें। एक स्वयं सेवक उनके ऊपर पुष्पों की वर्षा करते रहें।

श्रीमत्पंकजविष्टरो हरिहरौ, वायुर्महेन्द्रोऽनलः,
चन्द्रो भास्कर वित्तपाल वरुण, प्रेताधिपादिग्रहाः।
प्रद्युम्नो नलकूबरौ सुरगजः, चिन्तामणिः कौस्तुभः,
स्वामी शक्तिधरश्च लांगलधरः, कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥१॥
गंगा गोमतिगोपतिर्गणपतिः, गोविन्दगोवर्धनौ,
गीता गोमयगोरजौ गिरिसुता, गंगाधरो गौतमः।
गायत्री गरुडो गदाधरगया, गम्भीरगोदावरी,
गन्धर्वग्रहगोपगोकुलधराः, कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥२॥
नेत्राणां त्रितयं महत्पशुपतेः, अग्नेस्तु पादत्रयं,
तत्तद्विष्णुपदत्रयं त्रिभुवने, ख्यातं च रामत्रयम्।
गंगावाहपथत्रयं सुविमलं, वेदत्रयं ब्राह्मणम्,
संध्यानां त्रितयं द्विजैरभिमतं, कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥३॥
वाल्मीकिः सनकः सनन्दनमुनिः, व्यासोवसिष्ठो भृगुः
जाबालिर्जमदग्निरत्रिजनकौ, गर्गोऽ गिरा गौतमः।
मान्धाता भरतो नृपश्च सगरो, धन्यो दिलीपो नलः,
पुण्यो धर्मसुतो ययातिनहुषौ, कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥४॥

गौरी श्रीकुलदेवता च सुभगा, कद्रूसुपर्णाशिवाः,
सावित्री च सरस्वती च सुरभिः, सत्यव्रतारुन्धती।
स्वाहा जाम्बवती च रुक्मभगिनी, दुःस्वप्नविध्वंसिनी,
वेला चाम्बुनिधेः समीनमकरा , कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥५॥
गंगा सिन्धु सरस्वती च यमुना, गोदावरी नर्मदा,
कावेरी सरयू महेन्द्रतनया, चर्मण्वती वेदिका।
शिप्रा वेत्रवती महासुरनदी, ख्याता च या गण्डकी,
पूर्णाः पुण्यजलैः समुद्रसहिताः, कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥६॥
लक्ष्मीः कौस्तुभपारिजातकसुरा, धन्वन्तरिश्चन्द्रमा,
गावः कामदुघाः सुरेश्वरगजो, रम्भादिदेवांगनाः।
अश्वः सप्तमुखः सुधा हरिधनुः, शंखो विषं चाम्बुधे,
रत्नानीति चतुर्दश प्रतिदिनं, कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥७॥
ब्रह्मा वेदपतिः शिवः पशुपतिः, सूर्यो ग्रहाणां पतिः
शक्रो देवपतिर्नलो नरपतिः, स्कन्दश्च सेनापतिः।
विष्णुर्यज्ञपतिर्यमः पितृपतिः, तारापतिश्चन्द्रमा,
इत्येते पतयस्सुपर्णसहिताः , कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥८॥

॥ परस्पर उपहार ॥

वस्त्रोपहार- वर पक्ष की ओर से कन्या को और कन्या पक्ष की ओर से वर को वस्त्र-आभूषण भेंट किये जाने की परम्परा है। यह कार्य श्रद्धानुरूप पहले ही हो जाता है। वर-वधू उन्हें पहनकर ही संस्कार में बैठते हैं। यहाँ प्रतीक रूप में पीले दुपट्टे एक-दूसरे को भेंट किये जाएँ। यही ग्रन्थि बन्धन के भी काम आ जाते हैं। आभूषण पहिनाना हो, तो अँगूठी या मंगलसूत्र जैसे शुभ चिह्नों तक ही सीमित रहना चाहिए।

दोनों पक्ष भावना करें एक-दूसरे का सम्मान बढ़ाने, उन्हें अलंकृत करने का उत्तरदायित्व समझने और निभाने के लिए संकल्पित हो रहे हैं। नीचे लिखे मन्त्र के साथ परस्पर उपहार दिये जाएँ।

ॐ परिधास्यै यशोधास्यै, दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि। शतं च जीवामि शरदः, पुरूचीरायस्पोषमभि संव्ययिष्ये ॥

- पार० गृ० सू० २.६.२०

पुष्पोपहार (माल्यार्पण) - वर-वधू एक-दूसरे को अपने अनुरूप स्वीकार करते हुए, पुष्प मालाएँ अर्पित करते हैं। हृदय से वरण करते हैं। भावना करें कि देव शक्तियों और सत्पुरुषों के आशीर्वाद से वे परस्पर एक दूसरे के गले के हार बनकर रहेंगे। मन्त्रोच्चार के साथ पहले कन्या वर को फिर वर-कन्या को माला पहिनाएँ।

ॐ यशसा माद्यावापृथिवी यशसेन्द्रा बृहस्पती। यशो भगश्च मा विदद्यशो मा प्रतिपद्यताम्। - पार० गृ० स० २.६.२१, मा० गृ० सू० १.९.२७

॥ हस्तपीतकरण ॥

शिक्षा एवं प्रेरणा- कन्यादान करने वाले कन्या के हाथों में हल्दी लगाते हैं। हरिद्रा मंगल सूचक है। अब तक बालिका के रूप में यह लड़की रही। अब यह गृहलक्ष्मी का उत्तरदायित्व वहन करेगी, इसलिए उसके हाथों को पीतवर्ण-मंगलमय बनाया जाता है। उसके माता-पिता ने लाड़-प्यार से पाला, उसके हाथों में कोई कठोर कर्त्तव्य नहीं सौंपा। अब उसे अपने हाथों को नव-निर्माण के अनेक उत्तरदायित्व सँभालने को तैयार करना है, अतएव उन्हें पीतवर्ण मांगलिक-लक्ष्मी का प्रतीक-सृजनात्मक होना चाहिए। पीले हाथ करते हुए कन्या परिवार के लोग उस बालिका को यही मौन शिक्षण देते हैं कि उसे आगे सृजन शक्ति के रूप में प्रकट होना है और इसके लिए इन कोमल हाथों को अधिक उत्तरदायी, मजबूत और मांगलिक बनाना है।

क्रिया एवं भावना- कन्या दोनों हथेलियाँ सामने कर दे। कन्यादाता गीली हल्दी उस पर मन्त्र के साथ मलें। भावना करें कि देव सान्निध्य में इन हाथों को स्वार्थपरता के कुसंस्कारों से मुक्त कराते हुए त्याग- परमार्थ के संस्कार जाग्रत् किये जा रहे हैं।

ॐ अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः। हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमा ᳪ सं परिपातु विश्वतः ॥ २९.५१

॥ कन्यादान-गुप्तदान ॥

शिक्षा एवं प्रेरणा- कन्यादान के समय कुछ अंशदान देने की प्रथा है। आटे की लोई में छिपाकर कुछ धन कन्यादान के समय दिया जाता है। दहेज का यही स्वरूप है। बच्ची के घर से विदा होते समय उसके अभिभावक किसी आवश्यकता के समय काम आने के लिए उपहार स्वरूप कुछ धन देते हैं, पर होता वह गुप्त ही है। अभिभावक और कन्या के बीच का यह निजी उपहार है। दूसरों को इसके सम्बन्ध में जानने या पूछने की कोई आवश्यकता नहीं। दहेज के रूप में क्या दिया जाना चाहिए, इस सम्बन्ध में ससुराल वालों को कहने या पूछने का कोई अधिकार नहीं। न उसके प्रदर्शन की आवश्यकता है; क्योंकि गरीब-अमीर अपनी स्थिति के अनुसार जो दे, वह चर्चा का विषय नहीं बनना चहिए, उसके साथ निन्दा-प्रशंसा नहीं जुड़नी चाहिए। एक-दूसरे का अनुकरण करने लगें, प्रतिस्पर्द्धा पर उतर आएँ, तो इससे अनर्थ ही होगा। कन्या-पक्ष पर अनुचित दबाव पड़ेगा और वर-पक्ष अधिक न मिलने पर अप्रसन्न होने की धृष्टता करने लगेगा। इसलिए कन्यादान के साथ कुछ धनदान का विधान तो है, पर दूरदर्शी ऋषियों ने लोगों की स्वार्थपरता एवं दुष्टता की सम्भावना को ध्यान में रखते हुए यह नियम बना दिया है कि जो कुछ भी दहेज दिया जाए, वह सर्वथा गुप्त हो, उस पर किसी को चर्चा करने का अधिकार न हो। आटे में साधारणतया एक रुपया इस दहेज प्रतीक के लिए पर्याप्त है। यह धातु का लिया जाए और आटे के गोले के भीतर छिपाकर रखा जाए।

कन्यादान का अर्थ है- अभिभावकों के उत्तरदायित्वों का वर के ऊपर, ससुराल वालों के ऊपर स्थानान्तरण होना। अब तक माता-पिता कन्या के भरण-पोषण, विकास, सुरक्षा, सुख-शान्ति, आनन्द-उल्लास आदि का प्रबन्ध करते थे, अब वह प्रबन्ध वर और उसके कुटुम्बियों को करना होगा। कन्या नये घर में जाकर विरानेपन का अनुभव न करने पाये, उसे स्नेह, सहयोग, सद्भाव की कमी अनुभव न हो, इसका पूरा ध्यान रखना होगा। कन्यादान स्वीकार करते समय—पाणिग्रहण की ज़िम्मेदारी स्वीकार करते समय, वर तथा उसके अभिभावकों को यह बात भली प्रकार अनुभव कर लेनी चाहिए कि उन्हें उस उत्तरदायित्व को पूरी जिम्मेदारी के साथ निबाहना है।

कन्यादान का अर्थ यह नहीं कि जिस प्रकार कोई सम्पत्ति, किसी को बेची या दान कर दी जाती है, उसी प्रकार लड़की को भी एक सम्पत्ति समझकर किसी न किसी को चाहे जो उपयोग करने के लिये दे दिया है। हर मनुष्य की एक स्वतन्त्र सत्ता एवं स्थिति है। कोई मनुष्य किसी मनुष्य को बेच या दान नहीं कर सकता । फिर चाहे वह पिता ही क्यों न हो। व्यक्ति के स्वतन्त्र अस्तित्व एवं अधिकार से इनकार नहीं किया जा सकता, न उसे चुनौती दी जा सकती है। लड़की हो या लड़का अभिभावकों को यह अधिकार नहीं कि वे उन्हें बेचें या दान करें। ऐसा करना तो बच्चे के स्वतन्त्र व्यक्तित्व के तथ्य को ही झुठलाना हो जाएगा। विवाह उभयपक्षीय समझौता है, जिसे वर और वधू दोनों ही पूरी ईमानदारी और निष्ठा के साथ निर्वाह कर सफल बनाते हैं। यदि कोई किसी को खरीदी या बेची सम्पत्ति के रूप में देखें और उस पर पशुओं जैसा स्वामित्व अनुभव करें या व्यवहार करें, तो यह मानवता के मूलभूत अधिकारों का हनन करना ही होगा। कन्यादान का यह तात्पर्य कदापि नहीं, उसका प्रयोजन इतना ही है कि कन्या के अभिभावक बालिका के जीवन को सुव्यवस्थित, सुविकसित एवं सुख-शान्तिमय बनाने की जिम्मेदारी को वर तथा उसके अभिभावकों पर छोड़ते हैं, जिसे उन्हें मनोयोगपूर्वक निबाहना चाहिए। पराये घर में पहुँचने पर कच्ची उम्र की अनुभवहीन भावुक बालिका को अखरने वाली मनोदशा में होकर गुजरना पड़ता है। इसलिए इस आरम्भिक सन्धिवेला में तो विशेष रूप से वर पक्ष वालों को यह प्रयास करना चाहिए कि हर दृष्टि से वधू को अधिक स्नेह, सहयोग मिलता रहे। कन्या पक्ष वालों को भी यह नहीं सोच लेना चाहिए कि लड़की के पीले हाथ कर दिये, कन्यादान हो गया, अब तो उन्हें कुछ भी करना या सोचना नहीं है। उन्हें भी लड़की के भविष्य को उज्ज्वल बनाने में योगदान देते रहना है।

क्रिया और भावना- कन्या के हाथ हल्दी से पीले करके माता-पिता अपने हाथ में कन्या के हाथ, गुप्तदान का धन और पुष्प रखकर संकल्प बोलते हैं और उन हाथों को वर के हाथों में सौंप देते हैं। वह इन हाथों को गंभीरता और जिम्मेदारी के साथ अपने हाथों में पकड़कर स्वीकार- शिरोधार्य करता है।

भावना करें कि कन्या वर को सौंपते हुए उसके अभिभावक अपने समग्र अधिकार भी सौंपते हैं। कन्या के कुल गोत्र अब पितृ परम्परा से नहीं, पति परम्परा के अनुसार होंगे। कन्या को यह भावनात्मक पुरुषार्थ करने तथा पति को उसे स्वीकार करने या निभाने की शक्ति देवशक्तियाँ प्रदान कर रही हैं। इस भावना के साथ कन्यादान का संकल्प बोला जाए। संकल्प पूरा होने पर संकल्पकर्त्ता कन्या के हाथ वर के हाथ में सौंप दें।

॥ कन्यादान-संकल्प ॥

अद्येति.....नामाहं....नाम्नीम् इमां कन्यां / भगिनीं सुस्नातां, यथाशक्ति अलंकृतां, गन्धादि - अर्चितां, वस्त्रयुगच्छन्नां, प्रजापति दैवत्यां, शतगुणीकृत, ज्योतिष्टोम-अतिरात्र-शतफल-प्राप्तिकामोऽहं..... नाम्ने, विष्णुरूपिणे वराय, भरण-पोषण-आच्छादन-पालनादीनां, स्वकीय उत्तरदायित्व- भारम्, अखिलं अद्य तव पत्नीत्वेन, तुभ्यं अहं सम्प्रददे।

वर उन्हें स्वीकार करते हुए कहे-**ॐ स्वस्ति।**

॥ गोदान ॥

दिशा प्रेरणा- गौ पवित्रता और परमार्थ परायणता की प्रतीक है। कन्या पक्ष वर को ऐसा दान दे, जो उन्हें पवित्रता और परमार्थ की प्रेरणा देने वाला हो। सम्भव हो, तो कन्यादान के अवसर पर गाय दहेज में दी जा सकती है। वह कन्या के व उसके परिवार के लोगों के स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयुक्त भी है।आज की स्थिति में यदि गौ देना या लेना असुविधाजनक हो, तो उसके लिए कुछ धन देकर गोदान की परिपाटी को जीवित रखा जा सकता है।

क्रिया और भावना- कन्यादान करने वाले हाथ में सामग्री लें। भावना करें कि वर-कन्या के भावी जीवन को सुखी समुन्नत बनाने के लिए श्रद्धापूर्वक श्रेष्ठ दान कर रहे हैं। मन्त्रोच्चार के साथ सामग्री वर के हाथ में दें।

ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः। प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट॥

ऋ० ८.१०१.१५ पार० गृ० सू० १.३.२७

॥ मर्यादाकरण ॥

दिशा एवं प्रेरणा- कन्यादान-गोदान के बाद कन्यादाता वर से सत् पुरुषों और देव शक्तियों की साक्षी में मर्यादा की विनम्र अपील करता है। वर उसे स्वीकार करता है। कन्या का उत्तरदायित्व वर को सौंपा गया है। ऋषियों द्वारा निर्धारित अनुशासन विशेष लक्ष्य के लिए हैं। अधिकार पाकर उस मर्यादा को भूलकर मनमाना आचरण न किया जाए। धर्म, अर्थ और काम की दिशा में ऋषि प्रणीत मर्यादा का उल्लंघन अधिकार के नशे में न किया जाए। यह निवेदन किया जाता है, जिसे वर प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करता है।

क्रिया और भावना- कन्या दान करने वाले अपने हाथ में जल, पुष्प, अक्षत लें। भावना करें कि वर को मर्यादा सौंप रहे हैं। वर मर्यादा स्वीकार करे, उसके पालन के लिए देव शक्तियों के सहयोग की कामना करे।

नीचे लिखे मन्त्रों के साथ क्रिया सम्पन्न की जाए। कन्यादाता कहे-

ॐ गौरीं कन्यामिमां पूज्य ! यथाशक्तिविभूषिताम्।
गोत्राय शर्मणे तुभ्यं, दत्तां देव समाश्रय॥
धर्मस्याचरणं सम्यक्, क्रियतामनया सह।
धर्मे चार्थे च कामे च यत्त्वं नातिचरेर्विभो॥

वर कहे-" **नातिचरामि।**"

॥ पाणिग्रहण ॥

दिशा एवं प्रेरणा- वर द्वारा मर्यादा स्वीकारोक्ति के बाद कन्या अपना हाथ वर के हाथ में सौंपे और वर अपना हाथ कन्या के हाथ में सौंप दे। इस प्रकार दोनों एक दूसरे का पाणिग्रहण करते हैं। यह क्रिया हाथ से हाथ मिलाने जैसी होती है। मानों एक दूसरे को पकड़ कर सहारा दे रहे हों। कन्यादान की तरह यह वर-दान की क्रिया तो नहीं होती, फिर भी उस अवसर पर वर की भावना भी ठीक वैसी होनी चाहिए जैसी कि कन्या को अपना हाथ सौंपते समय होती है। वर भी यह अनुभव करे कि उसने अपने व्यक्तित्त्व का अपनी इच्छा, आकांक्षा एवं गतिविधियों के संचालन का केन्द्र इस वधू को बना दिया और अपना हाथ भी सौंप दिया। दोनों एक-दूसरे को आगे बढ़ाने के

लिए एक-दूसरे का हाथ जब भावनापूर्वक समाज के सम्मुख पकड़ लें, तो समझना चाहिए कि विवाह का प्रयोजन पूरा हो गया।

क्रिया एवं भावना- नीचे लिखे मन्त्र के साथ कन्या अपना हाथ वर की ओर बढ़ाये, वर उसे अँगूठा सहित (समग्र रूप से) पकड़ ले। भावना करें कि दिव्य वातावरण में परस्पर मित्रता के भाव सहित एक-दूसरे के उत्तरदायित्व स्वीकार कर रहे हैं।

ॐ यदैषि मनसा दूरं दिशोऽ नुपवमानो वा।
हिरण्यपर्णो वै कर्णः स त्वा मन्मनसां करोतु असौ॥

- पार० गृ० सू० १.४.१५

॥ ग्रन्थिबन्धन ॥

दिशा और प्रेरणा- वर-वधू द्वारा पाणिग्रहण एकीकरण के बाद समाज द्वारा दोनों को एक गाँठ में बाँध दिया जाता है। दुपट्टे के छोर बाँधने का अर्थ है- दोनों के शरीर और मन से एक संयुक्त इकाई के रूप में एक नई सत्ता का आविर्भाव होना। अब दोनों एक-दूसरे के साथ पूरी तरह बँधे हुए हैं। ग्रन्थिबन्धन में **धन, पुष्प, दूर्वा, हरिद्रा** और **अक्षत** यह पाँच चीजें भी बाँधते हैं। पैसा इसलिए रखा जाता है कि धन पर किसी एक का अधिकार नहीं रहेगा। जो कमाई या सम्पत्ति होगी, उस पर दोनों का संयुक्त अधिकार होगा। खर्च करने में दोनों की सहमति से योजना एवं व्यवस्था बनेगी। दूर्वा का अर्थ है- कभी निर्जीव न होने वाली प्रेम भावना। दूर्वा का जीवन तत्त्व नष्ट नहीं होता, सूख जाने पर भी वह पानी डालने पर हरी हो जाती है। इसी प्रकार दोनों के मन में एक-दूसरे के लिए अजस्र प्रेम और आत्मीयता बनी रहे। चन्द्र-चकोर की तरह एक-दूसरे पर अपने को न्यौछावर करते रहें। अपना कष्ट कम और साथी का कष्ट बढ़कर मानें, अपने सुख की अपेक्षा साथी के सुख का अधिक ध्यान रखें। अपना आन्तरिक प्रेम एक-दूसरे पर उड़ेलते रहें। हरिद्रा का अर्थ है- आरोग्य, एक-दूसरे के शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य को सुविकसित करने का प्रयत्न करें। ऐसा व्यवहार न करें, जिससे साथी का स्वास्थ्य खराब होता हो या मानसिक उद्वेग पैदा होता हो। अक्षत, सामूहिक-सामाजिक विविध-विध उत्तरदायित्वों का स्मरण कराता है।

कुटुम्ब में कितने ही व्यक्ति होते हैं। उन सबका समुचित ध्यान रखना,

सभी को सँभालना संयुक्त पति-पत्नी का परम पावन कर्त्तव्य है । ऐसा न हो कि एक-दूसरे को तो प्रेम करें, पर परिवार के लोगों की उपेक्षा करने लगें । इसी प्रकार परिवार से बाहर भी जन-मानस के सेवा की जिम्मेदारी हर भावनाशील मनुष्य पर रहती है । ऐसा न हो कि दो में से कोई किसी को अपने व्यक्तिगत स्वार्थ-सहयोग तक ही सीमित कर ले, उसे समाज सेवा की सुविधा न दे । इस दिशा में लगने वाले समय व धन का विरोध करे । अक्षत इसी का संकेत करता है कि आप दोनों एक-दूसरे के लिए ही नहीं बने हैं, वरन् समाजसेवा का व्रत एवं उत्तरदायित्व भी आप लोगों के ग्रन्थिबंधन में एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य के रूप में विद्यमान है । पुष्प का अर्थ है, हँसते-खिलते रहना । एक-दूसरे को सुगन्धित बनाने के लिए-यश फैलाने और प्रशंसा करने के लिए तत्पर रहें । कोई किसी का दूसरे के आगे न तो अपमान करे और न तिरस्कार । इस प्रकार दूर्वा,पुष्प, हरिद्रा, अक्षत और पैसा इन पाँचों को रखकर दोनों का ग्रन्थिबन्धन किया जाता है और यह आशा की जाती है कि वे जिन लक्ष्यों के साथ आपस में बँधे हैं, उन्हें आजीवन निरन्तर स्मरण रखे रहेंगे ।

क्रिया और भावना- ग्रन्थिबन्धन, आचार्य या प्रतिनिधि या कोई मान्य व्यक्ति करें । दुपट्टे के छोर एक साथ करके उसमें मंगल-द्रव्य रखकर गाँठ बाँध दी जाए । भावना की जाए कि मंगल-द्रव्यों के मंगल-संस्कार सहित देवशक्तियों के समर्थन तथा स्नेहियों की सद्भावना के संयुक्त प्रभाव से दोनों इस प्रकार जुड़ रहे हैं, जो सदा जुड़े रहकर एक-दूसरे की जीवन लक्ष्य यात्रा में पूरक बनकर चलेंगे—

ॐ समंजन्तु विश्वेदेवाः, समापो हृदयानि नौ ।
सं मातरिश्वा सं धाता, समुदेष्ट्री दधातु नौ ।।

-ऋ० १०.८५.४७;पार० गृ० सू० १.४.१४

।। वर-वधू की प्रतिज्ञाएँ ।।

दिशा एवं प्रेरणा- किसी भी महत्त्वपूर्ण पद ग्रहण के साथ शपथ ग्रहण समारोह भी अनिवार्य रूप से जुड़ा रहता है । कन्यादान, पाणिग्रहण एवं ग्रन्थि-बन्धन हो जाने के साथ वर-वधू द्वारा और समाज द्वारा दाम्पत्य सूत्र में बँधने की स्वीकारोक्ति हो जाती है । इसके बाद अग्नि एवं देव-

शक्तियों की साक्षी में दोनों को एक संयुक्त इकाई के रूप में ढालने का क्रम चलता है। इस बीच उन्हें अपने कर्त्तव्य धर्म का महत्त्व भली प्रकार समझना और उसके पालन का संकल्प लेना चाहिए। इस दिशा में पहली जिम्मेदारी वर की होती है। अस्तु, पहले वर तथा बाद में वधू को प्रतिज्ञाएँ कराई जाती हैं।

क्रिया और भावना- वर-वधू स्वयं प्रतिज्ञाएँ पढ़ें, यदि संभव न हो तो आचार्य एक-एक करके प्रतिज्ञाएँ व्याख्या सहित समझाएँ।

॥ वर की प्रतिज्ञाएँ ॥

धर्मपत्नीं मिलित्वैव, ह्येकं जीवनमावयोः।
अद्यारभ्य यतो मे त्वम्, अर्द्धांगिनीति घोषिता ॥१॥

आज से धर्मपत्नी को अर्द्धांगिनी घोषित करते हुए, उसके साथ अपने व्यक्तित्व को मिलाकर एक नये जीवन की सृष्टि करता हूँ। अपने शरीर के अंगों की तरह धर्मपत्नी का ध्यान रखूँगा।

स्वीकरोमि सुखेन त्वां, गृहलक्ष्मीमहन्ततः।
मन्त्रयित्वा विधास्यामि, सुकार्याणि त्वया सह ॥२॥

प्रसन्नतापूर्वक गृहलक्ष्मी का महान् अधिकार सौंपता हूँ और जीवन के निर्धारण में उनके परामर्श को महत्त्व दूँगा।

रूप-स्वास्थ्य-स्वभावान्तु, गुणदोषादीन् सर्वतः।
रोगाज्ञान-विकारांश्च, तव विस्मृत्य चेतसः ॥३॥

रूप, स्वास्थ्य, स्वभावगत गुण-दोष एवं अज्ञानजनित विकारों को चित्त में नहीं रखूँगा, उनके कारण असन्तोष व्यक्त नहीं करूँगा। स्नेहपूर्वक सुधारने या सहन करते हुए आत्मीयता बनाये रखूँगा।

सहचरो भविष्यामि, पूर्णस्नेहः प्रदास्यते।
सत्यता मम निष्ठा च, यस्याधारं भविष्यति ॥४॥

पत्नी का मित्र बनकर रहूँगा और पूरा-पूरा स्नेह देता रहूँगा। इस वचन का पालन पूरी निष्ठा और सत्य के आधार पर करूँगा।

यथा पवित्रचित्तेन, पातिव्रत्य त्वया धृतम्।
तथैव पालयिष्यामि, पत्नीव्रतमहं ध्रुवम् ॥५॥

पत्नी के लिए जिस प्रकार पतिव्रत की मर्यादा कही गयी है, उसी दृढ़ता से स्वयं पत्नीव्रत धर्म का पालन करूँगा । चिन्तन और आचरण दोनों से ही पर नारी से वासनात्मक सम्बन्ध नहीं जोड़ूँगा ।

गृहस्यार्थव्यवस्थायां, मन्त्रयित्वा त्वया सह ।
संचालनं करिष्यामि, गृहस्थोचित-जीवनम् ॥६ ॥

गृह-व्यवस्था में धर्म-पत्नी को प्रधानता दूँगा । आमदनी और खर्च का क्रम उसकी सहमति से करने की गृहस्थोचित जीवनचर्या अपनाऊँगा ।

समृद्धि- सुख- शान्तीनां, रक्षणाय तथा तव ।
व्यवस्थां वै करिष्यामि, स्वशक्तिवैभवादिभिः ॥७ ॥

धर्मपत्नी की सुख-शान्ति तथा प्रगति-सुरक्षा की व्यवस्था करने में अपनी शक्ति और साधन आदि को पूरी ईमानदारी से लगाता रहूँगा ।

यत्नशीलो भविष्यामि, सन्मार्गंसेवितुं सदा ।
आवयोः मतभेदांश्च, दोषान्संशोध्य शान्तितः ॥८ ॥

अपनी ओर से मधुर भाषण और श्रेष्ठ व्यवहार बनाये रखने का पूरा-पूरा प्रयत्न करूँगा । मतभेदों और भूलों का सुधार शान्ति के साथ करूँगा । किसी के सामने पत्नी को लांछित- तिरस्कृत नहीं करूँगा ।

भवत्यामसमर्थायां, विमुखायाञ्च कर्मणि ।
विश्वासं सहयोगञ्च, मम प्राप्स्यसि त्वं सदा ॥९ ॥

पत्नी के असमर्थ या अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाने पर भी अपने सहयोग और कर्त्तव्य-पालन में रत्ती भर भी कमी न रखूँगा ।

॥ कन्या की प्रतिज्ञाएँ ॥

स्वजीवनं मेलयित्वा, भवतः खलु जीवने ।
भूत्वा चार्धांगिनी नित्यं, निवत्स्यामि गृहे सदा ॥१ ॥

अपने जीवन को पति के साथ संयुक्त करके नये जीवन की सृष्टि करूँगी । इस प्रकार घर में हमेशा सच्चे अर्थों में अर्द्धांगिनी बनकर रहूँगी ।

शिष्टतापूर्वकं सर्वैः, परिवारजनैः सह ।
औदार्येण विधास्यामि, व्यवहारं च कोमलम् ॥२ ॥

पति के परिवार के परिजनों को एक ही शरीर के अंग मानकर सभी के साथ शिष्टता बरतूँगी, उदारतापूर्वक सेवा करूँगी, मधुर व्यवहार करूँगी ।

त्यक्त्वालस्यं करिष्यामि, गृहकार्ये परिश्रमम्।
भर्तुर्हर्षं हि ज्ञास्यामि, स्वीयामेव प्रसन्नताम्।।३।।

आलस्य को छोड़कर परिश्रमपूर्वक गृह कार्य करूँगी। इस प्रकार पति की प्रगति और जीवन विकास में समुचित योगदान करूँगी।

श्रद्धया पालयिष्यामि, धर्मं पातिव्रतं परम्।
सर्वदैवानुकूल्येन, पत्युरादेशपालिका।।४।।

पतिव्रत धर्म का पालन करूँगी, पति के प्रति श्रद्धा-भाव बनाये रखकर सदैव उनके अनुकूल रहूँगी। कपट-दुराव न करूँगी, निर्देशों के अविलम्ब पालन का अभ्यास करूँगी।

सुश्रूषणपरा स्वच्छा, मधुर-प्रियभाषिणी।
प्रतिजाने भविष्यामि, सततं सुखदायिनी।।५।।

सेवा, स्वच्छता तथा प्रियभाषण का अभ्यास बनाये रखूँगी। ईर्ष्या, कुढ़न आदि दोषों से बचूँगी और सदा प्रसन्नता देनेवाली बनकर रहूँगी।

मितव्ययेन गार्हस्थ्य-सञ्चालने हि नित्यदा।
प्रयतिष्ये च सोत्साहं, तवाहमनुगामिनी।।६।।

मितव्ययी बनकर फिजूलखर्ची से बचूँगी। पति के असमर्थ हो जाने पर भी गृहस्थ के अनुशासन का पालन करूँगी।

देवस्वरूपो नारीणां, भर्त्ता भवति मानवः।
मत्वेति त्वां भजिष्यामि, नियता जीवनावधिम्।।७।।

नारी के लिए पति, देव स्वरूप होता है- यह मानकर मतभेद भुलाकर, सेवा करते हुए जीवनभर सक्रिय रहूँगी, कभी भी पति का अपमान न करूँगी।

पूज्यास्तव पितरो ये, श्रद्धया परमा हि मे।
सेवया तोषयिष्यामि, तान्सदा विनयेन च।।८।।

जो पति के पूज्य और श्रद्धा पात्र हैं, उन्हें सेवा द्वारा और विनय द्वारा सदैव सन्तुष्ट रखूँगी।

विकासाय सुसंस्कारैः, सूत्रैः सद्भाववर्द्धिभिः।
परिवारसदस्यानां, कौशलं विकसाम्यहम्।।९।।

परिवार के सदस्यों में सुसंस्कारों के विकास तथा उन्हें सद्भावना के सूत्रों में बाँधे रहने का कौशल अपने अन्दर विकसित करूँगी।।

॥ यज्ञीय प्रक्रिया ॥

शपथ ग्रहण के बाद उनकी श्रेष्ठ भावनाओं के विकास और पोषण के लिए यज्ञीय वातावरण निर्मित किया जाता है । अग्नि स्थापना कराके, क्रमबद्ध ढंग से गायत्री मन्त्र की ९, १२ या २४ आहुतियाँ दी जाएँ। इसके बाद प्रायश्चित्त होम कराया जाए ।

॥ प्रायश्चित्त होम ॥

दिशा एवं प्रेरणा- गायत्री मन्त्र की आहुति के पश्चात् पाँच आहुतियाँ प्रायश्चित्त होम की अतिरिक्त रूप से दी जाती हैं । वर और कन्या दोनों के हाथ में हवन सामग्री दी जाती है । प्रायश्चित्त होम की आहुतियाँ देते समय यह भावना दोनों के मन में आनी चाहिए कि दाम्पत्य जीवन में बाधक जो भी कुसंस्कार अब तक मन में रहे हों, उन सब को स्वाहा किया जा रहा है । किसी से गृहस्थ के आदर्शों के उल्लंघन करने की कोई भूल हुई हो, तो उसे अब एक स्वप्न जैसी बात समझकर विस्मरण कर दिया जाए। इस प्रकार की भूल के कारण कोई किसी को न तो दोष दे, न सन्देह की दृष्टि से देखे । इसी प्रकार कोई अन्य नशेबाजी जैसा दुर्व्यसन रहा हो या स्वभाव में कठोरता, स्वार्थपरता, अहंकार जैसी कोई त्रुटि रही हो, तो उसका त्याग कर दिया जाए । साथ ही उन भूलों का प्रायश्चित्त करते हुए भविष्य में कोई ऐसी भूल न करने का संकल्प भी करना है, जो दाम्पत्य जीवन की प्रगति में बाधा उत्पन्न करे ।

क्रिया और भावना- वर-वधू हवन सामग्री से आहुति करें । भावना करें कि प्रायश्चित्त आहुति के साथ पूर्व दुष्कृत्यों की धुलाई हो रही है । स्वाहा के साथ आहुति डालें, **इदं न मम** के साथ हाथ जोड़कर नमस्कार करें —

ॐ त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् , देवस्य हेडो अव यासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो, विश्वा द्वेषा ꣳसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा । इदमग्नीवरुणाभ्यां इदं न मम ॥ - २१.३

ॐ स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती, नेदिष्ठो अस्या ऽ उषसो व्युष्टौ । अव यक्ष्व नो वरुण ꣳ रराणो, वीहि मृडीक ꣳ सुहवो न ऽ एधि स्वाहा । इदमग्नीवरुणाभ्यां इदं न मम ॥ - २१.४

ॐ अयाश्चाग्नेऽस्य नभिशस्तिपाश्च, सत्यमित्त्वमयाऽ असि। अया नो यज्ञं वहास्यया, नो धेहि भेषज ꣳ स्वाहा। इदमग्नये अयसे इदं न मम। - का० श्रौ० सू० २५.१.११

ॐ ये ते शतं वरुण ये सहस्रं, यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः, तेभिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णुः, विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा। इदं वरुणायसवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यःस्वर्केभ्यश्च इदं न मम। - का० श्रौ० सू० २५.१.११

ॐ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं, विमध्यम ꣳ श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो, अदितये स्याम स्वाहा। इदं वरुणायादित्यायादितये च इदं न मम। १२.१२

॥ शिलारोहण ॥

दिशा एवं प्रेरणा- शिलारोहण के द्वारा पत्थर पर पैर रखते हुए प्रतिज्ञा करते हैं कि जिस प्रकार अंगद ने अपना पैर जमा दिया था, उसी तरह हम पत्थर की लकीर की तरह अपना पैर उत्तरदायित्वों को निबाहने के लिए जमाते हैं। यह धर्मकृत्य खेल-खिलौने की तरह नहीं किया जा रहा, जिसे एक मखौल समझकर तोड़ा जाता रहे; वरन् यह प्रतिज्ञाएँ पत्थर की लकीर की तरह अमिट बनी रहेंगी, ये चट्टान की तरह अटूट एवं चिरस्थाई रखी जायेंगी।

क्रिया और भावना- मन्त्र बोलने के साथ वर-वधू अपने दाहिने पैर शिला पर रखें, भावना करें कि उत्तरदायित्वों के निर्वाह करने तथा बाधाओं को पार करने की शक्ति हमारे संकल्प और देव अनुग्रह से मिल रही है।

ॐ आरोहेममश्मानमश्मेव त्वꣳ स्थिरा भव।
अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायतः ॥पार० गृ० सू० १.७.१

॥ लाजाहोम एवं परिक्रमा (भाँवर) ॥

प्रायश्चित्त आहुति के बाद लाजाहोम और यज्ञाग्नि की परिक्रमा (भाँवर) का मिला-जुला क्रम चलता है। लाजाहोम के लिए कन्या का भाई एक थाली में खील (भुना हुआ धान) लेकर पीछे खड़ा हो। एक मुट्ठी खील अपनी बहिन को दे। कन्या उसे वर को सौंप दे। वर उसे आहुति मन्त्र के साथ हवन

कर दे । इस प्रकार तीन बार किया जाए । कन्या तीनों बार भाई के द्वारा दिये हुए खील अपने पति को दे, वह तीनों बार हवन में अर्पण कर दे । लाजाहोम में भाई के घर से अन्न (खील के रूप में) बहिन को मिलता है, उसे वह अपने पति को सौंप देती है । कहती है बेशक मेरे व्यक्तिगत उपयोग के लिए पिता के घर से मुझे कुछ मिला है, पर उसे मैं छिपाकर अलग से नहीं रखती, आपको सौंपती हूँ । अलगाव या छिपाव का भाव कोई मन में न आए, इसलिए जिस प्रकार पति कुछ कमाई करता है, तो पत्नी को सौंपता है, उसी प्रकार पत्नी भी अपनी उपलब्धियों को पति के हाथ में सौंपती है । पति सोचता है, हम लोग हाथ-पैर से जो कमायेंगे, उसी से अपना काम चलायेंगे, किसी के उदारतापूर्वक दिये हुए अनुदान को बिना श्रम किये खाकर क्यों हम किसी के ऋणी बनें । इसलिए पति उस लाजा को अपने खाने के लिए नहीं रख लेता, वरन् यज्ञ में होम देता है । जन कल्याण के लिए उस पदार्थ को वायुभूत बनाकर संसार के वायुमण्डल में बिखेर देता है । इस क्रिया में यहाँ महान् मानवीय आदर्श सन्निहित है कि मुफ्त का माल या तो स्वीकार ही न किया जाए या मिले भी तो उसे लोकहित में खर्च कर दिया जाए। लोग अपनी-अपनी निज की पसीने की कमाई पर ही गुजर-बसर करें । मृतकभोज के पीछे भी यही आदर्शवादिता थी कि पिता के द्वारा उत्तराधिकार में मिले हुए धन को लड़के अपने काम में नहीं लेते थे, वरन् समाजसेवी ब्राह्मणों के निर्वाह में या अन्य पुण्यकार्यों में खर्च कर डालते थे । यही दहेज के सम्बन्ध में भी ठीक है । पिता के गृह से उदारतापूर्वक मिला, सो उनकी भावना सराहनीय है, पर आपकी भी तो कुछ भावना होनी चाहिए । मुफ्त का माल खाते हुए किसी कमाऊ मनुष्य को गैरत आना स्वाभाविक है । उसका यह सोचना ठीक ही है कि बिना परिश्रम का धन, वह भी दान की उदार भावना से दिया हुआ उसे पचेगा नहीं, इसलिए उपहार को जन मंगल के कार्य में, परमार्थ यज्ञ में आहुति कर देना ही उचित है । इसी उद्देश्य से पत्नी के भाई के द्वारा दिये गये लाजा को वह यज्ञ कार्य में लगा देता है । दहेज का ठीक उपयोग यही है, प्रथा भी है कि विवाह के अवसर पर वरपक्ष की ओर से बहुत सा दान-पुण्य किया जाता है ।

अच्छा हो जो कुछ मिले, वह सबको ही दान कर दे । विवाह के समय

ही नहीं अन्य अवसरों पर भी यदि कभी किसी से कुछ ऐसा ही बिना परिश्रम का उपहार मिले, तो उसके सम्बन्ध में एक ही नीति रहनी चाहिए कि मुफ्त का माल खाकर हम परलोक के ऋणी न बनेंगे; वरन् ऐसे अनुदान को परमार्थ में लगाकर उस उदार परम्परा को अपने में न रोककर आगे जन कल्याा के लिए बढ़ा देंगे। कहाँ भारतीय संस्कृति की उदार भावना और कहाँ आज के धन लोलुपों द्वारा कन्या पक्ष की आँतें नोच डालने वाली दहेज की पैशाचिक माँगें, दोनों में जमीन-आसमान जैसा अन्तर है। जिसने अपने हृदय का, आत्मा का टुकड़ा कन्या दे दी, उनके प्रति वर पक्ष का रोम-रोम कृतज्ञ होना चाहिए और यह सोचना चाहिए कि इस अलौकिक उपहार के बदले में किस प्रकार अपनी श्रद्धा-सद्भावना व्यक्त करें। यह न होकर उल्टे जब कन्या पक्ष को दबा हुआ समझ कर उसे तरह-तरह से सताने और चूसने की योजना बनाई जाती है, तो यही समझना चाहिए कि भारतीय परम्पराएँ बिल्कुल उल्टी हो गयीं। धर्म के स्थान पर अधर्म, देवत्व के स्थान पर असुरता का साम्राज्य छा गया। लाजाहोम वर्तमान काल की क्षुद्र मान्यताओं को धिक्कारता है और दहेज के सम्बन्ध में सही दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा देता है।

परिक्रमा- अग्नि की पति-पत्नी परिक्रमा करें। बायें से दायें की ओर चलें। पहली चार परिक्रमाओं में कन्या आगे रहे और वर पीछे। चार परिक्रमा हो जाने पर लड़का आगे हो जाए और लड़की पीछे। परिक्रमा के समय परिक्रमा मन्त्र बोला जाए तथा हर परिक्रमा पूरी होने पर एक-एक आहुति वर-वधू गायत्री मन्त्र से करते चलें, इसका तात्पर्य है - घर-परिवार के कार्यों में लड़की का नेतृत्व रहेगा, उसके परामर्श को महत्त्व दिया जाएगा, वर उसका अनुसरण करेगा, क्योंकि उन कामों का नारी को अनुभव अधिक होता है।

बाहर के कार्यों में वर नेतृत्व करता है और नारी उसका अनुसरण करती है; क्योंकि व्यावसायिक क्षेत्रों में वर का अनुभव अधिक होता है। जिसमें जिस दिशाकी जानकारी कम हो, दूसरे में उसकी जानकारी बढ़ाकर अपने समतुल्य बनाने में प्रयत्नशील रहें। भावना क्षेत्र में नारी आगे है, कर्म क्षेत्र में पुरुष। दोनों पक्ष अपने-अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण हैं। कुल मिलाकर नारी का वर्चस्व, पद, गौरव एवं वजन बड़ा बैठता है। इसलिए उसे चार परिक्रमा करने और नर को तीन परिक्रमा करने का अवसर दिया जाता है। गौरव के

चुनाव के ४ वोट कन्या को और ३ वोट वर को मिलते हैं, इसलिए सदा नर से पहला स्थान नारी को मिला है। सीताराम, राधेश्याम, लक्ष्मीनारायण, उमामहेश आदि युग्मों में पहले नारी का नाम है, पीछे नर का।

क्रिया और भावना- लाजा होम और परिक्रमा का मिलाजुला क्रम चलता है। शिलारोहण के बाद वर-वधू खड़े-खड़े गायत्री मन्त्र से एक आहुति समर्पित करें। अब मंत्र के साथ परिक्रमा करें। वधू आगे, वर पीछे चले।

एक परिक्रमा पूरी होने पर लाजाहोम की एक आहुति करें। आहुति करके दूसरी परिक्रमा पहले की तरह मन्त्र बोलते हुए करें। इसी प्रकार लाजाहोम की दूसरी आहुति करके तीसरी परिक्रमा तथा तीसरी आहुति करके चौथी परिक्रमा करें।इसके बाद गायत्री मन्त्र की आहुति देते हुए तीन परिक्रमाएँ वर को आगे करके परिक्रमा मन्त्र बोलते हुए कराई जाएँ। आहुति के साथ भावना करें कि बाहर यज्ञीय ऊर्जा तथा अन्तःकरण में यज्ञीय भावना तीव्रतर हो रही है। परिक्रमा के साथ भावना करें कि यज्ञीय अनुशासन को केन्द्र मानकर, यज्ञाग्नि को साक्षी करके आदर्श दाम्पत्य के निर्वाह का संकल्प कर रहे हैं।

॥ लाजाहोम ॥

ॐ अर्यमणं देवं कन्या अग्निमयक्षत। स नोऽअर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु, मा पतेः स्वाहा। इदम् अर्यम्णे अग्नये इदं न मम॥

ॐ इयं नार्युपब्रूते लाजा नावपन्तिका। आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां, ज्ञातयो मम स्वाहा। इदम् अग्नये इदं न मम॥

ॐ इमाँल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव। मम तुभ्यं च संवननं, तदग्निरनुमन्यतामियꣳ स्वाहा।

इदम् अग्नये इदं न मम ॥ पार० गृ० सू० १.६.२

॥ परिक्रमा मन्त्र ॥

ॐ तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतु ना सह। पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह॥ - ऋ० १०.८५.३८, पार० गृ० सू० १.७.३

॥ सप्तपदी ॥

दिशा एवं प्रेरणा- भाँवरें फिर लेने के उपरान्त सप्तपदी की जाती है । सात बार वर-वधू साथ-साथ कदम से कदम मिलाकर फौजी सैनिकों की तरह आगे बढ़ते हैं । सात चावल की ढेरी या कलावा बँधे हुए सकोरे रख दिये जाते हैं, इन लक्ष्य- चिह्नों को पैर लगाते हुए दोनों एक-एक कदम आगे बढ़ते हैं, रुक जाते हैं और फिर अगला कदम बढ़ाते हैं । इस प्रकार सात कदम बढ़ाये जाते हैं । प्रत्येक कदम के साथ एक-एक मन्त्र बोला जाता है ।

पहला कदम अन्न के लिए, दूसरा बल के लिए, तीसरा धन के लिए, चौथा सुख के लिए, पाँचवाँ परिवार के लिए, छठवाँ ऋतुचर्या के लिएऔर सातवाँ मित्रता के लिए उठाया जाता है । विवाह होने के उपरान्त पति-पत्नी को मिलकर सात कार्यक्रम अपनाने पड़ते हैं । उनमें दोनों का उचित और न्याय संगत योगदान रहे, इसकी रूपरेखा सप्तपदी में निर्धारित की गई है ।

प्रथम कदम अन्न वृद्धि के लिए है । आहार स्वास्थ्यवर्धक हो, घर में चटोरेपन को कोई स्थान न मिले ।रसोई में जो बने, वह ऐसा हो कि स्वास्थ्य रक्षा का प्रयोजन पूरा करे, भले ही वह स्वादिष्ट न हो । अन्न का उत्पादन, अन्न की रक्षा, अन्न का सदुपयोग जो कर सकता है, वही सफल गृहस्थ है । अधिक पका लेना, जूठन छोड़ना, बर्तन खुले रखकर अन्न की चूहों से बर्बादी कराना, मिर्च-मसालों की भरमार से उसे तमोगुणी बना देना, स्वच्छता का ध्यान न रखना आदि बातों से आहार पर बहुत खर्च करते हुए भी स्वास्थ्य नष्ट होता है, इसलिए दाम्पत्य जीवन का उत्तरदायित्व यह है कि आहार की सात्त्विकता का समुचित ध्यान रखा जाए ।

दूसरा कदम शारीरिक और मानसिक बल की वृद्धि के लिए है । व्यायाम, परिश्रम, उचित एवं नियमित आहार-विहार से शरीर का बल स्थिर रहता है । अध्ययन एवं विचार-विमर्श से मनोबल बढ़ता है । जिन प्रयत्नों से दोनों प्रकार के बल बढ़ें, दोनों अधिक समर्थ, स्वस्थ एवं सशक्त बनें- उसका उपाय सोचते रहना चाहिए ।

तीसरा कदम धन की वृद्धि के लिए है । अर्थ व्यवस्था बजट बनाकर चलाई जाए । अपव्यय में कानी कौड़ी भी नष्ट न होने पाए । उचित कार्यों में कंजूसी न की जाए- फैशन, व्यसन, शेखीखोरी आदि के लिए

पैसा खर्च न करके उसे पारिवारिक उन्नति के लिए सँभालकर, बचाकर रखा जाए । उपार्जन के लिए पति-पत्नी दोनों ही प्रयत्न करें । पुरुष बाहर जाकर कृषि, व्यवसाय, नौकरी आदि करते हैं, तो स्त्रियाँ सिलाई, धुलाई, सफाई आदि करके इस तरह की कमाई करती हैं । उपार्जन पर जितना ध्यान रखा जाता है, खर्च की मर्यादाओं का भी वैसा ही ध्यान रखते हुए घर की अर्थव्यवस्था सँभाले रहना दाम्पत्य जीवन का अनिवार्य कर्त्तव्य है ।

चौथा कदम सुख की वृद्धि के लिए है । विश्राम, मनोरंजन, विनोद, हास-परिहास का ऐसा वातावरण रखा जाए कि गरीबी में भी अमीरी का आनन्द मिले । दोनों प्रसन्नचित्त रहें । मुस्कराने की आदत डालें, हँसते-हँसाते जिन्दगी काटें । चित्त को हल्का रखें, 'सन्तोषी सदा सुखी' की नीति अपनाएँ ।

पाँचवाँ कदम परिवार पालन का है । छोटे बड़े सभी के साथ समुचित व्यवहार रखा जाए । आश्रित पशुओं एवं नौकरों को भी परिवार माना जाए, इन सभी आश्रितों की समुचित देखभाल, सुरक्षा, उन्नति एवं सुख-शान्ति के लिए सदा सोचने और करने में लापरवाही न बरती जाए ।

छठा कदम ऋतुचर्या का है । सन्तानोत्पादन एक स्वाभाविक वृत्ति है, इसलिए दाम्पत्य जीवन में उसका भी एक स्थान है, पर उस सम्बन्ध में मर्यादाओं का पूरी कठोरता एवं सतर्कता से पालन किया जाए ; क्योंकि असंयम के कारण दोनों के स्वास्थ्य का सर्वनाश होने की आशंका रहती है, गृहस्थ में रहकर भी ब्रह्मचर्य का समुचित पालन किया जाए । दोनों एक दूसरे को साथी-सहयोगी-मित्र की दृष्टि से देखें, कामुकता के सर्वनाशी प्रसंगों को जितना सम्भव हो, दूर रखा जाए । सन्तान उत्पन्न करने से पूर्व हजार बार विचार करें कि अपनी स्थिति सन्तान को सुसंस्कृत बनाने योग्य है या नहीं । उसी मर्यादा में सन्तान उत्पन्न करने की जिम्मेदारी वहन करें ।

सातवाँ कदम मित्रता को स्थिर रखने एवं बढ़ाने के लिए है । दोनों इस बात पर बारीकी से विचार करते रहें कि उनकी ओर से कोई ऐसी त्रुटि तो नहीं बरती जा रही है, जिसके कारण साथी को रुष्ट या असंतुष्ट होने का अवसर आए । दूसरा पक्ष कुछ भूल भी कर रहा हो, तो उसका उत्तर कठोरता, कर्कशता से नहीं, वरन् सज्जनता, सहृदयता के साथ दिया जाना चाहिए ; ताकि उस महानता से दबकर साथी को स्वत: ही सुधरने की अन्त:प्रेरणा

मिले। बाहर के लोगों के साथ, दुष्टों के साथ दुष्टता की नीति किसी हद तक अपनाई जा सकती है, पर आत्मीयजनों का हृदय जीतने के लिए उदारता, सेवा, सौजन्य, क्षमा जैसे शस्त्र ही काम में लाये जाने चाहिए। सप्तपदी में सात कदम बढ़ाते हुए इन सात सूत्रों को हृदयंगम करना पड़ता है। इन आदर्शों और सिद्धांतों को यदि पति-पत्नी द्वारा अपना लिया जाए और उसी मार्ग पर चलने के लिए कदम से कदम बढ़ाते हुए अग्रसर होने की ठान ली जाए, तो दाम्पत्य जीवन की सफलता में कोई सन्देह ही नहीं रह जाता।

क्रिया और भावना- वर-वधू खड़े हों। प्रत्येक कदम बढ़ाने से पहले देव शक्तियों की साक्षी का मंत्र बोला जाता है, उस समय वर-वधू हाथ जोड़कर ध्यान करें। उसके बाद चरण बढ़ाने का मंत्र बोलने पर पहले दायाँ कदम बढ़ाएँ। इसी प्रकार एक-एक करके सात कदम बढ़ाये जाएँ। भावना की जाए कि योजनाबद्ध- प्रगतिशील जीवन के लिए देव साक्षी में संकल्पित हो रहे हैं, संकल्प और देव अनुग्रह का संयुक्त लाभ जीवन भर मिलता रहेगा।

(१) अन्न वृद्धि के लिए पहली साक्षी-

ॐ एको विष्णुर्जगत्सर्वं, व्याप्तं येन चराचरम्।
हृदये यस्ततो यस्य, तस्य साक्षी प्रदीयताम्॥

पहला चरण **ॐ इष एकपदी भव सा मामनुव्रता भव। विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै, बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयः॥१॥**

(२) बल वृद्धि के लिए दूसरी साक्षी-

ॐ जीवात्मा परमात्मा च, पृथ्वी आकाशमेव च।
सूर्यचन्द्रद्वयोर्मध्ये, तस्य साक्षी प्रदीयताम्॥

दूसरा चरण **ॐ ऊर्जे द्विपदी भव सा मामनुव्रता भव। विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै, बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयः॥२॥**

(३) धन वृद्धि के लिए तीसरी साक्षी-

ॐ त्रिगुणाश्च त्रिदेवाश्च, त्रिशक्तिः सत्परायणाः।
लोकत्रये त्रिसन्ध्यायाः, तस्य साक्षी प्रदीयताम्॥

तीसरा चरण - **ॐ रायस्पोषाय त्रिपदी भव सा मामनुव्रता भव। विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै, बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयः॥३॥**

(४) सुख वृद्धि के लिए चौथी साक्षी-

ॐ चतुर्मुखस्ततो ब्रह्मा, चत्वारो वेदसंभवाः ।
चतुर्युगाः प्रवर्तन्ते, तेषां साक्षी प्रदीयताम् ॥

चौथा चरण - **ॐ मायो भवाय चतुष्पदी भव सा मामनुव्रता भव ।विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयः ॥**

(५) प्रजा पालन के लिए पाँचवीं साक्षी-

ॐ पंचमे पंचभूतानां, पंचप्राणैः परायणाः ।
तत्र दर्शनपुण्यानां, साक्षिणः प्राणपंचधाः ॥

पाँचवाँ चरण - **ॐ प्रजाभ्यः पंचपदी भव सा मामनुव्रता भव । विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै, बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयः ॥५ ॥**

(६) ऋतु व्यवहार के लिए छठवीं साक्षी-

ॐ षष्ठे तु षड्ऋतूणां च, षण्मुखः स्वामिकार्तिकः ।
षड्रसा यत्र जायन्ते, कार्तिकेयाश्च साक्षिणः ॥

छठवाँ चरण - **ॐ ऋतुभ्यः षट्पदी भव सा मामनुव्रता भव । विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै, बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयः ॥६ ॥**

(७) मित्रता वृद्धि के लिए सातवीं साक्षी-

ॐ सप्तमे सागराश्चैव, सप्तद्वीपाः सपर्वताः ।
येषां सप्तर्षिपत्नीनां, तेषामादर्शसाक्षिणः ॥

सातवाँ चरण- **ॐ सखे सप्तपदी भव सा मामनुव्रता भव । विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै, बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयः ॥७ ॥**

- पार० गृ० सू० १. ८.१-२, आ० गृ० सू० १.७.१९

॥ आसन परिवर्तन ॥

सप्तपदी के पश्चात् आसन परिवर्तन करते हैं । अब तक वधू दाहिनी ओर थी अर्थात् बाहरी व्यक्ति जैसी स्थिति में थी । अब सप्तपदी होने तक की प्रतिज्ञाओं में आबद्ध हो जाने के उपरान्त वह घर वाली अपनी आत्मीय बन जाती है, इसलिए उसे बायीं ओर बैठाया जाता है । बायें से दायें लिखने का क्रम है । बायाँ प्रथम और दाहिना द्वितीय माना जाता है । सप्तपदी के बाद अब पत्नी को प्रमुखता प्राप्त हो गयी । लक्ष्मी-नारायण, उमा-महेश,

सीता-राम, राधे-श्याम आदि नामों में पत्नी को प्रथम, पति को द्वितीय स्थान प्राप्त है। दाहिनी ओर से वधू का बायीं ओर आना, अधिकार हस्तांतरण है। बायीं ओर के बाद पत्नी गृहस्थ जीवन की प्रमुख सूत्रधार बनती है।

ॐ इह गावो निषीदन्तु, इहाश्वा इह पूरुषाः।
इहो सहस्रदक्षिणो यज्ञ, इह पूषा निषीदतु॥ - पा०गृ०सू० १.८.१०

॥ पाद प्रक्षालन ॥

आसन परिवर्तन के बाद गृहस्थाश्रम के साधक के रूप में वर-वधू का सम्मान पाद प्रक्षालन करके किया जाता है। कन्या पक्ष की ओर से प्रतिनिधि स्वरूप कोई दम्पति या अकेले व्यक्ति पाद प्रक्षालन करे। पाद प्रक्षालन करने वालों का पवित्रीकरण-सिंचन किया जाए। हाथ में हल्दी, दूर्वा, थाली में जल लेकर प्रक्षालन करें। प्रथम मन्त्र के साथ तीन बार वर-वधू के पैर पखारें, फिर दूसरे मन्त्र के साथ यथा श्रद्धा भेंट दें।

ॐ या ते पतिघ्नी प्रजाघ्नी पशुघ्नी, गृहघ्नी यशोघ्नी निन्दिता तनूर्जारघ्नीं ततऽएनांकरोमि, सा जीर्य त्वं मया सह॥
पार० गृ० सू० १.११

ॐ ब्रह्मणा शालां निमितां, कविभिर्निमितां मिताम्।
इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सदः॥ - अथर्व० ९.३.१९

॥ *ध्रुव-सूर्य ध्यान* ॥

ध्रुव स्थिर तारा है। अन्य सब तारागण गतिशील रहते हैं, पर ध्रुव अपने निश्चित स्थान पर ही स्थिर रहता है। अन्य तारे उसकी परिक्रमा करते हैं। ध्रुव दर्शन का अर्थ है- दोनों अपने-अपने परम पवित्र कर्त्तव्यों पर उसी तरह दृढ़ रहेंगे, जैसे कि यह ध्रुव तारा स्थिर है। कुछ कारण उत्पन्न होने पर भी इस आदर्श से विचलित न होने की प्रतिज्ञा को निभाया जाए, व्रत को पाला जाए और संकल्प को पूरा किया जाए। ध्रुव स्थिर चित्त रहने की ओर, अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहने की प्रेरणा देता है। इसी प्रकार सूर्य की अपनी प्रखरता, तेजस्विता, महत्ता सदा स्थिर रहती है। वह अपने निर्धारित पथ पर ही चलता है, यही हमें करना चाहिए। यही भावना पति-पत्नी करें।

॥ सूर्य ध्यान (दिन में) ॥

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतꣳ, शृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः, स्याम शरदः शतं, भूयश्च शरदः शतात्॥ -३६.२४

॥ ध्रुव ध्यान (रात में) ॥

ॐ ध्रुवमसि ध्रुवं त्वा पश्यामि, ध्रुवैधि पोष्ये मयि। मह्यं त्वादात् बृहस्पतिर्मयापत्या, प्रजावती सञ्जीव शरदः शतम्।

-पार० गृ० सू० १.८.१९

॥ शपथ आश्वासन ॥

पति-पत्नी एक दूसरे के सिर पर हाथ रखकर समाज के सामने शपथ लेते हैं, एक आश्वासन देकर अन्तिम प्रतिज्ञा करते हैं कि वे निस्संदेह निश्चित रूप से एक दूसरे को आजीवन ईमानदार, निष्ठावान् और वफादार रहने का विश्वास दिलाते हैं।पिछले दिनों पुरुषों का व्यवहार स्त्रियों के साथ छली-कपटी और विश्वासघातियों जैसा रहा है। रूप, यौवन के लोभ में कुछ दिन मीठी बातें बनाते हैं, पीछे क्रूरता एवं दुष्टता पर उतर आते हैं। पग-पग पर उन्हें सताते और तिरस्कृत करते हैं। प्रतिज्ञाओं को तोड़कर आर्थिक एवं चारित्रिक उच्छृंखलता बरतते हैं और पत्नी की इच्छा की परवाह नहीं करते। समाज में ऐसी घटनाएँ कम घटित नहीं होतीं। ऐसी दशा में ये प्रतिज्ञाएँ औपचारिकता मात्र रह जाने की आशंका हो सकती है। सन्तान न होने पर या लड़कियाँ होने पर लोग दूसरा विवाह करने पर उतारू हो जाते हैं। पति सिर पर हाथ रखकर कसम खाता है कि दूसरे दुरात्माओं की श्रेणी में उसे न गिना जाए। इस प्रकार पत्नी भी अपनी निष्ठा के बारे में पति को इस शपथ-प्रतिज्ञा द्वारा विश्वास दिलाती है।

ॐ मम व्रते ते हृदयं दधामि, मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु।
मम वाचमेकमना जुषस्व, प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥

-पार० गृ० सू० १.८.८

॥ सुमंगली-सिंदूरदान ॥

मन्त्र के साथ वर अँगूठी से वधू की माँग में सिन्दूर तीन बार लगाए। भावना करे कि मैं वधू के सौभाग्य को बढ़ाने वाला सिद्ध होऊँ -

ॐ सुमंगलीरियं वधूरिमा ꣳ समेत पश्यत। सौभाग्य-मस्यै दत्त्वा याथास्तं विपरेतन। "सुभगा स्त्री सावित्र्यास्तव सौभाग्यं भवतु"॥ पार० गृ० सू० १.८.९

॥ मंगलतिलक ॥

वधू वर को मंगल तिलक करे। भावना करे, पति का सम्मान करते हुए गौरव को बढ़ाने वाली सिद्ध होऊँ -

ॐ स्वस्तये वायुमुपब्रवामहै, सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः। बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये, स्वस्तय ऽ आदित्यासो भवन्तु नः॥ - ऋ० ५.५१.१२

इसके पश्चात् स्विष्टकृत होम, पूर्णाहुति, वसोर्धारा, आरती, घृत-अवघ्राण, भस्म धारण, क्षमा प्रार्थना आदि कृत्य सम्पन्न करें।

॥ अभिषेक -सिंचन ॥

वर-कन्या को बिठाकर कलश का जल लेकर उनका सिंचन किया जाए। भावना की जाए कि जो सुसंस्कार बोये गये हैं, उन्हें दिव्यजल से सिंचित किया जा रहा है। सबके सद्भाव से उनका विकास होगा और सफलता-कुशलता के कल्याणप्रद सुफल उनमें लगेंगे। पुष्प वर्षा के रूप में सभी अपनी शुभकामनाएँ-आशीर्वाद प्रदान करें—

गणपतिः गिरिजा वृषभध्वजः,
षण्मुखो नन्दीमुखडिमडिमा।
मनुज-माल-त्रिशूल-मृगत्वचः,
प्रतिदिनं कुशलं वरकन्ययोः॥१॥
रविशशी-कुज इन्द्र-जगत्पतिः,
भृगुज-भानुज-सिन्धुज-केतवः।

उडुगणा-तिथि-योग च राशयः
प्रतिदिनं कुशलं वरकन्ययोः ॥२ ॥
वरुण-इन्द्र- कुबेर-हुताशनाः,
यम-समीरण-वारण-कुंजराः ।
सुरगणाः सुराश्च महीधराः,
प्रतिदिनं कुशलं वरकन्ययोः ॥३ ॥
सुरसरी-रविनन्दिनि-गोमती,
सरयुतामपि सागर-घर्घरा ।
कनकयामयि-गण्डकि-नर्मदा,
प्रतिदिनं कुशलं वरकन्ययोः ॥४ ॥
हरिपुरी-मथुरा च त्रिवेणिका,
बदरि-विष्णु-बटेश्वर-कौशला ।
मय-गयामपि-दर्दर-द्वारका,
प्रतिदिनं कुशलं वरकन्ययोः ॥५ ॥
भृगुमुनिश्च पुलस्ति च अंगिरा,
कपिलवस्तु-अगस्त्य च नारदः ।
गुरुवसिष्ठ-सनातन-जैमिनी,
प्रतिदिनं कुशलं वरकन्ययोः ॥६ ॥
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः, सामवेदो ह्यथर्वणः ।
रक्षन्तु चतुरो वेदा, यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥

इसके बाद विसर्जन और आशीर्वचन के पुष्प प्रदान कर कृत्य समाप्त किया जाए ।

* * *

॥ वानप्रस्थ संस्कार ॥

ढलती उम्र का परम पवित्र कर्त्तव्य है- वानप्रस्थ। पारिवारिक जिम्मेदारियाँ जैसे ही हल्की होने लगें, घर को चलाने के लिए बड़े बच्चे समर्थ होने लगें और अपने छोटे भाई-बहिनों की देखभाल करने लगें, तब वयोवृद्ध आदमियों का एक मात्र कर्त्तव्य यही रह जाता है कि वे पारिवारिक जिम्मेदारियों से धीरे-धीरे हाथ खींचें और क्रमशः वह भार समर्थ लड़कों के कन्धों पर बढ़ाते चलें। ममता को परिवार की ओर से शिथिल कर समाज की ओर विकसित करते चलें। सारा समय घर के ही लोगों के लिये खर्च न कर दें; वरन् उसका कुछ अंश क्रमशः अधिक बढ़ाते हुए समाज के लिए समर्पित करते चलें।

धर्म और संस्कृति का प्राण- वानप्रस्थ संस्कार भारतीय धर्म और संस्कृति का प्राण है। जीवन को ठीक तरह जीने की समस्या उसी से हल हो जाती है। युवावस्था के कुसंस्कारों का शमन एवं प्रायश्चित्त इसी साधना द्वारा होता है। जिस देश, धर्म, जाति तथा समाज में उत्पन्न हुए हैं, उनकी सेवा करने का, ऋण मुक्त होने का अवसर भी इसी स्थिति में मिलता है। इसलिए जिन नर-नारियों की स्थिति इसके लिए उपयुक्त हो, उन्हें वानप्रस्थ ले लेना चाहिए। एक प्रतिज्ञा बन्धन में बँध जाने पर व्यक्ति अपने जीवनक्रम को तदनुरूप ढालने में अधिक सफल होता है, बिना संस्कार कराये मनोभूमि पर वैसी छाप गहराई तक नहीं पड़ती। इसलिए कदम कभी आगे बढ़ते, कभी पीछे हटते रहते हैं। विवाह न होने तक प्रेमी का सहचरत्व संदिग्ध रहता है, पर जब विवाह हो गया, तो सब कुछ स्थायी एवं सुनियोजित हो जाता है। संस्कार के बिना पारमार्थिक भावनाओं का तूफान कभी शिथिल या समाप्त भी हो सकता है, पर यदि विधिवत् संस्कार कराया गया, तो अन्तःप्रेरणा तथा लोक-लाज दोनों ही निर्धारित गतिविधि अपनाये रहने की प्रेरणा देते रहेंगे, इसलिए शास्त्र मर्यादा के अनुरूप जिन्हें सुविधा हो, वे विधिवत् संस्कार करा लें। जिन्हें सुविधा न हो, वे बिना संस्कार के भी उपयुक्त प्रकार की रीति-नीति अपनाने के लिए यथा सम्भव प्रयत्न करते रहें।

लोक शिक्षण की आवश्यकता- इस गतिविधि को अपनाने से समाज की भी भारी सेवा होती है । प्राचीनकाल में लोक निर्माण की सारी गतिविधियों एवं प्रवृत्तियों के संचालन का उत्तरदायित्व साधु-ब्राह्मण, वानप्रस्थों पर ही था, वे अपनी सारी शक्तियाँ परमार्थ भावना से प्रेरित होकर जनमानस को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त किये रहने में लगाये रहते थे । फलस्वरूप चारों ओर धर्म, कर्त्तव्य, सदाचार का ही वातावरण बना रहता था । वयोवृद्ध अनुभवी, परमार्थ-परायण लोकसेवियों का प्रभाव जन साधारण पर स्वभावत: बहुत गहरा पड़ता है, वह टिकाऊ भी होता है । ऐसे लोग जन-नेतृत्व करने के लिए जब धर्मतन्त्र का उचित उपयोग करते थे, तो सारे समाज में सत्प्रवृत्तियों के लिए उत्साह उमड़ पड़ता था । शिक्षा, स्वास्थ्य, सदाचार, न्याय, विवेक, वैभव, शासन, विज्ञान, सुरक्षा, व्यवस्था आदि सभी क्षेत्रों में वे वयोवृद्ध लोग ही नेतृत्व करते थे । इतने अधिक अनुभवी और धर्म परायण व्यक्तियों की नि:शुल्क सेवा जिस देश या समाज को उपलब्ध होती हो, उसको संसार का मुकुटमणि होना ही चाहिए, प्राचीनकाल में ऐसी ही स्थिति थी ।आज वानप्रस्थ की परम्परा नष्ट हुई, बूढ़े लोगों को लोभ-मोह के बन्धनों में ही ग्रसित रहना प्रिय लगा, तो फिर देश का पतन अवश्यम्भावी था, हुआ भी, हो भी रहा है ।

विशेष व्यवस्था- वानप्रस्थ संस्कार जितने व्यक्तियों का हो, उनके लिए समुचित आसन तैयार रखे जाएँ । वानप्रस्थ परम्परा को महत्त्व देने की दृष्टि से उनके लिए सुसज्जित मंच बनाया जा सके, तो बनाना चाहिए । पूजन की सामान्य सामग्री के साथ-साथ संस्कार के लिए प्रयुक्त विशेष वस्तुओं को पहले से देख-सँभाल लेना चाहिए । उनका विवरण इस प्रकार है-

* वानप्रस्थों को पीले रंग के वस्त्रों में पहले से तैयार रखना चाहिए ।
* पंचगव्य एक पात्र में पहले से तैयार रहे ।
* संस्कार कराने वाले जितने व्यक्ति हों उतने (१) पीले यज्ञोपवीत (२) पंचगव्य पान कराने के लिए छोटी कटोरियाँ (३) मेखला-कोपीन (कमरबन्द सहित लँगोटी) (४) धर्मदण्ड (हाथ में लेने योग्य गोल दण्ड) रूल (४) पीले दुपट्टे तैयार रखे जाएँ ।
* ऋषि पूजन के लिए सात कुशाएँ एक साथ बँधी हुई ।
* वेदपूजन हेतु वेद या कोई पवित्र पुस्तक पीले कपड़े में लपेटी हुई ।

* यज्ञपुरुष पूजन के लिए कलावा लपेटा हुआ नारियल का गोला।

* अभिषेक के लिए स्वच्छ लोटे या कलश एक जैसे, कम से कम ५, अधिक २४ तक हों, तो अच्छा है। अभिषेक के लिए कन्याएँ अथवा सम्माननीय साधकों को पहले से निश्चित कर लेना चाहिए।

* विधिवत् स्नान करके, पीत वस्त्र पहनाकर वानप्रस्थ लेने वालों को संस्कार स्थल पर लाया जाए। प्रवेश एवं आसन ग्रहण के समय पुष्प-अक्षत वृष्टि के साथ मंगलाचरण बोला जाए।

* सबके यथास्थान बैठ जाने पर नपे-तुले शब्दों में संस्कार का महत्त्व तथा उसके महान् उत्तरदायित्वों पर सबका ध्यान दिलाकर भावनापूर्वक कर्मकाण्ड प्रारम्भ कराएँ।

॥ विशेष कर्मकाण्ड ॥

* प्रारम्भ में षट्कर्म के बाद ही संकल्प करा दिया जाए। तिलक और रक्षासूत्र बन्धन के उपचार करा दिये जाएँ।

* समय की सीमा का ध्यान रखते हुए सामान्य प्रकरण, पूजन आदि को समुचित विस्तार या संक्षेप में किया जाए।

* रक्षाविधान के बाद विशेष कर्मकाण्ड इस प्रकार कराये जाएँ।

॥ संकल्प ॥

दिशा एवं प्रेरणा- साधक हाथ में पुष्प, अक्षत, जल लेकर संकल्प करता है। संकल्प की सार्वजनिक घोषणा करता है कि आज से मैंने वानप्रस्थ व्रत ग्रहण कर लिया। अब मैं अपना या अपने परिवार का न रहकर समस्त समाज का बन गया। मेरा जीवन सार्वजनिक सम्पत्ति समझा जाए, उसे अपने या परिवार वालों के लाभ के लिए नहीं, वरन् विश्वमानस के लाभ की, आवश्यकता-पूर्ति का ध्यान रखते हुए माना जाए।

क्रिया और भावना- संकल्प के लिए अक्षत, जल, पुष्प हाथ में दिये जाएँ। भावना करें कि देव संस्कृति के मेरुदण्ड वानप्रस्थ जीवन का शुभारम्भ करने के लिए अपने अन्तरंग और अन्तरिक्ष की सद्शक्तियों से सहयोग की विनय करते हुए साहस भरी घोषणा कर रहे हैं -

ॐ तत्सदद्य श्रीमद् भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्त्तमानस्य अद्य श्री ब्रह्मणो द्वितीये परार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे भूर्लोके जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्त्तैक- देशान्तर्गते......क्षेत्रे ..... मासानां मासोत्तमेमासे .... मासे ...पक्षे...तिथौ....वासरे....गोत्रोत्पन्नः ... नामाऽहं स्वजीवनं व्यक्तिगतं न मत्वा सम्पूर्ण- समाजस्य एतत् इति ज्ञात्वा, संयम-स्वाध्याय-उपासनेषु विशेषतश्च लोकसेवायां निरन्तरं मनसा वाचा कर्मणा च संलग्नो भविष्यामि इति संकल्पं अहं करिष्ये ।

॥ यज्ञोपवीत परिवर्तन ॥

नये जीवन की ओर पहला कदम त्याग, पवित्रता, तेजस्विता एवं परमार्थ के प्रतीक व्रतबन्ध स्वरूप यज्ञोपवीत का नवीनीकरण किया जाता है ।

यज्ञोपवीत का सिंचन करके पाँच देव शक्तियों के आवाहन स्थापन के उपरान्त उसे धारण कर लिया जाता है, पुराना उतार दिया जाता है । यह क्रम यज्ञोपवीत संस्कार प्रकरण में दिया गया है । सुविधा की दृष्टि से मन्त्रादि यहाँ भी दिये जा रहे हैं ।

॥ यज्ञोपवीत सिंचन ॥

मन्त्र बोलते हुए यज्ञोपवीत पर जल छिड़कें, पवित्र करें, नमस्कार करें -

ॐ प्रजापतेर्यत्सहजं पवित्रं , कार्पाससूत्रोद्भवब्रह्मसूत्रम् ।
ब्रह्मत्वसिद्ध्यै च यशः प्रकाशं जपस्य सिद्धिं कुरु ब्रह्मसूत्र ॥

॥ पंचदेवावाहन ॥

निम्नस्थ मन्त्रों के साथ यज्ञोपवीत में विभिन्न देवताओं का आवाहन करें -

(१) ब्रह्मा-ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्, विसीमतः सुरुचो वेन आवः । स बुध्न्याऽउपमाऽअस्यविष्ठाः सतश्चयोनिमसतश्च विवः । ॐ ब्रह्मणे नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥

- १३.३

(२) विष्णु-ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे, त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पा ꣳ सुरे स्वाहा । ॐ विष्णवे नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥ ५.१५

(३) शिव-ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव ऽ, उतो तऽइषवे नमः। बाहुभ्या मुत ते नमः। ॐ रुद्राय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥ -१६.१

(४) **यज्ञपुरुष** - यज्ञोपवीत खोल लें। दोनों हाथों की कनिष्ठा और अँगूठे से फँसाकर सीने की सीध में करें, फिर यज्ञ भगवान् का आवाहन मन्त्र बोलते हुए यज्ञ पुरुष का पूजन करें।

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः, तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। तेह नाकं महिमानः सचन्त, यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः। ॐ यज्ञपुरुषाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥

-३१.१६

(५) **सूर्य**- फिर दोनों हाथ ऊपर उठाकर सूर्यदेव का आवाहन करें—

ॐ आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो, निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेना, देवो याति भुवनानि पश्यन्। ॐ सूर्याय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥ ३३.४३

॥ यज्ञोपवीतधारण ॥

**ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं, प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुंच शुभ्रं, यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥**

पार० गृ० सू० २.२.११

॥ जीर्णोपवीत विसर्जन ॥

**ॐ एतावद्दिन पर्यन्तं, ब्रह्म त्वं धारितं मया।
जीर्णत्वात्ते परित्यागो, गच्छ सूत्र यथासुखम् ॥**

॥ पंचगव्यपान ॥

शिक्षण और प्रेरणा- पंचगव्य का पान पिछले जीवन में हुई भूलों के प्रायश्चित्त के लिए कराया जाता है। मैल हटे तो रंग चढ़े, दोषों की स्वीकारोक्ति, उनसे सम्बन्ध विच्छेद, जो प्रवृत्तियाँ इस ओर ले जाती हैं, उनका नियमन, भूलों से हुई हानियों को पूरा करने का साहस भरा शुभारम्भ-यह सब मिलकर प्रायश्चित्त कर्म पूरे होते हैं। प्रायश्चित्त से शुद्ध चित्त पर देव अनुग्रह सहज ही बरस पड़ते हैं।

क्रिया और भावना- पंचगव्य की कटोरी बायें हाथ में लें और दाहिने हाथ की मध्यमा अँगुली से मन्त्रोच्चार के साथ उसे घोलें-चलाएँ । भावना करें कि इन गौ द्रव्यों को दिव्य चेतना से अभिमन्त्रित कर रहे हैं ।

ॐ गोमूत्रं गोमयं क्षीरं, दधि सर्पि: कुशोदकम् ।
निर्दिष्टं पंचगव्यं, तु पवित्रं मुनिपुंगवै: ॥

कटोरी दाहिने हाथ में लेकर मन्त्रोच्चार के साथ पान करें । भावना करें कि दिव्य संस्कारों से पापों की जड़ पर प्रहार और पुण्यों को उभारने का क्रम आरम्भ हो रहा है, जो निष्ठापूर्वक चलाया जाता रहेगा ।

ॐ यत्त्वगस्थिगतंपापं, देहे तिष्ठति मामके ।
प्राशनात्पंचगव्यस्य, दहत्वग्निरिवेन्धनम् ॥

॥ मेखला-कोपीन धारण ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- अभिषिंचन के उपरान्त वानप्रस्थ लेने वालों के हाथों में धर्मदण्ड और मेखला-कोपीन का उत्तरदायित्व सौंपा जाता है । कोपीन धारण करने का अर्थ है- इन्द्रिय संयम बरतना । वानप्रस्थी को सन्तानोत्पादन बन्द कर देना चाहिए । अब तक की उत्पन्न हुई सन्तान का ही पालन-पोषण, विकास-निर्माण ठीक तरह हो जाए-यही बहुत है । पचास वर्ष की आयु के बाद बच्चे पैदा करते रहना, तो एक लज्जा की बात है, इससे कठिनाई बढ़ती है । बच्चे दुबले पैदा होते हैं, अनाथ रह जाते हैं तथा उनकी जिम्मेदारी मरते समय तक बनी रहने से समाजसेवा, परमार्थ साधना जैसे जीवन को सार्थक बनाने वाले प्रयोजनों के लिए अवसर ही नहीं मिलता । जिसके पीछे जितनी कम घरेलू जिम्मेदारी है, वह उतनी ही अच्छी तरह वृद्धावस्था का सदुपयोग कर सकेगा । फिर जिसने वानप्रस्थ धारण कर लिया, तो उसके लिए सन्तानोत्पादन एक विसंगति ही है, अत: उसे इस प्रकार की मर्यादाओं का पालन करने के लिए इन्द्रिय संयम का मार्ग अपनाना पड़ता है, उसी भावना का प्रतिनिधित्व कोपीन करती है, वानप्रस्थी उसे धारण करता है

कमर में रस्सी बाँधना कोपीन धारण के लिए तो आवश्यक है ही, साथ ही वह सैनिकों की तरह कमर कसकर, पेटी बाँधकर परमार्थ के मोर्चे पर आगे बढ़ने की मानसिक स्थिति का भी प्रतीक है । कमर कसना मुस्तैदी, सतर्कता,

तत्परता, निरालस्यता जैसी शारीरिक एवं मानसिक स्थिति बनाये रखने का प्रतीक है। निर्माण के दो मोर्चों पर एक साथ लड़ने वाले सैनिक को जिस सतर्कता से कार्य करना होता है, वैसा ही उसे भी करना चाहिए।

क्रिया और भावना- मेखला-कोपीन हाथों के सम्पुट में ली जाए। मन्त्रोच्चार के साथ भावना की जाए कि तत्परता, सक्रियता तथा संयमशीलता का वरण किया जा रहा है। मन्त्र पूरा होने पर उसे कमर में बाँध लें।

ॐ इयं दुरुक्तं परिबाधमाना, वर्णं पवित्रं पुनतीमऽआगात्।
प्राणापानाभ्यां बलमादधाना, स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम्॥

- पार० गृ० सू० २.२.८

॥ धर्मदण्डधारण ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- वानप्रस्थी को हाथ में लाठी दी जाती है। गुरुकुलों में विद्याध्ययन करने वालों को वन्य प्रदेश की आवश्यकता के अनुरूप लाठी सुविधा की दृष्टि से आवश्यक भी होती थी। इसके अतिरिक्त यह धर्मदण्ड इस मन्तव्य का भी प्रतीक है कि राजा जिस प्रकार राज्याभिषेक के समय शासन सत्ता का प्रतीक राज-दण्ड छोटा लकड़ी का डण्डा हाथ में विधिवत् समारोह के साथ ग्रहण करता है, उसी प्रकार वानप्रस्थी संसार में धर्म व्यवस्था कायम रखने की अपनी जिम्मेदारी को हर घड़ी स्मरण रखे रहे और तदनुरूप अपना जीवनक्रम बनाये रहे, इसलिए भी यह धर्मदण्ड है।

क्रिया और भावना- दण्ड दोनों हाथों से पकड़ें। भूमि के समानान्तर हृदय की सीध में स्थिर करें। मन्त्र पूरा होने पर मस्तक से लगाएँ और दाहिनी ओर रख लें। भावना करें कि धर्म चेतना को जीवन्त, व्यवस्थित एवं अनुशासित रखने का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व स्वीकार किया जा रहा है। इसके साथ दिव्य शक्तियाँ ब्राह्मणत्व और ब्रह्मवर्चस प्रदान कर रही हैं।

ॐ यो मे दण्डः परापतद्, वैहायसोऽधिभूम्याम्।
तमहं पुनराददऽआयुषे, ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय॥

- पा० गृ० सू० २.२.१२

॥ पीतवस्त्रधारण ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- पीत-वस्त्र वीरों, त्यागियों और परमार्थ परायणों का बाना कहा गया है । अज्ञान, अभाव एवं अनीति से संघर्ष करने के लिए विचारशीलों को संत, सुधारक और शहीदों की भूमिका निभाने की तैयारी करनी पड़ती है । संस्कृति की प्रतिष्ठा, उसके सनातन गौरव की रक्षा के लिए यही रंग प्रेरणा देता रहा है ।

क्रिया और भावना- दोनों हाथों की हथेलियाँ सीधी करके दुपट्टा लें । मन्त्र के साथ ध्यान करें कि सत्शक्तियों से पवित्रता, शौर्य और त्याग का संस्कार प्राप्त कर रहे हैं । मन्त्र पूरा होने पर दुपट्टा कन्धों पर धारण कर लें ।

ॐ सूर्यो मे चक्षुर्वातः, प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् । अस्तृतो नामाहमयमस्मि स, आत्मानं नि दधे द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय ॥ - अथर्व० ५.९.७

॥ ऋषिपूजन ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- सांस्कृतिक चेतना को जाग्रत्-जीवन्त रखने, जीवन के महत्त्वपूर्ण सिद्धांतों की शोध और उनका लाभ जन-जन तक पहुँचाने, ईश्वरीय उद्देश्यों के लिए समर्पित पवित्र और तेजस्वी व्यक्तित्व के धनी उन महामानवों की परम्परा का अनुगमन, आत्मकल्याण-लोकमंगल दोनों दृष्टियों से अनिवार्य है, उनके अनुगमन के शुभारम्भ के रूप में पूजन किया जाता है ।

क्रिया और भावना- हाथ में पुष्प-अक्षत लेकर ऋषियों का ध्यान कर मंत्रोच्चारण के साथ भावना करें कि हम भी उन्हीं की परिपाटी के व्यक्ति हैं, उनके गौरव के अनुरूप बनने के लिए अपने पुरुषार्थ के साथ उनके अनुग्रह को जोड़ रहे हैं, उसे पाकर अन्याय उन्मूलन के मोर्चे को सुदृढ़ बनायेंगे ।

ॐ इमावेव गोतमभरद्वाजा, वयमेव गोतमोऽयं भरद्वाजऽ, इमावेव विश्वामित्रजमदग्नी, अयमेव विश्वामित्रोऽयं जमदग्निः, इमावेव वसिष्ठकश्यपौ, अयमेव वसिष्ठोऽयं कश्यपो वागेवात्रिर्वाचाह्यन्नमद्यतेऽत्तिर्ह वै, नामैतद्यदत्रिरिति सर्वस्यात्ता भवति, सर्वमस्यान्नं भवति य एवं वेद ॥ - बृह० उ० २.२.४

ॐ सप्तऋषीनभ्यावर्ते। ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ।ॐ ऋषिभ्यो नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि । - अथर्व० १०.५.३९

॥ वेद पूजन ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- वेद कहते हैं ज्ञान को । अज्ञान हजार दुःखों का कारण है । ज्ञान-सद्विचार की स्थापना से ही समाज में सुख-सद्गति सम्भव है । स्वयं ज्ञान की आराधना करने तथा जन-जन को उसमें लगाने का भाव वेद पूजन के साथ रहता है ।

क्रिया और भावना- पूजन सामग्री हाथ में लें । मन्त्रोच्चार के साथ भावना करें कि ज्ञान की सनातन धारा के वर्तमान युग के अनुरूप प्रवाह को अपने लिए- सारे समाज के लिए- पतित पावनी माँ गंगा की तरह प्रवाहित करने के लिए अपनी भूमिका निर्धारित की जा रही है । अज्ञान का निवारण इसी से सम्भव होगा ।

ॐ वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः । देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित । मनसस्पत ऽ इमं देव यज्ञ ᳬ स्वाहा वाते धाः ॥ ॐ वेदपुरुषाय नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि ॥ २.२१

॥ यज्ञपुरुष पूजन ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- यज्ञ देवत्व का आधार है । इसी से देव शक्तियाँ कल्याणकारी प्रवृत्तियाँ पुष्ट होती हैं । यज्ञीय भावना के आधार पर ही व्यक्ति और समाज अभावों से मुक्त होगा, अन्यथा कुबेर जैसी सम्पदा प्राप्त कर लेने के बाद भी शोषण, उत्पीड़न और कंगाली का वातावरण बना रहेगा । यज्ञीय भावना, यज्ञीय दर्शन और यज्ञीय जीवन क्रम अपनाने-फैलाने का संकल्प यज्ञपुरुष पूजन के साथ जुड़ा रहेगा ।

क्रिया और भावना- पूजन सामग्री हाथ में लें । मन्त्र के साथ भावना करें कि धर्म और देवत्व के प्रमुख आधार को अंगीकार करते हुए, उसे पुष्ट और प्रभावशाली बनाया जा रहा है ।

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा:, तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त, यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥
ॐ यज्ञपुरुषायनमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि।

॥ व्रत धारण ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- महानता की मंजिल पर मनुष्य एकाएक नहीं पहुँच जाता, उसके लिए एक-एक करके सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। श्रेष्ठ प्रवृत्तियाँ, आचरण एवं स्वभाव बनाने के लिए व्रतशील होकर चलना पड़ता है। छोटे ही सही, व्रत लेने, उन्हें पूरा करने, फिर नये व्रत लेने का क्रम विकास के लिए अनिवार्य है। व्रतशीलता के लिए कुछ देवशक्तियों को साक्षी करके व्रतशील बनने की घोषणा की जाती है। उन्हें अपना प्रेरक, निरीक्षक और नियंत्रक बनाना पड़ता है। सम्बन्धित देवशक्तियों की प्रेरणाएँ इस प्रकार हैं-

अग्निदेव- ऊर्जा के प्रतीक। ऊर्जा, स्फुरणा, गर्मी, प्रकाश से भरे-पूरे रहने, अन्यों तक उसे फैलाने, दूसरों को अपना जैसा बनाने, ऊर्ध्व-गामी-आदर्शनिष्ठ रहने, यज्ञीय चेतना के वाहन बनने की प्रेरणा के स्रोत।

वायुदेव- स्वयं प्राणरूप, किन्तु बिना अहंकार सबके पास स्वयं पहुँचते हैं। कोई स्थान खाली नहीं छोड़ते, निरन्तर गतिशील। सुगन्धित और मेघों जैसे परोपकारी तत्त्वों के विस्तारक सहायक।

सूर्यदेव- जीवनी शक्ति के निर्झर, तमोनिवारक, जागृति के प्रतीक, पृथ्वी को सन्तुलन और प्राण- अनुदान देने वाले, स्वयं प्रकाशित, सविता देवता।

चन्द्रदेव- स्वप्रकाशित नहीं, पर सूर्य का ताप स्वयं सहन करके निर्मल प्रकाश जगती पर फैलाने वाले, तप अपने हिस्से में-उपलब्धियाँ सब के लिए।

इन्द्रदेव- व्रतपति देवों में प्रमुख, देव प्रवृत्तियों-शक्तियों को संगठित-सशक्त बनाये रखने के लिए सतत जागरूक, हजार आँखों से सतर्क रहने की प्रेरणा देने वाले।

क्रिया और भावना- साधक मन्त्रोच्चार के समय दोनों हाथ ऊपर उठाकर रखें। भावना करें कि हाथ उठाकर व्रतशीलता की साहसिक घोषणा कर रहे हैं, साथ ही सत्प्रवृत्तियों को अपना हाथ थमा रहे हैं। वे हमें मार्गदर्शक

की तरह प्रेरणा एवं सहारा देती रहेंगी । एक देवता का मन्त्र पूरा होने पर हाथ जोड़कर नमस्कार करें, फिर पहले जैसी मुद्रा बना लें ।

ॐ अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम् । तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि । ॐ अग्नये नमः ॥१ ॥

ॐ वायो व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम् । तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि । ॐ वायवे नमः ॥२ ॥

ॐ सूर्य व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम् । तेनर्ध्यासमिदमहम् , अनृतात्सत्यमुपैमि । ॐ सूर्याय नमः ॥३ ॥

ॐ चन्द्र व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम् । तेनर्ध्यासमिदमहम् , अनृतात्सत्यमुपैमि । ॐ चन्द्राय नमः ॥४ ॥

ॐ व्रतानां व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम् । तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि । ॐ इन्द्राय नमः ॥५ ॥

- मं० ब्रा० १.६.९.१३

॥ अभिषेक ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- अभिषेक कृत्य ठीक उसी तरह का है, जैसा कि किसी राजा को राजगद्दी देते समय राज्याभिषेक किया जाता है । राजा का, दरबारी लोगों के संरक्षण में राज्याभिषेक होता है। प्रजाजनों और धर्मसंरक्षकों के द्वारा वानप्रस्थ का धर्माभिषेक किया जाता है । राजा अपनी प्रजा की सुरक्षा एवं साधन-व्यवस्था के भौतिक उपकरण जुटाता है, इसलिए उसे प्रजापालक कहकर सम्मानित किया जाता है। वानप्रस्थ प्रजा की आत्मिक सुरक्षा, सुव्यवस्था एवं सुख-शान्ति के उपकरण जुटाता है, उसे सन्मार्ग पर चलने की सद्भावना से ओत-प्रोत रहने की सत्प्रेरणाएँ प्रदान करता रहता है । यह अनुदान सभी भौतिक साधनों से अधिक महत्त्वपूर्ण है । राजा केवल एक सीमित प्रदेश में रहने वाली प्रजा की भौतिक सुरक्षा के लिए ही उत्तरदायी है, पर वानप्रस्थ के कन्धों पर संसार के समस्त मानवों-प्राणियों को न्याय एवं धर्म का प्रकाश उपलब्ध कराना है । भौतिक सुरक्षा की तुलना में आत्मिक प्रगति का मूल्य-महत्त्व असंख्य गुना बड़ा है । इसी प्रकार एक सीमित क्षेत्र में रहने वाली प्रजा के साज-सँभाल की तुलना में समस्त विश्व

के प्राणियों को सत्प्रेरणा देना कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है । अतएव राजा की तुलना में धर्म-सेवी महात्मा का, वानप्रस्थ का पद तथा गौरव भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, उसको अपना उत्तरदायित्व पूरी सावधानी से, जिम्मेदारी से निभाना है - इसी भावना को हृदयंगम कराने के लिए यह अभिषेक क्रिया की जाती है । समाज के सम्भ्रान्त, धर्मसेवी एवं विचारशील २४ व्यक्ति, जो यह अभिषेक करने खड़े हुए हैं, समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं । जल से वानप्रस्थी का अभिषिंचन करते हुए वे लोग समाज की ओर से नई भावनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं ।

क्रिया और भावना- निर्धारित मात्रा में कन्याएँ या संस्कारवान् व्यक्ति कलश लेकर मन्त्रोच्चार के साथ साधकों का अभिषेक करें । भावना करें कि ईश्वरीय ऋषिकल्प जीवन के अनुरूप स्थापनाओं, बीजरूप प्रवृत्तियों को सींचा जा रहा है, समय पाकर वे फूलें- फलेंगी । जीवन के श्रेष्ठतम रस में भागीदारी के लिए परमात्म सत्ता से प्रार्थना की जा रही है, अनुदानों को धारण किया जा रहा है ।

ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवः , ता न ऽऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे। ॐ यो वः शिवतमो रसः, तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः। ॐ तस्मा अरंगमाम वो, यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥ ३६.१४-१६

॥ *विशेष आहुति* ॥

अभिषेक के बाद अग्निस्थापना करके विधिवत् यज्ञ किया जाए । स्विष्टकृत के पूर्व सात विशेष आहुतियाँ दी जाएँ ।

भावना की जाए कि युग देवता एक विशाल यज्ञ चला रहे हैं । उस यज्ञ में समिधा, द्रव्य बनकर हम भी सम्मिलित हो रहे हैं, उनसे जुड़कर हमारा जीवन धन्य हो रहा है ।

ॐ ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा, ब्रह्मणा स्वरवो मिताः ।
अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो, ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः स्वाहा ।
इदं अग्नये इदं न मम ॥ - अथर्व० १९.४२.१

॥ प्रव्रज्या ॥

दिशा एवं प्रेरणा- परिव्राजक का काम है चलते रहना। रुके नहीं, लक्ष्य की ओर बराबर चलता रहे, एक सीमा में न बँधे, जन-जन तक अपने अपनत्व और पुरुषार्थ को फैलाए। जो परिव्राजक लोकमंगल के लिए संकीर्णता के सीमा बन्धन तोड़कर गतिशील नहीं होता, सुख-सुविधा छोड़कर तपस्वी जीवन नहीं अपनाता, वह पाप का भागीदार होता है।

क्रिया और भावना- यज्ञ की चार परिक्रमाएँ **चरैवेति** मन्त्रों के साथ करें। भावना करें कि हम सच्चे परिव्राजक बनकर गतिशीलों को मिलने वाले दिव्य अनुदानों के उपयुक्त सत्पात्र बन रहे हैं।

(१) ॐ नाना श्रान्ताय श्रीरस्ति, इति रोहित शुश्रुम।पापो नृषद्वरो जन, इन्द्र इच्चरतः सखा। चरैवेति चरैवेति॥

(२) पुष्पिण्यौ चरतो जंघे, भूष्णुरात्मा फलग्रहिः। शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः, श्रमेण प्रपथे हताः। चरैवेति चरैवेति॥

(३) आस्ते भग आसीनस्य, ऊर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः। शेते निपद्यमानस्य, चराति चरतो भगः। चरैवेति चरैवेति॥

(४) कलिः शयानो भवति, संजिहानस्तु द्वापरः। उत्तिष्ठँस्त्रेताभवति, कृतं संपद्यते चरन्। चरैवेति चरैवेति॥

(५) चरन् वै मधु विन्दति, चरन् स्वादुमुदुम्बरम्। सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं, यो न तन्द्रयते चरन्। चरैवेति चरैवेति।

- ऐत० ब्रा० ७.१५

इसके बाद यज्ञ समापन पूर्णाहुति आदि उपचार कराये जाएँ। अन्त में मन्त्रों के साथ पुष्प, अक्षत की वर्षा करें, शुभ कामना-आशीर्वाद आदि दें।

* * *

॥ अन्त्येष्टि संस्कार ॥

संस्कार प्रयोजन- भारतीय संस्कृति यज्ञीय आदर्शों की संस्कृति है। जिन्दगी जीने का सही तरीका यह है कि उसे यज्ञीय आदर्शों के अनुरूप जिया जाए। उसका जब अवसान हो, तो भी उसे यज्ञ भगवान् की परम-पवित्र गोदी में ही सुला दिया जाए। यह उचित है। जीवन की समाप्ति यज्ञ आयोजन में ही होनी चाहिए। यों स्थूल रूप से अग्नि जलाकर उसमें कोई वस्तु होमना यज्ञ या अग्निहोत्र कहलाता है, पर उसका तात्त्विक अभिप्राय परमार्थ प्रयोजन से ही है। जिस प्रकार मेवा, मिष्टान्न, घृत, ओषधि आदि कीमती एवं आवश्यक वस्तुओं को वायु शुद्धि के लिए बिखेर दिया जाता है, उसी प्रकार मानव वैभव की समस्त विभूतियों को विश्वमंगल के लिए बिखेरते रहा जाए, यही तात्त्विक यज्ञ है। अग्निहोत्र के द्वारा होताओं को यही भावना हृदयंगम करनी पड़ती है। स्वार्थपरता की पाशविकता से छुटकारा पाकर परमार्थ प्रवृत्तियों को विकसित करने का उत्साह जाग्रत् करना पड़ता है।

मनुष्य शरीर में से प्राण निकल जाने पर उसका क्या किया जाए ? इसका उत्तर देर तक सोचने के बाद ऋषियों को इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा कि नर-तन का प्रयोजन किसी के लिए उत्सर्ग होने में सिद्ध होता है। इसका एक बृहत् प्रदर्शन करते हुए मृत शरीर की अन्त्येष्टि की जाए। सभी स्वजन-सम्बन्धी, मित्र-परिचित जो अन्तिम विदाई देने आएँ, उन्हें इस जीवनोद्देश्य को समझने का अधिक स्पष्ट अवसर मिले, इसलिए यज्ञ का एक विशाल आयोजन करते हुए, उसी में मृतक का शरीर होम दिया जाता है। जिन्दगी की सारी रीति-नीति, यज्ञदर्शन से ही प्रभावित रहती है, इसीलिए उसका अवसान भी उस महान् सत्य के साथ सम्बद्ध कर दिया जाए, तो यह उचित ही होगा। मृतक के स्वजनों को शोक होना स्वाभाविक है। इस शोक प्रवाह को यज्ञ आयोजन की व्यवस्था में मोड़ दिया जाए और तत्सम्बन्धित छोटे-बड़े कर्मकाण्डों में लगा दिया जाए, तो उनका चित्त बहलता है और शोक-सन्ताप को हलका करने का अवसर मिलता है। संस्कार से सम्बन्धित प्रेरणाएँ, जीवन के उपयोगी सिद्धान्तों को हृदयंगम करने में सहयोगी सिद्ध होती हैं, ऐसे ही अनेक प्रयोजन अन्त्येष्टि के हैं।

आजकल लोग मुर्दे को ऐसे ही लकड़ियों के ढेर के बीच पटककर जला देते हैं। यह अव्यवस्था मृतक के प्रति उपेक्षा एवं असम्मान दिखाने जैसी है, इस अवसर पर उतावली या उपेक्षा शोभा नहीं देती। उचित यही है कि अन्त्येष्टि यज्ञ को उसी प्रेम और सम्मान के साथ सम्पन्न किया जाए। इस संस्कार का हर कार्य ठीक ढंग से, ठीक व्यवस्था एवं सावधानी के साथ करना चाहिए, जिसमें कि स्वजनों का प्रेम और सम्मान टपकता हो।

पूर्व व्यवस्था- अन्त्येष्टि संस्कार के समय शोक का वातावरण होता है। अधिकांश व्यक्ति ठीक प्रकार सोचने-करने की स्थिति में नहीं होते, इसलिए व्यवस्था पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। सन्तुलित बुद्धि के अनुभवी व्यक्तियों को इसके लिए सहयोगी के रूप में नियुक्त कर लेना चाहिए। व्यवस्था के सूत्र इस प्रकार हैं-

* मृतक के लिए नये वस्त्र, मृतक शय्या (ठठरी), उस पर बिछाने-उढ़ाने के लिए कुश एवं वस्त्र (मोटक) तैयार रखें।

* मृतक शय्या की सज्जा के लिए पुष्प आदि उपलब्ध कर लें।

* पिण्डदान के लिए जौ का आटा एक पाव एवं जौ, तिल, चावल आदि मिलाकर तैयार कर लें। यदि जौ का आटा न मिले, तो गेहूँ के आटे में जौ मिलाकर गूँध लिया जाता है।

* कई स्थानों पर संस्कार के लिए अग्नि घर से ले जाने का प्रचलन होता है। यदि ऐसा है, तो उसकी व्यवस्था कर ली जाए, अन्यथा श्मशान घाट पर अग्नि देने अथवा मन्त्रों के साथ माचिस से अग्नि तैयार करने का क्रम बनाया जा सकता है।

* पूजन की थाली, रोली, अक्षत, पुष्प, अगरबत्ती, माचिस आदि उपलब्ध कर लें।

* सुगन्धित हवन सामग्री, घी, सुगन्धित समिधाएँ, चन्दन, अगर-तगर, सूखी तुलसी आदि समयानुकूल उचित मात्रा में एकत्रित कर लें।

* यदि वर्षा का मौसम हो, तो अग्नि प्रज्वलित करने के लिए सूखा फूस, पिसी हुई राल, बूरा आदि पर्याप्त मात्रा में रख लेने चाहिए।

* पूर्णाहुति (कपाल-क्रिया) के लिए नारियल का गोला छेद करके घी डालकर तैयार रखें।

* वसोर्धारा आदि घृत की आहुति के लिए एक लम्बे बाँस आदि में लोटा या अन्य कोई ऐसा पात्र बाँधकर तैयार कर लिया जाए, जिससे घी की आहुति दी जा सके।

क्रम व्यवस्था- अन्त्येष्टि संस्कार भी अन्य संस्कारों जैसा दिखावा बनकर रह गया है। इसे भी संस्कार की गरिमा दी जानी चाहिए। मृतात्मा की सद्गति के लिए किये जाने वाले कर्मकाण्ड के समय, उसे कराने वाले पुरोहित, करने वाले सम्बन्धी तथा उपस्थित हितैषियों आदि सभी का भावनात्मक एकीकरण किया जाना आवश्यक होता है।

इस कर्मकाण्ड के समय संचालक को विशेष विवेकशीलता तथा सन्तुलित वास्तविकता का प्रमाण देना होता है। मृत्यु के साथ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण दर्शन एवं प्रेरणाएँ जुड़ी हैं; किन्तु शोक के वातावरण में केवल आदर्शवादिता के भाषण बेतुके लगते हैं, इसलिए हर महत्त्वपूर्ण शिक्षण संवेदनाओं के साथ जोड़कर सन्तुलित शब्दों में किया जाना चाहिए।

संस्कार के दो वर्ग किये जा सकते हैं-(१) घर पर और मार्ग में, (२) श्मशान घाट पर किये जाने वाले संस्कार। पूर्व व्यवस्था के संकेतों के अनुसार सारी व्यवस्था घर पर ही जुटा लेनी चाहिए। घर के अन्दर मृतक को नहला-धुलाकर, वस्त्र पहनाकर तैयार करने का क्रम तथा बाहर शय्या (ठठरी) तैयार करने, आवश्यक सामग्री जुटाने का क्रम एक साथ चालू किया जा सकता है। अन्दर शव संस्कार कराके, संकल्प, पिण्डदान करके शव बाहर लेकर शय्या (ठठरी) पर रखा जाता है, वहाँ प्राथमिक पुष्पांजलि देकर श्मशान यात्रा आरम्भ कर दी जाती है।

॥ शव संस्कार ॥

दिशा एवं प्रेरणा- भारतीय संस्कृति, देव संस्कृति जीवन के अनन्त प्रवाह को मान्यता देती है। मृत्यु जीवन को छीन लेने वाली भयावनी वस्तु नहीं, जीवन का जीर्णोद्धार करने वाली हितकारी प्रक्रिया मानी जाती है। जब आत्मा महत्-तत्त्व की ओर बढ़ गई, तो शरीरगत पंचतत्त्वों को भी पंच महाभूतों में परिवर्तित करा देते हैं। जीवात्मा को सद्गति देने के साथ कायागत पंचतत्त्वों को पंच महाभूतों में मिलाने के लिए यज्ञीय परिपाटी अपनाई जाती है। इसलिए शव को पवित्र किया जाता है।

शोक इस पुण्य प्रक्रिया में बाधक बनता है । दुःख स्वाभाविक है । दुःख उसे होता है, जिसे मृतात्मा से स्नेह हो, उस स्नेह को जीवन्त रखना चाहिए, परन्तु उसे शोकपरक बनाने की अपेक्षा मृतात्मा की सद्गति को महत्त्व देते हुए निर्धारित कर्मकाण्ड में भावनात्मक योग सभी को देना चाहिए ।सभी का ध्यान आकर्षित करके, संस्कार के अनुरूप वातावरण बनाकर क्रम आरम्भ किया जाए । प्रथा के अनुसार कहीं पर घर में ही स्नान कराके ले जाते हैं कहीं पर नदी समीप हो, तो वहाँ स्नान कराते हैं, घर पर स्नान कराने में यह लाभ है कि स्वच्छ वस्त्र भी वहाँ आसानी से पहनाये जा सकते हैं ।

क्रिया और भावना- घर में भूमि धोकर गोबर से लीपकर शुद्ध करके, इस पर स्वस्तिक आदि लिखकर तैयार रखें । शव को शुद्ध जल, गंगाजल से स्नान कराकर या गीले कपड़ों से पोंछकर, शुद्ध वस्त्र पहनाकर उस स्थान पर लिटाएँ । मृतक कर्म करने वाले पवित्र जल लेकर शव पर सिंचन करें । भावना करें कि शरीरगत पंचभूतों को यज्ञ के उपयुक्त बना रहे हैं । भूल से इनका उपयोग गलत कार्यों में हुआ, तो शरीर यज्ञ के पूर्व उन कुसंस्कारों को दूर कर रहे हैं । 'ॐ आपोहिष्ठा' इत्यादि मन्त्र बोलकर शव स्नान कराएँ ।

अब चन्दन एवं पुष्पादि से शव को सजाएँ । भावना करें कि पंचभूतों को ऐसा संस्कार दे रहे हैं , जो भविष्य में किसी का शरीर बने, तो उसके आदर्श जीवन में सहायक सिद्ध हों ।यह मन्त्र बोलते हुए शव को सजाएँ -

ॐ यमाय सोमं सुनुत, यमाय जुहुता हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छति, अग्निदूतो अरंकृतः ।।- ऋ० १०.१४.१३

इसके बाद अन्त्येष्टि संस्कार करने वाला दक्षिण दिशा को मुख करके बैठे । पवित्री धारण करें फिर हाथ में यव-अक्षत, पुष्प, जल,कुश लेकर संस्कार का संकल्प करें-

.... नामाऽहं (मृतक का नाम) प्रेतस्य प्रेतत्त्व - निवृत्त्या उत्तम लोकप्राप्त्यर्थं और्ध्वदेहिकं करिष्ये ।

संकल्प के बाद प्रथम पिण्डदान करें (मन्त्र आगे है) फिर शव उठाकर बाहर शव शय्या (ठठरी) तक लाएँ । भावना करें कि यह यात्रा सभी को करनी है, इसलिए अपने कर्मों को , करने योग्य कर्मों की तुलना में तौलते रहें ।मन्त्र इस प्रकार है -

ॐ वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्त शरीरम्।
ॐ क्रतो स्मर कृत थं स्मर, क्रतो स्मर कृत थं स्मर ॥ईश० १७

शय्या पर शव लिटाने के बाद उसे बाँधें, सज्जित करें और दूसरा पिण्ड अर्पित करें ।अब सभी पुष्पांजलि दें । हाथ में पुष्प लेकर स्वस्तिवाचन बोलें । भावना करें- मृतक की सद्गति के लिए तथा स्वयं सद्गति की पात्रता पाने योग्य कर्म करने की प्रबल आकांक्षा व्यक्त करते हुए सूक्ष्म जगत् की दिव्य शक्ति का सहयोग भरा वातावरण निर्मित कर रहे हैं । स्वस्तिवाचन के बाद पुनः **ॐ क्रतो स्मर..** मन्त्र बोलते हुए पुष्प अर्पित करें । तत्पश्चात् **ॐ अग्ने नय सुपथा राये..**मन्त्र बोलते हुए शव यात्रा प्रारम्भ की जाए ।

॥ पिण्डदान ॥

दिशा एवं प्रेरणा- अन्त्येष्टि संस्कार के साथ पाँच पिण्डदान किये जाते हैं, यह एक कठोर सत्य को मान्यता देना है । जीव चेतना शरीर से बँधी नहीं है, उसे सन्तुष्ट करने के लिए शरीरगत संकीर्ण मोह से ऊपर उठना आवश्यक है । जीवात्मा की शान्ति के लिए व्यापक जीव चेतना को तुष्ट करने के लिए मृतक के हिस्से के साधनों को अर्पित किया जाता है । पिण्डदान इसी महान् परिपाटी के निर्वाह की प्रतीकात्मक प्रक्रिया है ।

क्रिया और भावना- एक-एक पिण्ड दाहिने हाथ में लिया जाए । उस पर पुष्प, कुश, जल, यव, तिलाक्षत डालकर मन्त्र बोला जाए । मन्त्र समाप्ति पर अँगूठे की ओर से (पितृ तीर्थ मुद्रा से) पिण्ड निर्धारित स्थान पर चढ़ाया जाए । भावना करें कि जीवात्मा का हित-सन्तोष शरीर तक ही सीमित नहीं, इसके बाद भी है, उसी व्यापक हित और सन्तोष के लिए प्रयास किया जा रहा है ।

प्रथम पिण्ड घर के अन्दर शव संस्कार करके संकल्प के बाद दिया जाए । पिण्ड पेडू (कटि प्रदेश) पर रखा जाए ।

.....नामाऽहं...(मृतक नाम) .....मृतिस्थाने शवनिमित्तको ब्रह्मदैवतो वा, एष ते पिण्डो, मया दीयते, तवोपतिष्ठताम् ।

दूसरा पिण्ड बाहर शव शय्या (ठठरी) पर शव स्थापना के बाद दिया जाए । पिण्ड पेट पर रखा जाए ।

.....नामाऽहं....(मृतक नाम) ....द्वारदेशे, पान्थ निमित्तको, विष्णुदैवतो वा, एष ते पिण्डो, मया दीयते, तवोपतिष्ठताम्।

तीसरा पिण्ड मार्ग में चत्वर (चौराहा) स्थल पर दिया जाए। पिण्ड पेट और वक्ष की सन्धि पर रखा जाए।

....नामाऽहं........(मृतकनाम) ....चत्वरस्थाने खेचर-निमित्तक एष ते पिण्डो, मया दीयते, तवोपतिष्ठताम्।

चौथा पिण्ड श्मशान पर शव रखकर छाती परअर्पित करें।

.....नामाऽहं...(मृतकनाम) श्मशानस्थाने विश्रान्ति-निमित्तको, भूतनाम्ना रुद्रदैवतो वा एष ते पिण्डो मया दीयते तवोपतिष्ठताम्।

पाँचवाँ पिण्ड चितारोहण के बाद किया जाए। पिण्ड सिर पर रखें।

....नामाऽहं....(मृतकनाम) चितास्थाने वायु निमित्तको यम दैवतो वा एष ते पिण्डो मया दीयते तवोपतिष्ठताम्॥

॥ भूमिसंस्कार ॥

दिशा एवं प्रेरणा- श्मशान घाट पर पहुँचकर शव उपयुक्त स्थान पर रखें और चौथा पिण्ड दें, साथ ही चिता सजाने के लिए स्थान झाड़-बुहार कर साफ करें, जल से सिंचन करें, गोबर से लीपें, उसे यज्ञ वेदी की तरह स्वच्छ और सुरुचिपूर्ण बनाएँ। एक टोली पहले से पहुँचकर कार्य सम्पन्न करके रखे, चिता सजाने के पूर्व मन्त्रों से उपचार किया जाए।धरती माता के ऋण को याद रखा जाए। उसी की गोद से उठे थे, उसी में सोना है, उसे बदनाम करने वाले आचरण हमसे न बन पड़ें। धरती माँ से श्रेष्ठता के संस्कार माँगते रहें। श्मशान भूमि-जो जीवन को नया मोड़ देती है, जहाँ सिद्धियाँ निवास करती हैं, उसे प्रणाम किया जाए, पवित्र बनाकर प्रयुक्त किया जाए।

क्रिया और भावना- तैयार भूमि के पास अन्त्येष्टि करने वाला व्यक्ति जाए, उसकी परिक्रमा हाथ जोड़कर करे तथा उसे नमन करे। भावना करे कि यह सिद्धिदायिनी भूमि मृतात्मा को वांछित उपलब्धियाँ देने वाली सिद्ध हो। मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ देवस्य त्वा सवितुः, प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां, पूष्णो हस्ताभ्याम्। सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रिये, दधामि बृहस्पतेष्ट्वा, साम्राज्ये नाभिषिंचाम्यसौ ॥ -९.३०

भूमि सिंचन - पूजनम् - अब जल पात्र लेकर मन्त्र के साथ कुशाओं से भूमि का सिंचन करें। भावना करें कि इस यज्ञ भूमि को मन्त्र शक्ति से पवित्र किया जा रहा है -

ॐ शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो, मणिवालस्तऽआश्विनाः, श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते, रुद्राय पशुपतये कर्णा, यामाऽअवलिप्ता रौद्रा, नभोरूपाः पार्जन्याः ॥ -२४.३

॥ ॐकारलेखन ॥

अगले मन्त्र के साथ मध्यमा अँगुली से भूमि पर ॐ लिखें, पूजित करें। भावना करें कि भूमि के दिव्य संस्कारों को उभारा बनाया जा रहा है -

ॐ ओमासश्चर्षणीधृतो, विश्वे देवासऽआगत। दाश्वाꣳसो दाशुषः सुतम्। उपयामगृहीतोऽसि, विश्वेभ्यस्त्वा, देवेभ्य ऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ -७.३३

॥ मर्यादाकरण (समिधारोपण) ॥

यज्ञ-कुण्ड या वेदी के चारों ओर मेखलाएँ बनाई जाती हैं, उस आवश्यकता की पूर्ति चार बड़ी-बड़ी लकड़ियाँ चारों दिशाओं में स्थापित करके की जाती है। ये लकड़ियाँ चिता के चारों छोरों पर उसकी सीमा बनाने वाली होनी चाहिए। शेष लकड़ियाँ इन चारों के भीतर ही रखी जाती हैं। दाह क्रिया करने वाला व्यक्ति समिधाओं को स्थापित करे।

पहली समिधा (पूर्व दिशा में)

दिशा एवं प्रेरणा- जीवन चारों दिशाओं में मर्यादित है। व्यक्ति की हर दिशा में मर्यादा है, उसे उसी घेरे में, उसी दायरे में रहना चाहिए। मर्यादाओं का उल्लंघन कर उच्छृंखल नहीं बनना चाहिए। यह निर्देश मृत शरीर में चारों ओर चार समिधाएँ स्थापित करके किया जाता है।पहली मर्यादा धन सम्बन्धी है, धन उसे उपार्जित तो करना चाहिए, पर अनीतिपूर्वक नहीं। साथ ही इतना

अधिक भी नहीं, जिससे समाज में असमानता, ईर्ष्या तथा विलासिता उत्पन्न हो। शरीर रक्षा, कुटुम्ब पालन आदि कार्यों के लिए आजीविका उपार्जन आवश्यक है, पर उसकी उपयोगिता, आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही समझी जाए। ऐसा न हो कि संग्रह का लालच बढ़े और उसे गर्व-गौरव का विषय बना लिया जाए। धनी बनने की इच्छा यदि महत्त्वाकांक्षा का रूप धारण कर ले, तो मनुष्य जीवन जिस प्रयोजन के लिए मिला है, उसके लिए न तो अवकाश मिलेगा, न इच्छा ही रहेगी। इसलिए एक लकड़ी पूर्व दिशा में धन की आकांक्षा सीमित रखने के लिए रखी जाती है।

क्रिया और भावना- मन्त्रोच्चार के साथ पूर्व दिशा में समिधा स्थापित करें। सभी उपस्थित जन भावना करें कि धन-साधनों के उपयोग की मर्यादा स्वीकार करते हैं। मृतक से उस दिशा में कुछ भूलें हुई हों, तो उसके हितैषी के नाते अपने साधनों के एक अंश को सत्कार्य में लगाकर, उसका पुण्य समिधा के साथ स्थापित करते हैं, मृतात्मा की सद्गति की कामना करते हैं। इसका मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो, रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नमऽइषुभ्यो नमऽएभ्यो अस्तु। योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं, द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥

अथर्व० ३.२७.१

दूसरी समिधा (दक्षिण दिशा में)

शिक्षण एवं प्रेरणा- दूसरी समिधा काम सेवन सम्बन्धी मर्यादा का पालन करने की है। वासना की आग ऐसी है, जिसमें भोग का ईंधन जितना ही डाला जायेगा, वह उतनी ही भड़कती जायेगी, इसलिए मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य और आत्मबल तीनों ही दृष्टियों से काम सेवन को जितना अधिक मर्यादित किया जा सके, उतना ही उत्तम है। ब्रह्मचर्य पालन की आवश्यकता व्यक्ति एवं समाज दोनों के लिए है। जीवन रस का अनावश्यक क्षरण करने से व्यक्ति शरीर, मन और आत्मा तीनों से ही दुर्बल बनता है। नारी की शरीर रचना भी अन्य जीव-जन्तुओं की तरह ही है, जो यदाकदा ही काम सेवन के दबाव को सहन कर सकती है। सन्तानोत्पादन में नारी की शक्ति को भारी क्षति पहुँचती है। बढ़ती हुई जनसंख्या, खाद्य संकट, बेकारी

आदि अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ समाज के लिए उत्पन्न करती है। गृहस्थ का आर्थिक ढाँचा भी बढ़ती हुई सन्तान से चरमरा जाता है। इसलिए ब्रह्मचर्य पालन हर दृष्टि से आवश्यक है।

क्रिया और भावना- मन्त्रोच्चार के साथ दक्षिण दिशा में समिधा स्थापित की जाए। सभी भावना करें कि कामवासना की मर्यादा का सिद्धांत अंगीकार करते हैं। मृतक से इस दिशा में कुछ भूलें हुई हों, तो उसके परिजन के नाते, उनके परिष्कार के लिए तपश्चर्यापूर्वक परिष्कार करेंगे। न्यूनतम तीन दिन तक दृष्टि और आचरण की पवित्रता बनाये रखने का तप करते हुए मृतात्मा की सद्गति की प्रार्थना करेंगे। यह पुण्य दूसरी समिधा के साथ स्थापित करते हैं। मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी, रक्षिता पितरऽ इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नमऽइषुभ्यो नमऽएभ्यो अस्तु। योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं, द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।

- अथर्व० ३.२७.२

तीसरी समिधा (पश्चिम दिशा में)

दिशा एवं प्रेरणा- तीसरी समिधा यश-मर्यादा की है। लोक-लाज के कारण बुरे कार्यों से बचे रहने और सत्कर्म करने के फलस्वरूप लोक-सम्मान का सुख मिलने की इच्छा एक सीमा तक उचित है, पर जब यह उच्छृंखल हो उठती है, तो अवांछनीय उपाय सोचकर उच्च पदवी पाने की लिप्सा उठ खड़ी होती है, तब सम्मान के वास्ते अधिकारियों को एक ओर धकेल कर उनका स्थान स्वयं ग्रहण करने की दुरभिसन्धि की जाने लगती है। आज पदलोलुप व्यक्ति इस प्रकार के पारस्परिक संघर्ष में लगे हुए हैं और जिन संस्थाओं के समर्थक होने का दम भरते हैं, उन्हीं को नष्ट करने में प्रवृत्त हैं। भाषा, जाति, सम्प्रदाय आदि की आड़ लेकर तथाकथित नेता लोग अपना व्यक्तिगत-गौरव बढ़ाने के लिए देश के भाग्य-भविष्य के साथ खिलवाड़ करने में लगे हुए हैं। राजपाट लेने के नाम पर इतिहास के पृष्ठों पर मनुष्य की नृशंसता का वीभत्स चित्र देखा जा सकता है। चुनावों में करोड़ों रुपया इसी यश लोलुपता के लिए पानी की तरह बहा दिया जाता है, जो यदि किन्हीं रचनात्मक कार्यों में लगता, तो उसका बहुत ही श्रेष्ठ सत्परिणाम होता। फैशन, शृंगार,

अमीरी के ठाठ-बाट तथा ढोंग बनाकर वाह-वाही लूटने की इच्छा से ढेरों पैसा नष्ट करते हैं। अहंकार का पोषण करने वाले यह सभी प्रपंच व्यक्ति तथा समाज के लिए हानिकारक हैं। अतएव मनीषियों ने यश-कामना को मर्यादित रखने का निर्देश दिया है। तीसरी मर्यादा इसी की है।

क्रिया और भावना- तीसरी समिधा मन्त्रोच्चार करते हुए पश्चिम दिशा में स्थापित करें। सभी जन लोकैषणा को सीमित रखने का महत्त्व स्वीकार करें। भावना करें कि इस दिशा में मृतक से कोई भूलें हुई हों, तो उसके ही हितचिन्तक होने के नाते उसके परिष्कार का प्रयास करेंगे। बिना यश की कामना किये तीन घण्टे जन-जन तक सद्विचार-सत्साहित्य पहुँचायेंगे। उस पुण्य को तीसरी समिधा के साथ स्थापित करते हैं। मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः, पृदाकू रक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नमऽइषुभ्यो नमऽएभ्यो अस्तु। योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं, द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥

- अथर्व० ३.२७.३

चौथी समिधा (उत्तर दिशा में)

दिशा एवं प्रेरणा- चौथी समिधा द्वेष को मर्यादित रखने की है। संसार में विभिन्न प्रवृत्ति के लोग रहते हैं। उनके विचार एवं कार्य अपनी रुचि एवं मान्यता से मेल नहीं खाते, तो बहुधा झगड़े की सूरत बन जाती है। अपने से प्रतिकूल को पसन्द नहीं किया जाता है और उसे नष्ट करने की इच्छा होती है। यह क्रोध ही क्लेश और द्वेष का कारण बनता है। यह मतभिन्नता ही संसार में हो रहे लड़ाई-झगड़ों की जड़ है। असहिष्णुता के कारण छोटी-छोटी बातों पर लोग एक दूसरे की जान के ग्राहक व भयंकर शत्रु बन जाते हैं। इस असहिष्णुता की प्रबलता के कारण लोग दस में से नौ बातों की सहमति, समानता और एकता को नहीं देखते, वरन् जो शेष एक की भिन्नता थी, उसी को आगे रखकर दुर्भाव उत्पन्न करते हैं।

असहिष्णुता को, द्वेष को मर्यादित रखने की मानवीय परम्परा को निबाहने के लिए मनुष्य संयम बरते, इसकी शिक्षा उपस्थित लोगों को देने के लिए, मानव जीवन के मर्यादा-विज्ञान को समझाने के लिए चौथी बड़ी समिधा उत्तर दिशा में स्थापित की जाती है।

क्रिया और भावना- चौथी समिधा उत्तर दिशा में मन्त्र के साथ रखी जाए। सभी भावना करें कि द्वेष-दुर्भाव पर अंकुश रखने का पाठ हृदयंगम कर रहे हैं। मृतक से इस प्रकरण में भूलें हुई हों, तो उनके शमन के लिए अपना उत्तरदायित्व निश्चित करते हैं। ऐसे व्यक्ति जिनसे अपनी पटती नहीं, उनके द्वारा किये जाने वाले किसी श्रेष्ठ कार्य में स्वयं खुले मन से सहयोग देंगे। इस तप-पुण्य को समिधा के साथ स्थापित करते हैं।

ॐ उदीची दिक्सोमोऽधिपतिः, स्वजो रक्षिताशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नमऽइषुभ्यो नमऽएभ्यो अस्तु। योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं, द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥

- अथर्व० ३.२७.४

॥ चितारोहण ॥

मर्यादा की समिधाएँ स्थापित करने के बाद अनुभवी व्यक्ति चिता सजाएँ। चिता चूँकि एक प्रकार से यज्ञ प्रक्रिया है, इसलिए उसमें वे ही लकड़ियाँ काम आती हैं जो आम तौर से यज्ञ कार्यों में प्रयुक्त होती हैं। वट, पीपल, गूलर, ढाक, आम, शमी आदि पवित्र काष्ठों की ही समिधाएँ यज्ञ में काम आती हैं, यथाशक्ति वे ही मृतक शरीर की अन्त्येष्टि में काम आनी चाहिए। अगर, तगर, देवदारु, चन्दन आदि के सुगन्धित काष्ठ मिल सकें, तो उन्हें भी चिता में सम्मिलित कर लेना चाहिए।

ठठरी पर रखे हुए मृत शरीर को उठा कर चिता पर सुलाया जाए, तब सम्मिलित स्वर से संस्कार कर्त्ता "**ॐ अग्ने नय सुपथा राये......**मन्त्र उच्चारण करें। मन्त्र में अग्निदेव से जीवन को उस ओर ले चलने की प्रार्थना की गई है, जिस ओर सज्जन लोग प्रयाण करते हैं। शान्ति-सद्गति की ओर जीवन की भावी यात्रा चल पड़े, यही ईश्वर प्रार्थना एवं शुभकामना उपस्थित लोगों द्वारा की जानी चाहिए, वही की भी गई है। ज्ञान, प्रकाश, तेज, संयम, पुरुषार्थ जैसे गुणों को अग्नि का प्रतिनिधि माना गया है। इनका जो भी आश्रय लेंगे, वे उसी प्रकार ऊपर उठेंगे; जिस प्रकार अग्नि में जलाये हुए शरीर के अणु-कण वायुभूत होकर ऊपर आकाश में उड़ते चले-जाते हैं।

चितारोहण के बाद पूर्व निर्धारित मन्त्र से पाँचवाँ पिण्ड दिया जाए, फिर शव के ऊपर भी लकड़ियाँ जमा दी जाएँ।

॥ शरीर यज्ञ आरम्भ ॥

अग्नि स्थापना- कुशाओं के पुंज में अंगार या जलते कोयले रखकर उसे हवा में इधर-उधर हिलाया जाए, अग्नि प्रज्वलित हो उठेगी । इस अग्नि समेत एक परिक्रमा मृतक की करके उसे उसके मुख के पास अथवा पूर्व निश्चित ऐसे स्थान पर रख दिया जाए, जहाँ लकड़ियों में आसानी से अग्नि प्रविष्ट हो सके । ऐसा स्थान पहले से ही वायु के लिए खाली और पतली, छोटी, जल्दी आग पकड़ने वाली समिधाओं से बनाया गया हो । अग्नि स्थापन के समय **ॐ भूर्भुवः स्व द्यौरिव भूम्ना.....** मन्त्र का पाठ किया जाए फिर **उद्बुध्यस्वाग्ने....** मन्त्र के साथ अग्नि तीव्र करने के लिए आवश्यकतानुसार राल का चूरा आदि झोंकना चाहिए, हवा करनी चाहिए ।

घृताहुति- अग्नि प्रज्वलित हो जाए , तब घी की सात आहुतियाँ दी जाएँ । इस कार्य के लिए लम्बी डण्डी का चम्मच प्रयोग किया जाए । '**ॐ इन्द्राय स्वाहा**' इत्यादि मन्त्रों से सात घृत आहुतियाँ वही व्यक्ति करे, जिसने अग्नि प्रवेश कराया हो । यह मृतक का पुत्र या निकटतम सम्बन्धी होता है ।

सामान्याहुति- घृताहुति के बाद सभी लोग सुगन्धित हवन सामग्री से गायत्री मन्त्र बोलते हुए सात आहुतियाँ समर्पित करें, इसके बाद शरीर यज्ञ की विशेष आहुतियाँ डाली जाती हैं ।

॥ विशेष आहुति ॥

दिशा एवं प्रेरणा- शरीर यज्ञ का प्रधान मन्त्र '**ॐ आयुर्यज्ञेन कल्पतां.....**' हमें इस तथ्य को हृदयंगम करने और व्यावहारिक जीवन में समाविष्ट करने का निर्देश करता है । मन्त्र में निर्देश है कि- मानवीय आयुष्य यज्ञ के लिए हो, वह जब तक जिए परमार्थ के लिए जिए, विराट् ब्रह्म की पूजा करता रहे । मैं अपने लिए नहीं समस्त समाज के लिए जीता हूँ- यही सोचता रहे । प्राण, चक्षु, श्रोत्र, वाणी, मन, आत्मा आदि यज्ञ के लिए ही समर्पित रहें ।

" प्राण यज्ञ के लिए हो । साहस, शक्ति, क्षमता, चातुर्य और प्रतिभा का समस्त कोष लोकहित की बात सोचने में, आयोजन करने में तथा प्रवृत्त रहने में खर्च किया जाए । इन्हें ही पाँच प्राण-क्रमशः प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान कहकर सभी की आहुतियाँ दी जाती हैं ।

चक्षु यज्ञ के लिए हों, अर्थात् जो कुछ देखें सद्उद्देश्य के लिए देखें। अश्लीलता की विकार भरी दूषित दृष्टि से, भिन्न लिंग वाले नर या नारी को न देखें। पवित्र और प्रेम भरी दृष्टि से हर व्यक्ति और वस्तु को देखें और उसे अधिक सुन्दर- सुविकसित बनाने का प्रयत्न करें। छिद्रान्वेषण न करें, वरन् गुणों को देखें, ढूँढें तथा अपनाएँ। सत्साहित्य पढ़ें, प्रेरणाप्रद दृश्यों को देखें। जो दुर्भाव उत्पन्न करें, ऐसे दृश्यों से नेत्रों को बचाये रखें।

'श्रोत्र यज्ञ के लिए हों अर्थात् जो सुनें वह श्रेयस्कर एवं सद्भाव जाग्रत् करने वाला ही हो। ऐसे वचन न सुनें, जो कुमार्ग पर ले जाते हों'।

'वाणी यज्ञ के लिए बोलें, अर्थात् मधुर,शिष्ट, उत्साहवर्धक, श्रेयस्कर वचन कहने का अभ्यास डाला जाए, मतभेद या अप्रिय प्रसंग आने पर भी वाणी की शालीनता को हाथ से न जाने दिया जाए। दूसरों को कुमार्ग पर ले जाने वाली सलाह, द्वेष एवं रोष उत्पन्न करने वाली निन्दा, चुगली, व्यंग्य, उपहास एवं मर्म भेदन करने वाली वाणी [illegible] कदापि न हो। असत्य और निरर्थक भी न बोलें। जिह्वा का संयम सब[illegible] माना गया है। उसका अर्थ चटोरेपन से बचना ही नहीं, वरन् नपी-तुली प्रसंगत एवं श्रेयस्कर वाणी बोलना भी है- ऐसे वाक् संयम को ही मौन कहते हैं।

"मन को यज्ञ के लिए गतिशील करें"। मन में अनुचित, अवांछनीय बातें न आने दें। कुविचारों को मस्तिष्क में स्थान न दें। ऐसी इच्छाएँ न करें, जिनकी पूर्ति के लिए दूसरों को हानि पहुँचाकर अनैतिक रीति से लाभ उठाने की योजना बनानी पड़े। तृष्णा में मन डूबा न रहे। उसमें द्वेष, शोषण, अपहरण एवं अन्याय के लिए कोई स्थान न हो। छल-कपट एवं धोखा देने की इच्छा कभी भी न हो, तो ऐसा निर्मल मन यज्ञ रूप ही कहा जायेगा।"

"आत्मा यज्ञमय हो"। उसमें आस्थाएँ, निष्ठाएँ, भावनाएँ, मान्यताएँ, आकांक्षाएँ जो भी हों, सब आदर्शवादिता, उत्कृष्टता एवं सात्त्विकता से भरी-पूरी हों। उद्वेग नहीं सन्तोष एवं उल्लास की अन्तःकरण में प्रधानता रहे। शुभ ही अनुभव करें, शुभ ही सोचें और शुभ की ही आशा रखें। आत्मा को शुभ बनाते-बनाते, परिष्कृत करते-करते उसे परमात्मा के रूप में परिणत करने की चेष्टा जारी रहे, तो यह प्रक्रिया आत्मज्ञान कहलायेगी।

"ब्रह्म" यज्ञ के लिए हो"। यहाँ ब्रह्म शब्द का प्रयोग 'विवेक' के अर्थ

में प्रयुक्त हुआ है। हमारा विवेक जाग्रत् रहे, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के जो कषाय-कल्मष उठते रहते हैं और अन्तःकरण में जो विविध विक्षेप उत्पन्न करते रहते हैं , उनको विवेक द्वारा नियन्त्रित किया जाए। आत्मनिग्रह का कार्य विवेक द्वारा ही सम्पन्न होता है , इसलिए विवेक की सत्ता इतनी प्रबल रखी जाए कि मनोविकार सिर न उठा सकें और कुमार्ग पर जीवन को घसीट कर न ले जा सकें।

ज्योति यज्ञ के लिए हो। यहाँ 'ज्योति' शब्द क्रियाशीलता के अर्थ में प्रयुक्त है। हमारी शक्ति कुमार्गगामी न हो, हमारी बुद्धि सत्पथ का परित्याग न करे, हमारी आकांक्षा अनुचित की चाह न करे, हमारी प्रतिभा दूसरों पर अवांछनीय भार या दबाव न डाले। विद्या की दिशा में अधोगामी नहीं, ऊर्ध्वगामी बनें। पतन के लिए नहीं, उत्थान के लिए कदम बढ़ें, तो समझना चाहिए कि हमारी ज्योति यज्ञ के लिए प्रयुक्त हो रही है। जिस प्रकार दीपक अपने को जलाकर दूसरों के लिए प्रकाश उत्पन्न करता है, वैसे ही हम भी अपने ज्योतिर्मय व्यक्तित्व से संसार में पुण्य - प्रकाश का सृजन -अभिवर्धन करते रहें।

"स्वः " यज्ञ के लिए हो। अपना व्यक्तित्व या अस्तित्व सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाने के लिए, **"सत्यं, शिवं, सुन्दरम्"** की महत्ता विकसित करने के लिए हो। हमारा "अहं " अपना गर्व पूरा करने के लिए न हो; धर्म, सत्य और ईश्वर का गौरव बढ़ाने में नियोजित रहे।

'पृष्ठ' भाग यज्ञ के लिए हो। आगे वाला-दिखाई देने वाला हिस्सा, तो लोग आदमियों का सा बना लेते हैं, पर भीतर उसके गन्दगी ही गन्दगी भरी रहती है, इस प्रकार हम अपना वर्तमान तो किसी प्रकार गुजार लेते हैं, पर पीछे का वह पृष्ठ भाग जो मरणोत्तर जीवन से सम्बन्धित है, अन्धेरे में ही पड़ा रहता है। इस संसार से विदा होने के पश्चात् हम अपने पीछे कोई महत्त्वपूर्ण स्मृति नहीं छोड़ जाते- यह खेद की बात है। मन्त्र में कहा गया है कि हमारा पृष्ठ भाग, पीछे का अदृश्य पहलू भी यज्ञ के लिए प्रयुक्त हो।

अन्त में यह 'यज्ञ' भी यज्ञ के लिए हो। इसमें यज्ञीय संस्कृति का चरमोत्कर्ष बतलाया गया है, हम जो भी शुभ कार्य करें, सद्भाव रखें, उनके पीछे किसी प्रकार के लौकिक या पारलौकिक व्यक्तिगत लाभ

की इच्छा न हो। यद्यपि स्वभावत: परमार्थ पर चलने वाले को इस लोक और परलोक में सुख-शान्ति का अविरल लाभ मिलता है, फिर भी इस प्रकार के लाभ की बात सोचकर व्यक्तिगत स्वार्थ की बात न आने दी जाए। शुभ कर्म इसीलिए किये जाएँ कि इन्हीं से मनुष्यता की शोभा है। सत्य और औचित्य की विजय ही ईश्वर की विजय है। धर्म का अभिनन्दन एवं परिपोषण ही मानवोचित कर्त्तव्य है। इन उदात्त भावनाओं से एवं यज्ञीय परम्परा को गतिमान् रखने की भावना से यज्ञ कर्म किये जाएँ।

अन्त में शरीर के प्रत्येक अंश को यज्ञमय बनाने की प्रेरणा के साथ १६ आहुतियाँ पूर्ण की जाती हैं। सत्रहवीं आहुति शरीरगत पंचतत्त्वों को श्रेष्ठतम दिशा में गति देने की भावना से की जाती है। भावना करते हैं कि चक्षुशक्ति सूर्य की ओर, वायु एवं आत्मतत्त्व द्युलोक की ओर, पृथ्वीतत्त्व धर्मतत्त्व की ओर तथा जलतत्त्व हितकारी ओषधियों की ओर उन्मुख हों।

क्रिया और भावना- एक-एक मन्त्र से सम्बन्धित संक्षिप्त प्रेरणा दी जाए। भावना करें कि मृतक के व्यक्तित्व के सभी अंश यज्ञभूत हो रहे हैं, हमारा व्यक्तित्व यज्ञीय धारा के योग्य बने।

१. ॐ आयुर्यज्ञेन कल्पता ॐ स्वाहा।
२. ॐ प्राणो यज्ञेन कल्पता ॐ स्वाहा।
३. ॐ अपानो यज्ञेन कल्पता ॐ स्वाहा।
४. ॐ व्यानो यज्ञेन कल्पता ॐ स्वाहा।
५. ॐ उदानो यज्ञेन कल्पता ॐ स्वाहा।
६. ॐ समानो यज्ञेन कल्पता ॐ स्वाहा।
७. ॐ चक्षुर्यज्ञेन कल्पता ॐ स्वाहा।
८. ॐ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पता ॐ स्वाहा।
९. ॐ वाग्यज्ञेन कल्पता ॐ स्वाहा।
१०. ॐ मनो यज्ञेन कल्पता ॐ स्वाहा।
११. ॐ आत्मा यज्ञेन कल्पता ॐ स्वाहा।
१२. ॐ ब्रह्मा यज्ञेन कल्पता ॐ स्वाहा।
१३. ॐ ज्योतिर्यज्ञेन कल्पता ॐ स्वाहा।
१४. ॐ स्वर्यज्ञेन कल्पता ॐ स्वाहा।

१५. ॐ पृष्ठं यज्ञेन कल्पता ँ स्वाहा।

१६. ॐ यज्ञो यज्ञेन कल्पता ँ स्वाहा। २२.३३

१७. ॐ सूर्यं चक्षुर्गच्छतु, वातमात्मा द्यां च गच्छ, पृथिवीं च धर्मणा। अपो वा गच्छ यदि, तत्र ते हितमोषधीषु, प्रतितिष्ठा शरीरैः स्वाहा। - ऋ० १०.१६.३

॥ सामूहिक जप-प्रार्थना ॥

शरीर यज्ञ के बाद सभी परिजन चिता की ओर मुख करके शान्त भाव से पंक्तिबद्ध होकर बैठें। परस्पर चर्चा-वार्त्तालाप न करें। आवश्यकता पड़े, तो सम्बन्धित व्यक्ति को इशारे से बुलाकर संक्षिप्त चर्चा कर लें। वातावरण शान्त बनाये रखें। सभी लोग गायत्री मन्त्र का मानसिक जप करते हुए मृतात्मा की सद्गति तथा परिजनों के शोक निवारण की प्रार्थना करें। पूर्णाहुति-कपाल क्रिया का समय आने तक यह क्रम चालू रखा जाए। श्मशान घाट पर की गई प्रार्थना-साधना का अपना ही महत्त्व है। तन्त्र विद्या के समर्थक तो उसे अनिवार्य मानते हैं। कपाल क्रिया से पूर्व स्थान न छोड़ने की परिपाटी है। कपाल क्रिया तब की जाती है, जब खोपड़ी की हड्डियाँ आग पकड़ लें और तालू भाग में छेद करने की स्थिति बन जाए। उस समय का उपयोग जप करके किया जाना चाहिए। इस बीच अनुभवी व्यक्ति चिता की अग्नि सँभालते हैं। लकड़ियों को उचित स्थान पर जमाने का क्रम बनाये रखें।

॥ पूर्णाहुति-कपाल क्रिया ॥

दिशा एवं प्रेरणा- मस्तिष्क जीवन का वास्तविक केन्द्र संस्थान है। उसमें जैसे विचार या भाव उठते हैं, उसी के अनुकूल जीवन की दिशा निर्धारित होती है और उत्थान-पतन का वैसा ही संयोग बन जाता है। मस्तिष्क को सीमाबद्ध-संकुचित नहीं रहना चाहिए, उसको व्यापक-विशाल आधार पर सुविकसित होना चाहिए- इस तथ्य का प्रतिपादन करने के लिए कपाल-क्रिया का कर्मकाण्ड करते हैं। खोपड़ी फोड़कर विचार संस्थान को यह अवसर देते हैं कि एक छोटी परिधि के भीतर ही वह सोचता न रहे, वरन् विश्व मानव की विभिन्न समस्याओं को ध्यान में रखते हुए अपना कर्त्तव्य

पथ निर्धारित करे। मस्तिष्क की हड्डी का घेरा टूटने से यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि व्यापक दृष्टिकोण अपनाने की सुविधा हुई। मृत और जीवित सभी के लिए मानसिक संकीर्णता हानिकारक बताकर सोचने का दायरा बड़ा करना इस पूर्णाहुति क्रिया का लक्ष्य है। जिसका मस्तिष्क अन्तिम समय तक विवेकशील बना रहा, समझना चाहिए उसने जीवन यज्ञ की ठीक तरह पूर्णाहुति कर ली-यह प्रतीक-संकेत इस कपाल क्रिया में मिलता है।

क्रिया और भावना- अन्त्येष्टि करने वाले सज्जन बाँस हाथ में लें, चिता के शिरोभाग की ओर खड़े हों। सभी लोग खड़े हो जाएँ, पूर्णाहुति के लिए हवन सामग्री, नारियल-गोला तैयार रखें। सभी के हाथों में पूर्णाहुति के लिए हवन सामग्री तुलसी-चन्दन आदि की लकड़ी के टुकड़े दे दिये जाएँ। खोपड़ी की हड्डी का मध्य भाग तालु मुलायम होता है, वह जोड़ सबसे पहले जलकर खुल जाता है- वहाँ बाँस की नोकों का दबाव देकर छेद कर दें। अब पूर्णाहुति मन्त्र **"ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं......."** बोलते हुए पूर्णाहुति का गोला बाँस के सहारे सिर के पास रख दिया जाए, सभी लोग सामग्री होमें।

भावना करें कि मस्तिष्क स्थित जीवन संचालक विचार-तंत्रिका के जाल (सर्किट) को यज्ञीय पुट देकर विश्व चेतना में मिला दिया गया। अपने मस्तिष्क को भी इस संस्कार से युक्त बनाया जा रहा है।

पूर्णाहुति- कपाल क्रिया के बाद चिता शांत होने तक देख-रेख के लिए २-४ व्यक्ति छोड़कर शेष वापस लौट सकते हैं अथवा स्थानीय परम्परानुसार एक साथ सम्पूर्ण कृत्य समाप्त होने पर सामूहिक स्नान, जलांजलि, शोक प्रार्थना आदि के कृत्य किये जा सकते हैं। वहाँ से चलने के पहले नीचे लिखे अनुसार समापन कर्म कर लिये जाने चाहिए।

वसोर्धारा, स्नेह सिंचन- वसोर्धारा में घी की धारा छोड़ते हुए पूर्णाहुति का अन्तिम भाग पूर्ण किया जाता है। घृत का दूसरा नाम स्नेह है, स्नेह प्यार को कहते हैं। प्यार भरा जीवन ही सराहनीय है। रूखा, नीरस, निष्ठुर, कर्कश, स्वार्थी और संकीर्ण जीवन तो धिक्कारने योग्य ही समझा जाता है। वसोर्धारा में घृत की, स्नेह की अखण्ड धारा **"ॐ वसोः पवित्र०"** मन्त्र से डाली जाती है, उसका तात्पर्य यही है कि व्यक्ति का जीवन स्नेह धारा में डूबा रहे।

परिक्रमा और नमस्कार- उपस्थित सभी लोग चिता की परिक्रमा

"यानि कानि च पापानि" मन्त्र के साथ करते हुए स्वर्गीय आत्मा के प्रति अपना सम्मान एवं सद्भाव प्रकट करते हैं। **"ॐ नमोस्त्वनन्ताय"** इत्यादि मंत्र से नमस्कार करते हैं। यह नमस्कार ईश्वर के लिए है, साथ ही स्वर्गीय आत्मा के लिए भी। ईश्वर के लिए इसलिए कि उसने दिवंगत आत्मा को मानव जीवन का स्वर्णिम सौभाग्य प्रदान किया और यह अवसर दिया कि अनन्त काल तक के लिए अविच्छिन्न सुख-शान्ति यदि वह चाहे तो प्राप्त कर ले। इस महान् अनुकम्पा के लिए ईश्वर को नमस्कार किया जाता है। मृतक व्यक्ति के द्वारा जीवित व्यक्तियों के साथ कोई उपकार हुए हों, उसके लिए यह सजीव विश्व कृतज्ञ है। इस कृतज्ञता की अभिव्यक्ति के लिए जन-जीवन का यह प्रतिनिधि-अभिवन्दन है।

सब लोग मिलकर शान्ति पाठ करें। दिवंगत आत्मा के शरीर त्याग से जो विकृतियाँ उत्पन्न हुई हैं, मृतक के शरीर त्यागने पर जो अशान्ति हुई हो, उसकी शान्ति के लिए यह शान्ति पाठ किया जाता है।

इस प्रकार अन्त्येष्टि संस्कार पूरा करने पर, संस्कार में सम्मिलित लोग किसी जलाशय पर जाकर स्नान करें, वस्त्र धोएँ, लोकाचार के अनुसार नीम की पत्ती चबाने जैसे कृमिनाशक उपचार करें।

॥ अस्थि विसर्जन ॥

दिशा एवं प्रेरणा- अन्त्येष्टि के बाद अस्थि अवशेष एकत्रित करके, उन्हें किसी पुण्य तीर्थ में विसर्जित करने की परिपाटी है। जीवन का कण-कण सार्थक हो, इसलिए शरीर के अवशेष भी पुण्य क्षेत्र में डाल दिये जाते हैं।

अस्थियाँ चिता शान्त होने पर तीसरे दिन उठाई जाती हैं, जल्दी उठानी हों, तो दूध युक्त जल से अथवा केवल जल से सिंचित करके उठाते हैं। अस्थियाँ उठाते समय नीचे लिखा मंत्र बोला जाए।

ॐ आ त्वा मनसाऽनार्तेन, वाचा ब्रह्मणा त्रय्या विद्यया, पृथिव्यामक्षिकायामपा रसेन निवपाम्यसौ ।का० श्रौ० सू० २५.८.६

इन अस्थियों को कलश या पीत-वस्त्र में नीचे कुश रखकर एकत्रित किया जाए, फिर इन्हें तीर्थ क्षेत्र (नदी,तालाब या अन्य पवित्र स्थल) में ले जाकर उसे विसर्जन स्थल के निकट रखें। हाथ में यव, अक्षत, पुष्प लेकर यम और पितृ आवाहन के मंत्र बोलें, पुष्प चढ़ाकर हाथ जोड़कर नमस्कार करें -

॥ यम ॥

ॐ यमग्ने कव्यवाहन, त्वं चिन्मन्यसे रयिम्। तन्नो गीर्भिः श्रवाय्यं, देवत्रा पनया युजम्।ॐ यमाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ १९.६४

॥ पितृ ॥

ॐ इदं पितृभ्यो नमोऽअस्त्वद्य ये, पूर्वासो यऽ उपरास ऽईयुः।ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता, ये वा नून ंᳫ सुवृजनासु विक्षु।ॐ पितृभ्योनमः।आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥

-१९.६८

अब अंजलि में अस्थि कलश या पोटली लेकर प्रवाह में या किनारे खड़े होकर यव-अक्षत-पुष्प के साथ निम्न मंत्र पढ़ते हुए अस्थियों को विसर्जित प्रवाहित किया जाए।

ॐ अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो, असादयन् शरीरं ब्रह्म प्राविशत्।

ॐ सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा, द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा। अपो वा गच्छ यदि तत्र ते, हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः स्वाहा॥ - अथर्व० ११.१०.२९ ; ऋ० १०.१६.३

तदुपरान्त हाथ जोड़कर निम्न मंत्र के साथ मृतात्मा का ध्यान करते हुए प्रार्थना करें-

ॐ ये चित्पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः। ऋषीन्तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात्॥ ॐ आयुर्विश्वायुः परिपातु त्वा, पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात्। यत्रासते सुकृतो यत्र त ऽईयुः, तत्र त्वा देवः सविता दधातु॥ - अथर्व० १८.२.१५,५५

तत्पश्चात् घाट पर ही तर्पण आदि विशेष क्रम सम्पन्न करें। तर्पण के बाद तीर्थ क्षेत्र में विद्यमान सत्शक्तियों को नमस्कार करके क्रम समाप्त करें-

ॐ ये तीर्थानि प्रचरन्ति, सृकाहस्ता निषंगिणः।
तेषा ंᳫ सहस्रयोजने व धन्वानि तन्मसि॥ - १६.६१

* * *

॥ मरणोत्तर संस्कार ॥

दिशा एवं प्रेरणा- भारतीय संस्कृति ने यह तथ्य घोषित किया है कि मृत्यु के साथ जीवन समाप्त नहीं होता, अनन्त जीवन श्रृंखला की एक कड़ी मृत्यु भी है, इसलिए संस्कारों के क्रम में जीव की उस स्थिति को भी बाँधा गया है। जब वह एक जन्म पूरा करके अगले जीवन की ओर उन्मुख होता है, कामना की जाती है कि सम्बन्धित जीवात्मा का अगला जीवन पिछले की अपेक्षा अधिक सुसंस्कारवान् बने। इस निमित्त जो कर्मकाण्ड किये जाते हैं, उनका लाभ जीवात्मा को क्रिया-कर्म करने वालों की श्रद्धा के माध्यम से ही मिलता है। इसलिए मरणोत्तर संस्कार को श्राद्धकर्म भी कहा जाता है।

यों श्राद्धकर्म का प्रारम्भ अस्थि विसर्जन के बाद ही प्रारम्भ हो जाता है। कुछ लोग नित्य प्रातः तर्पण एवं सायंकाल मृतक द्वारा शरीर त्याग के स्थान पर या पीपल के पेड़ के नीचे दीपक जलाने का क्रम चलाते रहते हैं।

मरणोत्तरसंस्कार अन्त्येष्टि संस्कार से तेरहवें दिन किया जाता है। जिस दिन अन्त्येष्टि (दाह क्रिया) होती है, वह दिन भी गिन लिया जाता है। कहीं-कहीं बारहवें दिन की भी परिपाटी होती है। बहुत से क्षेत्रों में दसवें दिन शुद्धि दिवस मनाया जाता है, उस दिन मृतक के निकट सम्बन्धी क्षौर कर्म कराते हैं, घर की व्यापक सफाई-पुताई शुद्धि तक पूर्ण कर लेते हैं, जहाँ तेरहवीं ही मानायी जाती है, वहाँ यह सब कर्म श्राद्ध संस्कार के पूर्व कर लिये जाते हैं।

अन्त्येष्टि के १३वें दिन मरणोत्तर संस्कार किया जाता है। यह शोक-मोह की पूर्णाहुति का विधिवत् आयोजन है। मृत्यु के कारण घर में शोक-वियोग का वातावरण रहता है, बाहर के लोग भी संवेदना-सहानुभूति प्रकट करने आते हैं- यह क्रम तेरह दिन में पूरा हो जाना चाहिए; ताकि भावुकतावश शोक का वातावरण लम्बी अवधि तक न खिंचता जाए। कर्त्तव्यों की ओर पुनः ध्यान देना आरम्भ कर दिया जाए।

मृतक के शरीर से अशुद्ध कीटाणु निकलते हैं। इसलिए मृत्यु के उपरान्त घर की सफाई करनी चाहिए। दीवारों की पुताई, जमीन की धुलाई-लिपाई, वस्त्रों की गरम जल से धुलाई, वस्तुओं की घिसाई, रँगाई आदि

का ऐसा क्रम बनाना पड़ता है कि कोई छूत का अंश न रहे । यह कार्य दस से १३ दिन की अवधि में पूरा हो जाना चाहिए ।

तेरहवें दिन मरणोत्तर संस्कार की वैसी ही व्यवस्था की जाए, जैसी अन्य संस्कारों की होती है । आँगन में यज्ञ वेदी बनाकर पूजन तथा हवन के सारे उपकरण इकट्ठे किये जाएँ । मण्डप बनाने या सजावट करने की आवश्यकता नहीं है । जिस व्यक्ति ने दाह संस्कार किया हो, वही इस संस्कार का भी मुख्य कार्यकर्त्ता, यजमान बनेगा और वही दिवंगत आत्मा की शान्ति-सद्गति के लिए निर्धारित कर्मकाण्ड कराएगा ।

श्राद्ध संस्कार मरणोत्तर के अतिरिक्त पितृपक्ष में अथवा देहावसान दिवस पर किये जाने वाले श्राद्ध के रूप में भी कराया जाता है । जीवात्माओं की शान्ति के लिए तीर्थों में भी श्राद्ध कर्म कराने का विधान है ।

पूर्व व्यवस्था- श्राद्ध संस्कार के लिए सामान्य यज्ञ देव पूजन की सामग्री के अतिरिक्त नीचे लिखे अनुसार व्यवस्था बना लेनी चाहिए ।

* तर्पण के लिए पात्र-ऊँचे किनारे की थाली, परात, पीतल या स्टील की टैनियाँ (तसले,तगाड़ी के आकार के पात्र) जैसे उपयुक्त रहते हैं । एक पात्र जिसमें तर्पण किया जाए, दूसरा पात्र जिसमें जल अर्पित करते रहें । तर्पण पात्र में जल पूर्ति करते रहने के लिए कलश आदि पास ही रहे । इसके अतिरिक्त कुश, पवित्री, चावल, जौ, तिल थोड़ी-थोड़ी मात्रा में रखें ।

* पिण्ड दान के लिए लगभग एक पाव गुँधा हुआ जौ का आटा । जौ का आटा न मिल सके, तो गेहूँ के आटे में जौ, तिल मिलाकर गूँध लिया जाए । पिण्ड स्थापन के लिए पत्तलें, केले के पत्ते आदि । पिण्डदान सिंचित करने के लिए दूध-दही, मधु थोड़ा-थोड़ा रहे ।

* पंचबलि एवं नैवेद्य के लिए भोज्य पदार्थ । सामान्य भोज्य पदार्थ के साथ उर्द की दाल की टिकिया (बड़े) तथा दही इसके लिए विशेष रूप से रखने की परिपाटी है । पंचबलि अर्पित करने के लिए हरे पत्ते या पत्तल लें ।

* पूजन वेदी पर चित्र, कलश एवं दीपक के साथ एक छोटी ढेरी चावल की 'यम' तथा तिल की 'पितृ' आवाहन के लिए बना देनी चाहिए ।

क्रम व्यवस्था- श्राद्ध संस्कार में देवपूजन एवं तर्पण के साथ पंचयज्ञ करने का विधान है । यह पंचयज्ञ , ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, एवं

मनुष्ययज्ञ है । इन्हें प्रतीक रूप में "बलिवैश्व देव" की प्रक्रिया में भी कराने की परिपाटी है । वैसे पितृयज्ञ के लिए पिण्डदान, भूतयज्ञ के लिए पंचबलि, मनुष्ययज्ञ के लिए श्राद्ध संकल्प आदि का विधान है । देवयज्ञ के लिए सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन-देवदक्षिणा संकल्प तथा ब्रह्मयज्ञ के लिए गायत्री विनियोग किया जाता है । अन्त्येष्टि करने वाले को प्रधान यजमान के रूप में बिठाया जाता है । विशेष कृत्य उसी से कराये जाते हैं । अन्य सम्बन्धियों को भी स्वस्तिवाचन, यज्ञाहुति आदि में सम्मिलित किया जाना उपयोगी है ।

प्रारम्भ में **षट्कर्म** के बाद **संकल्प** कराएँ । फिर **रक्षाविधान** तक के उपचार करा लिये जाते हैं । उसके बाद विशेष उपचार प्रारम्भ होते हैं ।

प्रारम्भ में यम एवं पितृ आवाहन-पूजन करके तर्पण कराया जाता है । तर्पण के बाद क्रमशः ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ एवं मनुष्ययज्ञ कराएँ ।

इन यज्ञों के बाद अग्नि स्थापना करके विधिवत् गायत्रीयज्ञ कराएँ । विशेष आहुतियों के बाद स्विष्टकृत, पूर्णाहुति आदि सम्पन्न कराते हुए समय की सीमा को देखते हुए यज्ञ का समापन संक्षेप या विस्तारपूर्वक कराएँ ।

विसर्जन के पूर्व दो थालियों में भोजन सजाकर रखें । इनमें देवों और पितरों के लिए नैवेद्य अर्पित किया जाए । पितृ नैवेद्य की थाली में किसी मान्य वयोवृद्ध अथवा पुरोहित को भोजन करा दें और देव नैवेद्य किसी कन्या को ज़िमाया जाए । विसर्जन करने के पश्चात् पंचबलि के भाग यथास्थान पहुँचाने की व्यवस्था करें । पिण्ड नदी में विसर्जित करने या गौओं को खिलाने की परिपाटी है । इसके बाद निर्धारित क्रम से परिजनों, कन्या, ब्राह्मण आदि को भोजन कराएँ । रात्रि में संस्कार स्थल पर दीपक रखें ।

...नामाहं..नामकमृतात्मनः प्रेतत्वनिवृत्तिद्वारा अक्षय्य-लोकावाप्तये स्वकर्त्तव्यपालनपूर्वकं पितृणाद् आनृण्यार्थं सर्वेषां पितृणां शान्तितुष्टिनिमित्तं पंचयज्ञसहितं श्राद्धकर्म अहं करिष्ये ।

॥ यम देवता-पूजन ॥

यम को मृत्यु का देवता कहा जाता है । यम नियन्त्रण करने वाले को तथा समय को भी कहते हैं । सृष्टि का सन्तुलन-नियन्त्रण बनाये रखने के लिए मृत्यु भी एक आवश्यक प्रक्रिया है । नियन्त्रण-सन्तुलन को बनाये रखने वाली काल की सीमा का स्मरण रखने से जीवन संतुलित, व्यवस्थित तथा

प्रखर एवं प्रगतिशील बनाये रखने की प्रेरणा मिलती है ।

क्रिया और भावना- पूजन की वेदी पर चावलों की एक ढेरी यम के प्रतीक रूप में रखें तथा मन्त्र के साथ उसका पूजन करें । यदि समय की कमी न हो, तो कई लोग मिलकर यम-स्तोत्र का पाठ भी करें । स्तुति करने का अर्थ है- उनके गुणों का स्मरण तथा अपनी श्रद्धा की अभिव्यक्ति करना ।

हाथ में यव-अक्षत-पुष्प लेकर जीवन-मृत्यु चक्र का अनुशासन बनाये रखने वाले तन्त्र के अधिष्ठाता का आवाहन करें-पूजन करें । भावना करें कि "यम" का अनुशासन हम सबके लिए कल्याणकारी बने ।

ॐ यमाय त्वा मखाय त्वा सूर्यस्य त्वा तपसे। देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु , पृथिव्याः स ꣳ स्पृशस्पाहि। अर्चिरसि शोचिरसि तपोऽसि ॥ - ३७.११

ॐ यमाय नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि । ततो नमस्कारं करोमि ।

॥ यम स्तोत्र ॥

ॐ नियमस्थः स्वयं यश्च, कुरुतेऽन्यान्नियन्त्रितान् ।
प्रहरिणे मर्यादानां, शमनाय तस्मै नमः ॥१ ॥
यस्य स्मृत्या विजानाति, भंगुरत्वं निजं नरः ।
प्रमादालस्यरहितो, बोधकाय नमोऽस्तु ते ॥२ ॥
विधाय धूलिशयनं, येनाहं मानिनां खलु ।
महतां चूर्णितो गर्वः, तस्मै नमोऽन्तकाय च ॥३ ॥
यस्य प्रचण्डदण्डस्य, विधानेन हि त्रासिताः ।
हाहाकारं प्रकुर्वन्ति, दुष्टाः तस्मै नमो नमः ॥४ ॥
कृपादृष्टिरनन्ता च, यस्य सत्कर्मकारिषु ।
पुरुषेषु नमस्तस्मै, यमाय पितृस्वामिने ॥५ ॥
कर्मणां फलदानं हि, कार्यमेव यथोचितम् ।
पक्षपातो न कस्यापि, नमो यस्य यमाय च ॥६ ॥
यस्य दण्डभयाद्रुद्धः, दुष्प्रवृत्तिकुकर्मकृत् ।
कृतान्ताय नमस्तस्मै, प्रदत्ते चेतनां सदा ॥७ ॥

प्राधान्यं येन न्यायस्य, महत्त्वं कर्मणां सदा।
मर्यादारक्षणं कर्त्रे, नमस्तस्मै यमाय च ॥८ ॥
न्यायार्थं यस्य सर्वे तु, गच्छन्ति मरणोत्तरम्।
शुभाशुभं फलं प्राप्तुं, नमस्तस्मै यमाय च ॥९ ॥
सिंहासनाधिरूढोऽत्र, बलवानपि पापकृत्।
यस्याग्रे कम्पते त्रासात्, तस्मै नमोऽन्तकाय च ॥१० ॥

॥ पितृ - आवाहन-पूजन ॥

इसके पश्चात् इस संस्कार के विशेष कृत्य आरम्भ किये जाएँ। कलश की प्रधान वेदी पर तिल की एक छोटी ढेरी लगाएँ, उसके ऊपर दीपक रखें। इस दीपक के आस-पास पुष्पों का घेरा, गुलदस्ता आदि से सजाएँ। छोटे-छोटे आटे के बने ऊपर की ओर बत्ती वाले घृतदीप भी किनारों पर सीमा रेखा की तरह लगा दें। उपस्थित लोग हाथ में अक्षत लेकर मृतात्मा के आवाहन की भावना करें और प्रधान दीपक की लौ में उसे प्रकाशित हुआ देखें। इस आवाहन का मन्त्र "ॐ विश्वे देवास.." है। सामूहिक मन्त्रोच्चार के बाद हाथों में रखे चावल स्थापना की चौकी पर छोड़ दिये जाएँ। आवाहित पितृ का स्वागत-सम्मान षोडशोपचार या पंचोपचार पूजन द्वारा किया जाए।

ॐ विश्वेदेवास ऽ आगत, शृणुता म ऽ इम ᳪ हवम्। एदं बर्हिर्निषीदत ॥ ॐ विश्वेदेवाः शृणुतेम ᳪ हवं मे, ये अन्तरिक्षे यऽउप द्यविष्ठ। ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा, आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम्। - ७.३४, ३३.५३

ॐ पितृभ्यो नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि।

॥ तर्पण ॥

दिशा एवं प्रेरणा- आवाहन, पूजन, नमस्कार के उपरान्त तर्पण किया जाता है। जल में दूध, जौ, चावल, चन्दन डाल कर तर्पण कार्य में प्रयुक्त करते हैं। मिल सके, तो गंगा जल भी डाल लेना चाहिए।

तृप्ति के लिए तर्पण किया जाता है। स्वर्गस्थ आत्माओं की तृप्ति किसी पदार्थ से, खाने-पहनने आदि की वस्तु से नहीं होती, क्योंकि स्थूल शरीर के लिए ही भौतिक उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है। मरने के बाद स्थूल

शरीर समाप्त होकर, केवल सूक्ष्मशरीर ही रह जाता है। सूक्ष्मशरीर को भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी आदि की आवश्यकता नहीं रहती, उसकी तृप्ति का विषय कोई, खाद्य पदार्थ या हाड़-मांस वाले शरीर के लिए उपयुक्त उपकरण नहीं हो सकते। सूक्ष्मशरीर में विचारणा, चेतना और भावना की प्रधानता रहती है, इसलिए उसमें उत्कृष्ट भावनाओं से बना अन्तःकरण या वातावरण ही शान्तिदायक होता है।

इस दृश्य संसार में स्थूलशरीर वाले को जिस प्रकार इन्द्रिय भोग, वासना, तृष्णा एवं अहंकार की पूर्ति में सुख मिलता है, उसी प्रकार पितरों का सूक्ष्म शरीर शुभ कर्मों से उत्पन्न सुगन्ध का रसास्वादन करते हुए तृप्ति का अनुभव करता है। उसकी प्रसन्नता तथा आकांक्षा का केन्द्र विन्दु श्रद्धा है। श्रद्धा भरे वातावरण के सान्निध्य में पितर अपनी अशान्ति खोकर आनन्द का अनुभव करते हैं, श्रद्धा ही इनकी भूख है, इसी से उन्हें तृप्ति होती है। इसलिए पितरों की प्रसन्नता के लिए श्राद्ध एवं तर्पण किये जाते हैं। इन क्रियाओं का विधि-विधान इतना सरल एवं इतने कम खर्च का है कि निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी उसे आसानी से सम्पन्न कर सकता है।

तर्पण में प्रधानतया जल का ही प्रयोग होता है। उसे थोड़ा सुगन्धित एवं परिपुष्ट बनाने के लिए जौ, तिल, चावल, दूध, फूल जैसी दो-चार मांगलिक वस्तुएँ डाली जाती हैं। कुशाओं के सहारे जौ की छोटी-सी अंजलि मंत्रोच्चारपूर्वक डालने मात्र से पितर तृप्त हो जाते हैं; किन्तु इस क्रिया के साथ आवश्यक श्रद्धा, कृतज्ञता, सद्भावना, प्रेम, शुभकामना का समन्वय अवश्य होना चाहिए। यदि श्रद्धाञ्जलि इन भावनाओं के साथ की गई है, तो तर्पण का उद्देश्य पूरा हो जायेगा, पितरों को आवश्यक तृप्ति मिलेगी; किन्तु यदि इस प्रकार की कोई श्रद्धा भावना तर्पण करने वाले के मन में नहीं होती और केवल लकीर पीटने के लिए मात्र पानी इधर-उधर फैलाया जाता है, तो इतने भर से कोई विशेष प्रयोजन पूर्ण न होगा, इसलिए इन पितृ-कर्मों के करने वाले यह ध्यान रखें कि इन छोटे-छोटे क्रिया-कृत्यों को करने के साथ-साथ दिवंगत आत्माओं के उपकारों का स्मरण करें, उनके सद्गुणों तथा सत्कर्मों के प्रति श्रद्धा व्यक्त करें। कृतज्ञता तथा सम्मान की भावना उनके प्रति रखें और यह अनुभव करें कि यह जलांजलि जैसे अकिंचन उपकरणों

के साथ, अपनी श्रद्धा की अभिव्यक्ति करते हुए स्वर्गीय आत्माओं के चरणों पर अपनी सद्भावना के पुष्प चढ़ा रहा हूँ। इस प्रकार की भावनाएँ जितनी ही प्रबल होंगी, पितरों को उतनी ही अधिक तृप्ति मिलेगी।

जिस पितर का स्वर्गवास हुआ है, उसके किये हुए उपकारों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना, उसके अधूरे छोड़े हुए पारिवारिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा करने में तत्पर होना तथा अपने व्यक्तित्व एवं वातावरण को मंगलमय ढाँचे में ढालना मरणोत्तर संस्कार का प्रधान प्रयोजन है। गृह शुद्धि, सूतक निवृत्ति का उद्देश्य भी इसी के साथ जुड़ा हुआ है। देवावाहन, यज्ञ आदि की क्रियाएँ इसी निमित्त की जाती हैं; किन्तु तर्पण में केवल इन्हीं एक पितर के लिए नहीं, पूर्वकाल में गुजरे हुए अपने परिवार, माता के परिवार, दादी के परिवार के तीन-तीन पीढ़ी के पितरों की तृप्ति का भी आयोजन किया जाता है। इतना ही नहीं इस पृथ्वी पर अवतरित हुए सभी महान् पुरुषों की आत्मा के प्रति इस अवसर पर श्रद्धा व्यक्त करते हुए उन्हें अपनी सद्भावना के द्वारा तृप्त करने का प्रयत्न किया जाता है।

तर्पण को छः भागों में विभक्त किया गया है- (१) देव-तर्पण (२) ऋषि-तर्पण (३) दिव्य-मानव-तर्पण (४) दिव्य-पितृ-तर्पण (५) यम-तर्पण (६) मनुष्य-पितृ-तर्पण। सभी तर्पण नीचे लिखे क्रम से किये जाते हैं।

॥ देव तर्पणम् ॥

देव शक्तियाँ ईश्वर की वे महान् विभूतियाँ हैं, जो मानव-कल्याण में सदा निःस्वार्थ भाव से प्रयत्नरत हैं। जल, वायु, सूर्य, अग्नि, चन्द्र, विद्युत् तथा अवतारी ईश्वर अंशों की मुक्त आत्माएँ एवं विद्या, बुद्धि, शक्ति, प्रतिभा, करुणा, दया, प्रसन्नता, पवित्रता, जैसी सत्प्रवृत्तियाँ सभी देव शक्तियों में आती हैं। यद्यपि ये दिखाई नहीं देतीं, तो भी इनके अनन्त उपकार हैं। यदि इनका लाभ न मिले, तो मनुष्य के लिए जीवित रह सकना भी सम्भव न हो। इनके प्रति कृतज्ञता की भावना व्यक्त करने के लिए यह देव-तर्पण किया जाता है।

यजमान दोनों हाथों की अनामिका अँगुलियों में पवित्री धारण करें। हाथ में जल-अक्षत लेकर नीचे लिखे मन्त्र से देव आवाहन करें।

ॐ आगच्छन्तु महाभागा, विश्वेदेवा महाबलाः।
ये तर्पणेऽत्र विहिताः, सावधाना भवन्तु ते॥

जल में चावल डालें। कुश-मोटक सीधे ही लें। यज्ञोपवीत सव्य (बायें कन्धे पर) सामान्य स्थिति में रखें। तर्पण के समय अंजलि में जल भरकर सभी अँगुलियों के अग्र भाग के सहारे अर्पित करें। इसे देवतीर्थ मुद्रा कहते हैं। प्रत्येक देवशक्ति के लिए एक-एक अंजलि जल डालें। पूर्वाभिमुख होकर देते चलें।

ॐ ब्रह्मादयो देवाः आगच्छन्तु गृहणन्तु एतान् जलाञ्जलीन्। ॐ ब्रह्मा तृप्यताम्।
ॐ विष्णुस्तृप्यताम्। ॐ रुद्रस्तृप्यताम्।
ॐ प्रजापतिस्तृप्यताम्। ॐ देवास्तृप्यन्ताम्।
ॐ छन्दांसि तृप्यन्ताम्। ॐ वेदास्तृप्यन्ताम्।
ॐ ऋषयस्तृप्यन्ताम्। ॐ पुराणाचार्यास्तृप्यन्ताम्।
ॐ गन्धर्वास्तृप्यन्ताम्। ॐ इतराचार्यास्तृप्यन्ताम्।
ॐ संवत्सरः सावयवस्तृप्यताम्। ॐ देव्यस्तृप्यन्ताम्।
ॐ अप्सरसस्तृप्यन्ताम्। ॐ देवानुगास्तृप्यन्ताम्।
ॐ नागास्तृप्यन्ताम्। ॐ सागरास्तृप्यन्ताम्।
ॐ पर्वतास्तृप्यन्ताम्। ॐ सरितस्तृप्यन्ताम्।
ॐ मनुष्यास्तृप्यन्ताम्। ॐ यक्षास्तृप्यन्ताम्।
ॐ रक्षांसि तृप्यन्ताम्। ॐ पिशाचास्तृप्यन्ताम्।
ॐ सुपर्णास्तृप्यन्ताम्। ॐ भूतानि तृप्यन्ताम्।
ॐ पशवस्तृप्यन्ताम्। ॐ वनस्पतयस्तृप्यन्ताम्।
ॐ ओषधयस्तृप्यन्ताम्। ॐ भूतग्रामः चतुर्विधस्तृप्यताम्।

॥ ऋषि तर्पण ॥

दूसरा तर्पण ऋषियों के लिए है। व्यास, वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य, कात्यायन, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र, नारद,चरक, सुश्रुत, पाणिनि, दधीचि आदि ऋषियों के प्रति श्रद्धा की अभिव्यक्ति ऋषि तर्पण द्वारा की जाती है। ऋषियों को भी देवताओं की तरह देवतीर्थ से एक-एक अंजलि जल दिया जाता है।

ॐ मरीच्यादि दशऋषयः आगच्छन्तु गृहणन्तु एतान्जलाञ्जलीन्। ॐ मरीचिस्तृप्यताम्। ॐ अत्रिस्तृप्यताम्।
ॐ अंगिराः तृप्यताम्। ॐ पुलस्त्यस्तृप्यताम्।
ॐ पुलहस्तृप्यताम्। ॐ क्रतुस्तृप्यताम्।
ॐ वसिष्ठस्तृप्यताम्। ॐ प्रचेतास्तृप्यताम्।
ॐ भृगुस्तृप्यताम्। ॐ नारदस्तृप्यताम्।

॥ दिव्य-मनुष्य तर्पण ॥

तीसरा तर्पण दिव्य-मानवों के लिए है। जो पूर्णरूप से समस्त जीवन को लोक कल्याण के लिए अर्पित नहीं कर सके; पर अपना, अपने परिजनों का भरण-पोषण करते हुए लोकमंगल के लिए अधिकाधिक त्याग-बलिदान करते रहे, वे दिव्य मानव हैं। राजा हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, शिवि, जनक, पाण्डव, शिवाजी, प्रताप, भामाशाह, तिलक जैसे महापुरुष इसी श्रेणी में आते हैं।

दिव्य मनुष्य तर्पण उत्तराभिमुख किया जाता है। जल में जौ डालें। जनेऊ कण्ठ में माला की तरह रखें। कुश हाथों में आड़े कर लें। कुशों के मध्य भाग से जल दिया जाता है। अंजलि में जल भरकर कनिष्ठा (छोटी उँगली) की जड़ के पास से जल छोड़ें, इसे प्राजापत्य तीर्थ मुद्रा कहते हैं। प्रत्येक सम्बोधन के साथ दो-दो अंजलि जल दें -

ॐ सनकादयः सप्तर्षयः आगच्छन्तु गृहणन्तु एतान् जलाञ्जलीन्। ॐ सनकस्तृप्यताम् ॥२॥
ॐ सनन्दनस्तृप्यताम् ॥२॥ ॐ सनातनस्तृप्यताम् ॥२॥
ॐ कपिलस्तृप्यताम् ॥२॥ ॐ आसुरिस्तृप्यताम् ॥२॥
ॐ वोढुस्तृप्यताम् ॥२॥ ॐ पञ्चशिखस्तृप्यताम् ॥२॥

॥ दिव्य-पितृ-तर्पण ॥

चौथा तर्पण दिव्य-पितरों के लिए है। जो कोई लोकसेवा एवं तपश्चर्या तो नहीं कर सके, पर अपना चरित्र हर दृष्टि से आदर्श बनाये रहे, उस पर किसी तरह की आँच न आने दी। अनुकरण, परम्परा एवं प्रतिष्ठा की सम्पत्ति पीछे वालों के लिए छोड़ गये। ऐसे लोग भी मानव मात्र के लिए वन्दनीय हैं, उनका तर्पण भी ऋषि एवं दिव्य मानवों की तरह ही श्रद्धापूर्वक करना चाहिए।

इसके लिए दक्षिणाभिमुख हों। वामजानु (बायाँ घुटना मोड़कर बैठें) जनेऊ अपसव्य (दाहिने कन्धे पर सामान्य से उल्टी स्थिति में) रखें। कुशा दुहरे कर लें। जल में तिल डालें। अञ्जलि में जल लेकर दाहिने हाथ के अँगूठे के सहारे जल गिराएँ। इसे पितृतीर्थ मुद्रा कहते हैं। प्रत्येक पितृ को तीन-तीन अञ्जलि जल दें।

ॐ कव्यवाडादयो दिव्यपितरः आगच्छन्तु गृहणन्तु एतान् जलाञ्जलीन्। ॐ कव्यवाडनलस्तृप्यताम्, इदं सतिलं जलं (गंगाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः ॥३॥ ॐ सोमस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गंगाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः ॥३॥ ॐ यमस्तृप्यताम्, इदं सतिलं जलं (गंगाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः ॥३॥ ॐ अर्यमा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गंगाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः ॥३॥ ॐ अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम् इदं सतिलं जलं (गंगाजलं वा) तेभ्यः स्वधा नमः ॥३॥ ॐ सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम् इदं सतिलं जलं (गंगाजलं वा) तेभ्यः स्वधा नमः ॥३॥ ॐ बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम् इदं सतिलं जलं (गंगाजलं वा) तेभ्यः स्वधा नमः ॥३॥

॥ यम तर्पण ॥

यम नियन्त्रण-कर्त्ता शक्तियों को कहते हैं। जन्म-मरण की व्यवस्था करने वाली शक्ति को यम कहते हैं। मृत्यु को स्मरण रखें, मरने के समय पश्चात्ताप न करना पड़े, इसका ध्यान रखें और उसी प्रकार की अपनी गतिविधियाँ निर्धारित करें, तो समझना चाहिए कि यम को प्रसन्न करने वाला तर्पण किया जा रहा है। राज्य शासन को भी यम कहते हैं। अपने शासन को परिपुष्ट एवं स्वस्थ बनाने के लिये प्रत्येक नागरिक को, जो कर्त्तव्य पालन करना है, उसका स्मरण भी यम तर्पण द्वारा किया जाता है। अपने इन्द्रिय निग्रहकर्त्ता एवं कुमार्ग पर चलने से रोकने वाले विवेक को यम कहते हैं। इसे भी निरन्तर पुष्ट करते चलना हर भावनाशील व्यक्ति का कर्त्तव्य है। इन कर्त्तव्यों की स्मृति यम-तर्पण द्वारा की जाती है। दिव्य पितृ तर्पण की तरह पितृतीर्थ से तीन-तीन अंजलि जल यमों को भी दिया जाता है।

ॐ यमादिचतुर्दशदेवाः आगच्छन्तु गृहणन्तु एतान् जलाञ्जलीन्। ॐ यमाय नमः ॥३॥ ॐ धर्मराजाय नमः ॥३॥ ॐ मृत्यवे नमः ॥३॥ ॐ अन्तकाय नमः ॥३॥ ॐ वैवस्वताय नमः ॥३॥ ॐ कालाय नमः ॥३॥ ॐ सर्वभूतक्षयाय नमः ॥३॥ ॐ औदुम्बराय नमः ॥३॥ ॐ दध्नाय नमः ॥३॥ ॐ नीलाय नमः ॥३॥ ॐ परमेष्ठिने नमः ॥३॥ ॐ वृकोदराय नमः ॥३॥ ॐ चित्राय नमः ॥३॥ ॐ चित्रगुप्ताय नमः ॥३॥

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रों से यम देवता को नमस्कार करें-

ॐ यमाय धर्मराजाय, मृत्यवे चान्तकाय च।
वैवस्वताय कालाय, सर्वभूतक्षयाय च॥
औदुम्बराय दध्नाय, नीलाय परमेष्ठिने।
वृकोदराय चित्राय, चित्रगुप्ताय वै नमः॥

॥ मनुष्य- पितृ - तर्पण ॥

इसके बाद अपने परिवार से सम्बन्धित दिवंगत नर-नारियों का क्रम आता है।१- पिता, बाबा, परबाबा, माता, दादी, परदादी।२- नाना,परनाना, बूढ़े परनाना, नानी, परनानी, बूढ़ी परनानी।३- पत्नी, पुत्र, पुत्री, चाचा, ताऊ, मामा, भाई, बुआ, मौसी, बहिन, सास, ससुर, गुरु, गुरुपत्नी, शिष्य, मित्र आदि। यह तीन वंशावलियाँ तर्पण के लिए हैं। पहले स्वगोत्र तर्पण किया जाता है

.....गोत्रोत्पन्नाः अस्मत् पितरः आगच्छन्तु गृहणन्तु एतान् जलाञ्जलीन्। अस्मत्पिता (पिता) **अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३॥ अस्मत्पितामहः** (दादा) **अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो रुद्ररूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३॥ अस्मत्प्रपितामहः** (परदादा) **अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो आदित्यरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३॥ अस्मन्माता** (माता) **अमुकी देवी दा अमुक सगोत्रा गायत्रीरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३॥ अस्मत्पितामही** (दादी) **अमुकी देवी दा अमुक सगोत्रा सावित्रीरूपा तृप्यताम् इदं**

सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३ ॥ अस्मत्प्रपितामही (परदादी) **अमुकी देवी दा अमुक सगोत्रा लक्ष्मीरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३ ॥ अस्मत्सापत्नमाता** (सौतेली माँ) **अमुकी देवी दा अमुकसगोत्रा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३ ॥**

॥ द्वितीय गोत्र तर्पण ॥

इसके बाद द्वितीय गोत्र मातामह आदि का तर्पण करें। यहाँ यह भी पहले की भाँति निम्नलिखित वाक्यों को तीन-तीन बार पढ़कर तिल सहित जल की तीन-तीन अञ्जलियाँ पितृतीर्थ से दें यथा-

अस्मन्मातामहः (नाना) **अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३ ॥ अस्मत्प्रमातामहः** (परनाना) **अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो रुद्ररूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३ ॥ अस्मद्वृद्धप्रमातामहः** (बूढ़े परनाना) **अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो आदित्यरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३ ॥ अस्मन्मातामही** (नानी) **अमुकी देवी दा अमुकसगोत्रा लक्ष्मीरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३ ॥ अस्मत्प्रमातामही** (परनानी) **अमुकी देवी दा अमुकसगोत्रा रुद्ररूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३ ॥ अस्मद्वृद्धप्रमातामही**(बूढ़ीपरनानी) **अमुकीदेवीदाअमुक सगोत्रा आदित्यरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३ ॥**

॥ इतर तर्पण ॥

जिनको आवश्यक है, केवल उन्हीं के लिए तर्पण कराया जाए—

अस्मत्पत्नी अमुकी देवी दा अमुकसगोत्रा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३ ॥ अस्मत्सुतः (बेटा) **अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३ ॥ अस्मत्कन्या** (बेटी) **अमुकी देवीदा अमुकसगोत्रा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३ ॥**

अस्मत्पितृव्यः (चाचा) अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो वसुरूपस्तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ।।३ ।। अस्मन्मातुलः (मामा) अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो वसुरूपस्तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ।।३ ।। अस्मद्भ्राता (अपना भाई) अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो वसुरूपस्तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ।।३ ।। अस्मत्सापत्नभ्राता (सौतेला भाई) अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो वसुरूपस्तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ।।३ ।। अस्मत्पितृभगिनी (बुआ) अमुकी देवी दा अमुकसगोत्रा वसुरूपा तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ।।३ ।। अस्मन्मातृभगिनी (मौसी) अमुकी देवी दा अमुकसगोत्रा वसुरूपा तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ।।३ ।। अस्मदात्मभगिनी (अपनी बहिन) अमुकी देवी दा अमुकसगोत्रा वसुरूपा तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ।।३ ।। अस्मत्सापत्नभगिनी (सौतेली बहिन) अमुकी देवी दा अमुकसगोत्रा वसुरूपा तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ।।३ ।। अस्मत् श्वशुरः (श्वसुर) अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो वसुरूपस्तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ।।३ ।। अस्मत् श्वसुरपत्नी (सास) अमुकी देवी दा अमुकसगोत्रा वसुरूपा तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ।।३ ।। अस्मद्-गुरुः अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो वसुरूपस्तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ।।३ ।। अस्मद् आचार्यपत्नी अमुकी देवी दा अमुकसगोत्रा वसुरूपा तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ।।३ ।। अस्मत् शिष्यः अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो वसुरूप-स्तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ।।३ ।। अस्मत्सखा अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो वसुरूपस्तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ।।३ ।। अस्मद् आप्तपुरुषः (सम्माननीय पुरुष) अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो वसुरूपस्तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ।।३ ।। अस्मत् पतिः अमुकशर्मा अमुक सगोत्रो वसुरूपस्तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ।।३ ।।

निम्न मन्त्र से पूर्व विधि से प्राणिमात्र की तुष्टि के लिए जल धार छोड़ें—

ॐ देवासुरास्तथा यक्षा, नागा गन्धर्वराक्षसाः ।
पिशाचा गुह्यकाः सिद्धाः, कूष्माण्डास्तरवः खगाः ॥
जलेचरा भूनिलया, वाय्वाधाराश्च जन्तवः ।
प्रीतिमेते प्रयान्त्वाशु, मद्दत्तेनाम्बुनाखिलाः ॥
नरकेषु समस्तेषु, यातनासु च ये स्थिताः ।
तेषामाप्यायनायैतद्, दीयते सलिलं मया ॥
ये बान्धवाऽबान्धवा वा, येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु, ये चास्मत्तोयकांक्षिणः ॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं, देवर्षिपितृमानवाः ।
तृप्यन्तु पितरः सर्वे, मातृमातामहादयः ॥
अतीतकुलकोटीनां, सप्तद्वीपनिवासिनाम् ।
आब्रह्मभुवनाल्लोकाद्, इदमस्तु तिलोदकम् ॥
येऽबान्धवा बान्धवा वा, येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु, मया दत्तेन वारिणा ॥

॥ वस्त्र-निष्पीडन ॥

शुद्ध वस्त्र जल में डुबोएँ और बाहर लाकर मन्त्र को पढ़ते हुए अपसव्य भाव से अपने बायें भाग में भूमि पर उस वस्त्र को निचोड़ें (यदि घर में किसी मृत पुरुष का वार्षिक श्राद्ध कर्म हो, तो वस्त्र-निष्पीडन नहीं करना चाहिए ।)

ॐ ये के चास्मत्कुले जाता, अपुत्रा गोत्रिणो मृताः ।
ते गृहणन्तु मया दत्तं, वस्त्रनिष्पीडनोदकम् ॥

॥ भीष्म तर्पण ॥

अन्त में भीष्म तर्पण किया जाता है । ऐसे परमार्थ परायण महामानव, जिन्होंने उच्च उद्देश्यों के लिए अपना वंश चलाने का मोह नहीं किया, भीष्म उनके प्रतिनिधि माने गये हैं, ऐसी सभी श्रेष्ठात्माओं को जलदान दें—

ॐ वैयाघ्रपदगोत्राय, सांकृतिप्रवराय च ।
गंगापुत्राय भीष्माय, प्रदास्येऽहं तिलोदकम् ॥
अपुत्राय ददाम्येतत्, सलिलं भीष्मवर्मणे ॥

॥ देवार्घ्यदान ॥

भीष्म तर्पण के बाद सव्य होकर पूर्व दिशा को मुख करें। नीचे लिखे मन्त्रों से देवार्घ्यदान करें। अञ्जलि में जल भरकर प्रत्येक मन्त्र के साथ जलधार अँगुलियों के अग्रभाग से चढ़ाएँ और नमस्कार करें। भावना करें कि अपनी भावश्रद्धा को इन असीम शक्तियों में होमते हुए आन्तरिक विकास की भूमिका बना रहे हैं। प्रथम अर्घ्य सृष्टि निर्माता ब्रह्मा को-

ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्, विसीमतः सुरुचो वेनऽ आवः। स बुध्न्याऽ उपमाऽ अस्य विष्ठाः, सतश्च योनिमसतश्च विवः॥ ॐ ब्रह्मणे नमः॥ -१३.३

दूसरा अर्घ्य पोषणकर्त्ता भगवान् विष्णु को-

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे, त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पा थं्ऽसुरे स्वाहा॥ ॐ विष्णवे नमः॥ ५.१५

तीसरा अर्घ्य अनुशासन-परिवर्तन के नियन्ता शिव-रुद्र महादेव को-

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यवऽ, उतो तऽ इषवे नमः।
बाहुभ्यामुत ते नमः॥ ॐ रुद्राय नमः॥ -१६.१

चौथा अर्घ्य भूमण्डल के चेतना- केन्द्र सवितादेव सूर्य को-

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ ॐ सवित्रे नमः॥ ३.३५

पाँचवाँ अर्घ्य प्रकृति का संतुलन बनाये रखने वाले देव-मित्र के लिए-

ॐ मित्रस्य चर्षणीधृतो, ऽवो देवस्य सानसि।
द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम्॥ ॐ मित्राय नमः॥ ११.६२

छठवाँ अर्घ्य तर्पण के माध्यम वरुणदेव के लिए-

ॐ इमं मे वरुण श्रुधी, हवमद्या च मृडय।
त्वामवस्युराचके।ॐ वरुणाय नमः॥ -२१.१

॥ नमस्कार ॥

अब खड़े होकर पूर्व की ओर से दिग्देवताओं को क्रमशः निर्दिष्ट दिशाओं में नमस्कार करें—

'ॐ इन्द्राय नमः' प्राच्यै ॥ 'ॐ अग्नये नमः' आग्नेय्यै ।
'ॐ यमाय नमः' दक्षिणायै ॥ 'ॐ निर्ऋतये नमः' नैर्ऋत्यै ॥
'ॐ वरुणाय नमः' पश्चिमायै ॥ 'ॐ वायवे नमः' वायव्यै ॥
'ॐ सोमाय नमः' उदीच्यै ॥ 'ॐ ईशानाय नमः' ऐशान्यै ॥
'ॐ ब्रह्मणे नमः' ऊर्ध्वायै ॥ 'ॐ अनन्ताय नमः' अधरायै ॥

इसके बाद जल में नमस्कार करें ।

ॐ ब्रह्मणे नमः । ॐ अग्नये नमः । ॐ पृथिव्यै नमः ।
ॐ ओषधिभ्यो नमः ।ॐ वाचे नमः । ॐ वाचस्पतये नमः ।
ॐ महद्भ्यो नमः । ॐ विष्णवे नमः । ॐ अद्भ्यो नमः ।
ॐ अपाम्पतये नमः । ॐ वरुणाय नमः ।

॥ सूर्योपस्थान ॥

मस्तक और हाथ गीले करें । सूर्य की ओर मुख करके हथेलियाँ कंधों से ऊपर करके सूर्य की ओर करें । सूर्यनारायण का ध्यान करते हुए मन्त्र पाठ करें । अन्त में नमस्कार करें और मस्तक-मुख आदि पर हाथ फेरें ।

ॐ अदृश्रमस्य केतवो, विरश्मयो जनाँ२अनु। भ्राजन्तो अग्नयो यथा। उपयामगृहीतोऽसि, सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते, योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय। सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं, देवेष्वसि भ्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ॥ - ८.४०

॥ मुखमार्जन - स्वतर्पण ॥

मन्त्र के साथ यजमान अपना मुख धोये, आचमन करे । भावना करें कि अपनी काया में स्थित जीवात्मा की तुष्टि के लिए भी प्रयास करेंगे ।

ॐ संवर्चसा पयसा सन्तनूभिः, अगन्महि मनसा स ꣳ शिवेन। त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायः, अनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥- २.२४

तर्पण के बाद पंच यज्ञ का क्रम चलाया जाता है ।

॥ ब्रह्मयज्ञ ॥

ब्रह्मयज्ञ में गायत्री विनियोग होता है । मरणोत्तर संस्कार के संदर्भ में एकत्रित सभी कुटुम्बी-हितैषी परिजन एक साथ बैठें। मृतात्मा के

स्नेह-उपकारों का स्मरण करें। उसकी शान्ति-सद्‌गति की कामना व्यक्त करते हुए सभी लोग भावनापूर्वक पाँच मिनट गायत्री मन्त्र का मानसिक जप करें, अन्त में अपने जप का पुण्य मृतात्मा के कल्याणार्थ अर्पित करने का भाव करें- यह न्यूनतम है। यदि सम्भव हो, तो शुद्धि दिवस के बाद त्रयोदशी तक भावनाशील परिजन मिल-जुलकर गायत्री जप का एक लघु अनुष्ठान पूरा कर लें। ब्रह्मयज्ञ को उसकी पूर्णाहुति मानें। संकल्प बोलें-

...नामाहं..नाम्नः प्रेतत्वनिवृत्तिद्वारा ब्रह्मलोकावाप्तये... परिमाणं गायत्री महामन्त्रानुष्ठानपुण्यं श्रद्धापूर्वकम् अहं समर्पयिष्ये।

॥ देवयज्ञ ॥

देवयज्ञ में देववृत्तियों का पोषण किया जाए। दुष्प्रवृत्तियों के त्याग और सत्प्रवृत्तियों के अभ्यास का उपक्रम अपनाने से देवशक्तियाँ तुष्ट होती हैं, देववृत्तियाँ पुष्ट होती हैं। श्राद्ध के समय संस्कार करने वाले प्रमुख परिजन सहित उपस्थित सभी परिजनों को इस यज्ञ में यथाशक्ति भाग लेना चाहिए। अपने स्वभाव के साथ जुड़ी दुष्प्रवृत्तियों को सदैव के लिए या किसी अवधि तक के लिए छोड़ने, परमार्थपरक गतिविधियों को अपनाने का संकल्प कर लिया जाए, उसका पुण्य मृतात्मा के हितार्थ अर्पित किया जाए। संकल्प-

...नामाहं..नामकमृतात्मनः देवगतिप्रदानार्थं...दिनानि यावत् मासपर्यन्तं-वर्षपर्यन्तं..दुष्प्रवृत्त्युन्मूलनैः... सत्प्रवृत्तिसंधारणैः जायमानं पुण्यं मृतात्मनः समुत्कर्षणाय श्रद्धापूर्वकं अहं समर्पयिष्ये।

॥ पितृयज्ञ ॥

यह कृत्य पितृयज्ञ के अन्तर्गत किया जाता है। जिस प्रकार तर्पण में जल के माध्यम से अपनी श्रद्धा व्यक्त की जाती है, उसी प्रकार हविष्यान्न के माध्यम से अपनी श्रद्धाभिव्यक्ति की जानी चाहिए। मरणोत्तर संस्कार में १२ पिण्डदान किये जाते हैं-जौ या गेहूँ के आटे में तिल, शहद, घृत, दूध मिलाकर लगभग एक-एक छटाँक आटे के पिण्ड बनाकर एक पत्तल पर रख लेने चाहिए। संकल्प के बाद एक-एक करके यह पिण्ड जिस पर रखे जा सकें,

ऐसी एक पत्तल समीप ही और रख लेनी चाहिए।

छः तर्पण जिनके लिए किये गये थे, उनमें से प्रत्येक वर्ग के लिए एक-एक पिण्ड है। सातवाँ पिण्ड मृतात्मा के लिए है। अन्य पाँच पिण्ड उन मृतात्माओं के लिए हैं, जो पुत्रादि रहित हैं, अग्निदग्ध हैं, इस या किसी जन्म के बन्धु हैं, उच्छिन्न कुल, वंश वाले हैं, उन सबके निमित्त ये पाँच पिण्ड समर्पित हैं। ये बारहों पिण्ड पक्षियों के लिए अथवा गाय के लिए किसी उपयुक्त स्थान पर रख दिये जाते हैं। मछलियों को चुगाये जा सकते हैं। पिण्ड रखने के निमित्त कुश बिछाते हुए निम्न मन्त्र बोलें।

ॐ कुशोऽसि कुश पुत्रोऽसि, ब्रह्मणा निर्मितः पुरा।
त्वय्यर्चितेऽर्चितः सोऽस्तु, यस्याहं नाम कीर्तये॥

॥ पिण्ड समर्पण प्रार्थना ॥

पिण्ड तैयार करके रखें, हाथ जोड़कर पिण्ड समर्पण के भाव सहित नीचे लिखे मन्त्र बोले जाएँ -

ॐ आब्रह्मणो ये पितृवंशजाता, मातुस्तथा वंशभवा मदीयाः।
वंशद्वये ये मम दासभूता, भृत्यास्तथैवाश्रित सेवकाश्च॥
मित्राणि शिष्याः पशवश्च वृक्षाः, दृष्टाश्च स्पृष्टाश्च कृतोपकाराः।
जन्मान्तरे ये मम संगताश्च, तेषां स्वधा पिण्डमहं ददामि॥

॥ पिण्डदान ॥

पिण्ड दाहिने हाथ में लिया जाए। मन्त्र के साथ पितृतीर्थ मुद्रा से पिण्ड किसी थाली या पत्तल में क्रमशः स्थापित करें—

१. प्रथम पिण्ड देवताओं के निमित्त—

ॐ उदीरतामवर उत्परास, ऽ उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।
असुं यऽईयुरवृका ऋतज्ञाः, ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु। -१९.४९

२. दूसरा पिण्ड ऋषियों के निमित्त—

ॐ अंगिरसो नः पितरो नवग्वा, अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः।
तेषां वय (ँ) सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम॥ - १९.५०

३. तीसरा पिण्ड दिव्य मानवों के निमित्त—

ॐ आयन्तु नः पितरः सोम्यासः, अग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः । अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तः, अधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥- १९.५८

४. चौथा पिण्ड दिव्य पितरों के निमित्त—

ॐ ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं, पयः कीलालं परिस्रुतम् ।
स्वधास्थ तर्पयत मे पितृन् ॥ २.३४

५. पाँचवाँ पिण्ड यम के निमित्त—

ॐ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः, पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः, प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । अक्षन्पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम् ।
- १९.३६

६. छठवाँ पिण्ड मनुष्य - पितरों के निमित्त—

ॐ ये चेह पितरो ये च नेह, याँश्च विद्म याँ २ उ च न प्रविद्म । त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः, स्वधाभिर्यज्ञ ँ सुकृतं जुषस्व ॥
- १९.६७

७. सातवाँ पिण्ड मृतात्मा के निमित्त—

ॐ नमो वः पितरो रसाय, नमो वः पितरः शोषाय, नमो वः पितरो जीवाय, नमो वः पितरः स्वधायै, नमो वः पितरो घोराय, नमो वः पितरो मन्यवे, नमो वः पितरः पितरो, नमो वो गृहान्नः पितरो, दत्त सतो वः पितरो देष्मैतद्वः, पितरो वासऽआधत्त । -२.३२

८. आठवाँ पिण्ड पुत्रदार रहितों के निमित्त—

ॐ पितृवंशे मृता ये च, मातृवंशे तथैव च ।
गुरुश्वसुरबन्धूनां, ये चान्ये बान्धवाः स्मृताः ॥
ये मे कुले लुप्तपिण्डाः, पुत्रदारविवर्जिताः ।
तेषां पिण्डो मया दत्तो, ह्यक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥

९. नौवाँ पिण्ड उच्छिन्न कुलवंश वालों के निमित्त —

ॐ उच्छिन्नकुलवंशानां, येषां दाता कुले नहि।
धर्मपिण्डो मया दत्तो, ह्यक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥

१०. दसवाँ पिण्ड गर्भपात से मर जाने वालों के निमित्त —

ॐ विरूपा आमगर्भाश्च, ज्ञाताज्ञाताः कुले मम।
तेषां पिण्डो मया दत्तो, ह्यक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥

११.ग्यारहवाँ पिण्ड अग्निदग्धों आदि के निमित्त —

ॐ अग्निदग्धाश्च ये जीवा, ये प्रदग्धाः कुले मम।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु, धर्मपिण्डं ददाम्यहम् ॥

१२. बारहवाँ पिण्ड इस जन्म या अन्य जन्म के बंधुओं के निमित्त —

ॐ ये बान्धवा ऽ बान्धवा वा, ये ऽन्यजन्मनि बान्धवाः।
तेषां पिण्डो मया दत्तो, ह्यक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥

यदि तीर्थ श्राद्ध में, पितृपक्ष में से एक से अधिक पितरों की शान्ति के लिए पिण्ड अर्पित करने हों, तो नीचे लिखे वाक्य में पितरों के नाम-गोत्र आदि जोड़ते हुए वांछित संख्या में पिण्डदान किये जा सकते हैं।

...गोत्रस्य अस्मद्..नाम्नो, अक्षयतृप्त्यर्थं इदं पिण्डं तस्मै स्वधा ॥

पिण्ड समर्पण के बाद पिण्डों पर क्रमशः दूध, दही और मधु चढ़ाकर पितरों से तृप्ति की प्रार्थना की जाती है।

(१) निम्न मन्त्र पढ़ते हुए पिण्ड पर दूध चढ़ाएँ—

ॐ पयः पृथिव्यां पयऽओषधीषु, पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥ -१८.३६

पिण्डदाता निम्नांकित मन्त्रांश को दुहराएँ—

ॐ दुग्धम्। दुग्धम्। दुग्धम्। तृप्यध्वम्। तृप्यध्वम्। तृप्यध्वम् ॥

(२) निम्नांकित मन्त्र से पिण्ड पर दही चढ़ाएँ—

ॐ दधिक्राव्णो ऽ अकारिषं, जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।
सुरभि नो मुखाकरत्प्रण, आयू ँ षि तारिषत् ॥ २३.३२

पिण्डदाता निम्नांकित मन्त्रांश दुहराएँ—

ॐ दधि। दधि। दधि। तृप्यध्वम्। तृप्यध्वम्। तृप्यध्वम्।

(३) नीचे लिखे मन्त्रों के साथ पिण्डों पर शहद चढ़ाएँ।

ॐ मधुवाता ऽऋतायते, मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। ॐ मधु नक्तमुतोषसो, मधुमत्पार्थिव छं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता। ॐ मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ऽअस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः। १३.२७-२९

पिण्डदानकर्त्ता निम्नांकित मन्त्रांश को दुहराएँ—

ॐ मधु। मधु। मधु। तृप्यध्वम्। तृप्यध्वम्। तृप्यध्वम्॥

॥ भूतयज्ञ-पंचबलि ॥

भूतयज्ञ के निमित्त पंचबलि प्रक्रिया की जाती है। विभिन्न योनियों में संव्याप्त जीव चेतना की तुष्टि हेतु भूतयज्ञ किया जाता है। अलग-अलग पत्तों या एक ही बड़ी पत्तल पर, पाँच स्थानों पर भोज्य पदार्थ रखे जाते हैं। उर्द-दाल की टिकिया तथा दही इसके लिए रखा जाता है। पाँचों भाग रखें। क्रमशः मन्त्र बोलते हुए एक-एक भाग पर अक्षत छोड़कर बलि समर्पित करें।

(१) *गोबलि* - पवित्रता की प्रतीक गऊ के निमित्त-

ॐ सौरभेय्यः सर्वहिताः, पवित्राः पुण्यराशयः।
प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं, गावस्त्रैलोक्यमातरः॥
इदं गोभ्यः इदं न मम।

(२) *कुक्कुरबलि* - कर्त्तव्यनिष्ठा के प्रतीक श्वान के निमित्त—

ॐ द्वौ श्वानौ श्यामशबलौ, वैवस्वतकुलोद्भवौ।
ताभ्यामन्नं प्रदास्यामि, स्यातामेतावहिंसकौ॥
इदं श्वभ्यां इदं न मम॥

(३) *काकबलि* - मलीनता निवारक काक के निमित्त—

ॐ ऐन्द्रवारुणवायव्या, याम्या वै नैर्ऋतास्तथा।
वायसाः प्रतिगृह्णन्तु, भूमौ पिण्डं मयोज्झितम्॥
इदं वायसेभ्यः इदं न मम॥

(४) *देवादिबलि*- देवत्व संवर्धक शक्तियों के निमित्त—

ॐ देवाः मनुष्याः पशवो वयांसि, सिद्धाः सयक्षोरगदैत्यसंघाः।
प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता, ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम्॥
इदं अन्नं देवादिभ्यः इदं न मम।

(५) *पिपीलिकादिबलि* - श्रमनिष्ठा एवं सामूहिकता की प्रतीक चींटियों के निमित्त—

ॐ पिपीलिकाः कीटपतंगकाद्याः, बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः ।
तेषां हि तृप्त्यर्थमिदं मयान्नं, तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु ॥
इदं अन्नं पिपीलिकादिभ्यः इदं न मम ॥

बाद में गोबलि गऊ को, कुक्कुरबलि श्वान को, काकबलि पक्षियों को, देवबलि कन्या को तथा पिपीलिकादिबलि चींटी आदि को खिला दिया जाए ।

॥ मनुष्ययज्ञ-श्राद्ध संकल्प ॥

इसके अन्तर्गत दान का विधान है । दिवंगत आत्मा ने उत्तराधिकार में जो छोड़ा है, उसमें से उतना अंश ही स्वीकार करना चाहिए, जो पीछे वाले बिना कमाऊ बालकों या स्त्रियों के निर्वाह के लिए अनिवार्य हो-कमाऊ सन्तान को उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए । दिवंगत आत्मा के अन्य अहसान ही इतने हैं कि उन्हें अनेक जन्मों तक चुकाना पड़ेगा, फिर नया ऋण भारी ब्याज सहित चुकाने के लिए और क्यों सिर पर लादा जाए । असमर्थ स्थिति में अभिभावकों की सेवा स्वीकार करना उचित था, पर जब वयस्क और कमाऊ हो गये, तो फिर उसे लेकर "हराम-खाऊ" मुफ्तखोरों में अपनी गणना क्यों कराई जाए ?

पूर्वजों के छोड़े हुए धन में कुछ अपनी ओर से श्रद्धांजलि मिलाकर उनकी आत्मा के कल्याण के लिए दान कर देना चाहिए-यही सच्चा श्राद्ध है । पानी का तर्पण और आटे की गोली का पिण्डदान पर्याप्त नहीं, वह क्रिया कृत्य तो मात्र प्रतीक हैं । श्रद्धा की वास्तविक परीक्षा उस श्राद्ध में है कि पूर्वजों की कमाई को उन्हीं की सद्गति के लिए, सत्कर्मों के लिए दान रूप में समाज को वापस कर दिया जाए । अपनी कमाई का जो सदुपयोग, मोह या लोभवश स्वर्गीय आत्मा नहीं कर सकी थी, उस कमी की पूर्ति उसके उत्तराधिकारियों को कर देनी चाहिए ।

प्राचीनकाल में ब्राह्मण का व्यक्तित्व एक समग्र संस्था का प्रतिरूप था । उन्हें जो दिया जाता था, उसमें से न्यूनतम निर्वाह लेकर शेष को समाज की सत्प्रवृत्तियों में खर्च करते थे । अपना निर्वाह भी इसीलिए लेते थे कि

उन्हें निरन्तर परमार्थ प्रयोजनों में ही लगा रहना पड़ता था । आज वैसे ब्राह्मण नहीं हैं, इसलिए उनका ब्रह्मभोज भी साँप के चले जाने पर लकीर पीटने की तरह है । दोस्तों-रिश्तेदारों को मृत्यु के उपलक्ष्य में दावत खिलाना मूर्खता और उनका खाना निर्लज्जता है, इसलिए मृतकभोज की विडम्बना में न फँसकर श्राद्धधन परमार्थ प्रयोजन के लिए लगा देना चाहिए , जिससे जनमानस में सद्ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न हो और वे कल्याणकारी सत्पथ पर चलने की प्रेरणा प्राप्त करें-यही सच्चा श्राद्ध है ।

कन्या भोजन, दीन-अपाहिज, अनाथों को जरूरत की चीजें देना- इस प्रक्रिया के प्रतीकात्मक उपचार हैं। इसके लिए तथा लोक हितकारी पारमार्थिक कार्यों के लिए दिये जाने वाले दान की घोषणा श्राद्ध संकल्प के साथ की जानी चाहिए ।

॥ संकल्प ॥

नामाहं...नामकमृतात्मनः शान्ति-सद्गति-निमित्तं लोकोपयोगिकार्यार्थं..... परिमाणे धनदानस्य कन्याभोजनस्य वा श्रद्धापूर्वकं संकल्पम् अहं करिष्ये ॥

संकल्प के बाद निम्न मन्त्र बोलते हुए अक्षत- पुष्प देव वेदी पर चढ़ाएँ ।

ॐ उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि । उशन्नुशतऽ आ वह पितृन्हविषेऽअत्तवे ।।ॐ दक्षिणामारोह त्रिष्टुप् त्वाऽवतु बृहत्साम, पंचदशस्तोमो ग्रीष्मऽऋतुः क्षत्रं द्रविणम् ।।

-१९.७० ,१०.११

पंचयज्ञ पूरे करने के बाद अग्नि स्थापना करके गायत्री यज्ञ सम्पन्न करें, फिर नीचे लिखे मन्त्र से ३ विशेष आहुतियाँ दें ।

ॐ सूर्यपुत्राय विद्महे, महाकालाय धीमहि। तन्नो यमः प्रचोदयात् स्वाहा। इदं यमाय इदं न मम ।। - य० गा०

इसके बाद स्विष्टकृत-पूर्णाहुति आदि करते हुए समापन करें । विसर्जन के पूर्व पितरों तथा देव शक्तियों के लिए भोज्य पदार्थ थाली में सजाकर नैवेद्य अर्पित करें, फिर क्रमशः क्षमा प्रार्थना, पिण्ड विसर्जन, पितृ विसर्जन तथा देव विसर्जन करें ।

॥ विसर्जन ॥

पिण्ड विसर्जन- नीचे लिखे मन्त्र के साथ पिण्डों पर जल सिंचित करें ।

ॐ देवा गातुविदोगातुं , वित्त्वा गातुमित ।
मनसस्पत ऽ इमं देव, यज्ञ थं्ऽ स्वाहा वाते धाः ॥ - ८.२१

पितृ विसर्जन - पितरों का विसर्जन तिलाक्षत छोड़ते हुए करें ।

ॐ यान्तु पितृगणाः सर्वे, यतः स्थानादुपागताः ।
सर्वे ते हृष्टमनसः, सर्वान् कामान् ददन्तु मे ॥
ये लोकाः दानशीलानां, ये लोकाः पुण्यकर्मणाम् ।
सम्पूर्णान् सर्वभोगैस्तु , तान् व्रजध्वं सुपुष्कलान् ॥
इहास्माकं शिवं शान्तिः, आयुरारोग्यसम्पदः ।
वृद्धिः सन्तानवर्गस्य, जायतामुत्तरोत्तरा ॥

देव विसर्जन - अन्त में पुष्पाक्षत छोड़ते हुए देव विसर्जन करें ।

ॐ यान्तु देवगणाः सर्वे, पूजामादाय मामकीम् ।
इष्ट कामसमृद्ध्यर्थं , पुनरागमनाय च ॥

* * *

॥ जन्मदिवस संस्कार ॥

यों प्रचलित अनेक पर्व-त्यौहार आते और मनाये जाते हैं, पर व्यक्तिगत दृष्टि से मनुष्य का अपना जन्मदिन ही उसके लिए सबसे बड़े हर्ष, गौरव एवं सौभाग्य का दिन हो सकता है । राम के जन्मदिन की तिथि रामनवमी और कृष्ण का जन्मदिन-जन्माष्टमी जितनी महत्त्वपूर्ण है, उतना ही किसी सामान्य व्यक्ति के जीवन में उसका जन्मदिन किसी भी प्रकार कम आनन्द एवं उल्लास का नहीं होता । उसे ठीक तरह मनाया जाए, तो अपना प्रसुप्त आनन्द और उल्लास जगेगा । इसी अवसर पर यदि थोड़ा अधिक गम्भीर आत्म-निरीक्षण कर लिया जाए और आगे के लिए कुछ ठोस सदुपयोग की बात सोच ली जाए तो वह दिन एक नये सूर्योदय जैसा प्रकाशवान् हो सकता है । बुद्ध, वाल्मीकि, सूरदास, तुलसी, अंगुलिमाल आदि के पूर्व जीवन बहुत अच्छे न थे, पर एक दिन उनकी अन्तःस्फुरणा जग पड़ी, तो उनने अपनी दिशा ही बदल दी । यह बदलना इतना महत्त्वपूर्ण हुआ कि वे नर से नारायण बन गये । जन्म-दिन की उल्लास भरी घड़ी में यदि मनुष्य यत्किंचित् भी आत्म-निर्माण की बात सोचने लगे, तो वह उसी अनुपात में उसके सौभाग्य की घड़ी सिद्ध हो सकती है ।

जन्मदिन दिखने में सामान्य; किन्तु प्रभाव में असामान्य संस्कार है । किसी वर्ग- किसी भी स्तर के व्यक्तियों के बीच इसे लोकप्रिय बनाया जा सकता है । एक इसी संस्कार के माध्यम से जन चेतना को झकझोर कर सदाशयता से जोड़ देने का काम बड़ी कुशलता से सम्पन्न किया जा सकता है । सभी सृजन शिल्पियों को कटिबद्ध होकर इसे लोकप्रिय बनाना चाहिए ।

॥ *विशेष व्यवस्था* ॥

जन्मदिन संस्कार यज्ञ के साथ ही मनाया जाना चाहिए । अन्तःकरण को प्रभावित करने की यज्ञ की अपनी क्षमता विशेष है; परन्तु चूँकि इसे जन-जन का आन्दोलन बनाना है । इसलिए यदि परिस्थितियाँ अनुकूल न हों तो केवल दीपयज्ञ करके भी जन्मदिन संस्कार कराये जा सकते हैं । नीचे लिखी व्यवस्थाएँ पहले से बनाकर रखी जाएँ ।

पंच तत्त्व पूजन के लिए चावल की पाँच छोटी ढेरियाँ पूजन वेदी पर बना देनी चाहिए। पाँच तत्त्वों के लिए पाँच रंग के चावल भी रंग कर अलग-अलग छोटी डिब्बियों या पुड़ियों में रखे जा सकते हैं। उनकी रंगीन ढेरियाँ लगा देने से शोभा और भी अच्छी बन जाती है। तत्त्वों के क्रम और रंग इस प्रकार हैं-(१) पृथ्वी-हरा, (२) वरुण-काला, (३) अग्नि-लाल, (४) वायु-पीला, (५) आकाश-सफेद। इसी क्रम से ढेरियाँ लगाकर रखनी चाहिए।

दीपदान- जन्मोत्सव के लिए दीपक बनाकर रखें जाएँ। जितने वर्ष पूरे किये हों, उतने छोटे दीपक तथा नये वर्ष का थोड़ा बड़ा दीपक बनाया जाए। दीपक आटे के भी बनाये जा सकते हैं और मिट्टी के भी रखे जा सकते हैं। अभाव में मोमबत्तियों के टुकड़े भी प्रयुक्त किये जा सकते हैं, उन्हें थाली या ट्रे में सुन्दर आकारों में सजाकर रखना चाहिए।

व्रत धारण में क्या व्रत लिया जाना है? इसकी चर्चा पहले से ही कर लेनी चाहिए।

॥ विशेष कर्मकाण्ड ॥

अन्य संस्कारों की तरह मंगलाचरण से रक्षाविधान तक के उपचार पूरे किये जाएँ। इसके बाद क्रमशः ये कर्मकाण्ड कराये जाएँ।

॥ पंचतत्त्व पूजन ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा - शरीर पंच तत्त्वों से बना है। इस संसार का प्रत्येक पदार्थ मिट्टी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन पाँच तत्त्वों से बना है। इसलिए इस सृष्टि के आधारभूत-ये पाँच ही दिव्य तत्त्व देवता हैं। उपकारी के प्रति कृतज्ञता की भावनाओं से अन्तःकरण ओत-प्रोत रखना भारतीय संस्कृति का अविच्छिन्न अंग है। हम जड़ और चेतन सभी उपकारियों के प्रति कृतज्ञता-भावना की अभिव्यक्ति के लिए पूजा-प्रक्रिया का अवलम्बन लेते हैं। पूजा से इन जड़ पदार्थों, अदृश्य शक्तियों, स्वर्गीय आत्माओं का भले ही कोई लाभ न होता हो, पर हमारी कृतज्ञता का प्रसुप्त भाव जाग्रत् होने से हमारी आन्तरिक उत्कृष्टता बढ़ती ही है। पंच तत्त्वों का पूजन विश्व के आधार स्तम्भ होने की महत्ता के निमित्त किया जाता है।

इस पूजन का दूसरा उद्देश्य यह है कि इन पाँचों के सदुपयोग का ध्यान रखा जाए। शरीर जिन तत्त्वों से बना है, उनका यदि सही रीति-नीति से उपयोग करते रहा जाए, तो कभी भी अस्वस्थ होने का अवसर न आए। पृथ्वी से उत्पन्न अन्न का कितना, कब और कैसे उपयोग किया जाए, इसका ध्यान रखें तो पेट खराब न हो। यदि आहार की सात्त्विकता, मात्रा एवं व्यवस्था का ध्यान रखा जाए, तो न अपच हो और न किसी रोग की सम्भावना बने। जल की स्वच्छता एवं उचित मात्रा में सेवन करने का, विधिवत् स्थान का, वस्त्र, बर्तन, घर आदि की सफाई, जल के उचित प्रयोग का ध्यान रखा जाए, तो समग्र स्वच्छता बनी रहे, शरीर, मन तथा वातावरण सभी कुछ स्वच्छ रहे। अग्नि की उपयोगिता सूर्य ताप को शरीर, वस्त्र, घर आदि में पूरी तरह प्रयोग करने में है। भोजन में अग्नि का सदुपयोग भाप द्वारा पकाये जाने में है। शरीर के भीतर अग्नि ब्रह्मचर्य द्वारा सुरक्षित रहती एवं बढ़ती है। स्वच्छ वायु का सेवन, खुली जगहों में निवास, प्रातः टहलने जाना, प्राणायाम, गन्दगी से वायु का दूषित न होने देना आदि वायु की प्रतिष्ठा है। आकाश की पोल में ईथर, विचार शब्द आदि भरे पड़े हैं, उनका मानसिक एवं भावना क्षेत्र में इस प्रकार उपयोग किया जाए, कि हमारी अन्तःचेतना उत्कृष्ट स्तर की ओर चले, यह जानना, समझना आकाश तत्त्व का उपयोग है। इसी सदुपयोग के द्वारा हम सुख-शान्ति और समृद्धि का पथ-प्रशस्त कर सकते हैं। पंच तत्त्वों का पूजन, हमारा ध्यान इनके सदुपयोग की ओर आकर्षित करता है।

तीसरी प्रेरणा यह है कि शरीर पंच तत्त्वों का बना होने के कारण जरा, मृत्यु से बँधा हुआ है। यह एक वाहन और माध्यम है। जड़ होने के कारण इसका महत्त्व कम है। इसे एक उपकरण मात्र माना जाए। शरीर की सुख-सुविधा को इतना महत्त्व न दिया जाए कि आत्मा के स्वार्थ पिछड़ जाएँ। आत्मा की उन्नति के लिए पंच तत्त्वों से बना यह शरीर मिलता है, इसलिए उसका सदुपयोग निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति के लिए ही किया जाए।

क्रिया और भावना - प्रत्येक तत्त्व के पूजन के पूर्व उसकी प्रेरणाएँ उभारी जाएँ। हाथ में अक्षत, पुष्प देकर मन्त्रोच्चार के साथ सम्बन्धित प्रतीक पर अर्पित कराएँ। भावना की जाए कि सृष्टि रचना के इन घटकों के अन्दर जो सूक्ष्म संस्कार हैं, वे पूजन के द्वारा साधक को प्राप्त हो रहे हैं।

॥ पृथ्वी ॥

ॐ मही द्यौः पृथिवी च नऽ, इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः ॥ ॐ पृथिव्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि। - ८.३२

॥ वरुण ॥

ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानः, तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुश, ꣳ स मा नऽ आयुः प्रमोषीः ॥ ॐ वरुणाय नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि। -१८.४९

॥ अग्नि ॥

ॐ त्वं नो ऽ अग्ने वरुणस्य, विद्वान् देवस्य हेडोऽ अवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो,विश्वा द्वेषाꣳसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् ॥ ॐ अग्नये नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि। - २१.३

॥ वायु ॥

ॐ आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वर, ꣳ सहस्त्रिणीभिरुप याहि यज्ञम्। वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व, यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ॐ वायवे नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि। - २७.२८

॥ आकाश ॥

ॐ या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती । तया यज्ञं मिमिक्षतम्। उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां, त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा ॥ ॐ आकाशाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि। -७.११

॥ दीपदान ॥

शिक्षण और प्रेरणा - जन्मोत्सव का दूसरा कर्मकाण्ड दीपदान है । जितने वर्ष की आयु हो, उतने दीपक एक सुसज्जित चौकी पर बनाकर सजाये जाते हैं । आटे के ऊपर बत्ती वाले घृत दीप एक थाली में इस तरह सजाकर रखे जा सकते हैं कि उनका 'ॐ' स्वस्तिक अथवा कोई और सुन्दर रूप बन जाए । इन दीपकों के आस-पास पुष्प, फल, धूपबत्तियाँ, गुलदस्ते या कोई दूसरी चीजें सुन्दरता बढ़ाने के लिए रखी जा सकती हैं । कलात्मक सुरुचि भीतर हो, तो सुसज्जा के अनेक प्रकार बन सकते हैं । इन दीपकों का पूजन किया जाता है ।

जीवन का प्रत्येक वर्ष दीपक के समान प्रकाशवान् रहे, तभी उसकी सार्थकता है । दीपक स्वयं तिल-तिल करके जलता है और अन्धकार में प्रकाश उत्पन्न करता है, इस रीति-नीति का प्रतीक होने के कारण ही दीपक को प्रत्येक मांगलिक कार्य में पूजा जाता है एवं उसे प्रधानता मिलती है । हमारे जीवन की रीति-नीति भी ऐसी ही होनी चाहिए ।

दीपक को ज्ञान का प्रतीक माना जाता है । अज्ञान को अन्धकार व ज्ञान को प्रकाश की उपमा दी जाती है । जिस सीमा तक हमारा मस्तिष्क या हृदय अज्ञानग्रस्त है, उतना ही हम अन्धेरे में भटक रहे हैं । मस्तिष्क का अन्धकार दूर करने के लिए हमें शिक्षा और हृदय का अन्धकार दूर करने के लिए विद्या- ऋतम्भरा ज्ञान का अधिकाधिक मात्रा में संग्रह करना चाहिए । आत्मज्ञान का वैसा दीपक हमें अन्तःकरण में जलाना चाहिए, जैसा रामायण के उत्तरकाण्ड में विस्तारपूर्वक बताया गया है । दीपदान में ऐसी ही अनेक प्रेरणाएँ सन्निहित हैं ।

क्रिया और भावना - थाली में सजाये दीपकों को क्रमशः प्रज्वलित किया जाए । उसके साथ सस्वर गायत्री मन्त्र का पाठ चलाएँ । यदि यज्ञ न करके केवल दीपयज्ञ ही करना हो, तो गायत्री मन्त्र के साथ स्वाहा लगाकर दीपक जलाने की प्रक्रिया को आहुति मानते हुए यज्ञीय वातावरण बनाया जाए ।

भावना की जाए कि मनुष्य कितने भी कम साधनों में जी रहा हो, छोटे से नाचीज दीपक की तरह सबका प्रिय प्रकाशदाता बन सकता है । छोटी सी

पात्रता, थोड़ा सा स्नेह और जरा-सी वर्तिका (लगन) को ठीक क्रम से सजाकर ज्योतिदान प्राप्त कर सकता है। ज्योतित जीवन की कामना, प्रार्थना करते हुए दिव्य शक्तियों द्वारा उसकी पूर्ति को भावना की जानी चाहिए।

ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा। सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा। अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा। ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा॥ - ३६.२४

॥ व्रतधारण ॥

अगला क्रम जन्मोत्सव का व्रत धारण है। व्रतों के बन्धन में बँधा हुआ व्यक्ति ही किसी उच्च लक्ष्य की ओर दूर तक अग्रसर हो सकने में समर्थ होता है। मनुष्य को शुभ अवसरों पर भावनात्मक वातावरण में देवताओं की उपस्थिति में-अग्नि की साक्षी में व्रतधारण करने चाहिए और उनका पालन करने के लिए साहस एकत्रित करना चाहिए।

शिक्षण एवं प्रेरणा - दुष्प्रवृत्तियों का त्याग, व्रतशीलता का आरम्भिक चरण है। मांसाहार, तम्बाकू, भाँग, गाँजा, अफीम, शराब आदि नशों का सेवन, व्यभिचार, चोरी, बेईमानी, जुआ, फैशन-परस्ती, आलस्य, गन्दगी, क्रोध, चटोरापन, कामुकता, शेखीखोरी, कटुभाषण, ईर्ष्या, द्वेष, कृतघ्नता आदि बुराइयों को जो अपने में विद्यमान हों, उन्हें छोड़ना चाहिए। कितनी ही भयानक कुरीतियाँ हमारे समाज में ऐसी हैं, जो अतीव हेय होते हुए भी धर्म के नाम पर प्रचलित हैं। किसी वंश में जन्म लेने के कारण किसी को नीच मानना, स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा अनधिकारिणी समझना, विवाहों में उन्मादी की तरह पैसे की होली फूँकना, दहेज, मृत्युभोज, देवताओं के नाम पर पशुबलि, भूत- पलीत, टोना-टोटका, अन्धविश्वास, शरीर का छेदना या गोदना, गाली-गलौज की असभ्यता, बाल-विवाह, अनमेल विवाह, श्रम का तिरस्कार आदि अनेक सामाजिक कुरीतियाँ हमारे समाज में प्रचलित हैं। इन मान्यताओं के विरुद्ध-विद्रोह करने की आवश्यकता है। इन्हें तो स्वयं हमें ही त्यागना चाहिए। इसी प्रकार अनेक बुराइयाँ हो सकती हैं। उनमें से जो अपने में हों, उन्हें संकल्पपूर्वक त्यागने के लिए जन्म-दिन का शुभ अवसर बहुत ही उत्तम है।

यदि इस प्रकार की बुराइयाँ न हों, उन्हें पहले से ही छोड़ा जा चुका हो, तो अपने में सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्द्धन का व्रत इस अवसर पर ग्रहण करना चाहिए। रात को जल्दी सोना, प्रात: जल्दी उठना, व्यायाम, नियमित उपासना, स्वाध्याय, गुरुजनों का चरण स्पर्शपूर्वक अभिवादन, सादगी, मितव्ययिता, प्रसन्न रहने की आदत, मधुर भाषण, दिनचर्या बनाकर समय क्षेप, निरालस्य, परिवार निर्माण के लिए नियमित समय देना, लोकसेवा के लिए समयदान आदि अनेक सत्कार्य ऐसे हो सकते हैं, जो अपने गुण, कर्म, स्वभाव में सम्मिलित किये जाने चाहिए। इस प्रकार की कम से कम एक अच्छी आदत अपनाने का संकल्प लेना चाहिए और कम से कम एक बुराई भी उसी अवसर पर छोड़ देनी चाहिए। ये दुष्प्रवृत्तियाँ छोड़ने और सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने का क्रम यदि हर जन्म-दिन पर चलता रहे, तो कुछ ही वर्षों में उसका परिणाम व्यक्तित्व में कायाकल्प की तरह दृष्टिगोचर होने लगेगा और जन्मोत्सवों का क्रम जीवन में दैवी वरदान की तरह मंगलमय परिणाम प्रस्तुत कर सकेगा।

क्रिया और भावना - लिये गये व्रतों का उल्लेख किया जाए। उनका स्मरण रखते हुए व्रतपति देवशक्तियों से उनकी वृत्ति एवं शक्ति सहित मार्गदर्शन की याचना करें। दोनों हाथ उठाकर व्रतधारण के मन्त्र बोलें-

ॐ अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि
तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि ॥१॥
ॐ वायो व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि
तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि ॥२॥
ॐ सूर्य व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि
तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि ॥३॥
ॐ चन्द्र व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि
तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि ॥४॥
ॐ व्रतानां व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि
तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि ॥५॥

- मं० ब्रा० १.६.९-१३

॥ विशेष- आहुति ॥

व्रत धारण के बाद यज्ञादि क्रम पूरे किये जाएँ । गायत्री मन्त्र की आहुति के बाद मृत्युञ्जय मन्त्र की आहुतियाँ दी जाएँ । यदि केवल दीपयज्ञ किया गया हो, तो सभी लोग ५ बार मृत्युञ्जय मन्त्र का सस्वर पाठ करें ।

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे, सुगन्धिम्पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्, मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् स्वाहा ।
इदं महामृत्युञ्जयाय इदं न मम । ३.६०

इसके बाद यज्ञ के शेष उपचार पूरे करके आशीर्वाद आदि के साथ समापन किया जाए ।

***

॥ विवाह दिवस संस्कार ॥

जिनके विवाह नहीं हुए उनके संस्कार को सुयोग्य व्यवस्थापकों एवं पुरोहितों द्वारा अत्यन्त प्रभावोत्पादक बनाया जाना चाहिए; पर जिनके हो चुके हैं, उनके सम्बन्ध में "हो गया सो हो गया" कहकर छुटकारा नहीं पाया जा सकता, उनको यह लाभ पुनः मिलना चाहिए । औंधे-सीधे ढंग से बेगार भुगतने की भगदड़ में उन्हें जो मिल नहीं पाया है, इसके लिए उत्तम-सरल और उपयोगी तरीका विवाह दिवसोत्सव मनाया जाना ही हो सकता है । जिस दिन विवाह हुआ था, हर वर्ष उस दिन एक छोटा उत्सव- समारोह मनाया जाए । मित्र-परिजन एकत्रित हों, विवाह का पूरा कर्मकाण्ड तो नहीं, पर उनमें प्रयुक्त होने वाली प्रमुख क्रियाएँ पुनः की जाएँ तथा विवाह के कर्त्तव्य-उत्तरदायित्वों को नये सिरे से पुनः समझाया जाए ।

हर वर्ष इस प्रकार का व्रत धारण, प्रशिक्षण, संकल्प एवं धर्मानुष्ठान किया जाता रहे, तो उससे दोनों को अपने कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्वों को पालने-निबाहने की निश्चय ही अधिक प्रेरणा मिलेगी । उसी दिन दोनों परस्पर विचार-विनिमय करके अपनी-अपनी भूलों को सुधारने तथा एक दूसरे के अधिक समीप आने के उपाय सुझाने में सफलता प्राप्त कर सकते हैं । विवाह दिन की पुरानी आनन्दमयी स्मृति का स्मरण कर पुनः अन्तःकरण

को प्रफुल्लित कर सकते हैं। इस प्रकार वह सुनहरा दिन एक दिन के लिए हर साल नस-नाड़ियों में उल्लास भरने के लिए आ सकता है और विवाह कर्त्तव्यों को नये सिरे से निबाहने की प्रेरणा दे सकता है।

बन्दूकों के लाइसेन्स हर साल बदलने पड़ते हैं, रेडियो का लाइसेन्स हर वर्ष नया मिलता है। मोटरों के लाइसेन्स का भी हर साल नवीनीकरण करना पड़ता है। विवाह के कर्त्तव्यों को ठीक तरह पालने का लेखा-जोखा उपस्थित करने, भूल-चूक को सुधारने और अगले वर्ष सावधानी बरतने के विवाह लाइसेन्स का यदि हर वर्ष नवीनीकरण कराया जाए, तो इससे कुछ हानि नहीं, हर दृष्टि से लाभ ही लाभ है। संसार के अन्य देशों में यह उत्सव सर्वत्र मनाये जाते हैं, अन्तर इतना ही है कि वे केवल खुशी बढ़ाने के मनोरंजन तक ही उसे सीमित रखते हैं, हमें उसे धर्म प्रेरणा से ओत-प्रोत करने वाले धर्मानुष्ठान की तरह नियोजित करना है।

संकोच-अनावश्यक- इस प्रथा के प्रचलन में एक बड़ी कठिनाई यह है कि हमारे देश में विवाह को, दाम्पत्य जीवन को झिझक-संकोच एवं लज्जा का विषय माना जाने लगा है, उसे लोग छिपाते हैं। दूसरों को देखकर स्त्रियाँ अपने पतियों से घूँघट काढ़ लेती हैं और पति अपनी पत्नी की तरफ से आँखें नीची कर लेते हैं। विवाह के अवसर पर वधू बड़े संकोच के साथ डरती-झिझकती कदम उठाकर आती है, यह अनावश्यक संकोचशीलता निरर्थक है। भाई-भाइयों की तरह पति-पत्नी भी दो साथी हैं। विवाह न तो चोरी है, न पाप। दो व्यक्तियों का धर्मपूर्वक द्वैत को अद्वैत में परिणत करने का व्रत-बन्ध ही विवाह अथवा दाम्पत्य सम्बन्ध है। अवश्य ही अश्लील चेष्टाएँ अथवा भाव भंगिमाएँ खुलेरूप से निषिद्ध मानी जानी चाहिए; पर साथ-साथ बैठने-उठने, बात करने की मानवोचित रीति-नीति में अनावश्यक संकोच न बरता जाए— इसमें न तो कोई समझदारी है, न कोई तुक। इस बेतुकी को यदि हटा दिया जाए, तो इससे मर्यादा का तनिक भी उल्लंघन नहीं होता। जब अनेक अवसरों पर पति-पत्नी पास-पास बैठ सकते हैं, कोई हवन आदि धर्मकृत्य कर सकते हैं, साथ-साथ तीर्थ यात्रा आदि कर सकते हैं, तो विवाह दिवसोत्सव पर किये जानेवाले साधारण से हवन में किसी को क्यों संकोच होना चाहिए। गायत्री हवन के साथ-साथ चार-पाँच छोटे-छोटे

अन्य (विवाह दिवसोत्सव के) विधि-विधान जुड़े हुए हैं और प्रवचनों का विषय दाम्पत्य जीवन होता है । इनके अतिरिक्त और कुछ भी बात तो ऐसी नहीं है, जिसके लिए झिझक एवं संकोच किया जाए, विवाह की चर्चा करने पर जैसे वर-वधू सकुचाते हैं, वैसी ही कुछ झिझक विवाह दिवसोत्सव के अवसर पर दिखाई जाती है । इसमें औचित्य तनिक भी नहीं, विचारशील लोगों के लिए इस अकारण की संकोचशीलता को छोड़ने में कुछ अधिक कठिनाई नहीं होनी चाहिए । अनेक प्रगतिशील दम्पती अपने विवाह दिवस मनाते हैं । कोई दिशा धारा न होने से, छुट्टी, पिकनिक, मित्रों की पार्टी, सिनेमा जैसे छुटपुट उपचारों तक ही सीमित रह जाते हैं, ऐसे लोगों को भावनात्मक-धर्म समारोहपूर्वक विवाह दिवसोत्सव मनाने की बात बतलाई-समझाई जाए, तो वे इसे सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं । न्यूनतम खर्च में जीवन में नई दिशा का बोध कराने वाला तथा नये उल्लास का संचार कराने वाला यह संस्कार थोड़े ही प्रयास से लोकप्रिय बनाया जा सकता है ।

नया उल्लास नया आरम्भ- पति-पत्नी को नये वर्ष में नये उल्लास एवं नये आनन्द से परिपूर्ण जीवन बनाने-बिताने की नई प्रेरणा के साथ अपना नया कार्यक्रम बनाना चाहिए । अब तक वैवाहिक जीवन अस्त-व्यस्त रहा हो, तो रहा हो, पर अब अगले वर्ष के लिए यह प्रेरणा लेनी चाहिए । ऐसी योजना बनानी चाहिए कि वह अधिकाधिक उत्कृष्ट एवं आनन्ददायक हो । उस दिन को अधिक मनोरंजक बनाने के लिए छुट्टी के दिन के रूप में मनोरंजक कार्यक्रम के साथ बिताने की व्यवस्था बन सके, तो वैसा भी करना चाहिए । विवाह दिन को केवल कर्मकाण्ड की दृष्टि से ही नहीं, भावना-उल्लास और उत्साह की दृष्टि से भी विवाह दिन की अभिव्यक्तियों को नवीनीकरण के रूप में मना सकें, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए ।

यह तथ्य ध्यान में रखें- गृहस्थ एक प्रकार का प्रजातन्त्र है, जिसमें डिक्टेटरशाही की गुंजायश नहीं, दोनों को एक-दूसरे को समझना, सहना और निबाहना होगा । दोनों में से जो हुक्म चलाना भर जानता है, अपना पूर्ण आज्ञानुवर्ती बनाना चाहता है, वह गृह-शान्ति में आग लगाता है । दो मनुष्य अलग-अलग प्रकृति के ही होते और रहते हैं, उनका पूर्णतया एक में घुल-मिल जाना सम्भव नहीं । जिनमें अधिक सामंजस्य और कम मतभेद दिखाई पड़ता

हो, समझना चाहिए कि वे सद्‌गृहस्थ हैं । मतभेद और प्रकृति भेद का पूर्णतया मिट सकना तो कठिन है । सामान्य स्थिति में कुछ न कुछ विभेद बना ही रहता है, इसे जो लोग शान्ति और सहिष्णुता के साथ सहन कर लेते हैं, वे समन्वयवादी व्यक्ति ही गृहस्थ का आनन्द ले पाते हैं ।

भूलना न चाहिए कि हर व्यक्ति अपना मान चाहता है । दूसरे का तिरस्कार कर उसे सुधारने की आशा नहीं की जा सकती । अपमान से चिढ़ा हुआ व्यक्ति भीतर ही भीतर क्षुब्ध रहता है । उसकी शक्तियाँ रचनात्मक दिशा में नहीं, विघटनात्मक दिशा में लगती हैं । पति या पत्नी में से कोई भी गृह व्यवस्था के बारे में उपेक्षा दिखाने लगे, तो उसका परिणाम आर्थिक एवं भावनात्मक क्षेत्रों में विघटनात्मक ही होता है । दोनों के बीच यह समझौता रहना चाहिए कि यदि किसी कारणवश एक को क्रोध आ जाए, तो दूसरा तब तक चुप रहेगा, जब तक कि दूसरे का क्रोध शान्त न हो जाए । दोनों पक्षों का क्रोधपूर्वक उत्तर-प्रत्युत्तर अनिष्टकर परिणाम ही प्रस्तुत करता है । इन तथ्यों को दोनों ही ध्यान में रखें ।

व्रत धारण की आवश्यकता- जिस प्रकार जन्मदिन के अवसर पर कोई बुराई छोड़ने और अच्छाई अपनाने के सम्बन्ध में प्रतिज्ञाएँ की जाती हैं, उसी तरह विवाह दिवस के उपलक्ष में पतिव्रत और पत्नीव्रत को परिपुष्ट करने वाले छोटे-छोटे नियमों का पालन करने की कम से कम एक-एक प्रतिज्ञा इस अवसर पर लेनी चाहिए । परस्पर "आप या तुम" शब्द का उपयोग करना "तू" का अशिष्ट एवं लघुता प्रकट करने वाला सम्बोधन न करना जैसी प्रतिज्ञाएँ तो आसानी से ली जा सकती हैं ।

पति द्वारा इस प्रकार की प्रतिज्ञाएँ ली जा सकती हैं - (१) कटुवचन या गाली आदि का प्रयोग न करना (२) कोई दोष या भूल हो, तो उसे एकान्त में ही बताना-समझाना, बाहर के लोगों के सामने उसकी तनिक भी चर्चा न करना (३) युवती-स्त्रियों के साथ अकेले में बात न करना (४) पत्नी पर सन्तानोत्पादन का कम से कम भार लादना (५) उसे पढ़ाने के लिए कुछ नियमित व्यवस्था बनाना (६) खर्च का बजट पत्नी की सलाह से बनाना और पैसे पर उसका प्रभुत्व रखना (७) गृह व्यवस्था में पत्नी का हाथ बँटाना (८) उसके सद्‌गुणों की समय-समय पर प्रशंसा करना (९) बच्चों की

देखभाल, साज-सँभाल, शिक्षा-दीक्षा पर समुचित ध्यान देकर पत्नी का काम सरल करना (१०) पर्दा का प्रतिबन्ध न लगाकर उसे अनुभवी-स्वावलम्बी होने की दिशा में बढ़ने देना (११) पत्नी की आवश्यकताओं तथा सुविधाओं पर समुचित ध्यान देना आदि-आदि ।

पत्नी द्वारा भी इसी प्रकार की प्रतिज्ञाएँ की जा सकती हैं, जैसे- (१) छोटी-छोटी बातों पर कुढ़ने, झल्लाने या रूठने की आदत छोड़ना (२) बच्चों से कटु शब्द कहना, गाली देना या मारना-पीटना बन्द करना (३) सास, ननद, जिठानी आदि बड़ों को कटु शब्दों में उत्तर न देना (४) हँसते-मुस्कराते रहने और सहन कर लेने की आदत डालना, परिश्रम से जी न चुराना, आलस्य छोड़ना (५) साबुन, सुई, बुहारी इन तीनों को दूर न जाने देना, सफाई और मरम्मत की ओर पूरा ध्यान रखना (६) उच्छृंखल फैशन बनाने में पैसा या समय तनिक भी खर्च न करना (७) पति से छिपा कर कोई काम न करना (८) अपनी शिक्षा-योग्यता बढ़ाने के लिए नित्य कुछसमय निकालना (९) पति को समाज सेवा एवं लोकहित के कार्यों में भाग लेने से रोकना नहीं, वरन् प्रोत्साहित करना (१०) स्वास्थ्य के नियमों का पालन करने में उपेक्षा न बरतना (११) घर में पूजा का वातावरण बनाये रखना, भगवान् की पूजा, आरती और भोग का नित्य क्रम रखना (१२) पर्दा के बेकार बन्धन की उपेक्षा करना (१३) पति, सास आदि के नित्य चरण स्पर्श करना आदि-आदि ।

हर दाम्पत्य जीवन की अपनी-अपनी समस्याएँ होती हैं। अपनी कमजोरियों, भूलों, दुर्बलताओं और आवश्यकताओं को वे स्वयं अधिक अच्छी तरह समझते हैं, इसलिए उन्हें स्वयं ही यह सोचना चाहिए कि किन बुराइयों कमियों को उन्हें दूर करना है और किन अच्छाइयों को अभ्यास में लाना है ।उपस्थित लोगों के सामने अपने संकल्प की घोषणा भी करनी चाहिए; ताकि उन्हें उसके पालने में लोक-लाज का ध्यान रहे, साथ ही जो उपस्थित हैं, उन्हें भी वैसी प्रतिज्ञाएँ करने के लिए प्रोत्साहन मिले ।

संस्कार क्रम- विवाह दिवसोत्सव, विवाह संस्कार के संक्षिप्त संस्करण के रूप में मनाया जाता है । उसी कर्मकाण्ड प्रक्रिया का सहारा लेकर उसे नीचे लिखे क्रम से कराया जाना चाहिए -

मंगलाचरण-षट्कर्म कलश पूजन आदि कृत्य सम्पन्न करके संकल्प करें। देवशक्तियों और सत्पुरुषों की साक्षी में संकल्प बोला जाए-

.... नामाऽहं दाम्पत्यजीवनस्य पवित्रता-मर्यादयोः रक्षणाय त्रुटीनाञ्च प्रायश्चित्तकरणाय उज्ज्वलभविष्यद्धेतवे स्वोत्तरदायित्वपालनाय संकल्पमहं करिष्ये।

संकल्प के बाद समय की सीमा का ध्यान रखते हुए देवपूजन, स्वस्ति वाचन आदि क्रम विस्तृत या संक्षिप्त रूप में कराया जाना चाहिए। सामान्य क्रम पूरा हो जाने पर विवाह पद्धति के मन्त्रों का प्रयोग करते हुए नीचे लिखे क्रम से निर्धारित विशेष उपचार कराये जाएँ -

(१) ग्रन्थि बन्धन (२) पाणिग्रहण (३) वर-वधू की प्रतिज्ञाएँ (४) सप्तपदी (५) आश्वास्तना।

(६) **आहुति-** यज्ञ करें तो अग्निस्थापन, गायत्री मन्त्राहुति, प्रायश्चित्ताहुति करके पूर्णाहुति करें। यदि यज्ञ करने की स्थिति न हो, तो दीपयज्ञ करें। पाँच दीप सजाकर रखें, गायत्री मन्त्र बोलते हुए उन्हें प्रकाशित करें। प्रायश्चित्त आहुति के प्रथम मन्त्र के साथ पति-पत्नी दीपों की ओर अपनी हथेलियाँ करें, जैसे घृत अवघ्राण के समय करते हैं।

(७) **एकीकरण-** पति-पत्नी एक-एक दीपक उठाएँ। नीचे लिखे मन्त्र पाठ के साथ ज्योतियों को मिलाकर एक ज्योति करें। भावना करें कि हम अपने व्यक्तित्वों को एक दूसरे के साथ इसी प्रकार एकाकार करने का प्रयास करेंगे। दैवी अनुग्रह और स्वजनों के सद्भाव उसमें सहायक होंगे।

ॐ समानी वऽआकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ -अथर्व० ६.६४.३

(८) अन्त में दम्पति पुष्पोहार मन्त्र (पृ० २१९) से एक दूसरे को माल्यार्पण करें। फिर सभी लोग मंगल मन्त्र बोलते हुए पुष्पवृष्टि करें, शुभकामना-आशीर्वाद दें।

(९) विसर्जन, जयघोष एवं प्रसाद वितरण के साथ कार्यक्रम का समापन किया जाए।

* * *

॥ पर्व प्रकरण ॥

पर्व आयोजन क्यों ? कैसे ?

भारतीय संस्कृति को देव संस्कृति भी कहा जाता है, इसमें मनुष्य को, मनुष्यता को, आदर्शनिष्ठ बनाये रखने के लिए हर स्तर पर प्रखर दर्शन और विवेक संगत परम्पराओं का ऐसा क्रम बनाया गया है कि मनुष्य सहज रूप में ही प्रगति तथा सद्गति का अधिकारी बन सके ।

मनुष्य का हित मात्र जानकारियों से नहीं होता, वह बार-बार भूलता है और याद रहते हुए भी अनेक बातें चरितार्थ नहीं कर पाता । इसके लिए सतत याद रखने या नियमित रूप से अभ्यास करने के लिए व्यवस्था बनाई गयी है । व्यक्तिगत स्तर पर उपासना, साधना, स्वाध्याय, मनन, चिंतन के क्रम बनाये गये । पारिवारिक स्तर पर श्रेष्ठ गुणों के विकास तथा उत्तरदायित्वों के पालन का वातावरण बनाये रखने के लिए षोडश संस्कारों का ताना-बाना बुना गया ।इनके प्रभाव से परिवार व्यक्तिगत स्वार्थ के साधन नहीं-श्रेय साधना के आश्रम-तपोवन बन गये । परिवार भाव भी रक्तसम्बन्धों की सीमा से आगे बढ़ते हुए **"वसुधैव कुटुम्बकम्"** तक विकसित होता चला गया ।

व्यक्ति और परिवार के बाद विश्व की तीसरी इकाई है-समाज । व्यक्तिगत दृष्टिकोण परिष्कृत करने के लिए पूजा-उपासना, पारिवारिक रीति-नीति को उत्कृष्ट बनाये रखने के लिए संस्कार प्रक्रिया है । ठीक इसी प्रकार समाज को समुन्नत- सुविकसित बनाने के लिए सामूहिकता, ईमानदारी, कर्त्तव्यनिष्ठा, नागरिकता, परमार्थ-परायणता, देशभक्ति, लोकमंगल जैसी सत्प्रवृत्तियाँ विकसित करनी पड़ती हैं । उन्हें सुस्थिर रखना होता है, यह भी बार-बार स्मरण दिलाते रहने वाला प्रसंग है-इस प्रयोजन के लिए पर्व-त्यौहार मनाये जाते हैं, इन्हें सामाजिक संस्कार प्रक्रिया ही समझना चाहिए । साधना से व्यक्तित्व, संस्कारों से परिवार और पर्वों से समाज का स्तर ऊँचा बनाने की पद्धति दूरदर्शिता पूर्ण है, इसे हजारों-लाखों वर्षों तक आजमाया जाता रहा है । प्राचीन भारत की महानता का श्रेय इन छोटी-छोटी सत्प्रवृत्तियाँ उत्पन्न करने वाली धर्म के नाम पर प्रचलित विधि व्यवस्थाओं को ही है ।

विश्व का आध्यात्मिक नेतृत्व भारत करेगा- यह एक सुनिश्चित तथ्य है। इस उत्तरदायित्व को वहन करने के लिए उसे अपनी आत्मा जगानी पड़ेगी, यह जागरण मात्र लेखनी-वाणी से ही सम्पन्न न हो सकेगा। वरन् इसमें धार्मिक, आध्यात्मिक उन क्रिया-कलापों को भी सम्मिलित करना पड़ेगा, जो परोक्ष रूप से व्यक्ति, परिवार और समाज को देव भूमिका में पहुँचाने और स्वर्गीय वातावरण का सृजन करने में सर्वथा समर्थ हैं। उपर्युक्त त्रिविध क्रिया-कलापों को, उपर्युक्त संस्कार प्रक्रिया को प्राचीन भारत की तरह अब पुनः प्रचलित किया जाना है; ताकि भूले हुए आदर्शों और कर्त्तव्यों को हर क्षेत्र में भली प्रकार स्वीकार-शिरोधार्य किया जा सके। नव निर्माण के लिए धर्मतन्त्र की यह क्रिया पद्धति कितनी महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी- इसे कल हर कोई प्रत्यक्ष देखेगा।

पर्वों की रचना इसी दृष्टि से हुई कि प्राचीनकाल की महान् घटनाओं एवं महान् प्रेरणाओं का प्रकाश जनमानस में भावनात्मक एवं सामूहिक वातावरण के साथ उत्पन्न किया जाए। इसके लिए कितने ही पर्व-त्यौहार प्रचलित हैं। उनमें से देश-काल-पात्र के अनुसार जब, जहाँ, जिन पर्वों को उपयुक्त माना जाए, उन्हीं के माध्यम से सामाजिक चेतना को परिष्कृत करते रहने के लिए पर्वायोजनों की व्यवस्था बनायी जा सकती है।

आज की स्थिति में पर्व आयोजनों की संख्या सीमित ही रखी जानी चाहिए। बहुत जल्दी-जल्दी किये जाने वाले आयोजन भार लगते हैं, उनसे सामूहिकता के संस्कारों में शिथिलता आने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। इसलिए प्रयास यह करना चाहिए कि लगभग दो माह के अन्तर से कोई न कोई सामूहिक पर्वायोजन होते रहें। इसे सामाजिक चेतना की, सामूहिक उल्लास की तथा जीवन्तता की कसौटी मान कर चलना चाहिए। प्राणवान् व्यक्तियों को प्रयास करना चाहिए कि अपने क्षेत्र में इस प्रकार के पर्वायोजन होते रहें।

॥ उपयुक्त पर्वों का चुनाव ॥

हिन्दू धर्म में प्रचलित पर्वों की संख्या बहुत अधिक है। सामूहिक पर्वायोजन के लिए ऐसे ही पर्व चुने जाने चाहिए, जिनका महत्त्व भी बहुत माना जाता हो और उनमें प्रेरणाएँ भी सशक्त उभारी जा सकती हों, ऐसे पर्वों

को भी क्षेत्र-क्षेत्र के अन्तर से कहीं कम, कहीं अधिक माना जाता हो और उन्हें सामूहिक रूप से मनाया जाना सम्भव हो, उन्हें मनाने का क्रम बना लिया जाना चाहिए। वर्ष में ४-६ बार हर्षोल्लास के वातावरण में सामूहिक पर्व मनाने की व्यवस्था बनायी जा सके, तो क्षेत्र में सामाजिक चेतना को जीवन्त और प्रगतिशील बनाये रखने में बड़ी सुविधा मिल सकती है। इस प्रकरण में कुछ सर्वमान्य महत्त्वपूर्ण पर्व मनाने की पद्धतियाँ दी गयी हैं। अपनी परिस्थितियों और क्षमता को देखते हुए यह निर्णय विवेकपूर्वक किया जा सकता है कि कौन-कौन से कितने पर्व सामूहिक रूप से मनाये जाएँ ?

जहाँ गायत्री शक्तिपीठें-प्रज्ञापीठें अथवा गायत्री परिवार युग निर्माण अभियान की सक्रिय शाखाएँ हैं, वहाँ चैत्र और आश्विन नवरात्रियों में सामूहिक साधना क्रम चलाने का प्रयास तो अनिवार्य रूप से करना ही चाहिए। पूर्णाहुति के साथ रामनवमी पर्व को भी जोड़ा जा सकता है।आश्विन नवरात्रि के साथ दशहरा पर्व जुड़ा रहता है। उसमें साधना अनुष्ठान की व्यवस्था को एक दिन तक और बनाये रखकर, थोड़ा-सा हेर-फेर करके ही यह पर्व भी साधना शृंखला के अन्तर्गत ही मनाया जा सकता है। नवरात्रि साधनाओं के साथ पर्वों को जोड़ना आवश्यक नहीं है, किन्तु बगैर किसी अतिरिक्त दबाव के नाम मात्र का समय और श्रम जोड़कर ये पर्व उस शृंखला में जोड़े जा सकें, तो अच्छा ही है।

इस पुस्तक में जिन पर्वों के विधान दिये गये हैं, वे इस प्रकार हैं-(१) **चैत्र नवरात्रि**-चैत्र शुक्ल १ से चैत्र शुक्ल ९ तक (२) **रामनवमी**- चैत्रशुक्ल नवमी (३) **गायत्री जयन्ती-गंगादशहरा**-ज्येष्ठ शुक्ल दशमी (४) **गुरुपूर्णिमा**-आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा (५) **श्रावणी-रक्षा बन्धन**-श्रावण शुक्ल पूर्णिमा (६) **कृष्ण जन्माष्टमी**-भाद्रपद कृष्ण अष्टमी (७) **सर्वपितृ अमावस्या**-आश्विन की अमावस्या (८) **शारदीय नवरात्रि**- आश्विन शुक्ल १ से नवमी तक (९) **विजयादशमी**-दशहरा-आश्विन शुक्ल दशमी (१०) **दीपावली**-कार्तिक कृष्ण अमावस्या (११) **गीता जयन्ती**-मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी (१२) **वसन्त पंचमी**-माघ शुक्ल पंचमी (१३) **शिवरात्रि**-फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी (१४) **होली**-फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा।

इनमें दोनों नवरात्रियों के विधि-विधान एक जैसे ही हैं। कृष्ण जन्माष्टमी

तथा गीता जयन्ती दोनों के विधान एक जैसे हैं । प्रेरणा की दृष्टि से दोनों में से कोई एक पर्व मना लेना पर्याप्त मान लेना चाहिए । यह सभी पर्व मनाये जाएँ अथवा इनके अतिरिक्त कोई अन्य पर्व सामूहिक रूप से न मनाएँ, ऐसा कोई नियम-बन्धन नहीं हैं । अपने क्षेत्र में प्रचलित महत्ता तथा आयोजन की व्यावहारिक सुविधा, संभावना को लक्ष्य करके इनमें से उपयुक्त पर्वों को सामूहिक आयोजन का रूप देने के लिए चुना जा सकता है ।

कुछ क्षेत्रों में इनके अतिरिक्त कई पर्वों को बहुत अधिक मान्यता प्राप्त है, उन्हें भी सामाजिक चेतना जागरण के लिए सामूहिक आयोजन का रूप दिया जा सकता है । उन सब के स्वतन्त्र विधान देने से तो पुस्तक का कलेवर बहुत बढ़ जाता, इसलिए संयम से ही काम लेना पड़ा है; परन्तु जिस प्रेरणाप्रद ढंग से इन पर्वों को मनाने का क्रम बनाया गया है, उसी ढंग से अन्य किसी पर्व को मनाने की विधि- व्यवस्था बनाई जा सकती है । पर्वायोजन का सर्वसुलभ प्रारूप नीचे दिया जा रहा है । इस पुस्तक में जिन पर्वों के विधि-विधान दिये गये हैं, वे भी इसी अनुशासन के अन्तर्गत हैं ।

॥ अनेक पर्वों का एक प्रारूप ॥

प्रारम्भ में ही उल्लेख किया जा चुका है कि पर्वों की परिपाटी समाज में प्रेरणा और उल्लास के जागरण की दृष्टि से आवश्यक है । उन्हें मनाने के विधान भी इसी ढंग से बनाये गये हैं, जिनसे अभीष्ट उद्देश्य पूरा हो सके । किसी पर्व के लिए विधि-विधान का क्रम इस प्रकार रहता है-

* पर्व के प्रमुख देवता के चित्र सहित पूजन मंच सजाया जाए । इसके दोनों ओर कलश एवं दीपक स्थापित किये जाएँ ।

* पर्वायोजन के साथ गायत्री यज्ञ अवश्य जोड़कर रखना चाहिए । उससे स्थूल तथा सूक्ष्म वातावरण में जो प्रभाव पैदा होता है, वह अन्य प्रकार सम्भव नहीं होता । यदि किसी कारण यज्ञ असम्भव सा लगे, तो दीपयज्ञ करके काम चला लेना चाहिए ।

* यज्ञ करना हो, तो देवमंच के सामने यज्ञ वेदी बनाई जाए । यदि उठाने रखने योग्य (पोर्टेबिल) यज्ञकुण्ड हैं, तो वह भी रखा जा सकता है । वेदी का धरातल देवमंच से तो नीचा हो; किन्तु अन्य लोगों के बैठने के धरातल से ऊँचा होना चाहिए ।

* यदि यज्ञ करने की स्थिति नहीं है, तो वेदी के स्थान पर सजाई हुई चौकियों पर थालियों में दीपयज्ञ के लिए २४ दीपक रखे जाने चाहिए।

* श्रद्धालु आगन्तुकों को हाथ-पैर धुलाकर पंक्तिबद्ध बिठाया जाए।

* निर्धारित समय पर पहले युग संगीत, भजन, कीर्तन का क्रम प्रारम्भ कर दिया जाए। इससे वातावरण में सरसता और गंभीरता आती है।

* मंच पर पूजन तथा यज्ञ के लिए प्रतिनिधि रूप में जहाँ तक हो सके, कुमारी कन्याओं को बिठाया जाए। वे कन्याएँ पीले वस्त्र पहने हों तथा पूजन-यज्ञ आदि के क्रम अनुशासन से भली प्रकार परिचित, अभ्यस्त हों, उनकी संख्या दो से पाँच तक हो सकती है।

* संगीत के बाद संक्षेप में पर्व के उद्देश्य और अनुशासन पर सबका ध्यान आकर्षित किया जाए। यह गिने-चुने शब्दों में हो। कहीं भी भाषण जैसा लम्बा क्रम न चले। विभिन्न कर्मकाण्डों के साथ खण्ड-खण्ड में संक्षिप्त एवं सारगर्भित प्रेरणाएँ उभारने का क्रम चलाया जाना चाहिए।

* कर्मकाण्ड प्रारम्भ करने से पूर्व सबसे सामूहिक सस्वर गायत्री मंत्र का उच्चारण एक बार कराया जाए।

* पवित्रीकरण मन्त्र के साथ स्वयंसेवक कलश हाथ में लेकर पुष्प या पल्लवों से सबके ऊपर जल का सिंचन करें। कलशों की संख्या उपस्थिति के अनुरूप कम या अधिक निर्धारित कर लेनी चाहिए।

* प्रतिनिधियों-कन्याओं से पूरे षट्कर्म कराये जाएँ।

* सभी उपस्थित जनों के हाथ में अक्षत पुष्प पहुँचा दिये जाएँ। इन्हें वे श्रद्धापूर्वक हाथ में लिए रहें, पूजन का भाव बनाये रहें।

* चन्दन धारण के क्रम में सभी के मस्तक पर चन्दन लगाया जाए। घिसा हुआ चन्दन अथवा गोपी चन्दन (पीला रंग मिला खड़िया मिट्टी का गाढ़ा घोल) प्रयुक्त किया जा सकता है। रोली का भी प्रयोग हो सकता है। इनके साथ थोड़ा कपूर मिलाकर रखा जाए, तो इसकी सुगन्धि और ठण्डक श्रद्धा संचार में सहायक सिद्ध होती है।

* कलश-पूजन से रक्षाविधान तक का क्रम पूरा किया जाए, समय कम हो, तो विवेकपूर्वक कुछ अंश घटाये जा सकते हैं।

* पर्व देवता के विशेष पूजन के लिए भावनाएँ उभारी जाएँ। उनकी

विशेषताओं पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जाए ।प्रेरणा उभारने के लिए देवता-उनके अंग वाहन, आयुध, आभूषण सहयोगी आदि का भी उल्लेख किया जा सकता है ।एक-एक का उल्लेख करें और उनका आवाहन किया जाए । इससे प्रेरणा और श्रद्धा का मिला-जुला वातावरण बन जाता है ।

* आवाहन, नमन के बाद उन सबका संयुक्त षोडशोपचार पूजन पुरुष सूक्त से किया जाए ।

* पूजन पूरा होने पर उनके आदर्शों के अनुरूप कोई छोटा-सा ही सही, किन्तु सुनिश्चित नियम धारण करने की प्रेरणा देते हुए संकल्प बोला जाए ।

* संकल्प के बाद प्रारम्भ में दिए गये पुष्प-अक्षत आदि एकत्र करके देवमंच पर अर्पित कर दिये जाएँ ।

* संकल्प को धारण किये रह सकने की सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए यजन (यज्ञ) करने की महत्ता बतलाते हुए यज्ञ या दीपयज्ञ सम्पन्न कराया जाए। यज्ञ किया जाए, तो यज्ञ आरती के साथ पर्वदेवता की आरती भी करें । दीपयज्ञ करें , तो उसी के बाद पर्वदेवता की आरती करें ।

* अन्त में विसर्जन जयघोष आदि कराया जाए। युग निर्माण सत्संकल्प दुहराया जाए । प्रसाद वितरण के साथ क्रम समाप्त किया जाए ।

यह क्रम प्रत्येक पर्व के लिए एक जैसा है । पर्वदेवता के अनुरूप उनके पूरक अंग, आयुध-आभूषण वाहन आदि का ही अन्तर पर्व-पर्व में पड़ता है । पर्व प्रसाद संकल्प में भी गुण विशेष धारण करने का क्रम बदलता है । जिन पर्वों के विधान दिये गये हैं, उनके तो हैं ही, जिनके नहीं हैं, उन्हें मनाना हो, तो विवेकपूर्वक उनके लिए सामान्य प्रकरण, मंगलाचरण आदि से मन्त्र चुनकर लिये जा सकते हैं, इस प्रकार एक ही अनुशासन में नवीनता, रोचकता, विविधता का समावेश किया जाना सम्भव है ।

॥ पर्व व्यवस्था सूत्र - संकेत ॥

जो पर्व मनाया जाना है, उसके बारे में लगभग एक माह पूर्व निर्णय कर लेना चाहिए । परिजन जहाँ - तहाँ उसकी उत्साहवर्धक चर्चा करते रहें, अपने परिचितों से उसमें शामिल होने का आग्रह भी करते रहें । सप्ताह या ३-४ दिन पूर्व पुरुष एवं महिला टोलियाँ पीले चावल घर-घर देकर आमन्त्रण दें ।आवश्यक समझा जाए, तो छोटे पर्चे भी छपवाकर बाँटे जा सकते हैं ।

पर्वायोजन का समय ऐसा रखा जाए,जब नर-नारियों को उसमें सम्मिलित होने में कठिनाई न हो ।आयोजन स्थल पर सुन्दर मण्डप सजाकर पर्व देवता की झाँकी सजाई जाए, आमन्त्रित व्यक्तियों को क्रमबद्ध ढंग से बिठाया जाए ।

पर्व पूजन के लिए जितने श्रद्धालु नर-नारियों के उपस्थित होने की सम्भावना हो, उनके लिए क्रमबद्ध ढंग से बैठने योग्य स्थान आयोजन स्थल पर होना चाहिए । स्थल का चयन अथवा व्यक्तियों का आमन्त्रण उसी हिसाब से किया जाना चाहिए ।अभ्यागतों के जूते - चप्पल उतरवाने, उन्हें व्यवस्थित रखने तथा सुरक्षा के लिए स्वयंसेवक नियुक्त रखना चाहिए ।

पुरुषों, महिलाओं को क्रमबद्ध ढंग से बिठाने के लिए अनुभवी और शालीन परिजन नियुक्त किये जाएँ । बच्चों की आदत आगे घुसने की होती है, उन्हें काबू में रखा जाए । छोटे बच्चों वाली महिलाएँ एक ओर बिठा ली जाएँ, ताकि बच्चे गड़बड़ करें, तो उन्हें उठकर-जाने में कठिनाई न हो ।पर्व पूजन के समय सबके पास अक्षत-पुष्प पहुँचाने, तिलक लगाने, सिंचन करने आदि के लिए सधे हुए परिजनों को पहले से नियुक्त करके रखा जाए ।

पर्वायोजन-पूजन से सम्बन्धित सभी वस्तुएँ समय से पूर्व एकत्र कर लेनी चाहिए तथा उन्हें एक बार जाँच करके यथास्थान रख देनी चाहिए; ताकि समय पर विसंगतियाँ न उठें ।समय का ध्यान रखा जाए । पर्व पूजन का समय निर्धारित करते समय भली प्रकार सोच - समझ लें कि कौन-सा समय लोगों के लिए अनुकूल पड़ेगा । सुविधाजनक समय घोषित करने के बाद समय का अनुशासन पाला जाए । क्रम समय पर आरम्भ कर दिया जाए तथा समय पर समाप्त भी कर दिया जाए । इससे लोगों का समय नष्ट नहीं होगा और भावी आयोजनों के लिए जन उत्साह बढ़ेगा ।

वातावरण को रमणीक, पवित्र बनाने का प्रयास करें । वन्दनवार सज्जा, झण्डियाँ, बैनर आदि लगाये जाएँ। शान्ति बनाये रखकर, अगरबत्तियाँ लगाकर वातावरण में श्रद्धा का संचार किया जाए । इस प्रकार के छोटे-छोटे उपचारों से वातावरण में भव्यता भर जाती है । आयोजन को खर्चीला न बनाने का ध्यान रखा जाए । प्रसाद में पंचामृत, चीनी की गोलियाँ (चिनौरी, चिरौंजी दाना) पंजीरी जैसी कोई एक ही सस्ती वस्तु रखी जाए ।

* * *

॥ नवरात्रि पर्व ॥

नवरात्रि पर्व वर्ष भर में दो बार आता है। (१) चैत्र शुक्ल १ से ९ तक। चैत्र नवरात्रि जिस दिन आरम्भ होती है, उसी दिन विक्रमी संवत् का नया वर्ष प्रारम्भ होता है। विक्रमादित्य राजा होने के साथ ही जनहित-लोकमंगल के लिए समर्पित साधक भी थे। उनकी आदर्शनिष्ठा की झलक सिंहासन बत्तीसी की पुस्तकों में मिलती हैं। लोकमानस और शासन तन्त्र के आदर्श समन्वय के प्रतीक के रूप में उन्हें मान्यता दी गई और उनके राज्याभिषेक को नवीन सम्वत्सर से जोड़कर उनकी कीर्ति को अमर बना दिया गया। इसी प्रकार चैत्र नवरात्रि का समापन दिवस भगवान् राम का जन्म दिन रामनवमी होता है। (२) दूसरी नवरात्रि आश्विन शुक्ल १ से ९ तक पड़ती है। इससे लगा हुआ विजयादशमी पर्व आता है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार नक्षत्रों की गणना आश्विन नक्षत्र से प्रारम्भ होती है। इस आधार पर आश्विन मास ज्योतिष नक्षत्र वर्ष का प्रथम मास माना जाता है।

इस प्रकार दोनों नवरात्रि पर्वों के साथ नये शुभारम्भ की भावना, मान्यता जुड़ी हुई है। दोनों में छः मास का अन्तर है। यह साधना पर्व वर्ष को दो भागों में बाँटते हैं। ऋतुओं के सन्धिकाल इन्हीं पर्वों पर पड़ते हैं। सन्धिकाल को उपासना की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। प्रातः और सायं, ब्राह्ममुहूर्त्त एवं गोधूलि वेला दिन और रात्रि के सन्धिकाल हैं। इन्हें उपासना के लिए उपयुक्त माना गया है। इसी प्रकार ऋतु सन्धिकाल के नौ-नौ दिन दोनों नवरात्रियों में विशिष्ट रूप से साधना-अनुष्ठानों के लिए महत्त्वपूर्ण माने गये हैं। नवरात्रि पर्व के साथ दुर्गावतरण की कथा भी जुड़ी है। वर्तमान समय, युग सन्धि काल के रूप में तत्त्वदर्शियों ने स्वीकारा है। युग की भयावह समस्याओं से मुक्ति के लिए युगशक्ति के उद्भव की कामना सभी के मनों में उठती है। ऐसी स्थिति में व्यक्तिगत साधना की अपेक्षा सामूहिक साधना अनुष्ठानों का महत्त्व अत्यधिक बढ़ जाता है। इसीलिए युग निर्माण अभियान के सूत्र संचालकों ने हर भावनाशील से अपेक्षा की है कि नवरात्रि पर्व पर सामूहिक साधना अनुष्ठानों के लिए विशेष रूप से प्रयास करें। शक्तिपीठ, प्रज्ञा संस्थान एवं शाखा संगठनों को तो ये उत्तरदायित्व विशेष रूप से सौंपे

गये हैं। जहाँ दो चार-परिजन भी होते हैं, वहाँ भी नवरात्रियों पर सामूहिक साधना-अनुष्ठान की व्यवस्था बना लेते हैं। जो किसी मजबूरी में अपना अनुष्ठान घर पर करते हों, वे भी सायंकाल सत्संग-आरती में तथा पूर्णाहुति के दिन सामूहिक क्रम में ही शामिल होते हैं। ऐसे प्रयास सभी साधक करें।

॥ व्यवस्था-क्रम ॥

* सामूहिक साधना के लिए कोई सार्वजनिक स्थल चुना जा सकता है, किसी के व्यक्तिगत स्थान का भी उपयोग किया जा सकता है। स्थान ऐसा हो, जहाँ अपनी सहज गतिविधियों से दूसरों को तथा उनकी गतिविधियों से अपने साधना क्रम में अड़चन पैदा न हो।

* स्थान इतना होना चाहिए कि देव स्थापना और सामूहिक उपासना के लिए जगह की तंगी न पड़े।

* साधना स्थल पर गायत्री माता का चित्र, कलश, दीपक आदि सजाये जाएँ। सामूहिक साधना स्थल पर जौ बोने से पवित्रता एवं सुन्दरता का संचार होता है। जौ एक-दो दिन पहले भी बोये जा सकते हैं। बोने से पूर्व उन्हें चौबीस घण्टे भिगो दिया जाए, तो अंकुर जल्दी निकल आते हैं।

* सामूहिक साधना के लिए कई दिन पहले से ही जन सम्पर्क द्वारा साधकों की संख्या बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए।

* प्रेरणा देने, प्रभाव बतलाने और स्नेह भरे आग्रह, प्रोत्साहन का क्रम अपनाने से कमजोर संकल्प वाले भी साधना का लाभ उठाने लगते हैं।

*९ दिन में २७ माला नित्य करने से २४००० मन्त्र होते हैं। जिनसे न बन पड़े वे १२ माला नित्य करके १०८ माला का अनुष्ठान कर सकते हैं।

* साधना काल में अस्वाद व्रत, एक समय अन्नाहार, शाक, फल जैसे सुगम उपवास का क्रम अपनाने, ब्रह्मचर्य पालने, चमड़े के जूतों का उपयोग न करने, चारपाई पर न सोने, अपने कार्य स्वयं करने जैसी सर्वसुलभ तप-तितिक्षा अपनाने की बात सबको ध्यान में रखनी चाहिए। जिस दिन से नवरात्रि प्रारम्भ हो, उस दिन प्रातःकाल या उसके एक दिन पहले शाम को सामूहिक संकल्प की व्यवस्था बनानी चाहिए। संक्षेप में साधना का महत्त्व एवं नियम समझाते हुए नीचे लिखे क्रम से उपचार कराएँ-

(१) षट्कर्म (२) यज्ञोपवीत परिवर्तन, जो यज्ञोपवीत न पहने हों, उन्हें

नवरात्रि साधना के लिए अस्थाई यज्ञोपवीत दिया जा सकता है । (३) तिलक, कलावा, (४) कलश स्थापना-दीप प्रज्वलन, पूजन (५) सर्वदेव आवाहन, पूजन-नमस्कार । यदि समय की सुविधा हो, तो षोडशोपचार पूजन पुरुष सूक्त से भी कराया जा सकता है । (६) स्वस्तिवाचन (७) अनुष्ठान संकल्प (८) सिंचन-अभिषेक एवं (९) पुष्पाञ्जलि । (इनके मन्त्र सामान्य प्रकरण में दिये जा चुके हैं ।)

जप के समय दीपक एवं अगरबत्ती आदि जलाये रखें । अखण्ड दीपक आवश्यक नहीं । अखण्ड जप या दीपक रखने की भावना और स्थिति हो, तो प्रातःकाल से लेकर सायंकाल आरती तक रखा जाना पर्याप्त है ।शाम को सामूहिक गायत्री चालीसा गान, प्रेरक भजन, कीर्तन, प्रज्ञा पुराण वाचन,जैसे सत्संग क्रम चलाये जाएँ । अन्त में आरती करके समापन किया जाए ।

नौवें दिन सामूहिक पूर्णाहुति की व्यवस्था की जाए । एक, पाँच, नौ जैसी भी स्थिति हो, तदनुरूप वेदियाँ बनाकर यज्ञ किया जाए । सामूहिक क्रम में आहुतियों की संख्या का बन्धन नहीं होता । पूर्णाहुति में सुपारी अथवा नारियल के गोले का उपयोग किया जाना चाहिए ।

पूर्णाहुति के बाद सामान्य प्रसाद वितरण करके समापन किया जा सकता है । यदि व्यवस्था हो सके, तो सभी साधकों को अमृताशन (दलिया खिचड़ी जैसे भगौनी में पकाने योग्य पदार्थ) का भोजन कराकर, प्रसाद से उपवास की समाप्ति (पारण) की व्यवस्था बनाई जानी चाहिए ।

अनुष्ठान के साथ दान की परम्परा जुड़ी हुई है । ज्ञान दान सर्वश्रेष्ठ है । इस दृष्टि से प्रत्येक साधक को चाहिए कि यथाशक्ति वितरण योग्य सस्ता युग साहित्य खरीदकर उन्हें उपयुक्त व्यक्तियों को साधना का प्रसाद कहकर दें ।पढ़ने और सुरक्षित रखने का आग्रह करें । अनुष्ठान के बाद इस प्रक्रिया को श्रेष्ठदान एवं ब्रह्मभोज के समतुल्य माना जाता है । यज्ञ पूर्णाहुति के साथ ही इसे सुनिश्चित मात्रा में करने का संकल्प करना चाहिए । पूर्णाहुति के बाद विसर्जन करें । यदि रामनवमी अथवा दशहरा पर्व उसी स्थल पर मनाना है, तो विसर्जन पर्व पूजन के बादकरें । सामूहिक साधना के संरक्षण, दोष परिमार्जन के लिए **शान्तिकुञ्ज हरिद्वार** सूचना भेजी जा सकती है ।

* * *

॥ रामनवमी ॥

माहात्म्य बोध- भगवान् के अवतार सदा अधर्म के विनाश और धर्म की स्थापना, साधुता का परित्राण और दुष्कृत्यों का विनाश, इन दो प्रयोजनों को लेकर होते हैं । जब भी-जो भी अवतारी देवदूत इस धरती पर आये हैं, तब उन्होंने बढ़ी हुई असुरता को निरस्त किया और डगमगाते हुए देवत्व का सन्तुलन सँभाला है । जिनके भीतर इन दो प्रयासों के लिए तीव्र उत्कण्ठा जग रही हो, जिनका कर्त्तव्य इस दिशा में जितना प्रखर हो रहा हो, समझना चाहिए उनके अन्तःकरण में भगवान् की उतनी ही ज्योति जगमगा रही है । अवतारी देवदूतों का जन्म, जयन्ती मनाने का भी प्रधान उद्देश्य यही है कि उन्हें जो कार्य अत्यधिक प्रिय हैं, जिसके लिए वे देह धारण करते और कष्ट सहते हैं, उनका अनुकरण-अनुगमन हम भी करें ।

यों तो अवतार चौबीस अथवा दस हुए हैं । पर उनमें प्रधानता भगवान् राम और कृष्ण को दी जाती है । इन्हीं की कथा-गाथाएँ प्रख्यात हैं । रामलीला, कृष्णलीला भी इन्हीं की होती है । देव मंदिरों में इन्हीं की प्रतिमाएँ हैं । अन्य अवतारों की भी चर्चा-प्रतिष्ठा है, पर इतनी नहीं, जितनी इन दो की । कारण कि इन दो का अवतरण, शिक्षण उन विशेषताओं से भरा पड़ा है, जिनकी मानव जीवन को समुन्नत, विकसित बनाने के लिए नितान्त आवश्यकता है । मार्यादाओं का पालन, कर्त्तव्य पर अविचल निष्ठा, व्यवहार में सौजन्य और अनीति के विरुद्ध प्रबल संघर्ष यह चारों ही लक्ष्य ऐसे हैं, जिन्हें रामचरित के कथा प्रसंगों में पग-पग पर पाया जा सकता है ।

जन्म से लेकर लीला समापन तक के सभी प्रसंगों में उत्कृष्ट आदर्शवादिता ही भगवान् राम चरितार्थ करते रहे । चारों भाई गेंद खेलते हैं, छोटे भाई भरत को विजयी सिद्ध करने और प्रसन्न करने के लिए राम हारने का अभिनय करते हैं । अपनी हेटी भी होती हो, पर छोटों को श्रेय मिलता हो, तो अपनी बात को भुला ही दिया जाना चाहिए । बचपन में ही महर्षि विश्वामित्र यज्ञ की रक्षा के लिए उन्हें माँगने आये, तो प्राण हथेली पर रख खुशी-खुशी तपोवन में चले जाते हैं । लाभ तो विश्वामित्र का और यज्ञ की रक्षा में अपने प्राणों का संकट, वे इस तरह नहीं सोचते, वरन् शुभकार्य कहीं

भी किया जा रहा हो, कोई भी कर रहा हो, उसमें भरपूर सहयोग करना आवश्यक है। वे प्राणों तक का खतरा उठाकर ऋषि की पूरी सहायता करते हैं। किशोर होते हुए भी महाबलिष्ठ असुरों से जूझते हैं।

विमाता कैकेयी वनवास देना चाहती हैं। विमाता को माता से बढ़कर उन्होंने माना और माता की प्रसन्नता के लिए वनवास स्वीकार किया। अधिकार त्यागा और कर्त्तव्य निबाहा। पिता वचन तोड़ना चाहते हैं। कैकेयी को दिये वचन पूरा करने में आगा-पीछा सोचते हैं। राम उनकी गुत्थी सुलझाते हैं। स्वजन सम्बन्धियों का व्यक्तिगत मोह तुच्छ और सज्जनों के वचन रखना, उनकी प्रामाणिकता का बना रहना महान् बताते हैं। वनगमन स्वीकार करके उन्होंने पिता को अपनी प्रामाणिकता अक्षुण्ण बनाये रखने तथा वचन पालन का अवसर प्रदान किया।

चित्रकूट में भरत मिलते हैं। वे वापस चलने का अनुरोध करते हैं। राज्य सुख भोगने के लिए कहते हैं। राम अपने भाई को राजा और स्वयं तपस्वी बने रहने में अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हैं। सुविधाओं से भरे जीवन की अपेक्षा परमार्थ प्रयोजनों के लिए कष्ट-कठिनाई सहना श्रेयस्कर मानते हैं, वे सुविधाओं के लाभ को स्वीकार करने से इन्कार कर देते हैं। हारे हुए दुर्बल शरीर का न्यायानुमोदित समर्थन करते हुए प्रचण्ड बलशाली से जूझते हैं, स्वावलम्बन का जीवन जीकर निःस्वार्थ भाव से छात्र और ऋषियों का नित्य मार्ग साफ करने वाली शबरी की भक्ति को तथाकथित योगी-तपस्वियों से बढ़-चढ़कर ठहराते हैं और उसका अभिवादन करने उसके घर पहुँचते हैं। जन्म-जाति के आधार पर ऊँच-नीच की अवांछनीय मूढ़ता पर पाद प्रहार करते हैं और शबरी के जूठे बेर खाते हैं।

सूर्पणखा के रूप और वैभव भरे प्रस्ताव को अस्वीकार करके एक पत्नीव्रत की प्रबल निष्ठा का परिचय देते हैं। असुरता के आतंक से लड़ने में जब समझदार मनुष्य अपनी प्रत्यक्ष हानि देखते-साथ नहीं देते तो, नासमझ कहे जाने वाले पिछड़े वर्ग के वानरों की सेना गठित करते हैं और संसार को बताते हैं कि पाप बाहर से कितना ही बड़ा बलवान् क्यों न दीखता हो, भीतर से अत्यन्त दुर्बल होता है और यदि उसके विरुद्ध मनस्वी लोग उठ खड़े हों, तो असुरता की बालुका निर्मित दीवाल ढहने में देर नहीं लगती। अनेक

वरदानों से शक्ति-सम्पन्न रावण जब मारा गया और उसके शरीर में अनेक बाण-व्रण पाये गये, तो राम ने यही कहा-मेरा बाण तो एक ही लगा है, बाकी घाव तो उसके कुकर्मों के हैं, जो अपने आप ही फूटे हैं। अपनी विजय का रहस्य भी उन्होंने धर्म रथ पर आरूढ़ होना बताया है। न्याय, नीति और सत्य में हजार हाथी के बराबर बल होता है। वह साधनरहित होते हुए भी अन्ततः विजयी होकर ही रहता है।प्रजा की प्रसन्नता के लिए अपनी पत्नी को वनवास भेजना, यज्ञ के अवसर पर पत्नी की आवश्यकता बताये जाने पर भी एक पत्नी के होते दूसरे विवाह की बात अंगीकार न करना, वृद्धावस्था में तप-साधना करने के लिए वानप्रस्थ, संन्यास परम्पराओं को स्वीकार करना जैसे अनेकों प्रसंग ऐसे हैं, जिनका घटनात्मक वर्णन हजार प्रवचनों से बढ़कर हैं। भगवान् राम ने जीवन के आदर्शों को जीभ से नहीं कहा, वरन् अपने आचरण द्वारा लोगों के सामने रखा।

भगवान् राम के अन्य साथी-सहयोगी, मित्र, स्वजन भी ऐसे ही सच्चे चरित्र वाले हैं। उन्होंने सामयिक लाभ उठाने के लिए खोटे लोगों का न तो समर्थन किया और न उन्हें साथ लिया। लक्ष्मण ने अनन्य सेवक की तरह भाई का साथ दिया। वनवास उन्हें नहीं मिला, तो भी साथ रहे। उनकी पत्नी उर्मिला और माता सुमित्रा ने उन्हें उस आदर्श की स्थापना से रोका नहीं, वरन् अपने मोह पर नियन्त्रण करके उन्हें और उल्टा प्रोत्साहित किया। भरत ने भाई के राजगद्दी न लेने पर उनकी पादुकाओं को सिंहासन पर रखा और स्वयं भाई जैसा तपस्वी जीवन बिताते हुए राजकाज चलाते रहे। केवट ने उन्हें गंगा पार उतारा। निषादराज को जब यह आशंका हुई कि भरत सेना लेकर राम को मारने जा रहे हैं, तब उसने निश्चय किया कि सारी नावें डुबो दी जाएँ और जीवित रहते भरत के आक्रमण को सफल न होने दिया जाए। पीछे आशंका निर्मूल सिद्ध हुई और खुशी-खुशी राम-भरत की भेंट में उसने सहायता दी, यह दूसरी बात थी। अपने प्राण देकर भी अन्याय से लड़ने का निश्चय करना निषादराज की महानता का परिचायक है। राम के ऐसे ही मित्र सहयोगी थे।

बूढ़ा जटायु रावण से जूझ पड़ा-जीवित रहते किसी की बहू-बेटी का अपमान न होने दूँगा। उसने प्राण गँवा दिए पर बलवान् आततायी से पराभूत

नहीं हुआ । रीछ-वानरों का त्याग बलिदान देखते ही बनता है । यहाँ तक कि एक गिलहरी बालों में धूल भरकर समुद्र पर बिखेरने लगी, ताकि समुद्र उथला हो जाए और अनीति से जूझने वाले वानरों को सफलता मिले । विभीषण ने सुविधाएँ छोड़ीं, कुटुम्ब रिश्ते का पक्षपात छोड़, त्रास सहा; किन्तु न्याय का समर्थन करने के लिए राम के साथ रहा । जो स्वयं श्रेष्ठ होता है, उसे श्रेष्ठ ही मानते हैं और वे ही उनके सहयोगी बनते हैं । इस प्रकार के घटनाक्रम और उनके प्रसंगों पर कहे हुए उनके वचन ऐसे हैं, जिनमें नीति, धर्म, सदाचार, संयम, परमार्थ, उदारता, अध्यात्म, कूट-कूट कर भरा है । रामनवमी के अवसर पर भगवान् राम का जन्म दिन मनाते हुए ऐसे ही घटनाक्रम और प्रसंग सुनाए जाएँ; ताकि जन साधारण को राम-भक्ति के रूप में उनके अनुगमन की प्रेरणा मिले ।

रामनवमी के छः दिन बाद चैत्र सुदी पूर्णिमा को हनुमान् जयन्ती होती है । उनकी चर्चा भी राम के अनन्य सेवकों के रूप में की जा सकती है । भजन-पूजन भले ही हनुमान् जी न करते हों, पर उनने अपना शरीर और मन सर्वतोभावेन "रामकाज" के लिए समर्पित किया और समुद्र लाँघना, लंकादहन, पर्वत उठा लेने जैसे कठिन से कठिन कार्य करने को तत्पर रहे । अपनी सुविधा को भूल गये । न विवाह, न बच्चे, न नौकरी, न कोठी, न बँगला । अपने आपको विस्मरण करके ही कोई व्यक्ति भगवान् का कार्य कर सकता है और भक्त की कसौटी पर खरा सिद्ध हो सकता है । इसकी जीवन्त शिक्षा हनुमान् के चरित्र से मिलती है ।रामनवमी ऐसे ही सन्देशों और प्रेरणाओं से भरी हुई है । लोगों को यही समझाया जाना चाहिए कि भगवान् राम के प्रति सच्ची श्रद्धा रखने के लिए उन्हें उनके सन्देश हृदयंगम करने पड़ेंगे और अपने क्रिया-कलाप बदलने पड़ेंगे । मात्र तिलक लगाने, आरती उतारने और नाम रटने से ही भक्ति का प्रयोजन पूरा न हो सकेगा ।

॥ पर्व पूजन क्रम ॥

*रामनवमी पर भगवान् राम का चित्र देवमंच पर सजाया जाए । उनके साथ देवी माता सीता, बन्धुगण एवं आदर्श सेवक हनुमान् भी हों ।

*पर्व व्यवस्था क्रम के अनुसार सारी व्यवस्था बनाकर, प्रारम्भ में सामान्य पूजन कराते हुए रक्षाविधान तक का क्रम सम्पन्न किया जाए ।

तत्पश्चात् क्रमशः भगवान् राम, माता सीता, बन्धु एवं भक्त हनुमान् का आवाहन दिए हुए मन्त्रों के साथ किया जाए। भगवान् श्रीराम का व्यक्तित्व इन सभी के संयोग से पूर्ण बनता है। प्रत्येक आवाहन के पूर्व उनकी महानता पर संक्षिप्त सारगर्भित टिप्पणी की जाए। माहात्म्य बोध प्रकरण अथवा सामान्य ज्ञान के आधार पर यह क्रम चलाया जाए। मन्त्रोच्चार के साथ निर्दिष्ट भावना उभारते हुए आवाहन करें।

॥ श्रीराम आवाहन ॥

भगवान् श्रीराम के जन्म दिवस के पावन पर्व पर उनका प्रकाश हम सबके अन्तःकरण में और वातावरण में अवतरित हो, ताकि उनके अनुरूप क्रम अपनाने और जीवन में श्री-समृद्धि और सन्तोष का संचार करने में हम समर्थ हों।

ॐ दाशरथये विद्महे, सीतावल्लभाय धीमहि।
तन्नो रामः प्रचोदयात्। - रा॰ गा॰

ॐ राम एव परं ब्रह्म, राम एव परन्तपः।
राम एव परं तत्त्वं, श्रीरामो ब्रह्मतारकम्॥ - रा॰ रह॰ १.६

ॐ श्रीरामाय नमः।

॥ सीता आवाहन ॥

पवित्रता और निष्ठा की मूर्ति माँ सीता पवित्र प्रवाह बनकर हम सब में संचरित हों, ताकि हम अपूर्णता को पूर्णता में बदल सकें।

ॐ जनकजायै विद्महे, रामप्रियायै धीमहि।
तन्नः सीता प्रचोदयात्॥ - सी॰ गा॰

ॐ उद्भवस्थिति संहारकारिणीं क्लेश हारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥ - रा॰ च॰ मा॰

ॐ श्री सीतायै नमः।

॥ बन्धु आवाहन ॥

भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न आदर्श बन्धु भाव के रूप में प्रकट हों, सक्रिय हों, ताकि द्वेष और विग्रह का समापन होकर आदर्श सहकार का लाभ हम सब उठा सकें-

ॐ बाहू मे बलमिन्द्रियꣳ, हस्तौ मे कर्म वीर्यम्।
आत्मा क्षत्रमुरो मम ॥ ॐ श्रीरामानुजेभ्यो नमः । - २०.७

॥ हनुमान् आवाहन ॥

भक्तराज हनुमान् प्रभु समर्पित पुरुषार्थ की प्रचण्डधारा के रूप में अवतरित- संचरित हों, जिससे स्वार्थ और निष्क्रियता के फन्दे कटें, असुरता क्षीण हो और जीवन धन्य बने ।

ॐ अञ्जनीसुताय विद्महे, वायुपुत्राय धीमहि।
तन्नो मारुतिः प्रचोदयात् ॥ ह० गा०
ॐ श्री हनुमते नमः ।

आवाहन के बाद श्रीरामपंचायतन का षोडशोपचार पूजन पुरुष सूक्त से करें ।पूजन के बाद पर्व प्रसाद रूप में मर्यादा धारण संकल्प कराए जाएँ ।

......नामाहं मर्यादापुरुषोत्तम-भगवतो रामचन्द्रस्य जन्मपर्वणि देवसंस्कृतिमर्यादानुरूपेण स्वकीय चिन्तन-चरित्र- आकांक्षा-निर्माणार्थं अद्यप्रभृति...... पर्यन्तं परिपूर्णनिष्ठापूर्वकं संकल्पं अहं करिष्ये।

संकल्प के बाद यज्ञ, दीपयज्ञ, आरती आदि समापन के उपचार किये जाएँ ।जयघोष एवं प्रसाद वितरण के साथ आयोजन समाप्त किया जाए ।

* * *

॥ गायत्री जयन्ती-गंगा दशहरा ॥

माहात्म्य बोध- सृष्टि के आदि में ब्रह्मा जी जिस शक्ति की साधना करके विश्व संचालन के उपयुक्त ज्ञान एवं विज्ञान, अनुभव एवं पदार्थ प्राप्त कर सकने में समर्थ हुए, पौराणिक प्रतिपादन के अनुसार उसका नाम गायत्री है। सृजन और अभिवर्धन का उद्देश्य लेकर चल रही जीवन प्रक्रिया को भी इसी सम्बल की आवश्यकता है, जो ब्रह्मा जी की तरह उसे मानसिक क्षमता एवं भौतिक सम्पन्नता युक्त कर सके। गायत्री मन्त्र में वे तत्त्व बीज मौजूद हैं। उपासना और तपश्चर्या के विधान को अपनाकर इन तत्त्वों को वैज्ञानिक रूप से अपने भीतर-बाहर बढ़ाया भी जा सकता है। गायत्री को वेदमाता, ज्ञान गंगोत्री, संस्कृति की जननी एवं आत्मबल की अधिष्ठात्री कहा जाता है। इसे गुरुमन्त्र कहते हैं। यह समस्त भारतीय धर्मानुयायियों की उपास्य है। इसमें वे सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं, जिनके आधार पर वह सार्वभौम, सार्वजनीन उपासना का पद पुनः ग्रहण कर सके। इसी ज्ञान-विज्ञान की देवी गायत्री का जन्मदिन है-गायत्री जयन्ती।

इसी दिन भगवती गंगा स्वर्ग से धरती पर अवतरित हुई। जिस प्रकार स्थूल गंगा भूमि को सींचती, प्राणियों की तृषा मिटाती, मलिनता हरती और शान्ति देती हैं, वही सब विशेषताएँ अध्यात्म क्षेत्र में गायत्री रूपी ज्ञान गंगा की हैं। गायत्री महाशक्ति के अवतरण की गंगा अवतरण से संगति भली प्रकार मिल जाती है। एक को सूक्ष्म दूसरे को स्थूल- एक ही तत्त्व की व्याख्या कहा जाए, तो कुछ अत्युक्ति न होगी।

सगर राजा के साठ हजार पुत्र अपने कुकर्मों के फलस्वरूप अग्नि में जल रहे थे। उनकी कष्ट निवृत्ति गंगा जल से ही हो सकती थी। सगर के एक वंशज भगीरथ ने निश्चय किया कि वे स्वर्ग से गंगा को धरती पर लायेंगे। इसके लिए कठोर तप साधना में लग गये। इस निःस्वार्थी, परमार्थी का प्रबल पुरुषार्थ देखकर गंगा धरती पर आयीं; पर उन्हें धारण कौन करे, इसके लिए पात्रता चाहिए। इस कठिनाई को शिव ने अपनी जटाओं में गंगा को धारण करके हल कर दिया।

गंगा का अवतरण हुआ। सगर पुत्र उसके प्रताप से स्वर्ग को गये और असंख्यों को उसका लाभ मिला।

आत्म-शक्ति का-ऋतम्भरा प्रज्ञा का अवतरण ठीक गंगावतरण स्तर का है। उसकी पुनरावृत्ति की आज अत्यधिक आवश्यकता है।सारा संसार पाप-तापों से जल रहा है। इस विकृति से छुटकारा उसे उत्कृष्टता और आदर्शवादिता की ज्ञान गंगा ही दिला सकती है। यह अवतरण अनायास ही नहीं होगा। इसके लिए जाग्रत् आत्माओं को भगीरथ की भूमिका निभानी पड़ेगी। ज्ञान-यज्ञ के विस्तार के लिए-भावनात्मक नव निर्माण के लिए निःस्वार्थ-परमार्थ परायण प्रबल पुरुषार्थ करना पड़ेगा। ऐसा करने से वह कठिन और असम्भव दीखने वाली प्रक्रिया सम्भव ही नहीं, सरल भी हो सकती है। उस युग परिवर्तनकारी प्रचण्ड शक्ति को यश लोलुप एवं अहन्ता पोषक क्षुद्र व्यक्ति धारण नहीं कर सकते । उसे धारण करने के लिए तपस्वी, मनस्वी और तेजस्वी शंकर चाहिए। ऐसी महानता सम्पन्न विभूतियाँ जब इस नवयुग प्रवर्तिनी ज्ञान गंगा को अपने मस्तक में धारण कर लेंगी, तब उसका प्रवाह आगे बढ़ेगा। न केवल कुबुद्धि और दुर्भावनाग्रस्त पतनोन्मुख सगर सुतों का उद्धार होगा, वरन् सर्वसाधारण की सुख-शान्ति का द्वार भी खुल जाएगा। हमें भगीरथ और शंकर की भूमिका निभाते हुए ज्ञान गंगा के अवतरण के लिए गायत्री जयन्ती के पुण्य पर्व पर व्रत लेना चाहिए और उसके लिए कटिबद्ध होना चाहिए।

यह पर्व महत्त्वपूर्ण प्रेरणाएँ देता है। स्वर्ग से उतरकर धरती पर अवतरण। हिमालय की सुख-सुविधाओं को त्याग, कष्टसाध्य लोकमंगल की प्रवृत्ति । लघुता को महानता में परिणत करने वाला-समुद्र मिलन का लक्ष्य, इसके लिए यात्रा द्वारा अपनी पात्रता सिद्ध करने के लिए सुदूर प्रदेशों का सिंचन करने की तप साधना। भूमि की तृष्णा बुझाने के लिए अपना अस्तित्व गवाँ देने की साध। इस महानता से हरेक को प्रभावित कर सहायता के लिए तत्पर, हिमालय का अजस्र अनुदान, बादलों का आश्वासन, नदी-नालों का आत्म समर्पण जैसी उपलब्धियों का प्रादुर्भाव। गंगोत्री की तनिक-सी धारा का बंगाल पहुँचते-पहुँचते हजार धाराओं में विस्तार। यही महानता गंगा अवतरण की प्रक्रिया है। जिस व्यक्ति में भी वह अवतरित

होती है, उसे गंगा जैसा दृष्टिकोण चरित्र और कर्त्तव्य अपनाना होता है। गायत्री अपना प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत करते हुए मानों प्रत्येक जाग्रत् आत्मा को यह उद्‌बोधन प्रदान करती है कि जीवन के श्रेष्ठतम सदुपयोग का क्रिया-कलाप यही हो सकता है।

गायत्री मन्त्र के २४ अक्षरों में २४ शिक्षाएँ हैं, जो आज भी व्यक्ति और समाज के लिए सही मार्गदर्शक हैं। ये शिक्षाएँ गायत्री स्मृति के २४ श्लोकों में विद्यमान हैं। इसी प्रकार गायत्री मन्त्र में ९ शब्द ३ व्याहृतियाँ १ प्रणव- इन १३ पदों की १३ श्लोकों के रूप में विवेचना "गायत्री गीता" में की गई है। इन दोनों संकल्पों को गायत्री महाविज्ञान के द्वितीय खण्ड में पढ़ा जा सकता है और उस आधार पर गायत्री मन्त्र के प्रकाश में व्यक्ति निर्माण और समाज निर्माण का आधार क्या होना चाहिए, इसके सभी प्रधान पक्षों पर प्रकाश डाला जा सकता है। साधारणतया गायत्री मन्त्र का मोटा शब्दार्थ भी बहुत प्रेरक और प्रकाशपूर्ण है।

भूः भुवः स्वः तीन लोक हैं, तीनों में ॐ परमात्मा समाया हुआ है। वही शीर्ष भाग का प्रणव और व्याहृतियों का तात्पर्य है। भूः शरीर को, भुवः मन को और स्वः अन्तरात्मा को कहते हैं। इन्हीं को स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीर भी कहा जा सकता है। इनमें परमात्मा व्याप्त है। यह परमात्मा का घर है। देव मंदिर तीर्थ है। इन्हें सदा निर्मल एवं परिष्कृत ही रखा जाना चाहिए। इनमें दुर्भावनाओं और दुष्प्रवृत्तियों की मलीनता को स्थान नहीं मिलना चाहिए। व्यक्ति, परिवार और समाज भी भूः, भुवः, स्वः हैं। इन्हें परमात्मा का मूर्तिमान् स्वरूप, उत्तरदायित्व समझा जाए और उन्हें श्रेष्ठतम स्थिति में रखने के लिए निरन्तर तत्पर रहा जाए, यह प्रेरणा गायत्री के शीर्ष भाग की- "भूः भुवः स्वः" की है।

"तत्" अर्थात् "वह"। यह अर्थात् प्रत्यक्ष-प्रेय। वह अर्थात् परोक्ष श्रेय। हमें वासना और तृष्णापरक लोभ-मोह में ग्रस्त होकर लोभ और मोह की वासना-अहंता की पूर्ति में लगे रहकर प्रत्यक्ष भौतिकता तक अपने को सीमित नहीं कर लेना चाहिए। "यह" को ही सब कुछ नहीं समझ लेना चाहिए। वरन् "वह" पर भी ध्यान देना चाहिए। अन्तरात्मा की पुकार, मरणोत्तर स्थिति, ईश्वरीय निर्देशों की पूर्ति, पवित्र कर्त्तव्यों का निर्वाह जैसे

महत्त्वपूर्ण तथ्यों पर भी ध्यान देना चाहिए। सीमित संकीर्णता में चिन्तन अवरुद्ध न रखकर, विस्तृत, उदात्त, दूरगामी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और अपनी कार्य पद्धति उसी आधार पर निर्धारित करनी चाहिए। यही है गायत्री के प्रथम पद "तत्" का सन्देश।

"सवितुः" सृजनकर्त्ता- तेजस्वी, ईश्वर इन दो महान् विशेषताओं से परिपूर्ण है, हम भी उनका अनुसरण करें। ध्वंसात्मक-विघटनात्मक प्रवृत्तियाँ छोड़ें और सृजनात्मक-विधेयात्मक क्रिया-कलाप अपनाएँ। हम क्या कर सकते हैं, क्या बन सकते हैं, इसी पर ध्यान केन्द्रित रखें। संसार में जो कुछ अवांछनीय है, वह वांछनीयता के अभाव भर का द्योतक है। प्रकाश का न होना ही अन्धकार है। अन्धकार से लड़ते फिरना बेकार है। प्रकाश उत्पन्न करें, ताकि अन्धकार सहज ही तिरोहित हो सके।

दूसरा अर्थ है-तेजस्वी। दासता, मलिनता, विलासिता की दुष्प्रवृत्तियों में बँधना सर्वथा अस्वीकार कर दें। आत्मगौरव को समझें-स्वतन्त्र चिन्तन एवं कर्त्तव्य अपनाएँ-सर्वतोमुखी स्वच्छता में गहरी अभिरुचि लें तथा भव-बन्धनों से मनोभूमि को, असंयम से शरीर को, अवांछनीय प्रचलनों से समाज को बन्धन मुक्त कराएँ। सर्वांगीण मुक्ति का लक्ष्य लेकर चलें, यही तेजस्वी होने का स्वरूप है। इसके लिए हमें मनस्वी और तपस्वी होना चाहिए; ताकि हमारी दीपक जैसी उपयोगी तेजस्विता का प्रकाश और प्रभाव सर्वत्र अनुभव किया जा सके। उसके आधार पर स्वर्गीय वातावरण का सृजन हो सके। यह है-सविता शब्द के सृजनकर्त्ता और तेजस्वी होने का सही स्वरूप।

"वरेण्यं" का अर्थ है- वरण करने-योग्य, चुने जाने योग्य। इस संसार में कूड़ा-करकट भी कम नहीं। ओछे विचार-मूढ़ मान्यताएँ-हेय परम्पराएँ तथा खोटे व्यक्तियों से दुनियाँ भरी पड़ी है। इनमें केवल वरेण्य-श्रेष्ठ उचित को ही अपनाया जाए और जो अवांछनीय भरा पड़ा है, उसे न तो स्वीकार किया जाए और न सहयोग दिया जाए।

"भर्गः" शब्द का अर्थ भून देना होता है। अपने भीतर की दुर्भावनाओं को, गुण-कर्म-स्वभाव में भरी अवांछनीयताओं को छोड़ना-तोड़ना ही चाहिए। परिवार में जो अस्त-व्यस्तता और अव्यवस्था का क्रम चल रहा हो, उसे बदला जाना चाहिए। समाज के प्रत्येक क्षेत्र में जो दुष्प्रवृत्तियाँ घुस पड़ी

हैं, उन्हें उखाड़ा ही जाना चाहिए। अनीति के विरुद्ध संघर्ष के लिए गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिये हैं, उन्हीं को गायत्री का 'भर्ग' शब्द देता है। धर्म की स्थापना और अधर्म का उन्मूलन करना भगवान् के अवतार का प्रधान उद्देश्य रहा है। भाड़ में जिस तरह चने भूने जाते हैं, उसी तरह हमारी तेजस्विता "अवांछनीयता" को भूनने में तत्पर रहे, यह भर्ग शब्द की प्रेरणा है।

"देवस्य" शब्द देवत्व की ओर संकेत करता है। लोग लेने भर का मजा लूटते हैं, देने का आनन्द उससे कितना अधिक मधुर है, इस का आस्वादन कोई कर सके, तो उसका अन्तःकरण निरन्तर आनन्द एवं उल्लास से ओत - प्रोत बना रहे। जिसका स्वभाव देना हो, वह 'देव'। जिसे तृष्णा खाये जा रही हो, वह "दानव"। हमें दानव नहीं, देव बनना चाहिए। अनुकरणीय देव जीवन जीना चाहिए। मस्तिष्क में दिव्य दर्शन करते रहना चाहिए। समाज को देवात्माओं से भरा हुआ-स्वर्गीय परिस्थितियों से ओत-प्रोत बनाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। देवाराधना का तात्पर्य देव प्रवृत्तियों का अभिवर्धन ही है। गायत्री मन्त्र का देव शब्द इसी दिशा में निर्देश करता है।

"धीमहि" का अर्थ है- धारण करना। जो श्रेष्ठ है- धर्म का कर्त्तव्य है, उसे केवल कहने-सुनने, पढ़ने-लिखने के वाग् विलास तक ही सीमित न रखें, वरन् उसकी जड़ें अपने मस्तिष्क से आगे बढ़ाकर भाव क्षेत्र में, आकांक्षाओं में उतारें और उन्हें कार्यान्वित करने का प्रयत्न करें। कथा, प्रवचन, स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन के सहारे बहुधा उच्च आदर्शों की सुधार पद्धति से अपना सम्बन्ध, सम्पर्क बनाया जाता है; पर यदि वहीं तक इस क्षेत्र में सीमित होकर रहा जाए, जड़ न जमाए, निष्ठा के रूप में परिणत न हो, कार्य-पद्धति में स्थान न पाए, तो उसे न उगने वाले बीज की संज्ञा दी जायेगी। गायत्री का 'धीमहि' शब्द कहता है, औचित्य को स्वीकार करना ही पर्याप्त नहीं, तदनुकूल आचरण भी करना चाहिए।

"धियो" का अर्थ है- बुद्धि, विवेक, आस्था। इसी बीज का विकसित स्वरूप है-व्यक्तित्व। भीतर जैसी भी स्थिति मनुष्य की है, उसका बाह्य क्रिया-कलाप वातावरण लगभग उसी स्तर का बनता चला जाता है। यह

संकेत अन्त:करण की आन्तरिक भाव निष्ठा की ओर है । जहाँ से बुद्धि, मन तथा शरीर की गतिविधियों को प्रेरणा मिलती है । हमारी आस्था-निष्ठा जब पशु- प्रवृत्तियों से भरी होती है, तो मस्तिष्क में आदर्शों के प्रवचन और शरीर में धार्मिकता के आडम्बर बढ़ते रहने पर भी बात कुछ बनती नहीं है, दम्भ भर विकसित होता रहता है । गायत्री का "धियो" शब्द आस्था, निष्ठा, आकांक्षा के मर्मस्थल को स्पर्श करने और परिवर्तन की चाबी वहीं से घुमाने की ओर संकेत करता है । 'धियो' का अर्थ यहाँ ऋतम्भरा प्रज्ञा से है । साधारण समझदारी और बुद्धिमानी को भी सन्मार्गगामी बनाने की उसमें शिक्षा समाविष्ट है ।

"यो न:" अर्थात्- हमारा - हम सबका । एकाकीपन निकम्मी चीज है । अपने लिए ही धन, भोग, यश, वैभव, पद, सत्ता एकत्रित करने में सभी लोग लगे रहते हैं । तथाकथित भक्त एवं धर्मात्मा भी इसी गलित कुष्ठ के रोगी देखे जाते हैं । उन्हें भी अपने लिए ही स्वर्ग, मुक्ति, सिद्धि, प्रतिष्ठा चाहिए । इस क्षुद्रता के कारण उनकी पूजा उपासना भी व्यापारी-व्यवसाइयों की भाँति अपनेपन की संकीर्णता में ही उलझी रह जाती है । न उससे उनका लाभ होता है और न समाज का । स्वार्थी वस्तुत: ओछेपन का नाम है, जो अपनी उपलब्धियों से न स्वत: लाभान्वित हो सकता है और न दूसरे को होने देता है । कोई एकाकी व्यक्ति उन्नति करे भी, तो ऐसे दूषित वातावरण में उसका लाभ नहीं ले सकता । दुष्ट और ईर्ष्यालु उसे अकारण ही सताते रहेंगे और चैन से न बैठने देंगे । गायत्री मन्त्र का 'योन:' शब्द यही प्रेरणा देता है कि जो भी सोचना हो "मैं" की तुच्छ परिधि में नहीं, वरन् "हम" को ध्यान में रखकर सोचना तथा करना चहिए-अपने को समाज का एक घटक मानना चाहिए और सामाजिक प्रगति में ही अपनी प्रगति की झाँकी देखनी चाहिए ।

"प्रचोदयात्" अर्थात् प्रेरणा दे । परमात्मा से प्रार्थना है कि आपने हमें भौतिक सुविधाएँ उपार्जित करने में समर्थ बुद्धियुक्त शरीररूपी यन्त्र दे दिया, अब भौतिक क्षेत्र में हमारा माँगना और आपका देना व्यर्थ है । पात्रता के अभाव में यदि प्रस्तुत उपलब्धियों से ही लाभ उठा सकना अपने लिए सम्भव न हो, तो आगे बढ़ा हुआ वैभव अधिक तृष्णा और अधिक दुष्टता ही उत्पन्न करेगा । सदुपयोग न आने पर ही मनुष्य अपने को अभावग्रस्त समझता है

और उसका निराकरण वस्तुओं से नहीं, आन्तरिक समाधान में ही सम्भव होता है । अस्तु, परमात्मा से एक ही प्रार्थना गायत्री मन्त्र में की गई है कि वे हमें सन्मार्ग पर चलने की आकांक्षा जगा दें, उधर चलने का साहस प्रदान करें और घसीटते हुए उस कल्याण मार्ग पर नियोजित कर दें । यही प्रार्थना है कि "घुनने और धुनने" में समय नष्ट करते रहने की कुण्ठा को हटाएँ । कुत्साओं से विरत हों और शरीर एवं मन को उस मार्ग पर धकेलें, जिससे मानव जीवन का प्रयोजन पूरा होता है । गायत्री मंत्र का अन्तिम चरण उत्कृष्ट विचारणा को साहसिक प्रेरणा में-व्यावहारिक गतिविधियों में परिणत करने का आग्रह करता है । उसी बिन्दु पर वह अत्यधिक जोर देता है ।

यही है, गायत्री मंत्र के शब्दों में समाया हुआ मोटा; किन्तु अति महत्त्वपूर्ण-भावपूर्ण और तथ्यपूर्ण अर्थ । इन्हीं की परिधि में वक्ताओं को अपने प्रतिपादन अपने ढंग से प्रस्तुत करते हुए, गायत्री मंत्र की व्याख्या करनी चाहिए और उपस्थित लोगों के मनःक्षेत्र को इस महाशक्ति की प्रेरणाओं से आलोकित करना चाहिए ।

गायत्री का वाहन है- हंस । हंस का अर्थ है स्वच्छ कलेवर । दाग- धब्बों से कलंक- कालिमाओं से बना हुआ जीवन हंस कैसे कहा जायेगा ? जिसे नीर-क्षीर विवेक करना आता है, जो दूध में से पानी हटा देता है, दूध ही ग्रहण करता है, वह हंस है, जीवन को बिना दाग-धब्बे का स्वच्छ-निर्मल चरित्र रखने का प्रयत्न करने वाला तथा अनुचित का सर्वथा त्याग, औचित्य कष्टसाध्य होते हुए भी उसे अंगीकृत करने की नीति, हंस प्रवृत्ति है । जिन्होंने यह नीति अपनाई, उन्हीं को गायत्री माता अपना वाहन बनायेंगी । उन्हीं पर विशेष कृपा करेंगी । यह तथ्य भी इस अवसर पर उपस्थित लोगों को समझाया जाना चाहिए ।गंगा और गायत्री के जन्मदिन का पुनीत पर्व हमारे कर्म में गंगा जैसी सरसता और चिन्तन में गायत्री जैसी ज्योति उत्पन्न करे, इसी प्रेरणा को अधिकाधिक गहराई तक हृदयंगम किया जाए ।

॥ पर्व पूजन क्रम ॥

देव मंच पर आद्यशक्ति गायत्री और गंगावतरण के चित्रों की झाँकी सजाई जाए ।पर्व व्यवस्था क्रम के अनुरूप प्रारम्भिक उपचार करते हुए रक्षाविधान तक के क्रम यथाशक्ति पूरे कराये जाएँ ।

पर्व पर विशेष रूप से आद्यशक्ति की तीन धाराओं वेदमाता, देवमाता, विश्वमाता का, हंस का तथा पतितपावनी गंगा का आवाहन करें । प्रत्येक आवाहन के पूर्व उनकी गरिमा का संक्षिप्त, सारगर्भित विवरण दें । फिर भावना संचार के सकेत देते हुए मन्त्रोच्चारपूर्वक आवाहन करें ।

।। वेदमाता आवाहन ।।

वेद अर्थात् ज्ञान की माता । हमारे आवाहन के साथ "माँ" वह दिव्य ज्ञान प्रकाश के रूप में अवतरित हो, जो अज्ञान, अशक्ति, अभाव से मुक्ति दिलाकर आदर्श लक्ष्य तक पहुँचने में समर्थ बना दे । दिव्य ज्ञान की उपलब्धि और उसे धारण करने व उपयोग में लाने की पात्रता को माँ सम्भव बनाए ।

ॐ नमस्ते सूर्य संकाशे, सूर्ये सावित्रिकेऽमले ।
ब्रह्मविद्ये महाविद्ये, वेदमातर्नमोऽस्तुते ।। - गा० पुर० प०

ॐ स्तुता मया वरदा वेदमाता, प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् । आयुः, प्राणं, प्रजां , पशुं, कीर्तिं, द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् । मह्यं दत्त्वा, व्रजत ब्रह्मलोकम् ।।

ॐ श्री वेदमात्रे नमः । - अथर्व० १९.७१.१

।। देवमाता आवाहन ।।

देवत्व, सद्वृत्ति, सदाचार की जननी । माँ दिव्य उल्लास प्रवाह के रूप में जन-जन में प्रस्फुटित हो । वह माँ हमारा भावभरा पूजन स्वीकार करे, दीनता और दुष्टता का निवारण करके हमारे जीवन को देवोपम बनाने के लिए अँगुली पकड़कर आगे बढ़ाएँ ।

ॐ देवस्येति तु व्याकरोत्यमरतां, मर्त्योऽपि सम्प्राप्यते,
देवानामिव शुद्धदृष्टिकरणात्, सेवोपचाराद् भुवि ।
निःस्वार्थपरमार्थकर्मकरणात्, दीनाय दानात्तथा,
बाह्याभ्यन्तरमस्य देवभुवनं, संसृज्यते चैव हि ।। गा० गी०

ॐ श्री देवमात्रे नमः ।

॥ विश्वमाता आवाहन ॥

जगन्माता उस आत्मीयभाव सहित अवतरित हो, जो स्वार्थपरता का उच्छेदन करके हमें मनुष्यता के गौरव का अधिकारी बना दे। विश्वपरिवार, विश्वसंस्कृति, विश्व व्यवस्था के आदर्श को साकार करने की शक्ति दें।

ॐ त्वं मातः सवितुर्वरेण्यमतुलं, भर्गः सुसेव्यः सदा,
यो बुद्धीर्नितरां प्रचोदयति नः, सत्कर्मसु प्राणदः।
तद्रूपां विमलां द्विजातिभिरुपा, स्यां मातरं मानसे,
ध्यात्वा त्वां कुरुशं ममापि जगतां,सम्प्रार्थयेऽहं मुदा॥
ॐ श्री विश्वमात्रे नमः। - गा० पु० प०

॥ हंस आवाहन ॥

आद्यशक्ति का वाहन हंस है। जीव को भी हंस कहा गया है। हंस-चेतना, विवेक, निर्मलता का अवतरण हो। उसके पूजन से हम सब भी महाशक्ति को धारण करके गतिशील होने में समर्थ हो सकें।

ॐ परमहंसाय विद्महे, महाहंसाय धीमहि।
तन्नो हंसः प्रचोदयात्॥ॐ श्री हंसाय नमः।- हं० गा०

॥ गंगा आवाहन ॥

पतित पावनी, लोक कल्याणकारी माँ गंगा, पवित्र परमार्थ वृत्ति सहित पधारें। पापों-कल्मषों की कालिमा धोकर हमें निर्मल बनाएँ।

ॐ पंचनद्यः सरस्वती मपि यन्ति सस्त्रोतसः।
सरस्वती तु पंचधा सो देशेऽभवत्सरित्॥ ३४.११
ॐ शैलेन्द्रादवतारिणी निजजले, मज्जज्जनोत्तारिणी,
पारावार विहारिणी भव-भय, श्रेणी समुत्सारिणी।

शेषाहेरनुकारिणी हरशिरोवल्लीदलाकारिणी,
काशीप्रान्तविहारिणी विजयते, गंगामनोहारिणी ॥
ॐ श्री गंगायै नमः ॥

आवाहन के बाद सबका संयुक्त पूजन पुरुष सूक्त से किया जाए । पूजन के उपरान्त पर्व प्रसाद-संकल्प धारण कराया जाए ।

......नामाहं युगशक्ति महाप्रज्ञागायत्री-अवतरणपर्वणि त्रिपदासाधनां स्वयं सम्पादयितुं अद्यप्रभृति च जनान् एतत्साधनायां नियोक्तुं श्रद्धापूर्वकं संकल्पयिष्ये ।

संकल्प के बाद यज्ञ, दीपयज्ञ सहित समापन के सामान्य अनुशासन क्रम से आयोजन पूर्ण किया जाए ।

* * *

॥ गुरुपूर्णिमा ॥

माहात्म्य बोध- गुरु पूर्णिमा को अनुशासन पर्व भी कहा जाता है । सामान्यरूप से भी सिखाने वाले गुरुजनों का अनुशासन स्वीकार किये बिना कुशलता में निखार नहीं आ सकता । जहाँ यह आवश्यक है कि गुरुजनों को अपना क्रम ऐसा बनाकर रखना चाहिए कि शिष्य वर्ग में उनके प्रति सहज श्रद्धा-सम्मान का भाव जागे, वहाँ यह भी आवश्यक है कि सीखने वाले, शिष्य भाव रखें, गुरुजनों का सम्मान और अनुशासन बनाये रखें । इस दृष्टि से यह पर्व गुरु-शिष्य दोनों वर्गों के लिए अनुशासन का सन्देश लेकर आता है, इसलिए अनुशासन पर्व कहा जाता है । अनुशासन मानने वाला ही शासन करता है, यह तथ्य समझे बिना राष्ट्रीय या आत्मिक प्रगति सम्भव नहीं है ।

गुरु पूर्णिमा पर व्यास पूजन का भी क्रम है । जो स्वयं चरित्रवान् हैं और वाणी एवं लेखनी से प्रेरणा संचार करने की कला भी जानते हैं, ऐसे आदर्शनिष्ठ विद्वान् को व्यास की संज्ञा दी जाती है । गुरु व्यास भी होता है । इसलिए गुरु-पूजा को व्यास पूजा भी कहते हैं । वैसे महर्षि व्यास अपने आप में महान् परम्परा के प्रतीक हैं । आदर्श के लिए समर्पित प्रतिभा के वे उत्कृष्ट

उदाहरण हैं । लेखक-वक्ता यदि लेखनी, तूलिका, वाणी द्वारा भाव सृजन की क्षमता रखने वाले कलाकार यदि व्यासजी का अनुसरण करने लगें, तो लोक कल्याण का आधा रास्ता तो पार हुआ माना ही जा सकता है- यह भी एक अनुशासन है । आध्यात्मिक स्तर पर गुरु-शिष्य के सम्बन्धों में तो अनुशासन और भी गहरा एवं अनिवार्य हो जाता है । गुरु शिष्य को अपने पुण्य, प्राण और तप का एक अंश देता है । वह अंश पाने की पात्रता , धारण करने की सामर्थ्य और विकास एवं उपयोग की कला एक सुनिश्चित अनुशासन के अन्तर्गत ही सम्भव है । वह तभी निभता है, जब शिष्य में गुरु के प्रति गहन श्रद्धा-विश्वास तथा गुरु में शिष्य वर्ग की प्रगति के लिए स्नेह भरी लगन जैसे दिव्य भाव हों । गुरु पूर्णिमा पर्व गुरु-शिष्य के बीच ऐसे ही पवित्र, गूढ़-अंतरंग सूत्रों की स्थापना और उन्हें दृढ़ करने के लिए आता है । गुरु पूर्णिमा पर्व मनाने वालों को नीचे लिखे तथ्य ध्यान में रखने चाहिए ।

* गुरु व्यक्ति रूप में पहचाना जा सकता है, पर व्यक्ति की परिधि में सीमित नहीं होता । जो शरीर तक सीमित है, चेतना रूप में स्वयं को विकसित नहीं कर सका, वह अपना अंश शिष्य को दे नहीं सकता । जो इस विद्या का मर्मी नहीं, वह गुरु नहीं और जो शिष्य गुरु को शरीर से परे शक्ति सिद्धान्त रूप में पहचान-स्वीकार नहीं कर सका, वह शिष्य नहीं ।

* गुरु शिष्य पर अनुशासन दृष्टि रखता है और शिष्य गुरु से निरन्तर निर्देश पाता, उन्हें मानता-अपनाता रहता है । यह चिन्तन स्तर पर, वाणी द्वारा एवं लिखने-पढ़ने के स्तरों पर सम्भव है । जिनके बीच इस प्रकार के सूत्र स्थापित नहीं, उनका सम्बन्ध चिह्न-पूजा मात्र कहा जाने योग्य है और गुरु-शिष्य का अन्ध-बधिर का जोड़ा बन कर रह जाता है ।

* भारतीय संस्कृति में गुरु-शिष्य का सम्बन्ध दाता-भिखारी जैसा नहीं, सहयोगी-साझेदारी स्तर का बनाया जाता है । गुरु-शिष्य को अपनी दिव्य संपदा की कमाई का एक अंश देता रहता है, जो अनुशासनपूर्वक प्रयुक्त किया जाकर शिष्य के व्यक्तित्व को ऊँचा उठाता है । उठे हुए व्यक्तित्व के द्वारा शिष्य भी लौकिक-पारलौकिक कमाई करता है ।

* इसी प्रकार शिष्य अपनी कमाई, श्रद्धा, पुरुषार्थ, प्रभाव एवं सम्पदा का एक अंश गुरु को समर्पित करता रहता है । इनके उचित उपयोग से गुरु

का लोकमंगल अभियान विकसित होता है और उसका लाभ अधिक व्यापक क्षेत्र तक पहुँचने लगता है, इससे गुरु की पुण्य - सम्पदा बढ़ती है और उसका अधिकांश भाग शिष्यों के हिस्से में आने लगता है। जहाँ इस प्रकार की दिव्य साझेदारी नहीं, वहाँ गुरु-शिष्य सम्बन्ध अपनी संस्कृति में वर्णित असामान्य उपलब्धियाँ पैदा नहीं कर सकते।

* जहाँ गुरु अपने स्नेह-तप से शिष्य का निर्माण-विकास कर सकता है, वहाँ शिष्य को भी अपनी श्रद्धा-तपश्चर्या से गुरु का निर्माण एवं विकास करना होता है। इतिहास साक्षी है कि जिन शिष्यों ने अपनी श्रद्धा-संयोग से गुरु का निर्माण किया, उनको ही चमत्कारी लाभ मिले। द्रोणाचार्य कौरवों के लिए सामान्य वेतन भोगी शिक्षक से अधिक कुछ न बन सके। पाण्डवों के लिए अजेय विद्या के स्रोत बने। एकलव्य के लिए एक अद्‌भुत चमत्कार बन गये, अन्तर था-श्रद्धा-संयोग से बने गुरु तत्त्व का। रामकृष्ण परमहंस जन सामान्य को बाबाजी से अधिक कुछ लाभ न दे सके; किन्तु जिसने अपनी श्रद्धा से उन्हें गुरु रूप में विकसित कर लिया, उनके लिए अवतार तुल्य सिद्ध हुए। अस्तु, शिष्यों को अपनी श्रद्धा, तपश्चर्या, साधना द्वारा सशक्त गुरु निर्माण का प्रयास जारी रखना चाहिए, गुरु-पर्व यही अवसर लेकर आता है।

॥ पर्व पूजन क्रम ॥

*पर्व पूजन मंच पर ब्रह्मा-विष्णु-महेश के चित्र अथवा उनके प्रतीक रखने चाहिए। यदि एक ही विचारधारा के व्यक्ति एकत्रित हैं, तो शरीर-धारी गुरु का चित्र भी रख सकते हैं। यदि विभिन्न धाराओं से सम्बद्ध व्यक्ति एकत्रित होने वाले हैं, तो गुरु का प्रतीक नारियल रख लेना चाहिए।

* प्रारम्भिक उपचार पर्व विधान के अनुसार करा लेना चाहिए। विशेष पूजन के लिए क्रमशः गुरु आवाहन एवं ब्रह्मा-विष्णु-महेश का आवाहन करना चाहिए। गुरु तीनों धाराओं का संगम होता है। प्रत्येक आवाहन के पूर्व उनकी गरिमा का उल्लेख गिने-चुने शब्दों में किया जाए, फिर भाव संकेत देते हुए मन्त्रोच्चारणपूर्वक आवाहन किया जाए।

॥ गुरु आवाहन ॥

गुरुसत्ता, जो ईश्वरीय सत्ता का ही एक अंश है, हमारी प्रार्थना पर अपने

आपको प्रकट कर दे, ताकि हम उसको समझ सकें, उपयोग कर सकें। हम उनके अनुशासन पालने का विश्वास दिलाते हुए उनका भाव - भरा आवाहन करते हैं। हाथ में अक्षत- पुष्प लेकर गुरु का आवाहन करें।

ॐ आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं, ज्ञानस्वरूपं निजबोधरूपम्।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोग वैद्यं, श्रीसद्गुरुं नित्यमहं नमामि॥
गुरुर्गुरुतमो धाम, सत्यः सत्यपराक्रमः।
निमिषोऽनिमिषः स्रग्वी, वाचस्पतिरुदारधीः॥
चैतन्यं शाश्वतं शान्तं, व्योमातीतं निरञ्जनम्।
बिन्दुनादकलातीतं, तस्मै श्री गुरवे नमः॥ - गु० गी०४८
ॐ श्री गुरवे नमः॥

॥ ब्रह्मा आवाहन ॥

शिष्य के नाते अपने अन्तरंग एवं बहिरंग क्षेत्र में जो संरचनाएँ करनी हैं, उनके निर्माण के लिए आदि स्रष्टा ब्रह्मा का आवाहन करते हैं, उन्हीं की कृपा से हम नई सृष्टि कर सकेंगे। मनुष्य में देवत्व का उदय सम्भव होगा-

ॐ चतुर्मुखाय विद्महे, हंसारूढाय धीमहि।
तन्नो ब्रह्मा प्रचोदयात्॥ॐ श्री ब्रह्मणे नमः॥- ब्र० गा०

॥ विष्णु आवाहन ॥

गुरु द्वारा प्रदत्त तथा पुरुषार्थ द्वारा जाग्रत् सत् तत्त्वों, सद् आकांक्षाओं-परम्पराओं के पोषण-विकास के लिए, पालनकर्त्ता विष्णु का आवाहन करते हैं। जिनकी कृपा से ही पोषित सत् तत्त्वों से धरती पर स्वर्ग का अवतरण साकार होगा।

ॐ नारायणाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि।
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्॥ॐ श्री विष्णवे नमः॥- वि० गा०

॥ महेश आवाहन ॥

अनुपयुक्त के हर्त्ता रुद्र, कल्याणकारी परिवर्तन चक्र के अधिष्ठाता शिव का आवाहन करते हैं। उन्हीं की कृपा के संयोग से जन पुरुषार्थ पतनोन्मुख धारा को पलटकर उत्कर्ष की दिशा दे सकेगा। अवांछनीयता की

गलाई और सदाशयता की ढलाई का क्रम चलेगा।

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे, महादेवाय धीमहि।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥ॐ श्री शिवाय नमः॥ - रु० गा०

॥ व्यास आवाहन ॥

महर्षि व्यास विद्वत्ता, प्रतिभा को आदर्शोन्मुख बनाने की प्रबल चेतना के रूप में अवतरित हों, उनके प्रभाव से ही प्रतिभा - मनीषा का भटकाव रुकेगा, कल्याण के मार्ग खुलेंगे।

ॐ व्यासं व्यासकरं वन्दे, मुनिं नारायणस्वयम्।
यतः प्राप्त-कृपा लोका, लोकामुक्ताःकलिग्रहात्॥
नमः सर्वविदे तस्मै, व्यासाय कविवेधसे।
चक्रे पुण्यं सरस्वत्या, यो वर्षमिव भारतम्॥
ॐ श्री व्यासाय नमः।

इस प्रकार आवाहन के बाद पुरुष सूक्त से संयुक्त गुरु विग्रह का पूजन किया जाए। पूजन के बाद पर्व-प्रसाद-संकल्प धारण कराएँ।

...... नामाहं अद्यगुरुपूर्णिमापर्वणि गुरुरूपेण मार्गदर्शन-सहयोगदातृ - ईश्वरीयसत्तायाश्च - दिव्यानुशासनं अद्यप्रभृति.. पर्यन्तं परिपालनस्य श्रद्धापूर्वकं संकल्पं अहं करिष्ये।

संकल्प के बाद गुरु के महान् उद्देश्यों के लिए अंश, समय, प्रभाव, ज्ञान, साधन आदि का उल्लेख कराया जा सकता है।यज्ञ-दीपयज्ञ आदि समापन उपचारों के बाद प्रसाद वितरण सहित पर्वायोजन समाप्त किया जाए।

* * *

॥ श्रावणी पर्व ॥

माहात्म्य बोध- "एकोऽहं बहुस्याम्" की ब्रह्म आकांक्षा जिस दिन पूरी हुई, कहते हैं उस दिन श्रावणी थी। एक से बहुत होना, सहयोग, संपर्क, स्नेह के आधार पर आत्मा में उल्लास विकसित होता है और एकाकीपन की नीरसता दूर होती है। यही ब्रह्म ने किया, उसे अकेलापन भाया नहीं। अपनी विभूतियों को अपने तक सीमित रखकर, भला वह उस स्थिति में सन्तुष्ट भी कैसे रहता ? विष्णु की नाभि में से कमल नाल निकली और वह पुष्प बनकर खिल पड़ी। उसी मकरन्द का भ्रमर ब्रह्मा है-प्रजापति। संकल्प शक्ति क्रिया में परिणत होती है और उसी का स्थूल रूप, वैभव एवं घटनाक्रम बनकर सामने आता है, नाभि में से अन्तरंग-बहिरंग बनकर विकसित होने वाली कर्मवल्लरी को ही पौराणिक अलंकार में कमलबेल कहा गया है, पुष्प इसी बेल का परिपक्व परिणाम है।

सृष्टि का सृजन हुआ, उसमें दो तत्त्व प्रयुक्त हुए (१) ज्ञान (२) कर्म। इन दोनों के सम्मिश्रण से सूक्ष्म चेतना-संकल्प शक्ति स्थूल वैभव में परिणत हो गई और संसार का विशाल कलेवर बनकर खड़ा हो गया, जिसमें ऋद्धि-सिद्धियों का आनन्द-उल्लास भर गया-यह कमल की पंखुड़ियाँ हैं। मूल है ज्ञान और कर्म, जो ब्रह्म की इच्छा और प्रत्यावर्तन द्वारा सम्भव हुआ। ज्ञान और कर्म के आधार पर ही मनुष्य की गरिमा का विकास हुआ है, इन्हें जो जितना परिष्कृत एवं प्रखर बनाता चलता है, उसकी प्रगति पूर्णता की दिशा में उतनी ही तीव्र गति से होती है-इस तथ्य को स्मरण रखने के लिए भारतीय धर्म के दो प्रतीक हैं-एक ज्ञान ध्वज शिखा, जो मस्तकरूपी किले के ऊपर फहराई जाती है। दूसरा यज्ञोपवीत- कर्त्तव्य- मर्यादा, जिसमें मनुष्य को आगे और पीछे से पूरी तरह कस दिया गया है। शिखा स्थापना और यज्ञोपवीत धारण उसी ज्ञान और कर्म को परिष्कृत बनाये रखने की चेतावनी है, जो जीवन को उसके आदि उद्गम पर ही दे दी गई थी और जो अद्यावधि अपनी उपयोगिता यथावत् बनाये हुए है।

श्रावणी पर्व पर पुराना यज्ञोपवीत बदला जाता है और नया पहना जाता है। प्रायश्चित्त संकल्प पढ़ते हैं और पिछले दिनों की हुई अवांछनीयताओं

का प्रायश्चित्त विधान सम्पन्न करते हैं। ऋषि पूजन भी इसी समय किया जाता है और वेद पूजन भी । वेद अर्थात् सद्ज्ञान। ऋषि अर्थात् वे व्यक्ति जो सद्ज्ञान को सत्कर्म में परिणत करने के लिए साहसिक तपश्चर्या करते हैं, कष्टसाध्य रीति-नीति अपनाते हैं। शिखा में सिंचन, यज्ञोपवीत, नवीनीकरण एक प्रकार से उनका वार्षिक संस्कार हैं, जैसे हर साल जन्मदिन और विवाह दिन मनाये जाते हैं। मोटर, रेडियो, बन्दूक आदि के लाइसेन्स नये होते हैं, उसी प्रकार यज्ञोपवीत और शिखा जैसे प्रकाश स्तम्भों को कहीं उपेक्षा विस्मृति के गर्त में तो नहीं डाल दिया गया- इसका निरीक्षण-विश्लेषण नवीनीकरण से करते हैं।

श्रावणी पर्व ब्राह्मण के, ऋषित्व के अभिवर्धन का पर्व है। सद्ज्ञान एवं सत्कर्म की मर्यादाओं का कहीं खण्डन हुआ हो, तो उसके प्रायश्चित्त के लिए तथा उच्च आदर्शवादी जीवन को अधिक तेजस्वी बनाने के लिए इस पर्व पर आत्म संकल्प एवं परमात्म अनुदानों का योग करने का विधान बनाया गया है। सामूहिक रूप से संक्षिप्त ही सही; किन्तु भाव भरे उपचारों द्वारा यज्ञीय भाव जनमानस में जाग्रत् करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

॥ पर्व व्यवस्था ॥

श्रावणी पर्व पर द्विजत्व के संकल्प का नवीनीकरण किया जाता है। उसके लिए परम्परागत ढंग से लोग एकत्रित होकर तीर्थ आवाहन करके, दस स्नान, हेमाद्रि संकल्प एवं तर्पण आदि कर्म करते हैं। इसके लिए किसी जलाशय पर जाते हैं अथवा मंदिर आदि पवित्र स्थल पर जलपात्र-बाल्टी आदि के सहारे यह सब करते हैं। यह सब उपचार प्रायश्चित्त के अन्तर्गत आते हैं, उसके लिए नीचे लिखे अनुसार क्रम बना लेना चाहिए।

१. षट्कर्म (सामान्य प्रकरण) २. तीर्थ आवाहन ३. हेमाद्रि संकल्प (इसी पर्व में) ४. दसस्नान (पृष्ठ १०७) ५. यज्ञोपवीत नवीनीकरण (पृष्ठ २४५), यदि नवीन यज्ञोपवीत देना हो, तो यज्ञोपवीत प्रकरण से लें। वैसे समयाभाव में पृष्ठ-२४५ वाला प्रकरण भी पर्याप्त माना जा सकता है।६. तर्पण (पृष्ठ-२७८) ७. अर्घ्यदान नमस्कार आदि (सामान्य प्रकरण से) कराकर परम्परागत श्रावणी उपाकर्म पूरा किया जा सकता है।

इस श्रावणी उपाकर्म में थोड़े से गिने-चुने लोग ही सम्मिलित हो पाते

हैं । शहरों में तो यह और भी कठिन हो जाता है । सामूहिक पर्व पूजन में बड़ी संख्या में लोग एकत्रित हो जाते हैं और उसमें कठिनाई भी नहीं होती । इसलिए जलाशय पर किये जाने वाले उपचारों के मूलभूत तत्त्व भी पर्व पूजन क्रम के साथ संयुक्त करके अधिक उपयोगी और अधिक पुण्यप्रद श्रावणी पर्व का सामूहिक क्रम यहाँ दिया जा रहा है, जहाँ उसे दो खण्डों में करना हो, वहाँ वैसा भी किया जा सकता है । श्रावणी पर सामूहिक पर्वायोजन का क्रम इस प्रकार चलाया जाना चाहिए ।

* श्रावणी पर्व के लिए नर-नारी सभी में उत्साह रहता है । पूजन मंच के सामने बिठाने की व्यवस्था पहले से ही निर्धारित रहे ।

* अभ्यागतों को दो वर्गों में विभक्त किया जाए । दोनों के लिए अलग-अलग खण्ड निश्चित रहें । एक खण्ड में केवल उन्हें बिठाया जाए, जो यज्ञोपवीत-परिवर्तन आदि सभी उपचारों में भाग लेंगे । दूसरा वर्ग जो केवल पूजन, रक्षाबन्धन, वृक्षारोपण जैसे गिने-चुने कर्मकाण्डों में ही भाग लेंगे । बालक-बालिकाएँ भी उसी वर्ग में रहें ।

* सभी उपचार करने वालों को पूजनमंच के निकट तथा खुली पंक्तियों में बिठाएँ; ताकि बार- बार पूजन सामग्री देने, उपचार करने में कठिनाई न हो । सीमित उपचार वालों को अपेक्षाकृत सघन भी बिठाया जा सकता है ।

* पर्व पूजन में प्रयुक्त होने वाली सभी वस्तुएँ पहले से समुचित मात्रा में रखी जाएँ , उन्हें कार्य प्रारम्भ के पूर्व जाँच लिया जाए , जैसे देवमंच की सज्जा, ब्रह्माजी का चित्र या प्रतीक नारियल, ऋषियों का प्रतीक कुशाओं का छोटा पूला । वेद पूजन के लिए पीले वस्त्र में लपेटी वेद की पुस्तक, पूजन सामग्री एवं पुष्प-अक्षत यथेष्ट मात्रा में, शिखा सिंचन के लिए चन्दन या सुगन्धियुक्त जल, यज्ञोपवीत परिवर्तन के लिए यज्ञोपवीत, रक्षाबन्धन के लिए कलावा-सूत्र, वृक्षारोपण के लिए तुलसी अथवा फूल लगाने योग्य वृक्षों की पौध । यदि यज्ञ करना है, तो उससे सम्बन्धित सभी सामग्री ।

सभी व्यवस्था सटीक बनाकर, स्वयंसेवकों एवं संचालकों को उनके उत्तरदायित्व समझाकर पर्व पूजन प्रारम्भ करें ।पूजन मंच पर प्रतिनिधि द्वारा षट्कर्म से लेकर रक्षाविधान तक के सभी उपचार, समय एवं परिस्थितियों की मर्यादा के अनुसार कराएँ । उसके बाद विशेष उपचार भावनापूर्वक प्रेरणा

उभारते हुए सम्पन्न कराये जाएँ ।अन्त में यज्ञ अथवा दीपयज्ञ-आरती आदि के समापन प्रक्रिया के उपचार यथानुशासन कराये जाएँ ।

॥ पर्व पूजन क्रम ॥

उपस्थित श्रद्धालुओं को संक्षेप में पर्व की भूमिका बतलाकर, भाव जागरण करके षट्कर्म आदि कृत्य कराएँ। कदाचित् सामूहिक रूप से षट्कर्म कराना सुलभ प्रतीत न हो तो **ॐ अपवित्रः ....**मन्त्र से सामूहिक अभिषिंचन करके सर्वदेव नमस्कार, स्वस्तिवाचन आदि कृत्य पूरे करें। तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्र के साथ तीर्थ आवाहन करें-

ॐ पुष्करादीनि तीर्थानि, गंगाद्याः सरितस्तथा।
आगच्छन्तु पवित्राणि, स्नानकाले सदा मम॥
त्वं राजा सर्वतीर्थानां, त्वमेव जगतः पिता।
याचितं देहि मे तीर्थं, तीर्थराज नमोऽस्तु ते॥
अपामधिपतिस्त्वं च, तीर्थेषु वसतिस्तव।
वरुणाय नमस्तुभ्यं, स्नानानुज्ञां प्रयच्छ मे॥
गंगे च यमुने चैव, गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि, जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

॥ हेमाद्रि संकल्प ॥

प्रेरणा प्रवाह- यह सृष्टि नियंता के संकल्प से उपजी है। हर व्यक्ति अपने लिए एक नई सृष्टि करता है, यह सृष्टि ईश्वरीय योजना के अनुकूल हुई, तो कल्याणकारी परिणाम उपजते हैं, अन्यथा अनर्थ का सामना करना पड़ता है। अपनी सृष्टि में चाहने, सोचने, करने में कहीं भी विकार आया हो, तो उसे हटाने तथा नई शुरुआत करने के लिए हेमाद्रि संकल्प करते हैं।

क्रिया और भावना- सभी के हाथों में संकल्प के अक्षत- पुष्प दें तथा भवनापूर्वक संकल्प दुहराने का आग्रह करें। भावना करें कि-

* हम विशाल तन्त्र के एक छोटे, किन्तु प्रामाणिक पुर्जे हैं। विराट् सृष्टि ईश्वरीय योजना, देव संस्कृति के अनुरूप हमें बनना है, ढलना है।

* हमारे संकल्प के साथ वातावरण की शुचिता और देव अनुग्रह का

योगदान मिल रहा है। परमात्म सत्ता की प्रतिनिधि आत्मसत्ता उसके लिए पुलकित-हर्षित होकर सक्रिय हो रही है। मन्त्र-

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्‌भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्त्तमानस्य अद्यश्रीब्रह्मणो द्वितीये परार्धे, श्रीश्वेतवाराहकल्पे, वैवस्वतमन्वन्तरे, भूर्लोके, जम्बूद्वीपान्तर्गते भारतवर्षे भरतखण्डे अस्मिन्वर्तमाने....क्षेत्रे.. मासे...... पक्षे...... तिथौ......वासरे...... गोत्रोत्पन्नः....नामाहं ज्ञाताज्ञात - स्तेय - अनृतभाषण - नैष्ठुर्य- संकीर्णभाव - असमानता - कपट - विश्वासघात - कटूक्ति- पति-पत्नी व्रतोत्सर्ग- ईर्ष्या - द्वेष - कार्पण्य - क्रोध - मद- मोह- लोभ मात्सर्य जनक-जननी गुर्वादि-पूज्यजनअवज्ञा- जाति-लिंगादि - जनित-उच्चनीचादि असमता - मादकपदार्थ- सेवन सुरापान मांसादि अभक्ष्यआहार आलस्य अतिसंग्रह- द्यूतक्रीडा - इन्द्रियअसंयमानां स्वकृतचतुर्विंशति संख्यकानां दोषाणां परिहारार्थं श्रावणी उपाकर्म अहं करिष्ये।

॥ दसस्नान ॥

पृष्ठ १०७ के अनुसार दस-स्नान की प्रक्रिया सम्पन्न करें।

॥ शिखा सिंचन ॥

प्रेरणा प्रवाह- देव संस्कृति सर्वश्रेष्ठ संस्कृति है। उसके अनुकरण का वातावरण बने, तो ही उसका लाभ मिल सकता है, शिखा को उसका प्रतीक माना गया है।विचार सर्वोच्च साधन हैं।उन्हें उच्च आदर्शों से हो युक्त रखना चाहिए, इसके लिए स्वाध्याय का क्रम नियमित चलना चाहिए।अपनी सांस्कृतिक महानता का बोध, उसके प्रति गौरव की अनुभूति, उसे क्रियान्वित करने का प्रचण्ड उत्साह उभारने से जीवन धन्य अवश्य बनेगा।

क्रिया और भावना- सबकी बायीं हथेली पर सुगन्धित जल दिया जाए। मन्त्रोच्चारण के साथ दाहिने हाथ से शिखा को उस जल से सिंचित करें। भावना करें कि शरीर के ऊपरी भाग में मस्तिष्क के उच्चतम स्तर पर

सांस्कृतिक चेतना को स्थापित करके उसके द्वारा दिव्य तेजस्विता को धारण किया जा रहा है ।

ॐ चिद्रूपिणि महामाये, दिव्यतेजः समन्विते।
तिष्ठ देवि शिखा मध्ये, तेजोवृद्धिं कुरुष्व मे ॥

॥ यज्ञोपवीत नवीनीकरण ॥

तदुपरान्त वानप्रस्थ प्रकरण पृष्ठ २४५ से यज्ञोपवीत नवीनीकरण उपचार की प्रेरणा तथा क्रिया लें । पंचदेवावाहन पूर्वक यज्ञोपवीत लेने वाले हों, तो उसकी भी व्यवस्था साथ ही की जा सकती है । इस नवीनीकरण का विस्तृत रूप यज्ञोपवीत प्रकरण से लेना पड़ेगा । समयाभाव में वानप्रस्थ प्रकरण से भी विधि पूरी हो जाती है ।यज्ञोपवीत नवीनीकरण के लिए सामूहिक पर्व में सब पर जोर न दें । जो इसके लिए पहले से तैयार हैं, उन्हें अलग से बिठा दें, उन्हीं का यज्ञोपवीत नवीनीकरण कराएँ । शेष सुनें-सुमझें और अन्य उपचारों में भाग लें ।

॥ विशेष पूजन ॥

प्रेरणा प्रवाह- श्रावणी पर्व पर सामान्य देवपूजन के अतिरिक्त विशेष पूजन के लिए ब्रह्मा, वेद एवं ऋषियों का आवाहन किया जाता है । ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता हैं। ब्राह्मी चेतना का वरण करने- अनुशासन पालन से ही अभीष्ट प्राप्ति हो सकती है । उस विद्या को जानने-अभ्यास में लाने वालों को ब्रह्मचारी, ब्राह्मण, ब्रह्मज्ञ आदि सम्बोधन दिये जाते रहे हैं । ब्रह्मा का आवाहन पूजन करके इन्हीं तथ्यों को प्रत्यक्ष करने का प्रयास किया जाता है ।

वेद ज्ञान को कहते हैं । ज्ञान से ही विकास होता है । अज्ञान ही अवनति का मूल है । ज्ञान का प्रत्यक्षीकरण करने के लिए वेद आवाहन-पूजन करते हैं ।ऋषि जीवन ने ही उच्चतम जीवनचर्या का विकास और अभ्यास करने में सफलता पाई थी, उनके अनुभवों-निर्देशों का लाभ उठाने के लिए ऋषि पूजन करते हैं । अमीरी नहीं महानता का चयन ही बुद्धिमत्तापूर्ण है । यह किसी आदर्श प्रेमी, ऋषि और किसी भ्रष्ट वैभवशाली का तुलनात्मक विश्लेषण करके जनता को समझाया जा सकता है कि कुमार्ग पर चलना कितना घातक

है ।सौम्य जीवन अन्ततः कितना सुखद सिद्ध होता है, इसकी चर्चा ऋषि तत्त्व का प्रतिपादन करते हुए की जानी चाहिए ।

॥ ब्रह्मा आवाहन ॥

ॐ ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसम छं सरः ।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥ २३.४८

॥ वेद आवाहन ॥

ॐ वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्, आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥
- ३१.१८

॥ ऋषि आवाहन ॥

ॐ इमावेव गोतमभरद्वाजावयमेव गोतमोऽयं भरद्वाजऽइमावेव विश्वामित्रजमदग्नी अयमेव विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरिमावेव वसिष्ठकश्यपावयमेव वसिष्ठोऽयं कश्यपो वागेवात्रिर्वाचा-ह्यन्नमद्यतेऽत्तिर्हवै नामैतद्यदत्रिरिति सर्वस्यात्ता भवति सर्वमस्यान्नं भवति य एवं वेद ॥ -बृह० उ० २.२.४

आवाहन के पश्चात् षोडशोपचार पूजन पुरुष सूक्त से करें ।

॥ रक्षा बन्धन ॥

प्रेरणा प्रवाह- श्रावणी पर रक्षा बन्धन बड़ा हृदयग्राही एवं सर्वप्रिय क्रम है । यह ऋषि परम्परा के अनुरूप मर्यादाओं के बन्धन से परस्पर एक दूसरे को बाँधने, अपने कर्त्तव्य निर्वाह का आश्वासन देने का अनोखा ढंग है ।

* आचार्य-ब्राह्मण अपने यजमानों को रक्षा सूत्र बाँधते रहे हैं । उन्हें अनुशासन में बाँधकर कल्याणकारी प्रगति का अधिकारी बनाने के लिए अपने पवित्र कर्त्तव्यपालन का यह आश्वासन है, जो देव साक्षी में किया जाता है, इसके बिना मार्गदर्शक और अनुयायी एक दूसरे से लाभ नहीं उठा सकते ।

* आज देश, धर्म, समाज, संस्कृति की चारों सीमाएँ किस प्रकार खतरे में हैं और उन्हें सुरक्षित रखने के लिए किस प्रकार सर्वसाधारण को धर्मयोद्धा

के रूप में, सृजन सेना के सैनिक के रूप में कटिबद्ध होना चाहिए ? इसकी स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत की जा सकती है, सृजन सेना के कर्त्तव्य में यह सब बताया गया है। कन्याओं द्वारा रक्षा बन्धन में एक और तत्त्व का समावेश है, वह है-नारी की गरिमा। इन दिनों कला के नाम पर जो दुःशासन-दुर्योधन जैसी धृष्टता की जा रही है, उसे रोकना। नारी को खिलौना बनाकर उसकी शालीनता को वैश्या स्तर पर गिराने की जो कुचेष्टा तथाकथित कलाकार, साहित्यकार और उसके माध्यम से पाप की कमाई करने वाले दुष्ट, जो अनाचार कर रहे हैं, उसे रोकने की भी प्रार्थना है। नारी को बहिन, पुत्री और माता की दृष्टि से देखने का अनुरोध तो प्रत्यक्ष ही रक्षाबन्धन में सन्निहित है।

नारी के प्रति पवित्र भावना की शक्ति का प्रमाण पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथानकों में मिलता है। इन्द्र को विजय तभी मिली, जब देवी शची ने पवित्र भाव से रक्षासूत्र बाँधा। अर्जुन, शिवाजी, छत्रसाल आदि महापुरुषों की सफलताओं के पीछे उनका नारी के प्रति पवित्र दृष्टिकोण भी असाधारण महत्त्व रखता है।

क्रिया और भावना- रक्षाबन्धन पूज्य श्रद्धास्पद व्यक्तियों अथवा कन्याओं से कराया जाता है। सामूहिक आयोजन में कुछ प्रतिनिधि सबको रक्षासूत्र बाँधें। व्यक्तिगत सम्बन्धों के आधार पर राखी बाँधने का क्रम उस समय चलाने से व्यवस्था गड़बड़ा जाती है, उसे कार्यक्रम के बाद के लिए छोड़ देना चाहिए। रक्षासूत्र बाँधने-बँधवाने के समय परस्पर पवित्र-दिव्य स्नेह सूत्रों से बँधने का भाव रखें-

ॐ यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यꣳ, शतानीकाय सुमनस्यमानाः। तन्मऽआबध्नामि शतशारदाय, आयुष्मांजरदष्टिर्यथासम्। ।३४.५२

॥ वृक्षारोपण ॥

प्रेरणा प्रवाह- वृक्ष परोपकार के प्रतीक हैं, जो बिना कुछ माँगे मनुष्यों-पशुओं को छाया, फल प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त वृक्षों की अधिकता से वायु शुद्ध होती है। वैज्ञानिक कहते हैं कि वृक्षों से वर्षा, प्रदूषण, नियन्त्रण आदि में बड़ी सहायता मिलती है। मानव जीवन की सभी आवश्यक वस्तुएँ यथा भोजन-वस्त्र-निवास आदि में वृक्षों का ही योगदान अधिक रहता

है, इसलिए वृक्षारोपण, उनका पूजन एवं अधिकाधिक हरियाली पैदा करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है ।

क्रिया और भावना- पर्व प्रकरण के प्रतीक रूप में तुलसी की पौध लगाने का न्यूनतम कार्यक्रम अवश्य पूरा किया जाना चाहिए । उसके लिए उचित मात्रा में पौध, पूजावेदी पर या अन्यत्र सजाकर रख लेनी चाहिए । उपस्थित व्यक्तियों में जो अपने यहाँ पौध लगाना चाहें, उन्हें वे दिये जाएँ । सभी उसे हाथ में लेकर मन्त्र के साथ अभिमन्त्रित करें । भावना करें कि प्रकृति में संव्याप्त कल्याणकारी चेतना प्रवाह इस पौध को मंगलमय क्षमता से सम्पन्न बना रहा है । मंच पर प्रतीक पौध गमले में मन्त्रोच्चार के साथ आरोपित करें । शेष व्यक्ति कार्यक्रम समाप्त होने पर उसे वांछित स्थानों में लगाएँ ।श्रावणी से भाद्रपद तक वृक्षारोपण अभियान चलाया जाए ।

ॐ वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस्त्मन्या.समञ्जञ्छमिता न देवः ।
इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः,स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन ॥

- २०.४५

॥ संकल्प ॥

........नामाहं श्रावणीपर्वणि प्रायश्चित्तविधान-शुद्धान्तःकरणैः आर्षप्रणाल्याअनुरूपं तपश्चर्यात्यागयोः स्वजीवने सिद्धान्त-मंगीकृत्य श्रद्धानिष्ठापूर्वकं तद्धारणस्य संकल्पमहं करिष्ये । तत्प्रतीकरूपे....... नियमपालनार्थं स्वीकुर्वे ।

* * *

श्री कृष्ण जन्माष्टमी-गीता जयन्ती

माहात्म्य बोध- युग निर्माण परिवार भारतीय धर्म के अवतारी आत्माओं में राम और कृष्ण को सूर्य-चन्द्र की उपमा देता रहा है। राम का जन्म-दिवस रामनवमी को मनाया जाता है। कृष्ण का दर्शन जन्माष्टमी की अपेक्षा गीता जयन्ती में अधिक प्रखर हुआ है। अर्जुन को भ्रम-जंजाल से छुड़ाकर उन्होंने जिस प्रकार कर्मयोग में प्रवृत्त किया, उसे न केवल महाभारत के घटनाक्रम की दृष्टि से ही, वरन् भारतीय दर्शन में उन दिनों चल रहे अवसाद को तेजी से बदलने की दृष्टि से भी अत्यन्त क्रान्तिकारी कहा जा सकता है। भगवान् कृष्ण के प्रति श्रद्धाभिव्यक्ति तथा उनके जीवन से प्रेरणा प्राप्त करने के लिए सामूहिक आयोजन चाहे कृष्ण जन्माष्टमी (भाद्रपद कृष्ण ८) को किया जाए, चाहे गीता जयन्ती (मार्गशीर्ष शुक्ल ११) पर, विधि-विधान एक से ही रखे जाते हैं। भगवान् कृष्ण के व्यक्तित्व और उनके जीवन दर्शन गीता को भिन्न-भिन्न मानकर नहीं चला जा सकता है। दोनों एक-दूसरे से गुँथे हुए हैं। प्रेरणा उभारने के लिए दोनों का ही उपयोग किया जाना आवश्यक है। भगवान् श्रीकृष्ण ने जीवन में समग्र सन्तुलन को रख दिया है। उन दिनों त्याग-वैराग्य की हवा जोरों से चल रही थी। ईश्वर भक्ति और आत्म कल्याण जैसे महान् लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आमतौर से गृह-त्याग, एकान्तवास, संन्यासधारण, भिक्षाचरण, कायाकष्ट जैसे क्रिया-कलाप ही अपनाये जाने लगे थे। उसी का प्रचलन-परम्परा बन गया था। प्रतिभावान् विभूतियाँ सांसारिक, सामाजिक कर्त्तव्यों की उपेक्षा करके आत्मलाभ में लगती थीं। फलतः सारा समाज दुर्बल और अस्त-व्यस्त होता चला जा रहा था। इस प्रवाह की दिशा बदले बिना न अध्यात्म का उद्देश्य पूरा होता था और न व्यक्ति का आत्म-कल्याण सम्भव था। भगवान् ने अर्जुन के माध्यम से समस्त मानव जाति को यही सन्देश दिया कि आत्म-कल्याण एवं ईश्वर प्राप्ति के लिए सर्वांग साधना कर्मयोग से ही हो सकती है। भावनाओं को निःस्वार्थ उदात्त परमार्थपरक बनाते हुए लोकमंगल के लिए किए गये सभी कर्म योगसाधना एवं तपश्चर्या हैं। उन्हें अपनाने से आत्म-कल्याण ही नहीं, लोकमंगल का उभयपक्षीय प्रयोजन भी पूरा होता

है । अस्तु, जप-तप तक सीमित न रहकर लोकहित के क्रियाकलाप को पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त करने का माध्यम बनाया जाना चाहिए ।

गीता में भगवान् ने अर्जुन को अपने विराट् रूप का दर्शन कराते हुए यह बताया कि यह प्रत्यक्ष विश्व ही मेरा साकार रूप है । संसार को सुन्दर, समुन्नत, सुविकसित और सुव्यवस्थित बनाने के लिए किये गये समस्त प्रयत्न ईश्वर-आराधना के श्रेष्ठतम उपचार हैं । यह प्रतिपादन उस एकांगी मान्यता का प्रकारान्तर से खण्डन है, जिसमें अमुक नाम रूप की अनुष्ठानपरक, उपासना को जीवन लक्ष्य की पूर्ति का साधन माना जाता था और परमार्थ प्रेमी उसी में अपना सारा समय-श्रम एवं साधन नियोजित किए रहते थे ।

गीता में कर्म करने की एक उत्कृष्ट मनोवैज्ञानिक शैली को उभारा गया है । लक्ष्य ऊँचा रखते हुए भी, शक्ति भर प्रयत्न करते हुए भी-सफलता पूर्णतया निश्चित नहीं रहती । परिस्थितियाँ भी अपना काम करती हैं और कई बार ऐसे परिणाम सामने आ खड़े होते हैं, जिनमें श्रेष्ठ प्रयास भी असफलता के निकट जा पहुँचते हैं । ऐसी घटनाओं से कर्मयोगी को भी बहुत आघात लग सकता है और वह उदास होकर अपना साहस एवं प्रयास ही गवाँ सकता है । भगवान् ने इस स्थिति से बचने के लिए यह मनोवैज्ञानिक मोड़ दिया है कि श्रेष्ठ कर्म करने भर को संतोष, गौरव, उल्लास एवं श्रेय का केन्द्र बिन्दु मान लिया जाए । श्रेष्ठ कर्म किया गया, उसमें पूरी तत्परता बरती गई, इसी को अपनी महानता एवं साहसिकता की सफल अभिव्यंजना मान लिया जाए और कर्मफल को गौण समझा जाए । भौतिक सफलता-असफलता तो बाद में मिलती है, उसका मूल्यांकन तो दूसरे करते हैं, अपना मूल्यांकन और अपनी सफलता-सन्तोष तो उस शुभारम्भ के साथ ही उपलब्ध कर लिया जाए, जिसमें कि श्रेष्ठ कर्म करने की दिशा में वह कदम उठाया गया, जिसे आमतौर से लोभ-मोहग्रस्त व्यक्ति उठाते हुए कतराते हैं ।

कर्मयोग दर्शन में सफलता की परिभाषा और सन्तोष का केन्द्र बिन्दु बदला गया है; ताकि अनाचारी लोगों द्वारा अनुचित मार्ग पर चलकर प्राप्त की गयी सफलताओं की ओर किसी का भी जी न ललचाने लगे । अपने सत्प्रयत्नों का भौतिक परिणाम कुछ बढ़-चढ़ कर न मिलने से किसी की

हिम्मत टूटने न लगे ।कर्मयोग का दर्शन उस मानसिक असन्तुलन से बचाता है, जो शारीरिक रोगों से भी हजार गुना अधिक कष्टकर और हानिकारक सिद्ध होता है, घटनाक्रम किसी के हाथ में नहीं, प्रिय और अप्रिय परिस्थितियाँ धूप-छाँव की तरह आती रहती हैं । मनुष्यों में भी सर्वथा सज्जनता ही कहाँ ? व्यक्तियों तथा घटनाओं द्वारा बार-बार ऐसे व्यवधान प्रस्तुत किये जाते रहते हैं, जो उद्वेग और आवेश उत्पन्न करें । क्रोध, चिन्ता, भय, निराशा, घृणा उत्पन्न करने वाले अवसर आये दिन सामने खड़े रहते हैं, उन्हें बदलने सुधारने के लिए सन्तुलित मस्तिष्क रहने पर कुछ ठीक तरह सोचा और ठीक तरह किया जा सकता है, पर मानसिक दुर्बलता के कारण घटनाक्रम ने पहले मस्तिष्क द्वारा उल्टा ही सोचा अथवा किया जाता है, फलस्वरूप विपत्ति और कई गुनी बढ़ जाती है । दूसरों द्वारा प्रस्तुत व्यवधान की अपेक्षा अपने असन्तुलन की हानि अनेक गुनी होती है । यदि विवेक स्थिर रखा जा सके, तो अपना सन्तुलन तो बनाया ही जा सकता है और संकट उतना सीमित ही बना रह सकता है, जिसके साथ विवेक बुद्धि से जूझा - निपटा जा सके ।

मनोविज्ञान शास्त्री जानते हैं कि व्यक्तियों या घटनाओं के कारण मनुष्य को सीमित हानि ही हो सकती है । असीम हानि तो उसकी आवेशग्रस्तता ही उत्पन्न करती है । असफलता अथवा दुर्व्यवहार के कारण मनुष्य का साहस टूट जाता है और वह निराश, हतांश होकर अपना भविष्य अन्धकारमय बना लेता है, अविश्वासी पलायनवादी बन जाते हैं । यदि सफलता मिली, तो वह अहंकारी, उद्धत, अतिवादी, दुस्साहसी बन जाता है और वह हर्षातिरेक स्थिति भी एक तरह का उन्माद उत्पन्न करके अवास्तविकतावादी बना देती है । इस प्रकार सफलताओं की उपलब्धि भी यदि असन्तुलन उत्पन्न करे, तो वह असफलता से भी मँहगी पड़ती है ।

स्थितप्रज्ञ की-समत्व योग की चर्चा करते हुए भगवान् कृष्ण ने गीता के माध्यम से मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषता और गरिमा उसके मानसिक सन्तुलन की स्थिरता को बताया है । उस आधार पर मनुष्य अपने विवेक को आड़े समय में स्थिर रख सकता है और संकटापन्न लगने वाली स्थिति को खिलाड़ी की-अभिनेता की भावना से निर्वाह करता हुआ, मानसिक आघात से बचा रह सकता है । प्रसन्नता, प्रफुल्लता को अक्षुण्ण बनाये रह सकता है ।

ऐसी मानसिक स्थिति वस्तुत: एक बहुत बड़ी उपलब्धि है और उसके दूरगामी परिणाम होते हैं। तीन-चौथाई से अधिक त्रास देने वाले मनोविकारों से छुटकारा मिल जाता है और हलके चित्त वाला व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को किस तरह समुन्नत बनाता चला जाता है तथा सफलताओं को वरण करता चला जाता है, यह किसी भी मनःशास्त्र के विद्यार्थी की समझ में सहज ही आ सकता है।व्यक्तियों को प्यार करते हुए भी उनके दोषों को सहन न किया जाए, यह विश्लेषण की अद्‍भुत शैली है। आमतौर से मित्र के दोष भी सहन किये जाते हैं और शत्रु के गुण भी दम्भ लगते हैं, इस व्यामोह से पक्षपात बढ़ता है और सुधार-परिष्कार की गति अवरुद्ध हो जाती है। गीता ने रोगी से प्यार और रोग पर तलवार बरसाने की परिष्कृत दृष्टि अर्जुन को दी, तभी वह महाभारत का, जीवन-संग्राम का महत्त्वपूर्ण पात्र बन सका।

ऐसे अगणित संदर्भ गीता के श्लोकों में भरे पड़े हैं। जिनकी प्रकाश किरणें यदि हमारे अन्त:करण को थोड़ा भी स्पर्शित कर सकें, तो निस्सन्देह हम जीवन रंगमंच के सफल अभिनेता और दिग्भ्रान्त जन समाज का मार्गदर्शन कर सकने वाले ऐतिहासिक लोक-नेता बन सकते हैं।कृष्ण चरित्र में अनेक प्रेरणाप्रद प्रसंग हैं। आरम्भ काल से ही असुर आततायियों से जूझते रहना, सामूहिक श्रमदान की व्यवस्था जुटाकर गोवर्धन पर्वत खड़ा कर देना, गो-संवर्धन की महत्ता को सर्वसाधारण के मन में गहराई तक बिठाने के लिए गान्धीजी द्वारा काते जाने वाले चर्खे की तरह उस कार्य में स्वयं निरत रहना, न्याय पक्ष को समर्थन देने के लिए अड़े रहना, सारथी बनने जैसे छोटे समझे जाने वाले कार्य को भी अपनाकर श्रमजीवी वर्ग की गरिमा सुरक्षित रखना, सुदामा के गुरुकुल में आर्थिक कमी पड़ने पर, उन्हें याचना का अवसर दिये बिना ही उसका अर्थाभाव दूर करना, बहेलिये द्वारा पैर में तीर लगने से होने वाली मृत्यु द्वारा यह सिद्ध करना कि इस जन्म में शुद्ध चरित्र रहने पर भी पूर्वकृत पाप फल की अनिवार्यता बनी ही रहती है, उससे कोई बच नहीं सकता।उल्लेखनीय है कि रामावतार द्वारा छिपकर बालि को मारने का दण्ड कृष्णावतार में भोगना पड़ा, बालि बहेलिया बनकर बदला चुकाने आया था।कंस द्वारा व्रज के समस्त दूध-घी को अपने लिए माँगना और उसे बरबाद करना कृष्ण को न भाया और उन्होंने ले जाने वाली

गोपियों का रास्ता रोका, इसकी गान्धीजी के असहयोग आन्दोलन और सत्याग्रह प्रयोग से तुलना कर सकते हैं। नर-नारी का परस्पर मिलन काम विकृति ही पैदा करेगा, इसलिए उसे सहन न किया जाए, जैसी उन दिनों की प्रचलित मान्यता को उन्होंने चुनौती दी और कहा नर-नारी का साथ रहना पवित्र दृष्टिकोण में बाधक नहीं हो सकता। दोनों को पृथक् प्रतिबन्धित करना हर दृष्टि से अहितकर है। मनुष्य मात्र मिलकर रहें। नर-नारी साथ-साथ हँसते-खेलते जीवन निर्वाह करें। दृष्टिकोण की पवित्रता तो भावनाओं पर निर्भर है, सहचरत्व उसमें बाधक नहीं होता, यह शिक्षण उन्होंने गोप-गोपियों की सम्मिलित रासलीला द्वारा दिया है।

जयद्रथ-वध के समय सूर्य प्रकाश में नकलीपन उत्पन्न करना, कर्ण के शस्त्र विहीन होने पर अर्जुन को आक्रमण के लिए कहना- एक पत्नी व्रत को अनिवार्य न मानना, द्रोपदी को पाँच पति रखने और अपनी कई पत्नियों का एक अभिनव प्रयोग करना, जैसे कितने ही प्रसंग ऐसे हैं, जिन्हें सामान्य लोक परम्परा से ऊँचे उठकर इसी दृष्टि से विचार करना पड़ेगा कि उच्च आदर्शों की रक्षा के लिए प्रचलित आचार संहिता में हेर- फेर भी किया जा सकता है। गुप्तचर विभाग को छल और झूठ के आधार पर ही अपनी राष्ट्र सेवा करने का अवसर मिलता है। सैनिक, योद्धा हिंसा का प्रयोग करते हैं, उन्हें सामान्य दृष्टि से हेय कहा जा सकता है, पर सूक्ष्म विवेचना इसकी भी आवश्यकता अनुभव करती है। दुष्टता से निपटने के लिए आपत्ति धर्म के आधार पर अथवा अपरिहार्य आवश्यकता उत्पन्न हो जाने पर, वैसे व्यतिक्रम भी सहन किये जाने चाहिए, कृष्ण के कुछ चरित्र इसी मान्यता का समर्थन करते हैं। उनकी माखनचोरी- लीला आदि की क्रान्तिकारियों की डकैती से तुलना की जा सकती है। विश्वामित्र ऋषि द्वारा आपत्तिकाल में कुत्ते का माँस खाकर अपनी प्राण रक्षा करने-जैसे प्रसंगों को भी इसी श्रेणी में लिया जा सकता है।

जो हो, हम उन्हें दार्शनिक गुत्थियों पर नये ढंग से सोचने का एक तरीका भी समझें और उन पर दूसरे लोगों को विचार करने दें। जन-संख्या निरोध में एक उपाय द्रोपदी वाला भी प्रचलित है। पर्वतीय क्षेत्रों में भूमि की

कमी और परिवार विस्तार की गुंजायश न देखकर वहाँ एक भाई का विवाह होता है और शेष सह-पति रहते हैं ।

जर्मनी में द्वितीय महायुद्ध के समय बहुश: लोग मर-खप गये थे । बढ़ी हुई नारी संख्या की अस्त-व्यस्तता रोकने के लिए पुरुषों को कई पत्नियाँ रखने का कानूनी अधिकार दिया गया था । ऐसे ही विशेष परिस्थितियों में विशेष प्रथाएँ-विशेष रूप से बदली जा सकती हैं । इसी का समर्थन भगवान् कृष्ण ने किया है । उन्होंने मान्यताओं को पत्थर की लकीर न बनाये रखकर परिस्थितियों के अनुरूप उन पर स्वतन्त्र चिन्तन की गुंजायश रखने भर का पथ - प्रशस्त किया है ।

भगवान् श्री कृष्ण हर दृष्टि से महान् थे । उनके चरित्र में से जितना अंश सर्वोपयोगी हो, उसे हम सब अनुकरणीय मानें । विशेष परिस्थितियों में कुछ विशेष ढंग से सोचने के लिए जो किया या कहा है, उसे विशेषज्ञों के लिए छोड़ देना पड़ता है ।जन सामान्य को उसमें नही उलझना चाहिए ।

॥ पूर्व व्यवस्था ॥

श्री कृष्ण जन्माष्टमी- गीता जयन्ती पर सामान्य पर्वों जैसी व्यवस्था से ही काम चल जाता है । पूजन मंच पर भगवान् कृष्ण का, सखाओं के प्रतीक अर्जुन या ग्वालबालों का चित्र, गीता की पुस्तक आदि सजाकर रखें । आवाहन पूजन के लिए प्रतीक स्थापना आवश्यक है ।

पर्व पूजन का समय ऐसा रखें कि जिसमें सबको पहुँचने में कठिनाई न हो । जन्म समारोह के नाम पर रात्रि के १२ बजे आयोजन की बात न सोचें । पर्व के सन्दर्भ में भगवान् कृष्ण का अभिवादन-पूजन करने का भाव रखें । श्रद्धा और उपयोगिता दोनों दृष्टियों से यह भाव उपयुक्त रहता है ।

॥ पर्व पूजन क्रम ॥

प्रारम्भ में प्रेरणा संचार के लिए गीत एवं संक्षिप्त उद्‌बोधन करके पूजन क्रम आरम्भ करें । षट्कर्म से रक्षाविधान तक का क्रम अन्य पर्वों की तरह चले ।विशेष पूजन में भगवान् कृष्ण का आवाहन, सखा आवाहन एवं गीता आवाहन करें । तीनों का संयुक्त पूजन षोडशोप्चार से करें ।भगवान्

कृष्ण को नैवेद्य के रूप में विशेष रूप से गो-द्रव्य चढ़ाये जाएँ ।अन्त में यज्ञ-दीपयज्ञ, समापन, देव दक्षिणा संकल्प, संगीत आदि का क्रम रहे ।

॥ विशेष पूजन ॥

प्रेरणा प्रवाह- पर्व पूजन में भगवान् कृष्ण , उनके सखा एवं गीता का आवाहन-पूजन किया जाता है । विशेष नैवेद्य में गो-द्रव्य चढ़ाये जाते हैं । इन उपचारों से सम्बद्ध प्रेरणा, उपचार के पूर्व उभारी जानी चाहिए ।

भगवान् कृष्ण के संदर्भ में भूमिका में बहुत कुछ संकेत किये जा चुके हैं। उनमें से कुछ आवाहन के पूर्व उभारे जा सकते हैं। सखा सहयोग-सहकारिता के प्रतीक हैं । यह ऐसी वृत्ति है, जिसकी आवश्यकता भिन्न-भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं के समर्थक भी एक मत से स्वीकार करते हैं । उनके जीवन में बाल्यकाल से लेकर अन्त तक सखाओं का- सहकारिता का प्रवाह बड़ी स्पष्टता से उभरा है । सखा आवाहन के साथ उसे उभारें ।

गीता को उनका शाश्वत कलेवर कह सकते हैं । ज्ञान को जन सुलभ और सर्वोपयोगी बनाने का उसमें अपने ही ढंग से प्रयास किया गया है । व्यक्ति का जीवन-दर्शन ही उसका असली स्वरूप है, इस तत्त्व को गीता पूजन के साथ उभारें ।गो-द्रव्य कृष्ण को विशेष प्रिय थे । उन्होंने गो-संवर्धन अभियान, चर्खा और सर्वोदय के ढंग से चलाया था । भारत में गोवंश व गो-द्रव्यों के उपयोग का महत्त्व हर स्तर पर सिद्ध किया जा चुका है; परन्तु संकीर्णतावश उसका महत्त्व जन-जीवन में उतर नहीं रहा है । गो-द्रव्य के द्वारा उसे व्यापक बनाने की प्रेरणा उभारना, प्रार्थना करना अभीष्ट है ।

॥ श्रीकृष्णावाहन ॥

ॐ देवकीनन्दनाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि ।
तन्नः कृष्णः प्रचोदयात् ॥ -कृ० गा०

ॐ वंशी विभूषितकरान्नवनीरदाभात्,
पीताम्बरादरुणविम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्,
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥ॐ श्रीकृष्णाय नमः ।

॥ श्रीकृष्ण-सखा आवाहन ॥

ॐ सखायः सं वः सम्यञ्चमिष थ्ठ स्तोमं चाग्नये।
वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥ - १५.२९
ॐ श्रीकृष्ण-सखिभ्यो नमः।

॥ गीता आवाहन ॥

ॐ गीता सुगीता कर्त्तव्या, किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य, मुखपद्माद्विनिःसृता॥
गीताश्रयेऽहं तिष्ठामि, गीता मे चोत्तमं गृहम्।
गीताज्ञानमुपाश्रित्य, त्रींल्लोकान्पालयाम्यहम्॥
सर्वोपनिषदो गावो, दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता, दुग्धं गीतामृतं महत्॥
ॐ श्रीगीतायै नमः।

तत्पश्चात् आवाहन करके पुरुषसूक्त से षोडशोपचारपूजन करें।

॥ गोद्रव्य-अर्पण ॥

मन्त्र के साथ पंचामृत भगवान् कृष्ण को अर्पित करें।

ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां, स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः। प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय, मा गामनागामदितिं वधिष्ट॥ - ऋ० ८.१०१.१५

॥ संकल्प ॥

.........नामाहं कृष्णजन्मोत्सवे / गीताजयन्तीपर्वणि स्वशक्ति-अनुरूपं न्यायपक्षवरणं तत्समर्थनं च करिष्ये। तत्प्रतीकरूपेण .....नियमपालनार्थं संकल्पयिष्ये।

* * *

॥ पितृ अमावस्या ॥

यह पर्व आश्विन कृष्णपक्ष (पितृ पक्ष) के अन्त में अमावस्या को होता है । श्राद्ध संस्कार के आधार पर इसका आयोजन किया जाता है । प्रारम्भ में सामान्य प्रकरण से षट्कर्म आदि से रक्षाविधान तक कराते हैं, पुनः यम आवाहन, पितृ आवाहन, तर्पण, पिण्डदान, श्राद्ध संकल्प आदि समय और परिस्थितियों के अनुसार विवेकपूर्ण ढंग से करा लेना चाहिए। उपर्युक्त प्रकरण इस पुस्तक के पृष्ठ २७४ से पृष्ठ २९७ के मध्य आ चुका है। विसर्जन से पूर्व पितृ मोक्ष (उऋण भाव) का संकल्प लेना चाहिए। संकल्प दुहराने का क्रम नीचे दिया जा रहा है।

॥ संकल्प ॥

.........नामाहं पितृमोक्षपर्वणि परमेश्वर-प्रकृति-पितृ-परिजन आश्रित इतर- जनानां कृतमुपकाराणामृणाद् आनृण्यार्थं प्रबलपुरुषार्थम् अहं करिष्ये।

* * *

॥ विजयादशमी ॥

माहात्म्य बोध- दशहरा शौर्य का, शक्ति का, स्वास्थ्य का पर्व है । इस दिन हम अपनी भौतिक शक्ति, मुख्यतया शस्त्र और स्वास्थ्य बल का लेखा-जोखा करते हैं। अपनी शक्तियों को विकसित एवं सामर्थ्ययुक्त बनाने के लिए दशहरा पर्व प्रेरणा देता है । वैसे इस पर्व के साथ अनेकों कथाएँ जुड़ी हुई हैं ; लेकिन मुख्यतः दुर्गा, जो शक्ति की अधिष्ठात्री देवी हैं, इसका इतिहास अधिक महत्त्व रखता है । कथा है कि ब्रह्माजी ने असुरों का सामना करने के लिए सभी देवताओं की थोड़ी-थोड़ी शक्ति संगृहीत करके दुर्गा अर्थात् संघशक्ति का निर्माण किया और उसके बल पर शुम्भ-निशुम्भ,

मधुकैटभ, महिषासुर आदि राक्षसों का अन्त हुआ। दुर्गा की अष्टभुजा का मतलब आठ प्रकार की शक्तियों से है। शरीर-बल, विद्या-बल, चातुर्य-बल, धन- बल, शस्त्र-बल, शौर्यबल, मनोबल और धर्म-बल इन आठ प्रकार की शक्तियों का सामूहिक नाम ही दुर्गा है। दुर्गा ने इन्हीं के सहारे बलवान् राक्षसों पर विजय पायी थी।

समाज को हानि पहुँचाने वाली आसुरी शक्तियों का सामूहिक और दुष्ट व्यक्तियों का प्रतिरोध करने के लिए हमें संगठन शक्ति के साथ-साथ उक्त शक्तियों का अर्जन भी करना चाहिए। उक्त आठ शक्तियों से सम्पन्न समाज ही दुष्टताओं का अन्त कर सकता है, समाज द्रोहियों को विनष्ट कर सकता है, दुराचारी षड्यन्त्रकारियों का मुकाबला कर सकता है।

दशहरा का पर्व इन शक्तियों का अर्जन करने तथा शक्ति की उपासना करने का पर्व है। स्मरण रहे संसार में कमजोर, अशक्त व्यक्ति ही पाप-बुराई-अन्याय को प्रोत्साहन देते हैं। जहाँ इस तरह के व्यक्ति अधिक होंगे, वह समाज अस्त-व्यस्त एवं नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा। वहाँ असुरता, अशान्ति, अन्याय का बोलबाला होगा ही।

दशहरे पर भगवान् राम द्वारा रावण पर विजय की कथा भी सर्वविदित है। व्यक्ति के अन्दर परिवार एवं समाज में असुर प्रवृत्तियों की वृद्धि ही अनर्थ पैदा करती है। जिन कमजोरियों के कारण उन पर काबू पाने में असफलता मिलती है, उन्हें शक्ति साधना द्वारा समाप्त करने के लिए योजना बनाने- संकल्प प्रखर करने तथा तदनुसार क्रम अपनाने की प्रेरणा लेकर यह पर्व आता है। इसका उपयोग पूरी तत्परता एवं समझदारी से किया जाना चाहिए।

॥ पूर्व व्यवस्था ॥

यह पर्व आश्विन नवरात्रि से जुड़ा रहता है। नवरात्रि साधना का महत्त्व एवं सामूहिक साधना क्रम का विवरण चैत्र नवरात्रि प्रकरण में दिया जा चुका है। नौ दिन का सामूहिक साधना का अनुष्ठान जहाँ जिस स्तर पर भी हो, आयोजित किया जाना चाहिए। नवमी को बहुधा पूर्णाहुति के लिए सभी साधक एकत्रित होते हैं। दशहरे के दिन प्रातःकाल पूर्णाहुति रखकर नवरात्रि साधना की पूर्णाहुति एवं दशहरा पर्व का संयुक्त रूप भी दिया जा सकता है। यदि साधना पूर्णाहुति नवमी को दशहरे से एक दिन पूर्व कर ली

गई, तो स्थानीय सुविधा के अनुसार दशहरा पर्व पूजन दशमी के दिन प्रातःकाल या सायंकाल कभी भी किया जा सकता है।

देवपूजन मंच पर अष्टभुजी माँ दुर्गा का चित्र स्थापित किया जाना चाहिए। शस्त्र पूजन के लिए कोई शस्त्र चौकी पर सजाकर रखना चाहिए। पूजन सामग्री के साथ पुष्प, अक्षत, चन्दन आदि उपस्थिति के अनुरूप पर्याप्त मात्रा में रखना चाहिए।

॥ पर्व पूजन क्रम ॥

पर्व के अनुरूप प्रेरणा उभारने के लिए उपयुक्त संगीत एवं संक्षिप्त भूमिका के बाद पूजन क्रम प्रारम्भ किया जाता है।षट्कर्म से रक्षाविधान तक सामान्य क्रम यथा- स्थिति चलाएँ। विशेषपूजन नीचे लिखे अनुसार करें।

॥ दुर्गा-आवाहन-पूजन ॥

दुर्गा देववृत्तियों का नाम है। भावना करें कि यह देवानुकूल विशेषताएँ हममें, जन-जन में जागें। उनका संयुक्त उपयोग करने की क्षमता मिले। इस भावना के साथ सभी हाथ जोड़कर यह मन्त्र बोलें।

ॐ संगच्छध्वं संवदध्वं, सं वो मनांसि जानताम्।
देवाभागं यथापूर्वे, सञ्जानाना उपासते॥

इसके बाद माता दुर्गा का विशेष आवाहन करें। ऋ० १०.१९१.२

॥ दुर्गा आवाहन ॥

ॐ गिरिजायै विद्महे, शिवप्रियायै धीमहि।
तन्नो दुर्गा प्रचोदयात्॥ - दु० गा०

ॐ नमस्ते शरण्ये शिवे सानुकम्पे,
नमस्ते जगद् व्यापिके विश्वरूपे।
नमस्ते जगद्वन्द्य पादारविन्दे,
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥

ॐ श्रीदुर्गायै नमः।आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि।

तत्पश्चात् पुरुष सूक्त पृष्ठ९१ से षोडशोपचार पूजन करें।

॥ शस्त्र पूजा ॥

प्रेरणा प्रवाह-आसुरी शक्तियों को नियन्त्रित करने के लिए जिन साधनों की आवश्यकता पड़ती है, उन्हें शस्त्र कहते हैं। उनका उपयोग रक्षार्थ करना ही पड़ता है; परन्तु एक बार शस्त्र के उपयोग का अभ्यास होते ही उसका उपयोग स्वार्थ पूर्ति के लिए भी किया जाने लगता है। शस्त्र पूजा के साथ यह प्रेरणा जुड़ी है कि शस्त्र का ऐसा उपयोग हो, जो अभिनन्दनीय हो। शस्त्रों में माँ दुर्गा वह संस्कार पैदा करें, जो उनको सदुद्देश्यों से बहकने न दे।

चौकी पर शस्त्र रखकर मन्त्र सहित उस पर पुष्प चढ़ाएँ। विशेष शस्त्र न हो, तो लाठी, चाकू आदि से काम चला लेना चाहिए।

ॐ शत्रू षाण्नीषाडभिमातिषाहो, गवेषणः सहमान उद्‌भित्। वाग्वीव मन्त्रं प्र भरस्व वाचं, सांग्राममजित्यायेषमुद्वदेह॥

अथर्व० ५.२०.११

इसके बाद यज्ञ आदि समापन के उपचार यथास्थिति किये जाएँ।

॥ संकल्प ॥

....नामाहं दुर्गापूजनपर्वणि समाजे स्वान्तःकरणे च सद्‌वृत्तीनां समारोपणे तदभिनन्दन-सहकारयोश्च संकल्पम् अहं करिष्ये।

***

॥ दीपावली पर्व ॥

दीपावली लक्ष्मी का पर्व माना गया है। लक्ष्मी से तात्पर्य है-अर्थ-धन। यह अर्थ का पर्व है। दीपावली पर हम अपनी आर्थिक स्थिति का लेखा-जोखा लेते हैं, उसका चिट्ठा बनाते हैं, लाभ-हानि पर विचार करते हैं, लेकिन केवल हिसाब-किताब तक ही यह पर्व सीमित नहीं है, वरन् इस अवसर पर आर्थिक क्षेत्र में अपनी बुराइयों को छोड़कर अच्छाइयाँ ग्रहण करने का पर्व है। अर्थ अर्थात् लक्ष्मी जीवन साधना का, विकास की ओर बढ़ने का सहारा है, लेकिन ठीक उसी तरह जैसे माँ का दूध। हम लक्ष्मी को माँ समझ कर उसे अपने जीवन को विकसित-सामर्थ्यवान् बनाने के लिए

उपयोग करें, न कि भोग-विलास तथा ऐशो-आराम के लिए। इसलिए माँ लक्ष्मी के रूप में अर्थ की पूजा करना दीपावली का एक विशेष कार्यक्रम है । आवश्यकतानुसार खर्च करना, उपयोगी कार्यों में लगाना, नीति और श्रम तथा न्याय से धनोपार्जन करना, बजट बनाकर उसकी क्षमता के अनुसार खर्च करना, आर्थिक क्षेत्र में सन्तुलन बनाये रखना, ये दीपावली पर्व के सन्देश हैं ।

गणेश, दीप पूजन और गो- द्रव्य पूजन इस पर्व की विशेषताएँ हैं। इनसे तात्पर्य यह है कि धन की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी का अर्थात् अर्थ का सद्बुद्धि, ज्ञान, प्रकाश और पारमार्थिक कार्यों से विरोध नहीं होना चाहिए, वरन् अर्थ का उपयोग इनके लिए हो और अर्थोपार्जन भी इन्हीं से प्रेरित हो ।

लक्ष्मी पूजन प्रारम्भ करने से पूर्व पूजा वेदी पर लक्ष्मी-गणेश के चित्र या मूर्ति, बहीखाता, कलम-दवात आदि भली प्रकार सजाकर रखने चाहिए तथा आवश्यक पूजा की सामग्री तैयार कर लेनी चाहिए।

यों तो सभी पर्व सामूहिक रूप से मनाये जाते हैं; परन्तु पूजन के लिए किसी प्रतिनिधि को पूजा चौकी के पास बिठाना पड़ता है, इसी परिप्रेक्ष्य में पास बिठाये हुए प्रतिनिधि को षट्कर्म कराया जाए, अन्य उपस्थित परिजनों का समाहिक सिंचन से भी काम चलाया जा सकता है । फिर सर्वदेव नमस्कार, स्वस्तिवाचन आदि क्रम सामान्य प्रकरण से पूरे कर लिये जाएँ । तत्पश्चात् श्रीगणेश एवं लक्ष्मी के आवाहन - पूजन प्रतिनिधि से कराए जाएँ ।

॥ गणेश आवाहन ॥

गणेशजी को विघ्ननाशक और बुद्धि-विवेक का देवता माना गया है । दीपावली पर गणेश पूजन से तात्पर्य यह है कि हम धन को खर्च करने और कमाने में बुद्धि-विवेक से काम लें । अविवेकी ढंग से बुद्धिहीनता के साथ उसे गलत ढंग से न तो अर्जन करें, न खर्च ही करें ।

ॐ एकदन्ताय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि ।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥ - ग० गा०

ॐ विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय,
लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय ।

नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय,
गौरीसुताय गणनाथ ! नमो नमस्ते ॥
ॐ श्री गणेशाय नमः ।

॥ लक्ष्मी आवाहन ॥

लक्ष्मी को विष्णु भगवान् की पत्नी अर्थात् जगन्माता माना गया है। जीवन को भली प्रकार विकसित होने में अर्थ प्रधान साधनों की महती आवश्यकता होती है, लेकिन स्मरण रहे हम इनका उपयोग माता की तरह ही करें। जिस तरह माता का पयपान हम जीवन धारण करने एवं भूख बुझाने के लिए करते हैं, उसी तरह धन आदि साधनों का सदुपयोग करें।

इसी तथ्य को हृदयंगम करने के लिए दीपावली पर महालक्ष्मी का पूजन किया जाता है। निम्न मन्त्र से माँ लक्ष्मी का भावभरा आवाहन करें-

ॐ महालक्ष्म्यै विद्महे, विष्णुप्रियायै धीमहि।
तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ॥ —ल० गा०

ॐ आद्यन्तरहिते देवि, आद्यशक्ति महेश्वरि।
योगजे योगसम्भूते, महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥
स्थूलसूक्ष्ममहारौद्रे, महाशक्तिमहोदरे।
महापापहरे देवि, महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥
पद्मासनस्थिते देवि, परब्रह्मस्वरूपिणि।
परमेशि जगन्मातः, महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥
श्वेताम्बरधरे देवि, नानालंकारभूषिते।
जगत्स्थिते जगन्मातः, महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥
ॐ श्री लक्ष्म्यै नमः ॥

पुरुष सूक्त से सभी आवाहित देवताओं का षोडशोपचार पूजन करें।

॥ बहीखाते एवं कलम दवात का पूजन ॥

बही, बजट बनाने एवं हिसाब रखने का साधन है, आय-व्यय को बताने वाली है। इसलिए दीपावली पर बही का पूजन किया जाता है। कलम-दवात भी हिसाब लिखने के काम में आते हैं। लक्ष्मी के

अर्थात् धन के हिसाब-किताब में इनका उपयोग होने से इन सब की भी पूजा की जाती है ।नये वर्ष के लिए प्रयुक्त की जाने वाली बही तथा कलम-दवात का पूजन विधिवत् निम्न मन्त्रों के साथ करें । पूजन करने के समय उन्हें अक्षत, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप आदि समर्पित करके प्रणाम करें ।

॥ बहीखाता पूजन ॥

ॐ प्रसवे त ऽ उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः ।
यदव्य एषि सानवि ॥ -- ऋ० ९.५०.२

॥ कलम-दवात पूजन ॥

ॐ शिशुर्न जातोऽव चक्रदद्वने स्व१र्यद्वाज्यरुषः सिषासति ।
दिवो रेतसा सचते पयोवृधा तमीमहे सुमती शर्म सप्रथः ॥
- ऋ० ९.७४.१

॥ दीपदान ॥

दीप, ज्ञान के-प्रकाश के प्रतीक हैं । ज्ञान और प्रकाश के वातावरण में ही लक्ष्मी बढ़ती है, फलती-फूलती है । अज्ञान और अन्धकार में वह नष्ट हो जाती है, इसलिए प्रकाश और ज्ञान के प्रतीक साधन दीप जलाये जाते हैं ।

एक थाल में कम से कम ५ या ११ घृत-दीप जलाकर उसका निम्न मन्त्र से विधिवत् पूजन करें । तत्पश्चात् दीपावली के रूप में जितने चाहें, उतने दीप तेल से जलाकर विभिन्न स्थानों पर रखें ।

ॐ अग्निर्ज्योति ज्योंति रग्निः स्वाहा । सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा । अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा । सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ।ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥- ३.९

॥ संकल्प ॥

सभी परिजनों से संकल्प करवाया जाए । वही संकल्प के पुष्पाक्षत पुष्पांजलि मन्त्र बोलते हुए, पूजा चौकी पर चढ़ाते हुए, क्रेम समाप्त करें ।

.....नामाहं महालक्ष्मीपूजनपर्वणि अर्थशक्तिं महालक्ष्मीप्रतीकं विज्ञाय अपव्ययादिदोषं दूरीकरणस्य संकल्पमहं करिष्ये ।

* * *

॥ वसंतपंचमी ॥

माहात्म्य बोध- वसन्त पंचमी शिक्षा, साक्षरता, विद्या और विनय का पर्व है। कला, विविध गुण, विद्या को, साधना को बढ़ाने, उन्हें प्रोत्साहित करने का पर्व है-वसन्त पंचमी। मनुष्यों में सांसारिक, व्यक्तिगत जीवन का सौष्ठव, सौन्दर्य, मधुरता उसकी सुव्यवस्था यह सब विद्या, शिक्षा तथा गुणों के ऊपर ही निर्भर करते हैं। अशिक्षित, गुणहीन, बलहीन व्यक्ति को हमारे यहाँ पशुतुल्य माना गया है। **साहित्य संगीत कलाविहीनः, साक्षात् पशुःपुच्छविषाणहीनः**। इसलिए हम अपने जीवन को इस पशुता से ऊपर उठाकर विद्या-सम्पन्न, गुण-सम्पन्न, गुणवान् बनाएँ, वसन्त पंचमी इसी की प्रेरणा का त्यौहार है।

भगवती सरस्वती के जन्म दिन पर उनके अनुग्रह के लिए कृतज्ञता भरा अभिनन्दन करें- उनकी अनुकम्पा का वरदान प्राप्त होने की पुण्यतिथि पर हर्षोल्लास मनाएँ, यह उचित ही है। दिव्य शक्तियों को मानवी आकृति में चित्रित करके ही उनके प्रति भावनाओं की अभिव्यक्ति सम्भव है। भावोद्दीपन मनुष्य की निज की महती आवश्यकता है। शक्तियाँ सूक्ष्म, निराकार होने से उनकी महत्ता तो समझी जा सकती है, शरीर और मस्तिष्क द्वारा उनसे लाभ उठाया जा सकता है, पर अन्तःकरण की मानस चेतना जगाने के लिए दिव्यतत्त्वों को भी मानवी आकृति में संवेदनायुक्त मनःस्थिति में मानना और प्रतिष्ठापित करना पड़ता है। इसी चेतना विज्ञान को ध्यान में रखते हुए भारतीय तत्त्ववेत्ताओं ने प्रत्येक दिव्य शक्ति को मानुषी आकृति और भाव गरिमा में सँजोया है। इनकी पूजा, अर्चना, वन्दना, धारणा हमारी अपनी चेतना को उसी प्रतिष्ठापित देव गरिमा के समतुल्य उठा देती है, साधना विज्ञान का सारा ढाँचा इसी आधार पर खड़ा है।

भगवती सरस्वती की प्रतिमा, मूर्ति अथवा तस्वीर के आगे पूजा-अर्चा की प्रक्रिया की जाए, इसका सीधा तात्पर्य यह है कि शिक्षा की महत्ता को स्वीकार, शिरोधार्य किया जाए, उनको मस्तक झुकाया जाए अर्थात् मस्तक में उनके लिए स्थान दिया जाए। अपनी आज की ज्ञान सीमा जितनी है, उसे और अधिक बढ़ाने का प्रयत्न किया जाए। वास्तव में संग्रह करने और बढ़ाने

योग्य सम्पदा धन नहीं, ज्ञान है । लक्ष्मी नहीं, विद्या का अधिक संग्रह संपादन किया जाना चाहिए। परीक्षा के लिए पढ़ना भी अच्छा है। विदेशों में श्रमजीवी, व्यापारी, शिल्पी तथा दूसरे लोग रात्रि विद्यालयों में निरन्तर पढ़ते रहते हैं तथा बचपन में स्वल्प शिक्षा रहते हुए भी धीरे-धीरे ज्ञान सम्पदा बढ़ाते चलते हैं और जीवन के अन्त तक अपनी रुचि के विषय में निष्णात बन जाते हैं, ऊँची से ऊँची उपाधि प्राप्त कर लेते हैं ।

अपने देश में यह समझा जाता है कि विद्या नौकरी करने के लिए प्राप्त की जानी चाहिए- यह विचार बहुत ही ओछा और निकृष्ट है । उसमें विद्या की हेटी-खोटी समझकर उसका अपमान करने की धृष्टता छिपी हुई है । विद्या मनुष्य के-मस्तिष्क के-व्यक्तित्व के गौरव के निखार एवं विकास के लिए है । पेट के लिए अन्न की तरह, वह मस्तिष्क के पोषण में सहायक है । हमें पेट भरने की तरह मानसिक भूख बुझाने के लिए दैनिक जीवन में अध्ययन के लिए भी स्थान रखना चाहिए । जिन्हें सरकारी पाठ्यक्रम परीक्षा स्तर की पढ़ाई पढ़नी हो, वे रात्रि विद्यालयों-ट्यूटोरियल स्कूलों की व्यवस्था और उनके आधार पर पढ़ाई जारी रखें, जिन्हें किन्हीं विशेष विषयों में रुचि हो, उनका साहित्य खरीद कर अथवा पुस्तकालयों द्वारा प्राप्त कर अपनी ज्ञान गरिमा बढ़ाएँ । भगवती सरस्वती के पूजन-वन्दन के साथ-साथ इस स्तर की प्रेरणा ग्रहण करने और उस दिशा में कुछ कदम उठाने का साहस करना चाहिए। स्वाध्याय हमारे दैनिक जीवन का अंग बन जाए। ज्ञान की गरिमा को हम समझने लग जाएँ और उसके लिए मन में तीव्र उत्कण्ठा जाग पड़े, तो समझना चाहिए कि सरस्वती पूजन की प्रक्रिया ने अन्तःकरण तक प्रवेश पा लिया ।

अपने देश में शिक्षितों की संख्या २३ प्रतिशत और अशिक्षितों की ७७ प्रतिशत है । यह अभाव अन्न की भुखमरी से भी अधिक भयावह है । यदि मनुष्य शरीर मात्र बनकर जिए, उसकी बौद्धिक परिधि चौड़ी न हो सकी, तो उसे पशु जीवन ही कहा जाएगा । अपने देश की तीन चौथाई जनसंख्या इसी स्तर का जीवनयापन करती है । अन्न का अकाल जब पड़ता है, तब सरकारी-गैर सरकारी स्तर पर दयालु, दानी और लोकसेवियों द्वारा उस कष्ट का निवारण करने के लिए कितने ही उपाय किये जाते हैं, पर अत्यन्त खेद

की बात है कि इस बौद्धिक भुखमरी की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। स्कूली बच्चों की पढ़ाई भर का थोड़ा-सा प्रबन्ध सरकार कर रही है, बाकी प्रौढ़ पुरुष, प्रौढ़ महिलाएँ उसी निरक्षरता की व्यथा से ग्रसित हैं। छोटे देहातों में तो लड़कों के लिए भी पढ़ाई का प्रबन्ध नहीं, पिछड़े वर्ग के लोग पढ़ाई की आवश्यकता ही नहीं समझते। जिनके पास गुजारे को है, वे कहते हैं कि हमें अपने बच्चों से नौकरी थोड़े ही करानी है, हम क्यों पढ़ाएँ ? लड़कियों का पढ़ना तो अभी भी बेकार समझा जाता है। इस स्थिति का अन्त किया जाना चाहिए। शिक्षितों को विद्या ऋण चुकाने के लिए अपने समीपवर्ती अशिक्षितों को पढ़ाने का संकल्प लेना चाहिए और एक नियत संख्या में उन्हें शिक्षित बनाकर ही रहना चाहिए।

ऊँची पढ़ाई के लिए रात्रि विद्यालय, प्रौढ़ पुरुषों के लिए रात्रि पाठशालाएँ, प्रौढ़ महिलाओं के लिए अपराह्न पाठशालाएँ पढ़ने योग्य बच्चों को स्कूल भिजवाने के लिए उनके अभिभावकों से आग्रह, कन्या शिक्षा के लिए वातावरण बनाना तथा व्यवस्था करना, नये स्कूल खुलवाने के लिए सरकार से आग्रह एवं जनता से सहयोग एकत्रित करना, चालू विद्यालयों का विकास-विस्तार का प्रबन्ध करना, पुस्तकालयों की स्थापना, चल पुस्तकालयों का प्रचलन छात्रों को पुस्तकें उधार देने वाले पुस्तक बैंक आदि कितने ही शिक्षा प्रसार सम्बन्धी ऐसे कार्यक्रम हैं, जिन्हें पूरे उत्साह के साथ सर्वत्र विकसित किया जाना चाहिए। वसन्त पर्व पर सरस्वती पूजन की यह प्रक्रिया उचित ही होगी।

भगवती सरस्वती के हाथ में वीणा है, उनका वाहन मयूर है, मयूर अर्थात् मधुर भाषी। हमें सरस्वती का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए उनका वाहन मयूर बनना चाहिए। मीठा, नम्र, विनीत, सज्जनता, शिष्टता और आत्मीयतायुक्त संभाषण हर किसी से करना चाहिए। जीभ को कडुआ, धृष्ट, अशिष्ट बोलने की आदत कदापि न पड़ने दें। छोटों को भी तू नहीं, आप कहकर बोलें, कम से कम तुम तो कहें ही। हर किसी के सम्मान की रक्षा करें। उसे गौरवान्वित करें, सम्मान भरा व्यवहार करें; ताकि किसी को आत्महीनता की ग्रन्थि का शिकार बनाने का पाप अपने सिर पर न चढ़े।

प्रकृति ने मोर को कलात्मक तथा सुसज्जित बनाया है। हमें भी अपनी

अभिरुचि परिष्कृत बनानी चाहिए, हम प्रेमी बनें, सौन्दर्य, स्वच्छता और सुसज्जनता का शालीनतायुक्त आकर्षण अपने प्रत्येक उपकरण एवं क्रियाकलाप में नियोजित रखें, तभी भगवती सरस्वती हमें अपना वाहन, पार्षद, प्रिय पात्र मानेंगी। हाथ में वीणा, अर्थात्-संगीत-गायन जैसी भावोत्तेजक प्रक्रिया को अपने प्रसुप्त अन्तःकरण में सजगता भरने के लिए प्रयुक्त करना है। हम कला प्रेमी बनें, कला पारखी बनें, कला के पुजारी और संरक्षक भी। माता की तरह उसका सात्त्विक एवं पोषक पय पान करें, उच्च भावनाओं के जागरण में उसे सँजोएँ। जो अनाचारी कला के साथ व्यभिचार करने पर तुले हुए हों, पशु प्रवृत्ति भड़काने और कामुकता, अश्लीलता एवं कुरुचि उत्पन्न करने में लगे हों, उनका न केवल असहयोग-विरोध ही करें, वरन् विरोध-भर्त्सना के अतिरिक्त उन्हें असफल बनाने में भी कुछ कसर उठा न रखें।

सरस्वती के अवतरण पर्व पर प्रकृति खिलखिला पड़ती है, हँसी और मुस्कान के फूल खिल पड़ते हैं। उल्लास, उत्साह और प्रकृति के अभिनव सृजन के प्रतीक नवीन पल्लव प्रत्येक वृक्ष पर परिलक्षित होते हैं। मनुष्य में भी जब ज्ञान का, शिक्षा का प्रवेश होता है- सरस्वती का अनुग्रह अवतरित होता है, तो स्वभाव में, दृष्टिकोण में, क्रिया कलाप में वसन्त ही बिखरा दीखता है। हल्की-फुल्की, चिंता और उद्वेगों से रहित खेल जैसी जिन्दगी जीने की आदत पड़ जाती है। हर काम की पूरी-पूरी जिम्मेदारी अनुभव करने पर भी मन पर बोझ किसी भली-बुरी घटना का न पड़ने देना-यही है हल्की-फुल्की जिन्दगी, पुष्पों की तरह अपने दाँत हर समय खिलते रहें, मुस्कान चेहरे पर अठखेलियाँ करती रहे। चित्त हल्का रखना, आशा और उत्साह से भरे रहना, उमंगें उठने देना, उज्ज्वल भविष्य के सपने सँजोना, अपने व्यक्तित्व को फूल जैसा निर्मल, निर्दोष, आकर्षक एवं सुगन्धित बनाना-ऐसी ही अनेक प्रेरणाएँ वसन्त ऋतु के आगमन पर पेड़-पौधों पर नवीन पल्लवों-पुष्पों को देखकर प्राप्त की जा सकती हैं। कोयल की तरह मस्ती में कूकना, भौरों की तरह गूँजना-गुनगुनाना-यही जीवन की कला जानने वाले के चिह्न हैं। हर जड़-चेतन में, वसन्त ऋतु में एक सृजनात्मक उमंग देखी जाती है। उस उमंग को वासना से ऊँचा उठाकर भावोल्लास में विकसित

किया जाना चाहिए। सरस्वती का अभिनन्दन प्रकृति, वसन्त अवतरण के रूप में करती है। हम पूजा वेदी पर पुष्पांजलि भेंट करने के साथ-साथ जीवन में वसन्त जैसा उल्लास, कलात्मक प्रवृत्तियों का विकास और ज्ञान सम्वर्धन का प्रयास करके सच्चे अर्थों में भगवती का पूजन कर सकते हैं और उसका लाभ अपने को तथा अन्य असंख्यों को पहुँचा सकते हैं। युग निर्माण योजना का जन्मदिन वसन्त पर्व है, इसकी लगभग सारी महत्त्वपूर्ण गतिविधियाँ वसन्त पर्व से ही आरम्भ हुई हैं-

(१)योजना के संचालक का आत्मबोध, पर्व एवं दीर्घकालीन तप साधना का आरम्भ (२) गायत्री तपोभूमि का शिलान्यास (३) सहस्र कुण्डीय गायत्री यज्ञ के माध्यम से ४ लाख जीवन्त आत्माओं का मथुरा में सम्मेलन और परिवार का संगठन (४) अखण्ड ज्योति, युग निर्माण पत्रिकाओं का प्रारम्भ (५) आर्ष ग्रन्थों के अनुवाद का प्रारम्भ जैसी प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियाँ इसी दिन से प्रारम्भ की जाती रही हैं। इस दृष्टि से इसे एक आन्दोलन अभियान का जन्म दिन भी कह सकते हैं। युग निर्माण परिवार को इसे युग परिवर्तनकारी ज्ञानगंगा का-ज्ञान क्रान्ति का-लाल मशाल का जन्मदिन मानना चाहिए और इस अवसर पर मिशन का स्वरूप अधिकाधिक जनता तक पहुँचाने के लिए-उसका कार्यक्षेत्र बढ़ाने के लिए नैतिक, बौद्धिक एवं सामाजिक क्रान्ति का अनुगामी बनाने के लिए विशेष उत्साहपूर्वक प्रयत्न करना चाहिए। शाखाएँ वसन्त पर्व को अपना नवीन वर्ष मानें। पिछले वर्ष के कार्य का लेखा-जोखा लें और अगले कार्य का लक्ष्य निर्धारित करें।

॥ पूर्व व्यवस्था ॥

वसन्त पंचमी पर्व युग निर्माण परिवार के परिजनों के लिए विशेष महत्त्व रखता है। उसकी सनातन महत्ता भी कम नहीं है, फिर भी मिशन के सूत्र संचालक के आध्यात्मिक जन्मदिन के रूप में उसका महत्त्व और भी बढ़ गया है। पर्व आयोजन का जो विधान यहाँ दिया जा रहा है- वह सार्वभौम उपयोगिता का ही दिया जा रहा है। प्रयास यह किया जाना चाहिए कि अपने प्रभाव क्षेत्र के सभी शिक्षा संस्थानों-पुस्तकालयों आदि में वसन्तपर्व प्रेरणाप्रद ढंग से मनाया जा सके। पर्व संचालन करने वाले यदि पाठ रटा कर भी तैयार

किये जा सकें, तो तमाम स्थानों पर एक साथ ये आयोजन किये जा सकते हैं । वैसे प्रातः , मध्याह्न और सायं, तीन समयों में आयोजन विभक्त करके भी अधिक स्थानों पर क्रमशः आयोजन कर सकते हैं । उसके लिए व्यवस्था में कुशल सहयोगियों को तैयार करना पड़ता है । वे हर स्थान पर पूर्व व्यवस्था सही ढंग से बनाकर रखें ।

पूर्व व्यवस्था में अन्य पर्वों की तरह पूजन मंच तथा श्रद्धालुओं के बैठने की व्यवस्था पर ध्यान दिया जाना चाहिए । मंच पर माता सरस्वती का चित्र, वाद्ययन्त्र सजाकर रखना चाहिए । चित्र में मयूर न हो, तो मयूरपंख रखना पर्याप्त है । पूजन की सामग्री तथा अक्षत, पुष्प, चन्दन, कलावा, प्रसाद आदि उपस्थिति के अनुसार रखें । युग निर्माण मिशन के संचालक का आध्यात्मिक जन्मदिन मनाने के लिए जन्मदिन संस्कार के अनुसार व्यवस्था बना सकते हैं । उनके अभिनन्दन के लिए युगपुरुष वन्दना (प्रज्ञा पुराण के प्रथम खण्ड के अन्त में छपी है) भी संस्कृत अथवा हिन्दी में सधे हुए कण्ठ से संक्षिप्त टिप्पणियों सहित गाई जा सकती है ।

॥ पर्व पूजन क्रम ॥

पर्व पूजन के प्रारम्भिक उपचार षट्कर्म से रक्षाविधान तक सभी पर्वों की तरह करते हैं । विशेष पूजन क्रम में माँ सरस्वती का षोडशोपचार पूजन करके उनके उपकरण, वाहन तथा वसन्त पूजन का क्रम चलता है ।

युग निर्माण मिशन के संचालक का आध्यात्मिक जन्मदिन मनाना है, तो वसन्त पूजन के बाद उस प्रकरण को जोड़ा जाना चाहिए ।संकल्प में नवसृजन संकल्प की संगति दोनों ही समारोहों के साथ ठीक-ठीक बैठती है ।नवसृजन के लिए अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं साधनों के अंश लगाने की सुनिश्चित रूपरेखा बनाकर ही संकल्प किया जाना उचित है । समापन क्रम अन्य पर्वों की तरह ही पूरे किये जाते हैं ।

॥ सरस्वती आवाहन ॥

माँ सरस्वती शिक्षा, साक्षरता तथा भौतिक ज्ञान की देवी हैं । चूँकि वसन्त पंचमी भी शिक्षा-साक्षरता का पर्व है, इसलिए इस अवसर पर प्रधान रूप से देवी सरस्वती का पूजन किया जाता है । सरस्वती का चित्र अथवा

प्रतिमा स्थापित कर देवी सरस्वती का आवाहन करना चाहिए।

ॐ पावका नः सरस्वती, वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः॥ -२०.८४

ॐ सरस्वत्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥

तदुपरान्त षोडशोपचारपूजन (पृष्ठ ९१) करके प्रार्थना करें-

ॐ मोहान्धकारभरिते हृदये मदीये,
मातः सदैव कुरुवासमुदारभावे।
स्वीयाखिलावयव-निर्मल-सुप्रभाभिः,
शीघ्रं विनाशय मनोगतमंधकारम्॥
सरस्वती महाभागे, विद्ये कमललोचने।
विद्यारूपे विशालाक्षि, विद्यां देहि नमोऽस्तु ते॥
वीणाधरे विपुलमंगलदानशीले,
भक्तार्तिनाशिनि विरंचिहरीशवन्द्ये।
कीर्तिप्रदेऽखिल - मनोरथदे महार्हे,
विद्याप्रदायिनि सरस्वति नौमि नित्यम्॥

॥ वाद्ययन्त्र पूजन ॥

वाद्य संगीत मनुष्य की उदात्त भावनाओं और उसकी हृदय तरंगों को व्यक्त करने के सहयोगी साधन हैं। इसलिए इन साधनों का पूजन करना, उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा-भावना प्रकट करना है। स्मरण रहे, स्थूल और जड़ पदार्थ भी चेतनायुक्त तरंगों से स्वर लहरियों के संयोग से सूक्ष्म रूप में एक विशेष प्रकार की चेतना से युक्त हो जाते हैं, इसलिए वाद्य केवल स्थूल वस्तु नहीं, प्रत्युत उनमें मानव हृदय की सी तरंगों को समझकर उनकी पूजा करनी चाहिए। चर्मरहित जो वाद्ययन्त्र उपलब्ध हों, उन्हें एक चौकी पर सजाकर रखें। पुष्प, अक्षत आदि समर्पित कर पूजन करें।

ॐ सरस्वती योन्यां गर्भमन्तरश्विभ्यां,पत्नी सुकृतं बिभर्ति।
अपाᳪरसेन वरुणो न साम्नेन्द्रᳪ श्रियै जनयन्नप्सु राजा॥
-१९.९४

॥ मयूरपूजन ॥

मयूर-मधुर गान, सौन्दर्य तथा प्रसन्नता का सर्वोत्कृष्ट प्रतीक प्राणी है। मनुष्य मयूर की भाँति अपनी वाणी, व्यवहार तथा जीवन को मधुरतायुक्त आनन्ददायी बनाए, इसके लिए मयूर की पूजा की जाती है।

सरस्वती के चित्र में अंकित अथवा प्रतीक रूप में स्थापित मयूर का पूजन करें। अक्सर चित्रों में मयूर का चित्र होता ही है। यदि कहीं ऐसा चित्र सुलभ न हो, तो मयूर पंख को पूजा के लिए प्रयुक्त कर लेना चाहिए। निम्न मन्त्र से मयूर का पूजन किया जाए-

ॐ मधु वाताऽऋतायते, मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥ -१३.२७

॥ वसन्त पूजन ॥

पुष्प प्रसन्नता, उल्लास और नवजीवन के खिलखिलाते रूप के मूर्त प्रतीक होते हैं। प्रकृति की गोद में पुष्पों की महक, उनका हँसना, खेलना, घूमना मनुष्य के लिए उल्लास, प्रफुल्लता का जीवन बिताने के लिए मूक सन्देश है। इसी सन्देश को हृदयंगम करने, जीवन में उतारने के लिए पुष्प का पूजन किया जाता है।खेतों से सर्षप (सरसों) पुष्प जो वसन्ती रंग के हों अथवा बाग आदि से फूल पहले ही मँगवाकर एक गुलदस्ता बना लेना चाहिए। वसन्त का प्रतीक मानकर इसका पूजन करें-

ॐ वसन्ताय कपिञ्जलानालभते, ग्रीष्माय कलविङ्कान् वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे, वर्त्तिका हेमन्ताय, ककराञ्छिशिराय विककरान्॥ -२४.२०

यजमान यही फूल का गुच्छा सरस्वती माता को अर्पित करें।

॥ संकल्प ॥

नामाहं वसन्तपर्वणि नवसृजन-ईश्वरीय योजनां अनुसरन् आत्मनिर्माण-परिवारनिर्माण-समाजनिर्माणादिषु त्रिविधसाध-नासु नियमनिष्ठापूर्वकं सहयोगप्रदानाय संकल्पं अहं करिष्ये।

* * *

॥ महाशिवरात्रि पर्व ॥

माहात्म्य बोध- महाशिवरात्रि पर्व भगवान् शिव की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए प्रसिद्ध है । शिव का अर्थ होता है-शुभ, भला । शंकर का अर्थ होता है- कल्याण करने वाला । निश्चित रूप से उन्हें प्रसन्न करने के लिए मनुष्य को उनके अनुरूप ही बनना पड़ता है । सूत्र है- **"शिवो भूत्वा शिवं यजेत्"** अर्थात्-शिव बनकर शिव की पूजा करें, तभी उनकी कृपा प्राप्त हो सकती है । यह भाव गहराई से साधकों को हृदयंगम कराया जा सके तथा शिव की विशेषताओं का सही रूप उनके ध्यान में लाया जा सके, तो वास्तव में साधना के आश्चर्यजनक परिणाम मिलने लगें ।

शिवजी के प्रति जनसाधारण में बहुत आकर्षण है; किन्तु उनके सम्बन्ध में भ्रांतियाँ भी खूब हैं, इसलिए शिव की साधना के नाम पर ही अशिव आचरण होते रहते हैं । शिवरात्रि पर्व पर सामूहिक आयोजन के माध्यम से फैली हुई भ्रांतियों का निवारण करते हुए शिव की गरिमा के अनुरूप उनके स्वरूप पर जन आस्थाएँ स्थापित की जा सकती हैं । ऐसा करना व्यक्तिगत पुण्य अर्जन और लोककल्याण दोनों दृष्टियों से बहुत महत्त्व रखता है ।

शिव का अर्थ है- शुभ, शंकर का अर्थ है- कल्याण करने वाला । शुभ और कल्याणकारी चिन्तन, चरित्र एवं आकांक्षाएँ बनाना ही शिव आराधना की तैयारी अथवा शिव सान्निध्य का लाभ है ।शिवलिंग का अर्थ होता है- शुभ प्रतीक चिह्न-बीज । शिव की स्थापना लिंग रूप में की जाती है, फिर वही क्रमश: विकसित होता हुआ सारे जीवन को आवृत कर लेता है । शिवरात्रि पर साधक व्रत-उपवास करके यही प्रयास करते हैं ।शिव अपने लिए कठोर दूसरों के लिए उदार हैं । यह अध्यात्म साधकों के लिए आदर्श सूत्र है ।स्वयं न्यूनतम साधनों से काम चलाते हुए, दूसरों को बहुमूल्य उपहार देना, स्वयं न्यूनतम में भी मस्त रहना, शिवत्व का प्रामाणिक सूत्र है ।

नशीली वस्तुएँ आदि शिव को चढ़ाने की परिपाटी है । मादक पदार्थ सेवन अकल्याणकारी है; किन्तु उनमें औषधीय गुण भी हैं । शिव को चढ़ाने का अर्थ हुआ- उनके शिव- शुभ उपयोग को ही स्वीकार करना, अशुभ व्यसन रूप का त्याग करना ।ऐसी अगणित प्रेरणाएँ शिव विग्रह के साथ जुड़ी हुई

हैं। त्रिनेत्र विवेक से कामदहन, मस्तक पर चन्द्रमा मानसिक संतुलन, गंगा-ज्ञान प्रवाह, भूत आदि पिछड़े वर्गों को स्नेह देना आदि प्रकरण युग निर्माण साहित्य में जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े हैं, उनका उपयोग विवेकपूर्वक प्रेरणा प्रवाह पैदा करने में किया जा सकता है।

॥ पूर्व व्यवस्था ॥

शिवरात्रि पर्व के लिए सामूहिक आयोजन में मंच पर शिवजी के चित्र सजाएँ। कामदहन, गंगावतरण, विषपान जैसे चित्रों का उपयोग किया जा सकता है। शिव पंचायतन, जिसमें शिव परिवार तथा गण भी हों, ऐसा चित्र मिल सके, तो और भी अच्छा है।पूजन सामग्री के साथ पूजन के लिए किसी प्रतिनिधि को बिठाया जाए। इस पुस्तक के सामान्य प्रकरण से षट्कर्म, सर्वदेव नमस्कार, स्वस्तिवाचन आदि कृत्य पूरे कर लिये जाएँ। तत्पश्चात् भगवान् शिव, उनके परिवार और गणादि का आवाहन-पूजन किया जाए।

॥ शिव आवाहन ॥

कल्याणकारी धारा के मूल महादेव-महाकाल भगवान् शिव का आवाहन करें। भावना करें कि भक्तों के आवाहन पर वे परम कृपालु युग प्रवर्तक प्रवाह के रूप में प्रकट होंगे, हमारी पूजा स्वीकार करेंगे।

ॐ रुद्राः स ᳬं सृज्यपृथिवीं,बृहज्ज्योतिः समीधिरे।
तेषां भानुरजस्त्र ऽ,इच्छुक्रो देवेषु रोचते॥ -११.५४
ॐ याते रुद्र शिवा तनूः,शिवा विश्वाहा भेषजी।
शिवा रुतस्य भेषजी,तया नो मृड जीवसे॥
ॐ श्री शिवाय नमः॥ -१६.४९

॥ शिव परिवार आवाहन ॥

शिवजी का परिवार आदर्श परिवार है, सभी अपने-अपने व्यक्तित्व के धनी तथा स्वतन्त्र रूप से उपयोगी हैं। अर्धांगिनी-असुरनिकंदिनी, भवानी, ज्येष्ठ पुत्र देव सेनापति कार्तिकेय तथा कनिष्ठ पुत्र प्रथम पूज्य गणपति हैं। शिव के आराधक को शिव परिवार जैसे श्रेष्ठ संस्कार युक्त परिवार निर्माण

के लिए तत्पर होना चाहिए। भावना करें कि पारिवारिक आदर्श का प्रवाह हमारे बीच प्रवाहित हो रहा है।

॥ भवानी ॥

ॐ हिमाद्रि तनयां देवीं, वरदां शंकरप्रियाम्।
लम्बोदरस्य जननीं, गौरीमावाहयाम्यहम्॥

॥ स्वामी कार्तिकेय ॥

ॐ यदक्रन्दः प्रथमं जायमान, ऽ उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू, उपस्तुत्यं महिजातं ते अर्वन्॥
-२९.१२

॥ गणेश ॥

ॐ लम्बोदर! नमस्तुभ्यं, सततं मोदकप्रिय।
निर्विघ्नं कुरु मे देव, सर्वकार्येषु सर्वदा॥

॥ गण आवाहन ॥

शिवजी के गण उनके कार्य के लिए समर्पित व्यक्तित्व हैं। उनमें भूत-पिशाच पिछड़े वर्ग के भी हैं और देव वर्ग के भी। प्रधान गण हैं वीरभद्र। वीरता अभद्र न हो, भद्रता डरपोक न हो, तभी शिवत्व की स्थापना होगी। भले काम के लिए देव-पिशाच सभी एक जुट हो जाएँ, यही प्रेरणा शिवजी के गणों से प्राप्त होती है। भावना करें कि शिवजी के अनुयायी बनने योग्य प्रवृत्तियों का प्रवाह उमड़ रहा है। हमारे द्वारा पूजित होकर वह हमारे लिए उपयोगी बनेंगे।

ॐ भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रारातिः,
सुभग भद्रो अध्वरः। भद्राऽ उत प्रशस्तयः॥ १५.३८

तदनन्तर भगवान् शिव, उनके परिवार और गणादि का पुरुषसूक्त से षोडशोपचार पूजन करें। पूजन मंत्र पृष्ठ९१में उद्धृत किया जा चुका है। फिर त्रिपत्रयुक्त विल्वपत्र भगवान् शिव को निम्न मन्त्र बोलते हुए चढ़ाएँ।

ॐ त्रिदलं त्रिगुणाकारं, त्रिनेत्रं च त्रिधायुधम्।
त्रिजन्मपापसंहारं, विल्वपत्रं शिवार्पणम्॥
दर्शनं विल्वपत्रस्य, स्पर्शनं पापनाशनम्।
अघोरपापसंहारं, विल्वपत्रम् शिवार्पणम्॥

तत्पश्चात् सभी लोग हाथ जोड़कर देवाधिदेव की प्रार्थना करें।

ॐ नागेन्द्र हाराय त्रिलोचनाय,
भस्मांगरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय,
तस्मै 'न' काराय नमः शिवाय॥
मन्दाकिनी- सलिलचन्दन- चर्चिताय,
नन्दीश्वर- प्रमथनाथ- महेश्वराय।
मन्दारपुष्पबहुपुष्प- सुपूजिताय,
तस्मै 'म' काराय नमः शिवाय॥
शिवाय गौरी- वदनाब्जवृन्द,
सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय।
श्री नीलकण्ठाय वृषध्वजाय,
तस्मै 'शि' काराय नमः शिवाय॥
वशिष्ठ कुम्भोद्भवगौतमार्य-
मुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय,
तस्मै 'व' काराय नमः शिवाय॥
यज्ञस्वरूपाय जटाधराय,
पिनाकहस्ताय सनातनाय।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय,
तस्मै 'य' काराय नमः शिवाय॥

॥ अशिव त्याग संकल्प ॥

अशुभ तत्त्वों का भी शुभ योग सम्भव है । कुछ ओषधियों में मादकता और विषैलापन भी होता है, उसे व्यसन न बनने दें ।औषधि प्रयोग तक उनकी छूट है । व्यसन बन गये हों, तो उन्हें छोड़ें, शिवजी को चढ़ाएँ । संकल्प करें कि इनका अशिव उपयोग नहीं करेंगे । मंत्र के साथ अशिव पदार्थ छुड़वाए जाएँ, बाद में इन्हें जमीन में गाड़ दिया जाएँ-

ॐ अमंगलानां शमनं, शमनं दुष्कृतस्य च ।
दुःस्वप्ननाशनं धन्यं, प्रपद्येऽहं शिवं शुभम् ॥

तत्पश्चात् अशिव त्याग संकल्प करें-

....नामाहं शिवरात्रिपर्वणि भगवतः शिवप्रीतये तत्सन्निधौ अशिव - चिन्तन - आचरण - व्यवहारत्यागानां निष्ठापूर्वकं संकल्पमहं करिष्ये ।तत्प्रतीकरूपेण....दोषं त्यक्तुं संकल्पयिष्ये ।

संकल्प के अक्षत-पुष्प सभी लोग पुष्पांजलि के रूप में भगवान् को चढ़ाएँ, बाद में दीपयज्ञ, यज्ञादिकृत्य सम्पन्न करके क्रम समाप्त किया जाए ।

* * *

॥ होली ॥

माहात्म्य बोध- होली पर्व सारे भारत में हर्षोल्लास का पर्व है, जिसमें छोटे-बड़े का भेद भुलाकर जनमानस एकाकार होकर तरंगित होने लगता है । यह यज्ञीय पर्व है । नई फसल पकने लगती है, उसके उल्लास में सामूहिक यज्ञ के रूप में होली जलाकर नवीन अन्न का यज्ञ करके, उसके बाद उपयोग में लाने का क्रम बनाया गया है । कृषि प्रधान देश की यज्ञीय संस्कृति के सर्वथा अनुकूल यह परिपाटी बनाई गई है ।

पुराणकालीन, आदर्शसत्याग्रही; भक्त प्रह्लाद के दमन के लिए हिरण्यकश्यप के छल-प्रपंच सफल न हो सके, उसे भस्म करने के प्रयास में होलिका जल मरी और प्रह्लाद तपे कंचन बन गये । खीज-क्रोध से उन्मत्त

हिरण्यकश्यप जब स्वयं उसे मारने दौड़ा, तो नृसिंह भगवान् ने प्रकट होकर उसे समाप्त कर दिया। इस कथा की महान् प्रेरणाओं को होली के यज्ञीय वातावरण में उभारा जाना उपयुक्त है।

यह राष्ट्रीय चेतना के जागरण का पर्व है। जहाँ वर्गभेद है, वहाँ समस्त साधन होते हुए भी क्लेश और अशक्तता ही रहेगी, जिनमें भ्रातृत्व सहकार है, वे अल्प साधनों में भी प्रसन्न और अजेय रहेंगे, इसलिए इसे समता का पर्व भी मानते हैं। कार्य विभाजन के लिए किये गये चार प्रमुख वर्गों को महत्त्व देने की परम्परा रखी गई है। होली पर्व में शूद्र वर्ग को प्रधान महत्त्व देकर समता-सिद्धान्त को चरितार्थ किया जाता रहा है।

इन सब प्रेरणाओं-विशेषताओं को उभारने-पनपाने के लिए होली पर्व का सामूहिक आयोजन अतीव उपयोगी है। प्रभावशाली लोकसेवी-भावनापूर्वक इसके लिए प्रयत्नरत हों, तो बड़े आकर्षक और प्रभावशाली रूप में यह मनाया जा सकता है।होली पर्व पर जो कुरीतियाँ पनप गई हैं, उन्हें निरस्त करने में भी सामूहिक पर्व आयोजन से बड़ी सहायता मिलती है। उत्साह बना रहे, पर उसे मोड़ देकर शुभ बनाया जाए-यह कलाकारिता है, इसे प्रभावशाली लोक- सेवी थोड़े प्रयास-पुरुषार्थ, सूझ-बूझ से सम्पन्न कर सकते हैं। कुछ प्रयोग इस प्रकार किये जा सकते हैं-

होलिका दहन वाले दिन टोली बनाकर निकलें तथा घर-घर से अश्लील चित्र, अश्लील साहित्य माँगें, जो ऐसे चित्र दें, उनके नाम नोट करते चलें। होलिका दहन के समय दोषदहन क्रम में उन सबको होली में जलाएँ। होली पर्व पर चन्दा हो, पूजन में चढ़ोत्तरी हो, उससे अच्छे वाक्य-चित्र खरीदकर उनके यहाँ पहुँचाएँ, जिनने अश्लील चित्र निकाल कर दिये थे। इसके लिए कुछ सद्भावनाशील सम्पन्नों से अलग से भी अनुदान लिया जा सकता है।

होलिका दहन के दूसरे दिन सबेरे लोग धूल-कीचड़ उछालते हैं, इसे सामूहिक सफाई का रूप दिया जा सकता है। गन्दगी की अर्थी निकालने, सामूहिक जुलूस आदि से इस कुप्रथा को मोड़ दिया जा सकता है। ऐसे प्रयोग गाँवों-कस्बों में कुछ साहसी समाजसेवी आसानी से कर सकते हैं। ऐसी स्थिति न दीखे, तो केवल पर्व पूजन से ही संतोष किया जा सकता है।

॥ पूर्व व्यवस्था ॥

होली पर्व मनाने के लिए स्थानीय साधनों- परिस्थितियों के अनुसार पहले से रूपरेखा बना लेनी चाहिए। सामूहिक पर्व पूजन के लिए परम्परागत होलिका दहन के पूर्व सायंकाल का समय उपयुक्त रहता है। सूर्यास्त के बाद किसी निर्धारित देवस्थल पर सभी लोग एकत्रित हों। आने वाले सभी नर-नारियों को यथास्थान पंक्तिबद्ध बैठाने की व्यवस्था रहे। निम्नांकित सामान तथा व्यवस्थाएँ पहले से जुटा लें-

पूजन मंच आकर्षक हो,उस पर नृसिंह भगवान् का चित्र भी हो।सामान्य पूजन सामग्री के साथ समतादेवी के पूजन के लिए चावल की तीन ढेरियाँ पूजा मंच पर पहले से लगाकर रखें। मातृभूमि पूजन के लिए मृत्तिका पिण्ड (मिट्टी का छोटा ढेला) भी रखें। स्वस्तिवाचन, पुष्पांजलि आदि के लिए पर्याप्त मात्रा में पुष्प-अक्षत रहें।नवान्न यज्ञ के लिए गेहूँ की बाल, चने के बूट आदि तैयार रहें, इन्हें भूनकर चीनी की गोलियाँ इलाइची दाने के साथ मिलाकर प्रसाद बाँटा जा सकता है।

॥ क्रम व्यवस्था ॥

पर्व आयोजन स्थल पर सबको यथास्थान बिठाकर संगीत आदि संक्षिप्त उद्‌बोधन से प्रेरणाप्रद वातावरण बनाकर पर्व-पूजन क्रम प्रारम्भ किया जाए। सामान्य क्रम पूरा करने के बाद भगवान् नृसिंह का आवाहन करके षोडशोपचार पूजन करें। उसके बाद मातृभूमि पूजन-रजधारण तथा समतादेवी का पूजन तथा क्षमावाणी करें।

क्षमावाणी के साथ छोड़े जाने वाले दोष-दुर्गुणों को कागज की पर्चियों पर लिखकर ले लें, इन्हें होली के समय दोषदहन क्रम में होली में झोंक दिया जाए।विशेष पूजन क्रम समाप्त होने पर यदि यज्ञ करने की स्थिति है, तो विधिवत् गायत्री यज्ञ करें। पूर्णाहुति से पहले उसी में नया अन्न भूनें तथा उसकी आहुति दें। यज्ञ की अग्नि सुरक्षित रखें। होलिका दहन यज्ञाग्नि से ही कराएँ। यदि यज्ञ नहीं करना है, तो दीपयज्ञ करके अन्य पर्वों की तरह समापन करें। उस स्थिति में होली जलाने के समय अग्नि स्थापना मन्त्र के साथ अग्नि प्रवेश कराएँ, नवान्न उसी में भूनें तथा उसकी आहुति डालें।

होली में दोषदहन का क्रम चलाएँ। दोष लिखी हुई पर्चियाँ एक साथ होली में जलाएँ। अश्लील चित्र, कलैण्डर आदि एकत्रित किये गए हों, तो वह भी झोंकें, इस क्रम को बड़ा प्रभावशाली बनाया जा सकता है। पूजन क्रम समाप्ति के बाद अथवा होली जलाने पर परस्पर मृत्तिका-भस्म लगाकर प्रणाम करें, गले मिलें।

॥ नृसिंहपूजन ॥

दुष्टजनों के अन्याय और अत्याचार से पीड़ित व्यक्तियों की रक्षा, सेवा तथा उद्धार करने वाला व्यक्ति नृसिंह कहलाता है। हम इन बातों को जीवन में उतारकर अन्याय, अत्याचार के ख़िलाफ आवाज उठाएँ, इससे पीड़ित लोगों का उद्धार करें। इसके लिए प्रतीक में नृसिंह पूजन किया जाता है।

हाथ में अक्षत पुष्प लेकर नृसिंह भगवान् का आवाहन मंत्र बोलें। भावना करें कि दुर्बल, साधनहीन, आदर्शवादियों के समर्थक, समर्थ, सम्पन्न, अनाचारियों के काल भगवान् नृसिंह की चेतना यहाँ अवतरित हो रही है। इसके संसर्ग से समाज का कायाकल्प होने की सम्भावना बनेगी।

ॐ नृसिंहाय विद्महे वज्रनखाय धीमहि। तन्नो नृसिंहः प्रचोदयात्॥ ॐ श्री नृसिंहभगवते नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि। -नृ० गी०

आवाहन के बाद सबके हाथ में अक्षत-पुष्प देकर प्रतिनिधि से पुरुष सूक्त के साथ षोडशोपचार पूजन कराएँ। अन्त में पुष्पांजलि के समय सबके पुष्प एकत्रित करके अर्पित किये जाएँ।

॥ मातृभूमि पूजन ॥

इस धरती की रज मिट्टी हमें उसके उपकारों की याद दिलाती है, जिस पर खेले हैं, बड़े हुए हैं। जिसकी गोद में हमने शिशु की तरह उछल-कूद की है, जिसके पदार्थों से हमारा जीवन बढ़ा-चढ़ा है, ऐसी मातृभूमि स्वदेश के लिए अपनी श्रद्धा, भक्ति, निष्ठा को व्यक्त करने के लिए उसकी रज का पूजन, उसको मस्तक पर धारण करना, उसके प्रति कर्त्तव्यों का संकल्प लेना आवश्यक होता है। मृत्तिका पूजन करने के लिए एक मिट्टी की वेदी पर

मृत्तिका पिण्ड को पुष्प, रोली, कलावा, चन्दनादि से भली-भाँति सुसज्जित करना चाहिए। तत्पश्चात् निम्न मन्त्र बोलते हुए उसकी पूजा करें।

ॐ मही द्यौः पृथिवी च न, ऽ इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः। ॐ पृथिव्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि। -ऋ० १.२२.१३

॥ त्रिधासमतादेवीपूजन ॥

भेद-विभेद को मिटाकर समता को अपनाना मानव समाज के उत्थान, विकास एवं कल्याण के लिए आवश्यक होता है। जो समाज जितना संगठित होगा, वह उतनी ही उन्नति की ओर बढ़ेगा। इसके विपरीत भेद-विभेद में और असमानताओं में बँटा हुआ विशृंखलित समाज नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है, उसे दूसरों के सामने झुकना पड़ता है, पददलित होना पड़ता है। समाज की शक्ति समता में, एकता में और संगठन में ही निहित है।

एक चौकी पर चावलों की तीन ढेरियाँ रखकर उनका निम्नस्थ मन्त्रों से विधिवत् पूजन करना चाहिए। स्मरण रहे एक ढेरी **लिंग भेद** को मिटाने की प्रतीक है, दूसरी **जाति भेद** और तीसरी **अर्थभेद** अर्थात् असमानताओं को दूर करने की प्रतीक है। इस प्रकार इन तीन असमानताओं के प्रतीक के रूप में यह पूजन किया जाता है। भावना करें कि पूजन के साथ विषमता को निरस्त करने वाले समत्व भाव का, सब में संचार हो रहा है।

ॐ अम्बेऽअम्बिकेऽम्बालिके, न मा नयति कश्चन। ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां, काम्पीलवासिनीम्॥- २३.१८

पूजन के बाद यदि समय हो, तो यज्ञ करें, अन्यथा दीपयज्ञ करके आगे का क्रम वहीं पूरा कर लें। यदि होली के स्थल पर भीड़ को नियन्त्रित रखते हुए प्रेरणा संचार की स्थिति हो, तो ही वहाँ के लिए अगले क्रम जोड़ें अन्यथा पूजा स्थल पर ही सारे उपचार भाव भरे वातावरण में करा लें। होली परम्परागत ढंग से ही जलने दें। स्थिति के अनुरूप ही निर्धारण करें।

॥ क्षमावाणी ॥

स्मरण रहे होली समता का पर्व है। इस अवसर पर छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, ऊँच-नीच, गरीब-धनवान् का भेद भुलाकर सबसे अपने अपराधों

की, दुष्कर्मों की क्षमा माँगना, भविष्य में ऐसा न करने का व्रत लेना तथा अपनी भूलों-पर पश्चाताप करना समता के भावों को बलवान् और जागरूक बनाने के लिए उपयोगी सिद्ध होता है। सभी लोग अपने-अपने हाथों को अंजलिबद्ध करके निम्न मंत्र बोलते हुए द्वेष-दुर्भाव छोड़ने के रूप में जलांजलि दें। स्मरण रहे आचार्य सभी की अंजलि में थोड़ा जल देकर मन्त्रोच्चार प्रारम्भ कराएँ।

ॐ मित्रस्य मा चक्षुषेक्षध्वमग्नयः, सगराः सगरास्थ सगरेण नाम्ना,रौद्रेणानीकेन पात माऽग्नयः। पिपृत माग्नयो गोपायत मा नमो, वोऽस्तु मा मा हि ꣳ सिष्ट। -५.३४

मन्त्रोच्चार के बाद अंजलि का जल सब लोग भूमि पर छोड़ दें और जिनके प्रति भी मन में, जो द्वेष-दुर्भाव हों, उसे त्याग दें।

॥ रज-धारण ॥

मातृभूमि की रज मस्तक पर धारण करके हम उसके प्रति अपना सम्मान ही प्रकट नहीं करते; वरन् अपना जीवन धन्य बनाते हैं। उसे जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान देने के लिए मस्तक, कण्ठ, हृदय, भुजाओं में धारण करते हैं, इससे तात्पर्य यह है कि उन अंगों के रहते हुए हम मातृभूमि के प्रति कर्त्तव्य-उत्तरदायित्व से विलग न हों।

सबके बायें हाथ में थोड़ी-थोड़ी मिट्टी पहुँचाएँ। मन्त्र के साथ ललाट, बाहु, कण्ठ एवं हृदय आदि में लगाएँ।

ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः, इति ललाटे।
ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम्, इति ग्रीवायाम्।
ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम्, इति दक्षिणबाहुमूले।
ॐ तन्नोअस्तु त्र्यायुषम्, इति हृदि। ३.६२

॥ नवान्न यज्ञ ॥

भारतीय आदर्शों के अनुसार प्रत्येक शुभ पदार्थ या नई वस्तु भगवान् को समर्पित करके, उनके प्रसादरूप में, यज्ञावशिष्ट रूप में ग्रहण की जाती है। होली के अवसर पर आये नवान्न को भी हम भगवान् का प्रसाद बना

कर ग्रहण करें, इसलिए यज्ञ में नवान्न की आहुतियाँ दी जाती हैं। इसे **नवसस्येष्टि** कहते हैं।नवान्न को निम्न मन्त्र बोलते हुए यज्ञाग्नि में भून लें-

ॐ अन्नपतेऽन्नस्य नो,देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्रप्रदातारं तारिषऽऊर्जं,नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥-११.८३

तत्पश्चात् प्रसाद और जयघोष के बाद क्रम समाप्त किया जाए।

* * *

॥ अन्य पर्वों के प्रारूप ॥

भारत के प्रमुख पर्व-त्यौहारों को प्रेरणाप्रद ढंग से मनाने का विधि-विधान प्रस्तुत किया गया; परन्तु कुछ ऐसे पर्व- त्यौहार और हैं, जो क्षेत्र विशेष एवं वर्ग विशेष में प्रचलित हैं, जैसे क्षेत्र विशेष के पर्व हैं, महाराष्ट्र का गणपति उत्सव, बिहार का सूर्यषष्ठी, दक्षिण का पोंगल आदि और वर्ग विशेष के पर्व हैं- शिल्पकार- इंजीनियर का विश्वकर्मापूजन, सिन्धी समाज का झूलेलाल जयन्ती, अग्रवाल समाज का अग्रसेन महाराज का पूजन- उत्सव आदि। इन पर्व, त्यौहारों को भी मनाने का आग्रह रहता है। इनकी रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।सर्वप्रथम 'पर्वों की सामान्य रूपरेखा' के आधार पर उसकी तैयारी कर ली जाए और प्रधान देवता की प्रतिमा, चित्र आदि जो भी उपलब्ध हो, उसे पूजावेदी पर भली प्रकार से सजा दिया जाए।

कर्मकाण्ड का स्वरूप - सर्वप्रथम जिसका पर्व या जयन्ती मनाई जा रही हो, उसके सम्बन्ध में संक्षिप्त भाव भरी- भूमिका प्रस्तुत की जाए। तदुपरान्त षट्कर्म, तिलक, कलावा, कलशपूजन, स्वस्तिवाचन, सर्वदेव नमस्कार करें। सर्वदेव नमस्कार में जहाँ **'एतत्कर्म प्रधान श्री गायत्री देव्यै नमः'** आता है, वहाँ श्री गायत्री देव्यै के स्थान पर अभीष्ट प्रमुख देवता का भी नामोल्लेख किया जाए- यथा- **श्री गणपतये, श्री सूर्याय, श्री विश्वकर्मणे** आदि। इसके बाद प्रधान देवता तथा उनके सहयोगी सखा और आयुध आदि जिसे आवश्यक समझें, उनका आवाहन निम्नांकित शब्दावली में किया

जाए - **ॐ श्री गणतपये नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ।'** यही शब्दावली सभी के लिए रहेगी । **गणपतये** के स्थान पर **विश्वकर्मणे, सूर्याय** आदि का प्रयोग किया जा सकता है । आवाहन के बाद संक्षिप्त अथवा पुरुष-सूक्त से षोडशोपचार पूजन किया जाए । इसके बाद यज्ञ या दीपयज्ञ सम्पन्न करें और अन्त में क्षमाप्रार्थना, साष्टांग नमस्कार, देवदक्षिणा संकल्प के साथ मन्त्र पुष्पांजलि समर्पित करते हुए कार्यक्रम पूर्ण किया जाए । जयघोष- प्रसाद वितरण करते हुए, उस देवता विशेष या उत्सव विशेष की महिमा प्रकट करने वाले गीत-भजन प्रस्तुत किए जा सकते हैं ।

॥आशीर्वचन ॥

मन्त्रार्थाः सफलाः सन्तु पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ।
शत्रुभ्यो भयनाशोऽस्तु मित्राणामुदयस्तव ॥१ ॥
श्रीर्वर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधात्पवमानं महीयते ।
धान्यं धनं पशुं बहुपुण्यलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः ॥२ ॥
आयुर्द्रोणसुते श्रियो दशरथे शत्रुक्षयो राघवे,
ऐश्वर्यं नहुषे गतिश्च पवने मानं च दुर्योधने ।
शौर्यं शांतनवे बलं हलधरे सत्यं च कुन्तीसुते,
विज्ञानं विदुरे भवन्तु भवतः कीर्तिश्च नारायणे ॥३ ॥
लक्ष्मीररुन्धतीचैव कुरुतां स्वस्ति तेऽनघ ।
असितो देवलश्चैव विश्वामित्रस्तथाङ्गिराः ॥४ ॥
स्वस्ति तेऽद्य प्रयच्छन्तु कार्तिकेयश्च षण्मुखः ।
विवस्वान्भगवान् स्वस्ति करोतु तव सर्वशः ॥५ ॥
ब्रह्माणी चैव गायत्री सावित्री श्रीरुमासती ।
अरुन्धत्यनसूया च तव सन्तु फलप्रदाः ।
ब्रह्माविष्णुश्च रुद्रश्च सूर्यादिसकलग्रहाः ।
सौभाग्यं ते प्रयच्छन्तु वेदमन्त्राश्च कल्पकाः ॥७ ॥

* * *

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा

: युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य- संक्षिप्त परिचय :

ज्यादा जानकारी यहाँ से प्राप्त करें :
http://hindi.awgp.org/about_us

- **विचारक्रान्ति अभियान के प्रणेता** : विचारों को परिस्कृत और ऊँचा उथाने मे समर्थ 3000 से भी अधिक पुस्तकों के लेखन के माध्यम से विश्वव्यापी विचार क्रान्ति अभियान की शरुआत की ।
- **वेद, पुराण, उपनिषद के प्रसिद्ध भाष्यकार** : जिन्हों ने चारों वेद, 108 उपनिषद, षड दर्शन, 20 स्मृतियाँ एवं 18 पुराणों का युगानुकूल भाष्य किया, साथ ही 19 वाँ प्रज्ञा पुराण की रचना भी की ।
- **3000 से अधिक पुस्तकों के लेखक** : मनुष्य को देवता समान, घर-परिवार को स्वर्ग, समाज को सभ्य और समग्र विश्वराष्ट्र को श्रेष्ठ बनाने मे समर्थ हजारों पुस्तकें लिखकर समयानुकूल समर्थ मार्गदर्शन प्रदान किया ।
- **युग-निर्माण योजना के सूत्रधार** : जिन्होंने शतसूत्री युग निर्माण योजना बनाकर नये युग की आधार शिला रखी ।
- **वैज्ञानिक-अध्यात्मवाद के प्रणेता** : जिन्हों ने धर्म और विज्ञान के समन्वय की प्रथम प्रयोगशाला 'ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान' स्थापित कर सिद्ध किया कि "धर्म और विज्ञान विरोधी नहीं, पुरक है "।
- **'२१ वीं सदी : उज्वल भविष्य' के उद्घोषक** : जिन्हों ने '२१ वीं सदी : उज्वल भविष्य' का नारा दिया तथा युग विभीषिकाओं से भयग्रस्त मनुष्यता को नये युग के आगमन का संदेश दिया ।
- **स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ सैनानी** : जिन्हों ने महात्मा गाँधी, मदन मोहन मालवीय, गुरुवर रविन्द्रनाथ टैगोर के साथ राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया एवं स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी "श्रीराम मत्त" के रुप में प्रख्यात हुए ।
- **गायत्री के सिद्ध साधक** : जिन्हों ने गायत्री और यज्ञ को रुढियों और पाखण्ड से मुक्त कर जन-जन की उपासना का आधार तथा सद्‌बुद्धि एवं सतकर्म जागरण का माध्यम बनाया ।
- **तपस्वी** : जिन्होंने गायत्री की कठोरतम साधना कर २४-२४ लाख के २४ महापुरश्चरण २४ वर्षो में सम्पन्न किया । प्रकृति प्रकोप को शांत कर अनिष्टों को टाला, सृजन सम्भावनाओं को साकार किया ।
- **अखिल विश्व गायत्री परिवार के जनक** : जिन्हों ने अपने जीवनकाल में ही अपने साथ करोडों लोगों को आत्मियता के सूत्र में बाँधकर विश्व व्यापी 'युग निर्माण परिवार' - 'गायत्री परिवार' का गठन किया ।
- **समाज सुधारक** : जिन्हों ने नारी जागरण, व्यसन मुक्ति, आदर्श विवाह, जाति-पाँति प्रथा तथा परंपरागत रुढियों की समाप्ति हेतु अद्‌भूत प्रयास किए एवं एक आदर्श स्वरुप समाज में प्रस्तुत किया ।
- **ऋषि परम्परा के उद्धारक** : जिन्हों ने इस युग में महान ऋषियों की महान परंपराओं की पुनर्स्थापना की । लुप्तप्राय संस्कार परंपरा को पुनर्जीवित कर जन-जन को अवगत कराया ।
- **अवतारी चेतना** : जिन्होंने "धरती पर स्वर्ग के अवतरण और मनुष्य में देवत्व के जागरण" की अवतारी घोषणा को अपना जीवन लक्ष्य बनाया और चेतना का ऐसा प्रवाह चलाया कि करोंडों व्यक्ति उस ओर चल पड़े ।

गायत्री परिवार जीवन जीने कि कला के, संस्कृति के आदर्श सिद्धांतों के आधार पर परिवार,समाज,राष्ट्र युग निर्माण करने वाले व्यक्तियों का संघ है। **वसुधैवकुटुम्बकम्** की मान्यता के आदर्श का अनुकरण करते हुये हमारी प्राचीन ऋषि परम्परा का विस्तार करने वाला समूह है गायत्री परिवार। एक संत, सुधारक, लेखक, दार्शनिक, आध्यात्मिक मार्गदर्शक और दूरदर्शी युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा स्थापित यह मिशन युग के परिवर्तन के लिए एक जन आंदोलन के रूप में उभरा है।